pratiShodh

by

Kanaya Lall Manik

Sastee Sahitya
prakashan Benares

प्रतिशोध

१

शास्त्रकारोंका मत जो कुछ भी हो, पर बिना गृहनाथके घर शोभा-विहीन हो जाता है। उसे फिर घर कहा ही नहीं जा सकता। आज गुणवंतीका घर वह घर नहीं रह गया, जो एक पक्ष पूर्व था। वह उसे स्मशानके समान लग रहा था। उसका प्राणेश इस संसारको छोड़कर स्वर्ग सिधार गया था। साथ ही सद्गुणी गुणवंतीके जीवनका तेज, सुख भी अपने साथ लेता गया। लताके समान वेष्ठित हिन्दू-स्त्रीको वृक्षरूप अपने पतिके वियोगसे सम्पूर्ण संसार शून्य दिखाई देता है। वह स्वयं अपने लिए जीवित नहीं रहती बल्कि पतिके लिए ही जीवित रहती है। पति गरीब हो, भिखारी हो, लङ्गड़ा-लूला हो, उसके लिए वही उसका प्रभु है; फिर यह तो विद्वान्, देव-स्वरूप पतिका मरण था। गुणवंतीके सुखका प्रलयकाल आ गया था। जगतकिशोर—दस वर्षका, हँसता, कूदता, लाड़ला किशोर—अपने पिताका स्मरण-चिह्न—वही केवल वियोगरूपी अरण्यमें उसका एकमात्र विराम-स्थल था।

बाहर अन्धकार था, गुणवंतीके हृदयमें भी अन्धकार छाया हुआ था। कुछ समय पूर्व रोनेके लिए एकत्रित स्त्रियाँ चली गई थीं। जगतकिशोर उसकी गोदमें सिर रखे हुए निर्दोषिता की मीठी नींद ले रहा था। गुणवंतीका रूप दुःखसे म्लान और जरा गम्भीर हो गया था; रतिकी कान्तिका स्थान कुन्तीकी शान्तिने ले लिया था। उसका काला वस्त्र, दीपकके मद्धिम प्रकाशके कारण रात्रिके अन्धकारमें एकीभूत हो रहा था। उसका मुख केवल शान्त—मानो किसी अरण्यपर पूर्ण चन्द्र अपनी गम्भीर रमणीयताकी वर्षा करता हो—प्रशान्त तेजकी वृष्टि कर रहा था।

नीचे किसीका पदचाप सुनाई दिया। हाथ बढ़ाकर गुणवंतीने दीपककी रोशनी तेज की। रघुभाईके पैरकी आवाज मालूम पड़ रही थी। रघुभाई

मस्तकपर लगाया हुआ रामानुजी तिलक एवं उनकी विशाल-आँखें दर्शकके मनमें पूज्यभाव उत्पन्न करती थीं। यों तो वे सभी निवासियोंके मनमें निवास करते थे; पर इनका स्थान ग्रामके छोरपर रामचन्द्रजीके मन्दिरमें था। शहरमें इनका भी एक दबदबा था। नगरमें होनेवाली प्रत्येक बातकी इन्हें खबर रहती थी, प्रत्येक झगड़ा-फसादमें वे पंच रूपमें भाग लेते थे। सबका दुःख दूर करनेमें वे यथाशक्ति अपने सादे जीवन तथा श्रद्धाके बलकी परीक्षा करते, जिसमें वे प्रायः सफल भी होते थे। क्रूर अमलदार, स्वयं जमींदार आदि भी, कभी-कभी उनसे डर जाते। इनका ज्ञान तुलसीकृत राम-चरित-मानससे बाहर अत्यन्त थोड़ा था, किन्तु सुधरे हुए प्रदेशमें कानून एवं पुलिसका जितना डर दुराचारियोंपर होना सम्भव है उससे कहीं अधिक डर इस राजदरबारमें उनके सादे जीवनका था। देशी राज्यके अनियन्त्रित दबदबेमें एक ऐसे आश्रयकी भी अत्यधिक आवश्यकता थी।

रामकृष्णदासजी आते हुए बोले—'तुलसी या संसारमें भाँति-भाँतिके लोग—क्यों बेटी! कैसी है?'

'ठीक हूँ महाराज, पधारिये!' गुणवंतीने उत्तर दिया।

रघुभाईने हँसते हुए प्रणाम किया; फिर जरा उपहासके स्वरमें बोले—'पधारिये बाबाजी! कहिये कुशलपूर्वक तो हैं न?'

'हाँ', मानो तुरन्त रघुभाईको देखा हो इस प्रकार बोले, 'कौन, छोटे दीवान! क्यों, क्या हो रहा है? यहाँ क्या दीवानगीरी लगा रहा है?'

रघुभाई कोतवाल था किन्तु किस लक्ष्यपर आँख लगाये हुए बैठा है; इसे प्रायः बहुतसे लोग जानते थे। बाबाजी तो हमेशा उसे छोटे दीवान ही पुकारते थे। रामकृष्णदासजीमें बहुत-सी बातें बड़ी विचित्र थीं। एक तो जहाँ कहीं जाते थे, वहाँ बैठनेकी और दूसरे धीमे बोलनेकी कसम-सी खा ली थी। इधर-उधर वे चहल कदमी किया करते और जब किसीके साथ बात करते तो अपने तेजस्वी आँखोंका पूरा प्रभाव उसपर डालकर अपनी बुलन्द आवाजमें जो कुछ कहना होता, कह डालते थे। लोगोंका यह भी कहना था कि एक दिन राजा साहबसे भी साफ-साफ उन्होंने कह दिया था कि—'तुम तो गुलाम नहीं, गुलामके

भी गुलाम हो।' इसमें कहाँ तक सचाई है, कहा नहीं जा सकता; किंतु इतना तो दृढ़ निश्चय है कि ऐसा कोई अवसर आने पर बाबाजी ऐसा कह देनेमें चूकनेवाले नहीं थे।

रघुभाई ने जरा इधर-उधर देखा—आवाज में मिश्रीकी डली घोलकर जरा हँसे और बोले—'क्या कहा बाबाजी ? गरीब आदमीकी हँसी क्यों उड़ा रहे हैं ? आपका आशीर्वाद होगा तो सब कुछ ठीक हो जायगा। इस समय तो हम यह विचार कर रहे थे कि भाभी को अब क्या करना चाहिये।'

'करना क्या है ! खाना, पीना और रामज़ीका भजन करना।'

'देखिये बाबाजी, अकेले घर बसाकर रहनेकी इनमें शक्ति नहीं है।'

'क्यों नहीं ? क्या रायजी कुछ भी छोड़ नहीं गये ? मैं समझता हूँ कि तू ही हिसाब-किताब रखता था।'

'जी हाँ, लेकिन उनका खर्च बड़ा लम्बा-चौड़ा था, जिससे देना देनेके बाद शायद ही पाँच हजार बच सके।'

'और दस वर्षतक तीन-चार सौ मासिक जो मिलता था, वह किस कम्बख्त की जेबमें चला गया ?' बाबाजी चिल्ला उठे। रघुभाईपर गड़ी हुई दृष्टिका अर्थ साधारण व्यक्ति भी अच्छी तरह समझ सकता था। बाबाजीके हाथका डंडा ऐसा मालूम होता था मानो तड़प रहा हो। रघुभाईकी गम्भीर आँखोंमें क्षण-भरके लिए द्वेष आता-जाता हुआ दिखाई दिया, पर तुरन्तही पुनः अग्निपर शान्ति एवं बुद्धिमत्तारूपी भस्मका आवरण छा गया। उसने धीरेसे बाबाजीको उत्तर दिया—'देखिये बाबाजी ! जरा शांत होकर सुनिये। इतनी जल्दी बिगड़ उठनेसे कोई लाभ नहीं। रायजी साहबका नमक मैंने खाया है—'

'हाँ ! हाँ ! यह तो मैं समझ गया, लेकिन अब क्या करनेका इरादा है ?'

'दूसरा क्या ? जो कुछ आप और भाभी कहें वह मुझे शिरोधार्य है। देखिये, सूरतमें इनके जेठके यहाँ तो इन्हें सुविधा होगी नहीं। बहुत दिनोंसे दोनों भाई अलग थे। साथ ही भाभीकी जेठानीका स्वभाव देखते हुए इन्हें वहाँ बिलकुल ही चैन नहीं पड़ेगी और यहाँसे जाना इनके लिए मुझे लाभप्रद भी नहीं दिखाई देता। राजा साहबके कानमें बात डालकर जगतके लिए यदि कुछ

मासिक सहायताका प्रबन्ध हो जाय तो अच्छा होगा। अभी तो यहीं रहनेमें भलाई है; फिर मेरा घर तो भाभीके लिए सदा खुला हुआ है ही।'

'नहीं भैया! आपको असुविधा—'

'मुझे असुबिधा किस बात की होगी?' रघुभाईने पूछा।

'देख छोटे दीवान! क्या अपने यहाँ गुणवंतीको रखना चाहता है?' बाबाजी ने कुछ विचारमें सिर हिलाते हुए पूछा।

'जी हाँ, मेरे यहाँ रहनेसे इनका कुछ खर्च भी नहीं होगा और मुझे भी राय-साहबके कुटुम्बकी सेवा कर कृतार्थ होनेका अवसर मिलेगा।'

'इससे क्या जगतका भी कुछ लाभ होगा?' विचार-चक्रसे निकलनेमें असमर्थ गुणवंतीने पूछा।

'हाँ, कुछ होगा तो अवश्य लेकिन—'

'बहुत लाभ होगा। मैं इसे राजा साहबके पास ले जाऊँगा।'

वत्सल माताको यह लाभ अनुपम प्रतीत हुआ। पुत्रको सुख मिलता हो तो स्वयं थोड़ा दुख उठानेमें क्या हानि है? फिर यह तो रघुभाई हैं, रायजीको भाईके समान थे। इनके यहाँ रहनेमें बाधा ही क्या है?

'बाबाजी! तब हमें क्या आपत्ति है?' गुणवंती बोली।

'आपत्ति तो बेटी, कुछ नहीं!' कहकर बाबाजी रघुभाईकी ओर देखकर बोले—'अच्छा! लड़केका भला होता है तो जाओ, रहो।'

रघुभाई तो उछल पड़े—'भाभी! देखिए आप स्वयं ही व्यर्थ बुरा-भला सोच रही थीं।' मैंने तो आपके लिए सब प्रबन्ध कर रखा है। कल शामको आपकी देवरानीको भेजूँगा।'

'ठीक है भैया! कल आऊँगी।' घर छोड़नेके विचारसे रोते हुए हृदयसे गुणवंती बोली।

'तब मैं चलता हूँ।' जानेकी आज्ञा माँगते हुए रघुभाई बोला।

'मैं भी जाता हूँ गुणवंती।' कहकर बाबाजी भी साथमें चले गये। गुणवंतीके नेत्रोंमें जल आ गया। नीचे सोये हुए बालकके मुँहको देखा। अकेली बिचारी गुणवंतीने पुत्रके सुखके लिए रघुभाईका कठोर आतिथ्य स्वीकार किया।

वियोग एवं निराश्रयताके असह्य दुःखसे रोते हुए गुणवंतीको सवेरा हो गया।

दरवाजेपर बाबाजी रघुभाईसे अलग हुए; लेकिन जानेके पूर्व बाबाजीने अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे रघुभाईका कन्धा पकड़कर अपने सामने खड़ा किया और कुछ देरतक उसे घूरकर देखते हुए कहा— देख वे छोटे दीवान ! गुणवंती और जगत तेरे यहाँ जाते तो हैं, और ये सच्चे हैं; लेकिन ध्यान रखना ये दोनों रामजीकी रक्षामें हैं।'

यह कहकर बाबाजीने इस प्रकार अपना डण्डा घुमाया कि जो भाव उनके शब्द व्यक्त न कर सके थे, वह भी पूर्ण रूपसे व्यक्त हो गया।

'अरे, यह आप क्या कह रहे हैं महाराज ?' बड़ी कठिनतासे अपने चेहरेका भाव संयत रखते हुए रघुभाई बोला। डण्डेसे समझाये गये भावने उसकी छाती को दहला दिया था।

२

गरीब बिचारी गुणवंती आखिर रघुभाई के यहाँ जाकर रहने लगी। सद्-भाग्यसे रघुभाई अनहद प्रेम दर्शाता था। जरा भी परवशताके भावका भास नहीं होने देता था। उसकी स्त्री कमला भी बड़ी ही भोली और भली थी, संसार में कलियुगके अस्तित्वसे वह बिलकुल अनजान थी। वह अपने छोटेसे घरके दैनिक कार्यमें दिन-रात लगी रहती थी, एवं अपनी वर्ष भरकी पुत्री रमामें ही उसका मन हमेशा अभिनिविष्ट रहता था। इन सब बातोंसे गुणवंती को बेचैनीका कोई कारण नहीं था। उसका स्वभाव भी सबका भला करने का था। वह अपनी एक दृष्टिमें ही सबको अपने वशमें कर लेती थी। रामकृष्णदासजी भी दो-चार दिनमें रघुभाईके यहाँ एक फेरा लगा जाया करते थे, और बराबर जगतको अपने साथ मन्दिरमें ले जाते थे। रामकृष्णदासजो गाँव भरके लड़कोंके गुरु थे, उन्हें देखकर सभी पागल हो जाते थे, और जगतको तो उन्होंने अपना पुत्र ही बना लिया था। थोड़े ही दिनोंमें वह रायजीको भूलने लगा।

जगत अपनी दस वर्षकी अवस्थामें ही चतुराई दिखाने लगा था। रायजीकी

मासिक सहायताका प्रबन्ध हो जाय तो अच्छा होगा। अभी तो यहीं रहनेमें भलाई है; फिर मेरा घर तो भाभीके लिए सदा खुला हुआ है ही।'

'नहीं भैया! आपको असुविधा—'

'मुझे असुविधा किस बात की होगी?' रघुभाईने पूछा।

'देख छोटे दीवान! क्या अपने यहाँ गुणवंतीको रखना चाहता है?' बाबाजी ने कुछ विचारमें सिर हिलाते हुए पूछा।

'जी हाँ, मेरे यहाँ रहनेसे इनका कुछ खर्च भी नहीं होगा और मुझे भी राय-साहबके कुटुम्बकी सेवा कर कृतार्थ होनेका अवसर मिलेगा।'

'इससे क्या जगतका भी कुछ लाभ होगा?' विचार-चक्रसे निकलनेमें असमर्थ गुणवंतीने पूछा।

'हाँ, कुछ होगा तो अवश्य लेकिन—'

'बहुत लाभ होगा। मैं इसे राजा साहबके पास ले जाऊँगा।'

वत्सल माताको यह लाभ अनुपम प्रतीत हुआ। पुत्रको सुख मिलता हो तो स्वयं थोड़ा दुख उठानेमें क्या हानि है? फिर यह तो रघुभाई हैं, रायजीको भाईके समान थे। इनके यहाँ रहनेमें बाधा ही क्या है?

'बाबाजी! तब हमें क्या आपत्ति है?' गुणवंती बोली।

'आपत्ति तो बेटी, कुछ नहीं!' कहकर बाबाजी रघुभाईकी ओर देखकर बोले—'अच्छा! लड़केका भला होता है तो जाओ, रहो।'

रघुभाई तो उछल पड़े—'भाभी! देखिए आप स्वयं ही व्यर्थ बुरा-भला सोच रही थीं।' मैंने तो आपके लिए सब प्रबन्ध कर रखा है। कल शामको आपकी देवरानीको भेजूँगा।'

'ठीक है भैया! कल आऊँगी।' घर छोड़नेके विचारसे रोते हुए हृदयसे गुणवंती बोली।

'तब मैं चलता हूँ।' जानेकी आज्ञा माँगते हुए रघुभाई बोला।

'मैं भी जाता हूँ गुणवंती।' कहकर बाबाजी भी साथमें चले गये। गुणवंतीके नेत्रोंमें जल आ गया। नीचे सोये हुए बालकके मुँहको देखा। अकेली बिचारी गुणवंतीने पुत्रके सुखके लिए रघुभाईका कठोर आतिथ्य स्वीकार किया।

वियोग एवं निराश्रयताके असह्य दुःखसे रोते हुए गुणवंतीको सवेरा हो गया।

दरवाजेपर बाबाजी रघुभाईसे अलग हुए; लेकिन जानेके पूर्व बाबाजीने अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे रघुभाईका कन्धा पकड़कर अपने सामने खड़ा किया और कुछ देरतक उसे घूरकर देखते हुए कहा— देख बे छोटे दीवान! गुणवंती और जगत तेरे यहाँ जाते तो हैं, और ये सच्चे हैं; लेकिन ध्यान रखना ये दोनों रामजीकी रक्षामें हैं।'

यह कहकर बाबाजीने इस प्रकार अपना डण्डा घुमाया कि जो भाव उनके शब्द व्यक्त न कर सके थे, वह भी पूर्ण रूपसे व्यक्त हो गया।

'अरे, यह आप क्या कह रहे हैं महाराज?' बड़ी कठिनतासे अपने चेहरेका भाव संयत रखते हुए रघुभाई बोला। डण्डेसे समझाये गये भावने उसकी छाती को दहला दिया था।

२

गरीब बिचारी गुणवंती आखिर रघुभाई के यहाँ जाकर रहने लगी। सद्-भाग्यसे रघुभाई अनहद प्रेम दर्शाता था। जरा भी परवशताके भावका भास नहीं होने देता था। उसकी स्त्री कमला भी बड़ी ही भोली और भली थी, संसार में कलियुगके अस्तित्वसे वह बिलकुल अनजान थी। वह अपने छोटेसे घरके दैनिक कार्यमें दिन-रात लगी रहती थी, एवं अपनी वर्ष भरकी पुत्री रमामें ही उसका मन हमेशा अभिनिविष्ट रहता था। इन सब बातोंसे गुणवंती को बेचैनीका कोई कारण नहीं था। उसका स्वभाव भी सबका भला करने का था। वह अपनी एक दृष्टिमें ही सबको अपने वशमें कर लेती थी। रामकृष्णदासजी भी दो-चार दिनमें रघुभाईके यहाँ एक फेरा लगा जाया करते थे, और बराबर जगतको अपने साथ मन्दिरमें ले जाते थे। रामकृष्णदासजी गाँव भरके लड़कोंके गुरु थे, उन्हें देखकर सभी पागल हो जाते थे, और जगतको तो उन्होंने अपना पुत्र ही बना लिया था। थोड़े ही दिनोंमें वह रायजीको भूलने लगा।

जगत अपनी दस वर्षकी अवस्थामें ही चतुराई दिखाने लगा था। रायजीकी

मृत्युके उपरान्त इस प्रकार बुद्धिमत्ता से बरताव करता मानो सब भार उसीको उठाना है। गुणवंती तो उसकी ओर से बिलकुल निश्चिन्त रहती; क्रोध करना, रोना-धोना सब कुछ उसने छोड़ दिया था। कभी-कभी अपना क्रोध वह शमन न कर सकता; रघुभाई के प्रति सद्भाव न होने से उससे अलग रहता। इसके अतिरिक्त वह बराबर आनन्द में घूमता-फिरता, अपना अभ्यास करता अथवा रमाके साथ खेला करता था।

बाल-चेष्टाको लोग तुच्छ, निर्जीव और वृद्ध पुरुषों की चेष्टाओं को ध्यान न देनेकी बात, समझते हैं—किन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। वृक्ष का निरीक्षण पौधेसे होता है। कहा भी है 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात।' छोटी वयकी घटना, उस वयका साहचर्य, मनुष्य पर गहरा असर डालते हैं। उतना गम्भीर असर प्रौढ़ अवस्थाके प्रसंग अथवा साहचर्य नहीं करते। जगत के जीवनपर भी आगे के एक दो प्रकरणोंमें वर्णित अनुभवोंने इतना स्थायी असर डाला जो इस वृत्तान्तसे निकाला नहीं जा सकता।

जगतका स्वभाव इस समय कोमल और प्रिय था। माँके पवित्र एवं निर्दोष चारित्र्यकी छाप उसपर पड़ी थी। गुणवंतीका साम्राज्य अपने पुत्र पर पूर्णरूपसे था। गुणवंती पुरानी पद्धति के अनुसार प्रतिपालित की गई थी; उसमें नये फैशनकी टिप-टॉप, नवीन स्त्रियोंकी अर्धनग्नताका प्रवेश नहीं हुआ था। नवीन स्त्रियोंमें देशकी दन्त-कथाका प्रगाढ़ अभाव दिखाई पड़ता है। उससे मुक्त रहनेका अपराध गुणवंतीने किया था। इसीसे रामायण तथा महाभारतकी अखण्ड सुधारस-वर्षक एवं मोहक कथासे जगत का जीवन रसमय बनाने में समर्थ हो सकी थी। उसमें वर्णित वीर नरोंके चारित्र्यका अनुकरण करनेकी ओर जगतका लक्ष्य खींचती। अभीसे अपने मनोराज्यमें अनेक बार उसने परशुराम के समान पृथ्वीको निःक्षत्री कर डाला था—अनेक बार भागीरथीके जैसे प्रयत्न द्वारा अनेक गंगाको खींच लाया था। ऐसी मीठी साहसिक बुद्धिमत्ता किसमें नहीं होती? जिसमें न हो, वह नर नहीं है।

शिशिरका प्रातःकालीन आह्लाद रघुभाईके मकानमें फैला हुआ था। वृक्षों-पर पक्षी चहचहा रहे थे। प्रकृतिदेवी स्मित हास्य कर रही थी। मनमें प्रसन्न

जगत हाथमें तीर कमान लेकर आया; जिसे रघुभाईने उसे ला दिया था। उसकी छोटी-सी आशाका यह केन्द्र-स्थल था। रातमें भी वह इसे साथ लेकर सोता था। खेलमें ही इस खिलौनेके धनुषके कल्पित टंकारसे उसने दिग्विजय किया था; अनेक देव-कन्याओंका हरण किया था। ऐसे ही किसी खिलौनेके द्वारा—सच्चे मनुष्यत्वकी वीरता दिखाते हुए किसी हथियार की प्रतिभाके आस-पास—प्रत्येक चालाक बालकका जीवन बढ़ता है, और अवस्था बढ़नेपर खिलौनेके स्थानपर वह शस्त्र ग्रहण करता है। संसारको डगमगा देनेके लिए आवश्यक 'लीवर' किसी न किसी स्वरूपमें मनुष्य खोजता है—बदलता है; कुछ प्राप्त करते हैं और दूसरे निराश होकर छोड़ देते हैं। पहले लकड़ीका घोड़ा छोड़कर खड़िया लेते हैं, खड़िया छोड़कर कलम पकड़ते हैं। कलम छोड़कर वाक्‌चातुर्य प्रस्फुटित करते हैं। लक्ष्य सबका एक ही है—हृदयमें उछलती हुई मनोवृत्तिको किसी प्रकार विजय करना और उसका आनंद लेनेके लिए संसारको निमन्त्रित करना।

ग्रीक पुराणोंमें कल्पित 'क्युपिड'—कामदेव के सदृश कांतिमान लगता हुआ जगत इधर-उधर तीर फेंक रहा था। उसका तीर जरा ऊँचा चला गया। बालकके मनमें किसी मत्स्य-भेदका विचार आया, पर तीर ऊँचा उड़कर पास ही के प्रांगण में जा गिरा। दोनों प्रांगणके बीच टिनका पर्दा था। क्या करना चाहिए, इसी विचारमें वह लीन खड़ा था।

इतने ही में पीछेसे कोई चढ़ा। धीरे-धीरे भीतके पीछेसे चमकीले काले बाल ऊपर आए, सिर आया, जगत चौंककर खड़ा देखता रहा। गुणवंती बात करते समय 'सुन्दरताकी अवतार जैसी' ऐसी उपमा किसी कन्याकी हमेशा दिया करती थीं। जगत उस सौंदर्यका अवतार अपनी माँको ही देखता था; प्रायः तुरंगपर सवारी करके मनोराज्यमें विचरण करते हुए रमणियोंके रूपकी बाल-कल्पना वह करता किंतु उसका उपमेय गुणवंती ही होती थी। किंतु यह मुख! आठ-दस वर्षकी बालिका, उसका खिलता हुआ बालपनका अवर्णनीय रसभाव, बाल-नयनोंमें चमकती हुई तेजस्वी निर्दोषिता खुले हुए केशमें छिपा हुआ गुलाब सदृश मोहक मुख इन सबने जगतको—जगतके स्नेही स्वभावको—दिग्विमूढ़ बना दिया। बालाकी आँखें हँस रही थीं और उसके हाथमें जगतका फेंका हुआ तीर था।

उस बालाने ऊपर आकर जगतसे पूछा—'यह तीर आपका है ?'

'हाँ' जगतको सूझा ही नहीं कि वह और क्या उत्तर दे। चुपचाप खड़ा रहा

'क्या आप इसे नहीं चाहते ?'

जगतमें गृहस्थकी स्फुरणा हुई - स्त्री-मानके स्वाभाविक अंकुर फूटे। 'तु कौन हो ?' उसने पूछा।

'मैं ?' कोकिल कंठसे बालाने कहा, 'मैं तो तनमन हूँ।'

यह उत्तर सुनकर दूसरा कोई जोरसे हँस पड़ता; किंतु जगतने, इस प्रका सिर हिला दिया मानो वह सब कुछ समझ गया हो।

'मैं आऊँ ?'

'ठहरो, वह सीढ़ी लाकर तुम्हें उतारता हूँ।'

सीढ़ी घसीट लाकर जगत उसपर चढ़ गया और तनमनका हाथ पकड़क टिनका पर्दा डँकाकर उसे इस ओर ले आया। सीढ़ीपर दोनों एक साथ ह कूदकर एक दूसरेपर गिरे उठे – हाथ झाड़ा और एक दूसरेकी ओर देखकर खिल खिलाकर हँस पड़े। बालपनकी कैसी साधारण और दैवी संगति ! कैसा उसक अनिर्वाच्य आह्लाद ! संसारके कृत्रिम रीत-भाँतसे अकलंकित हृदयके साथ मिलने वाला कैसा हृदय-भावका संमेलन ! एक दूसरेमें कैसा विश्वास ! विश्व ऐसे ह ही सम्मेलन के लिए ऐसे ही संगमके लिए है न कि ठोक-पीटकर किया गय यथा प्रचलित अधमता से आदर किया हुआ अथवा रजिस्ट्रेशन से संबद्ध ए तलाक से तोड़े जानेवाले विवाह के लिए !

जगतका जीवन अभी तक साहचर्य-हीन था। उसे तो तृषितको जल बिंदु समान इस बालाकी संगति मिली। तीरकमान अलग पड़ा रह गया। एक वृक्ष पास बनाए हुए चबूतरेपर दोनों पास-पास, बहुत पुराने साथी हों इस प्रका एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बैठ गये।

'तुम कबसे यहाँ आई हो ?'

'मेरे पिताजीकी बदली अभी हुई है कल ही आई हूँ। तुम पढ़ते हो ?'

जगतको अपने पढ़नेपर गुमान था, इससे वह तुरत बोल उठा —'और न तो क्या ? रोज पाठशाला जाता हूँ। मैं तो तीसरे दर्जे में हूँ।'

कुछ देर तक बाल-पक्षियोंका कल्लोल चलता रहा। इतनेसे गुणवंती वहाँ आ गई। तनमनके आकर्षक रूपने उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

उसने पूछा - 'जगत, यह कौन है ?'

'यह तो माँ, पड़ोसीकी लड़की है।'

'किसकी ?'

'अरे माँ ! आपने कल मुझसे शिवाजीकी वार्त्ता कही थी न ?'

'हाँ !'

'उन्हें देवीने हथियार लाकर दिया था न ?'

'हाँ, लेकिन उससे तुम्हारा क्या ?'

'मेरा ! अरे यह मेरी देवी है; मेरा तीर इसीने लाकर मुझे दिया है।'

पुत्रकी बुद्धिमत्तासे पुलकित होती हुई माँ जरा हँसी और बोली—'अच्छा ! लेकिन पड़ोसमें कौन आया है ?'

तनमन अब चुप न रह सकी। चातुरीका भण्डार बनकर बोली – 'देखिये मौसी !' हिन्दू संसारमें बालपनमें सम्बन्ध-जोड़नेकी कैसी सरलता है ! 'पड़ोसमें बाबू हरिलाल हैं न, मैं उनकी लड़की हूँ। मेरा नाम तनमन है। आप जगतकी माँ हैं ?'

'हाँ ! चलो अच्छा हुआ। जगतके लिए भी एक दिल बहलाव हो गया। बेटी, तुम्हारी माँ क्या कर रही हैं ?'

'मेरी माँ तो मर गई दो वर्ष हुआ। मैं अपने पिताजीके साथ रहती हूँ। सौतेली माँ हैं, लेकिन वे अपने पीहरमें हैं।'

'अच्छा, मैं तो जाती हूँ, तुम आया करना; अच्छा !' कहकर गुणवंती तो चली गई। प्यारी माँकी आज्ञा मिल जानेसे जगतको दूना जोर आ गया।

'तनमन ! बोलो क्या किया जाय ?'

'जो कुछ तुम कहो।'

'मुझे तो खेलना अच्छा लगता ही नहीं। चलो हमलोग बैठकर बातें करें।'

तनमन हँसकर बोली – 'अच्छी बात है चलो।'

वह बार-बार हँसा करती। उसका हँसना बड़ा ही मधुर था। अँग्रेजीमें

मधुरपक्षीकी संगीतमय वाणी जब प्रकंपित निकलती है तो उसे 'ट्रिल' कहते हैं। तनमनकी हँसी कुछ-कुछ उसीका स्मरण दिलाती थी।

संसारमें सूर्योदय होता है, मनुष्यके जीवनमें भी सूर्योदय और सूर्यास्त होता है। जगतके जीवनमें गुणवंतीके शान्त प्रेमकी शीतलता तो सदैव रहती, आज नवीन तेजोमय सूर्यकी प्रभा आई। मनकी कई एक बंद कलियाँ खिल उठीं। दिनभर जगत पाठशालामें तनमनको ही याद करता रहा। आज पाठशालाके शोरगुलमें प्रतिदिनसे भिन्न नया अलौकिक मीठा हास्य उसके कानमें सुनाई देता। संध्या समय पाठशालासे घर आकर आँगनकी सीढ़ीपर वह खड़ा-खड़ा खा रहा था, कि इतनेमें पीछेसे किसीने धक्का मारा। जगत एक ओर और हाथका लड्डू दूसरी ओर धूलमें जा विराजे। तनमनने दौड़कर हाथ बढ़ाया और गम्भीरतासे कहा—'हाय, हाय! जगतको क्या हो गया?'

जगतको क्रोध आ गया। कुछ लोगोंको ऐसे उपद्रव अच्छे नहीं लगते। उसने आँखें तरेरकर पूछा—'मुझे क्यों गिरा दिया?'

उत्तरमें तनमन हँसी। जगतको और भी रोष हुआ, उसने घुड़का। तनमन तुरन्त वहाँसे हट जाकर पेड़के थालापर गम्भीर बन, मानो कुछ हुआ ही नहीं, इस प्रकार बैठ गई। जगत ठंढा पड़ गया। थोड़ी ही देरमें वह अपमान भूल गया—पेड़के थालाके पास जाकर खड़ा हो गया। तनमन ऊँची नजर किये हुए पेड़की पत्तियोंको इस प्रकार देख रही थी मानो और कुछ वह देख ही नहीं रही है।

जगतने पुकारा—'तनमन!'

किन्तु तनमनकी ओरसे इसका कुछ भी उत्तर नहीं मिला; जिससे 'तनमन' पुकारते हुए जगतने उसका हाथ खींचा।

'तनमन-फनमन मैं कुछ नहीं जानती।' मुँह फुलाकर बड़बड़ाती हुई क्रोधी तनमनने अपना सिर फेर लिया। प्रकृतिने रूप सँवारते समय स्वभाव एवं बुद्धिमें किसी बातकी त्रुटि नहीं रखी थी।

'क्यों बोल न, तनमन! नहीं बोलेगी?'—गिड़गिड़ाकर जगत बोला।

'नहीं!' पैर पर पैर चढ़ाकर तनमन पुनः ऊपर देखने लगी।

'क्यों?'

'मेरी इच्छा !' दूसरा सीत्कार आया ।

स्त्रियोंके स्वच्छंद साम्राज्यका यह अनुभव जगतके लिए सर्वप्रथम था। उसके कोमल हृदयको ठेस लगी। वह दूर जाकर खड़ा हो गया। एक दिनके सुखके पश्चात् यह दुःख असह्य लगा। उसे गिरा दिया था, यह भुलाकर उलटे वह बोल नहीं रही थी। यह सोचकर उसे क्रोध हो आया। पीछे एक छोटा-सा मोढ़ा पड़ा था। पीछे देखे बिना उसपर वह बैठने लगा—अचानक वह मोढ़ा खिसक गया और पुनः जगत जमीनपर लम्बा हो गया। पीछे तनमन गम्भीर चेहरा बनाये हुए खड़ी थी। उसकी आँखोंमें दुष्टता झलक रही थी।

तुरन्त नीचे झुककर वह बोली—'अरे, मेरे जगतको फिर क्या हो गया। क्या हो गया मेरे भाईको ? कहीं चोट तो नहीं लगी बेटा ?'—सौ वर्षकी वृद्धाकी आवाजमें तनमनने पूछा।

क्रोध करनेसे तनमन रूठ गई थी। यह दुःख जगतको असह्य-सा हो गया था। अतः जगतने अपने क्रोधको दबा दिया। तनमनका मान भंग हुआ। उसके हर्षके आगे सब कुछ नगण्य था।

'देख तनमन, तू ऐसा करती है ? देख मेरा पैर कितना छिल गया ?'

'अच्छा ! आप तो मुझे देवी बनाने न निकले थे ! यह यदि देवी हो तो मेरा भी भला हो और आपका भी।'

'अरे वाह रे मेरी देवी !' कहकर तनमनके कन्धेपर हाथ रखकर जगत उठा।

———

३

'मेरे बाल पहले झाड़ दीजिये।'

'नहीं माँ ! मेरी चोटी पहले।'

'नहीं भाई ! मेरी पहले।'

'देखो, गुणवंती हँसते हुए बोली, 'मेरे चार हाथ तो हैं नहीं, एकके बाद एक आओ।'

'देखिये ! जगतको पीछे आना हो तो आवे । जगत मुझे देवी कहते हैं, इसलिए पहले तो मैं ही चोटी कराऊँगी ।'

'चल तू ही पहले, बस !' कहकर तनमनको गुणवंती ने बैठाया ।

पन्द्रह-बीस दिनमें गुणवंतीने अपना प्रेम-जादू पड़ोसके घर पर चला दिया था । हरिलाल तथा उनकी पुत्री दोनों उसका बड़े के समान सम्मान करते थे । तनमन दिनभर रघुभाई के यहाँ ही रहती । दिनभर दोनों लड़के बातचीत करते रहते । साथ ही खेलते-कूदते और खाते । दिनमें दस बार रूठते और पुनः मेल हुए बिना न सोते । दो दिनसे तो तनमन हठ करके यहीं सोने लगी थी ।

'मौसी ! आपका लड़का तो मेरा नाम रखता है !'

'माँ ! मेरा भी बहुत-सा नाम रखती है ।' जगतने कहा ।

'मुझे देवी कहते हैं, तनुडी कहते हैं और कल एक किताब में से खोजकर कहते थे, कोई लो रे तनमनिया !'

'और तू कितने नामसे इसे पुकारती है ? देख, सर हिलाये बिना तू बात किया कर ।'

'मैं तो भैयाको कभी किशोर पुकारती हूँ और कभी-कभी जगा सेठ पुकारती हूँ ।'

'नहीं माँ, बहुत नामसे पुकारती है, यह तो झूठ बोलती है ।'

'झूठ बोलती हूँ......' तनमन कहने लगी ।

'अरे बस, अब थोड़ा बोल, कबसे माँग नहीं निकल रही है ।'

'क्या हो रहा है बेटा !' कहते हुए रामकृष्णदासजी आये । जगत उनकी ओर दौड़ा । बाबाजी ने उसे उठा लिया और कुछ देरतक गोदमें रखकर उतार दिया ।

'पधारिये महाराज !' गुणवंतीने कहा । डण्डा दीवालसे खड़ा करके महाराज दाढ़ीपर हाथ फेरने लगे और हमेशा की रिवाज के अनुसार इधर-उधर टहलने लगे । इतने में तनमन चोटी करवाकर उठी ।

'क्यों, लड़की !' बाबाजी ने पुकारा । तनमनने दूसरी ओर देखा और दरवाजे की ओर जाते हुए बड़बड़ाने लगी—'चलो, मुझे भी कोई यहाँ पह-

चानता है ? बाबाजीको तो इनका 'राम' भर है, तब अपनेको भी उनकी कौन-सी परवाह पड़ी है ?'

मुँह बनाकर कहती हुई, दरवाजेके पास बाबाजीका डण्डा रखा था, उसे इस प्रकार लेकर चलती बनी मानो कुछ जानती ही न हो। रामकृष्णदासजी उस लड़कीको भी चाहते थे और उसके इस प्रकारके खेलमें वे पूरा रस लेते थे।

'अरे ओ चोर ! क्या करती है ? खड़ी रह !' हँसी दबाकर बाबाजी बोले।

'आपका है क्या ?' कहकर नटखट तनमन डण्डा लेकर आँगनमें चली गई।

'बेटा जगत ! उठ, इस चोरको पकड़कर ले तो आ।'

जगत उठा, तनमनके पीछे दौड़ा। आगे-आगे तनमन, उसके पीछे-पीछे जगत; घर भरमें दौड़ा-दौड़ मचाकर दोनों थक गये। आखिर दौड़ती हुई तनमन आई और पकड़नेके लिए फैलाये हुए बाबाजीके हाथमें पहले वह एवं पीछे जगत दोनों आकर भर गये। बाबाजीने स्नेहसे दोनोंको कलेजेसे लगा लिया।

'पकड़ा गई नटखट ! अब एक डण्डा लगाऊँ ? मेरे जैसे बुड्ढेको भी सताती है।' कहकर पुनः प्रेमपूर्वक उसे हृदयसे लगा लिया और तब दोनोंको मुक्त कर दिया।

'अच्छा, गुणवंतो ! आज मन्दिरमें वीरपुरसे गुरु-बन्धु आये हैं, कुछ भजन आदि है, इसलिए दोनोंको ले जाता हूँ।'

'आज तो दरबारमें नाच-गाना है, रघुभाई वहाँ ले जानेके लिए कह रहे थे।'

'नहीं माँ ! हम वहाँ नहीं जायँगे। क्यों तनमन ?' जगत बोल उठा। उसे रघुभाईके साथ जाना कभी भी अच्छा नहीं लगता था।

'नहीं, नहीं ! ये तो मेरे साथ जायँगे। बेटा जाओ, कपड़ा बदलकर आ जाओ।'

'लेकिन इन्हें रातमें पहुँचानेके लिए आपको आना पड़ेगा।'

'नहीं जी ! ये तो वहीं रहेंगे।'

'हाँ, मौसी ! वहीं रहेंगे।' कहकर एक दूसरेका हाथ पकड़े दोनों चले गये।

'देख गुणवंती ! दोनों कैसे अच्छे लगते हैं; ईश्वरने मानो एक दूसरेके लिए ही इन्हें बनाया है।'

गुणवंती जरा हँसकर बोली, 'जी हाँ, महाराज! मेरे जातिकी नहीं है, नहीं तो जरूर विवाह कर देती।' हिन्दू माँको बालकके जन्मकी अपेक्षा उसका विवाह अधिक आनन्ददायक होता है। उसकी चर्चा भी अधिक प्रिय होती है। जाते समय दोनों बालकोंने अन्तिम वाक्य सुने। एक दूसरेकी ओर देखकर कपड़ा पहरनेके लिए दोनों चले गये।

'गुणवंती! और कुछ सुना?'

'क्या?'

'यह जो चम्पा नायिका आई है न, उसे राजा साहब हमेशाके लिए रखना चाह रहे हैं।'

'जाइये, बाबाजी! बेचारे राजा साहबका नाम बदनाम करनेके लिए लोगोंके मुँहमें जो कुछ आता है, बक देते हैं।'

इतनेमें दरवाजेपर किसीकी परछाईं पड़ी। एक संन्यासी भिक्षाके लिये आया था!

'मैया! कुछ दे।' संन्यासीकी आवाजमें जादू था कि रूपमें, कहा नहीं जा सकता; किन्तु दोनों व्यक्तियोंने उसकी ओर देखा और चौंक उठे। जो मनुष्य भिक्षा माँगनेके लिए आकर खड़ा था उसका रूप, उसका तेज हजारोंको भिक्षा देनेमें समर्थ लगता था। संन्यासी युवक लगता था; उसका गौरवर्ण, मोहक स्वरूप हजारोंमें भी अपनी ओर तुरन्त ध्यान आकृष्ट करने वाला था। सुभद्रा-हरणके समय अर्जुन ऐसा ही दिखाई पड़ता रहा होगा या युवावस्थामें महादेवजी। चेहरेपर ताण्डव-नृत्यकी भयानक प्रलयकारी अनुवृत्तिकी गुप्त शक्ति मालूम पड़ती थी। अधर सुन्दर सुधा-वर्षकसे थे, क्षणमें उसपर स्नेहपूर्ण मुस्कान दिखाई दे जाती। प्रसंगवशात् गर्वमें निर्दलन अथवा त्रासमें लोगोंको हिला देनेका प्रभाव आ जाय तो इसमें कोई नवीनता न होगी। कोई रसिक अधर देखकर ललचा जा सकता है किन्तु आँखें दैवी दिखाई देती थीं। सृष्टि-सर्जनको अपनी आँखोंसे देखा हो—विराट् स्वरूपका अनिमिष निरीक्षण किया हो—ऐसे ज्ञानका, गहन विचारकी निर्मलताका तेज उसमेंसे निकल रहा था। उसमेंसे निकलनेवाली रश्मि, सूर्य किरणके समान, पापको—दम्भको नष्ट करनेकी शक्ति

प्रदर्शित कर रही थी। ललाटकी धवल, भव्य विशालतापर गम्भीर विचार, अप्रतिम अभ्यास एवं दृढ़ता स्पष्ट दिखाई दे रही थी। अद्वैत वेदान्त के सागर सदृश, परम ज्ञानी शंकराचार्यके मस्तकपर ही ऐसी भव्यता देखने की आशा की जा सकती है ! आत्मनिष्ठा और शान्तिकी पग-पगपर वर्षा हो रही थी। उसकी उपस्थिति एक सुरक्षित दुर्गके स्वाश्रय का स्मरण दिलाती थी; उसमें किसी प्रकार की त्रुटि कहीं दिखाई नहीं देती थी।

रामकृष्णदासजी नगर के प्रायः सभी लोगोंको पहचानते थे, किन्तु यह अपरिचित मनुष्य एवं यह दिव्यता देखकर उन्हें अचम्भा हुआ। श्रद्धालु गुणवंती तो स्वामी को देखती ही रह गई। ऐसी भव्यता और शक्ति से स्पष्ट था कि यह कोई तुच्छ मनुष्य या साधारण भिखारी नहीं है।

'महाराज ! आप कौन हैं ?' बाबाजी ने पूछा।

संन्यासी ने अपनी दृष्टि रामकृष्णदास पर डाली। रामकृष्णदासजी की बड़ी-बड़ी आँखें सामने की दृष्टि के ज्ञान, तेज एवं प्रभावके आगे नम गईं। अशिक्षित बाबाजी के मनमें भी मान और पूज्य-भाव की स्फुरणा हुई।

'मैं ? सच्चिदानन्द का दासानुदास !' इनके कथन में असीम नम्रता और आकर्षण भरा हुआ था !

'आप कहाँ से आये हैं ?'

'वारत से ! इधर मंदिर का कुछ काम है।'

'वारत से ? ओहो ! वहाँ हमारे मित्र करुणानन्दजी कैसे हैं ?'

'स्वामीजी मेरे गुरु हैं, उन्हींके लिए यहाँ आया हूँ। क्षमा कीजिये महाराज ! परन्तु मैं कौन महाशय के साथ बातें कर रहा हूँ ?'

उनके शब्दकी अपेक्षा बोलने की रीति इतनी भव्य थी कि गुणवंती एवं रामकृष्णदासजी दोनोंका पूज्य-भाव बढ़ता ही गया। रामकृष्णदासजी ने उत्तरमें अपना नाम बताया एवं अत्यधिक नम्रतासे अपने मंदिरमें पधारने की विनती की।

'आज नहीं, क्षमा कीजिये महाराज ! फिर आना होगा तो अवश्य ही आपका दर्शन करके कृतार्थ होऊँगा।'

रघुभाई इतनेमें सीढ़ी चढ़ते हुए दो बाबाओंको देखकर जरा विरक्त हुए—

मनमें बड़बड़ाये कि सबेरा हुआ और भिखारिओं का जमघट शुरू हो गया।

रामकृष्णदासजीसे तो कुछ कह नहीं सकते थे; अतः संन्यासी पर अपनी विरक्ति निकाली—'कौन हो महाराज ? क्यों आये हो ?'

स्वामीने एक तीव्र, सर्वग्राही दृष्टिसे कोतवालको ऊपरसे नीचे तक देख डाला। स्वामी इस प्रकार हँसे जैसे कोई छोटे बालककी मूर्खतापर हँसता है। रघुभाईको लगा कि उनके गौरवकी अवगणना हो रही है, उन्हें छोटा गिना जा रहा है। साथही वह स्वामीके भव्य व्यक्तित्वके मोहसे प्रभावित भी हुआ।

'बेटा !' स्वामीने कहा मैं संन्यासी भिक्षाके लिए आया हूँ।' कहकर और गुणवंतीसे आटा लेकर वे वहाँसे चले गये। रघुभाईपर विचित्र असर हुआ। इस व्यक्तिने उसपर अजीब प्रभाव डाला था।

'क्यों लड़कों कहाँ चले ?'—रघुभाई ने पूछा।

'बाबाजी इन्हें ले जा रहे हैं, आज भजन है !'

रघुभाईको भी बालकोंको ले जानेका विशेष आग्रह नहीं था। अतः उनकी तो जान बची।

'अच्छी बात है, पधारियेगा बाबाजी।'

'अच्छा चलो ! एक हाथ जगतका पकड़ा और दूसरा तनमन का।'

'जी नहीं बाबाजी', तनमन बोली, 'हम दोनों तो अपना हाथ पकड़कर चलेंगे।'

४

बाबाजी बालकोंको लेकर मंदिर आ पहुँचे। मंदिर बहुत प्राचीन था। उसका कुछ भाग अत्यधिक जीर्ण हो गया था। घुसते ही बीचमें बड़ा-सा चौक था और सामने कोठरीमें सीतारामजी की एक युगल-मूर्ति थी। उस कोठरीके दोनों ओर बड़ी दालानें थीं, जहाँ बहुत-सा सामान पड़ा था; वहीं बाबा लोग सोते भी थे। चौकमें दस-पंद्रह साधु बैठे हुए थे। कई एक गाँजाकी चिलम खींच रहे थे। दो-एक पखावजको तानतूनकर ठिकाने लानेका प्रयत्न कर रहे थे। एक वृद्ध साधु एक पुराने सितारको मिलाने का निष्फल पर भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे।

'लो ! रामकृष्णदासजी आ गये ?'

'हाँ बच्चा जनार्दन ! आरती की तैयारी कर ।'

वस्त्रमें केवल एक लंगोटीसे अलंकृत चेला आरती की सामग्री तैयार करने लगा । बालकोंको मंदिरमें ले जाकर रामकृष्णदासजीने दर्शन कराया ।

'अरे बाबाजी ! आपके रामचन्द्रजी तो अभी सो ही रहे हैं ।'

'क्यों ?'

'क्यों-क्यों क्या ? घंटा तो बजाया ही नहीं ।'

'हाँ, यह तो भूल ही गया ।' कहकर बाबाजीने तनमनको उठाकर घंटा बजवाया ।

'देख बेटा ! हम तो सारी रात रामजी के भजन गायेंगे, तुमको नींद आवे तो उधर बिछौनेपर सो जाना ।'

'अच्छा !'

बाहर निकलते ही रामकृष्णदासजी बोले, 'जानकीदासजी !' 'तुम वारतके स्वामीजीको पहचानते हो क्या ?'

'जी हाँ, वह बुड्ढा ! हाँ, उसका क्या........ !'

'आज मैंने उनके शिष्यको देखा । बड़ी तेजस्वी मूर्त्ति है, मैंने ऐसा तेजस्वी पुरुष आजतक कभी देखा ही नहीं ।'

'हाँ जी, मैंने भी सुना था कि उनके यहाँ कुछ समयसे कोई शिष्य आकर रह रहा है जो सारे गाँवको पागल बनाये हुए है ।'

इतने में जनार्दन आरती ले आया । सभी बाबा उठकर मंदिर की कोठरी में गये । बड़ी, पाँच सेरके वज़न की, पीतल की सात दीपक वाली, जगमगाती आरती को रामकृष्णदासजी ने अपने सुदृढ़ हाथ में पकड़ा । तीन-चार लोग घड़ी बजाने लगे; दूसरा एक नगाड़ा पीटने लगा, थोड़ी-थोड़ी देर पर जानकीदासजी एक बड़ा-सा शंख फूँक देते थे । उसके नाद से कान का पर्दा फटने लगता था। कुछ ने घंटनाद करके रामजीको जगाना आरम्भ किया । मनुष्यसे परमेश्वर जितना बड़ा है उतना ही उसके जगानेका नादभी बड़ा होना चाहिये । सचमुच इसीसे शायद कभी-कभी भूख या दुःख से अशक्त निराधार प्राणियों की निर्बल विनती परमेश्वर तक पहुँच ही नहीं पाती ।

बाबाजी की आरती ऐसी थी कि उससे साधारण मनुष्य अपना धैर्य स्थिर नहीं रख सकता था। लगभग पौन घंटा तक चलती रही। सीताराम की मूर्त्ति के दोनों ओर दरबारियों की तरह बाबालोग दो कतार में खड़े थे। उनमेंसे कुछ जोर-जोर से आरती गा रहे थे। भजन के पवित्र नशेमें मस्त होकर अपने अज्ञानी अशिक्षित जीवको एवं संसारके दुःख पाप तथा पीड़ाओंको भुलाकर ईश्वर के प्रति निःस्वार्थ प्रेम से पूर्ण वातावरण में वे विचरने लगे।

जगत और तनमन भी एक साथ खड़े थे। पहले तो दोनों हाथ जोड़कर खड़े थे। पीछे थककर हाथ छोड़ दिया। दो मिनट पश्चात् जगत के पैर में झुनझुनी चढ़ी जिससे वह पैर खुजलाने लगा। तनमन का पैर थक गया जिससे वह जगत के कंधे पर हाथ रख उसका सहारा लेकर खड़ी रही। दोनों बालकों का देदीप्यमान शरीर—तनमन का सौंदर्य आरती के अस्थिर प्रकाश में प्रदीप्त हो रहा था। थोड़ी देर बाद तनमन गाने लगी। गाने की भी धुन होती है। इतने शोरगुल में जरा कंठ खोलकर 'श्रीरामचन्द्र कृपालु...' पद गाने लगी। कभी-कभी ताल के साथ-साथ पैरका भी जमीन पर ठेका पड़ जाता था। गाने में तनमन तल्लीन हो गई।

आरती समाप्त हो गई। घंटनाद बंद हो गया। जहाँ दस हजार आदमियों के बोलने जैसा घोर नाद हो रहा था, वहाँ अब सुई गिरने की आवाज तक सुनाई दे जाय ऐसी शान्ति हो गई; केवल तनमनके मीठे कोकिल कंठसे ललकार निकल रही थी कि—

'कामादि खल-दल गंजनम्!'

आरती के गान में मस्त बाबा उधर घूम पड़े और स्तब्ध होकर खड़े रह गये। प्रलयकाल की प्रचण्ड गर्जना के पश्चात् बुलबुल के रसपूर्ण आलाप ने उनके कठोर हृदय में भी रस का संचार कर दिया। वे बालिका को देखने लगे।

इतने में तनमन को चेतना आई। अपने को अकेली गाती देखकर वह लज्जित हुई और उसने गाना बंद कर दिया।

'शाबाश! बेटी शाबाश।' कहकर जानकीदास आगे बढ़े और तनमन को उठा लिया। संगीत की शान्ति समाप्त हुई और प्रसाद बटने लगा। शोर-

गुल शुरू हुआ। स्वर्गीय सुरोंसे पूर्ण वातावरण के पश्चात् यदि स्थूल वस्तु का संगम हो तो स्वभावतः हम चिल्ला उठेंगे।

लड़कोंने प्रसाद पाया और सबलोग वहाँ से बाहर चौक में आ गये। जानकीदासने तो तनमन को अपने गोद में ही बैठा रखा था। जगत थोड़ी दूर पर बैठा हुआ था। कुछ देर में संगीत का साज कुछ ठिकाने आया।

'बेटी !' जानकीदास बोले, 'तू कुछ गा।'

तनमन हँसी। खुशामद तथा मान भला किसे अप्रिय होगा?

उसने कहा—'नहीं महाराज !'

'नहीं, तुझे गाना ही पड़ेगा !'

'लेकिन क्या गाऊँ ? कुछ आवे भी !'

'नहीं-नहीं, झूठ नहीं बोलना; कुछ भी गा।'

'हाँ बेटी, शरमाना नहीं।' रामकृष्णदासजीने भी जोर दिया।

'रामचन्द्र जी का तो आता नहीं; कृष्णजी के भजन सुना सकती हूँ।'

'हाँ, कुछ चिन्ता नहीं।'

तनमन ने गला साफ किया। कोमल बाँसुरी जैसा मधुर स्वर उसके गलेसे निकला—

पिया, तैं कहा गयो नेहरा लगाय।
विरह-समंदमें छाँड़ि गयो, पिव प्रेमकी बाती बराय॥
घर आँगण न सुहावे, पिया बिन मोहि न भावे।
दीपक जोय कहा करूँ सजनी ! पिय परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सिसक सिसक जिय जावे॥
नैन निंदरा नहीं आवे॥
कबकी ऊबी मैं मग जोऊँ, निस दिन बिरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे॥
हरी कब दरस दिखावे॥
ऐसो है कोई परम सनेही, तुरत सनेसो लावे।
वा बिरया कद होसी मुझको, हरि हँस कंठ लगावे॥ पिया०॥

वज्र हृदयवाले, बिना कुटुम्बवाले, सामाजिक सम्बन्धमें बिलकुल ही अज्ञान, खून करके हाथ पोंछनेके लिए भी बेपरवाह, जड़ स्वभाववाले साधुओंके हृदयमें भी इस सादे हृदयभेदक गायनसे संक्षोभ उत्पन्न हो गया। कुछ देर के लिए तो उन्होंने प्रेम स्फुरणाकी पवित्रताको स्वीकार ही किया; प्रेम-सरिताकी तरंगोंने उन्हें प्लावित कर दिया, निर्मल बना दिया।

प्रेम हृदयकी प्रज्वलित, आकुलतापूर्ण अवस्थामें प्रेम-गायनके गाने और सुननेमें सच्चा शिक्षण समाहित रहता है; कारण मनुष्यकी स्वाभाविक जड़ता, जंगलीपनको नष्टकर जो उसे वास्तविक मनुष्य बनावे उसीका नाम शिक्षा है।

सबने एक मुखसे तनमनकी प्रशंसा की।

'हाँ' कुछ देर इधर उधर देखकर जानकीदासने कहा—'सीताजी तो हैं लेकिन रामजी किधर चले गये?'

'वह बिचारा सो गया होगा। जा बेटी तनमन! तू भी जा। आज तूने भी खूब रंग जमाया।'

तनमनने उठकर इधर-उधर देखा; लेकिन जगत कहीं दिखाई नहीं दिया।

जानकीदास उतरे हुए सितारका तार ठीक करने लगे। आ...आ...आ... करके खाँसकर, आलापकी खिल्ली उड़ाते हुए गाना प्रारम्भ किया। पंद्रह मिनट पश्चात् सुरकी ताना-तानीमेंसे कुछ अर्थ समझ पड़ा—

'अरे मन लाग्यो मेरो हाल फकीरीमें!'

तनमन जगतको खोजने लगी। आठ-नौ वर्षकी बालिकामें भी स्त्री स्वभावकी आश्चर्य-जनक विलक्षणता होती है। उसे विश्वास था कि इस प्रकार उसे अकेली छोड़कर जगतका जाना निष्कारण नहीं हो सकता। पास ही एक कोठरीमें एक बिछौनेपर जगत पट पड़ा हुआ था। धीरेसे जाकर तनमन उसके पास बैठ गई। फिर जगतके पीठपर लुढ़क गई। किन्तु वह नहीं बोला। तब इधर-उधर घुमाकर देखा। पर वह होंठपर होंठ बैठाकर पड़ा ही रहा। क्रुद्ध जगत इस प्रकार आसानीसे माननेवाला नहीं था।

'ओ लाड़ले किशोर! बोल न, जरा ऊपर देख!' कहकर तनमन दोनों

हाथसे उसे चित्त करने लगी। बहुत मथनेपर आखिर जगत बोला—'जा तू जा, हँस बोल। मुझसे कौन मतलब रखा है ?'

प्रेम का स्वत्व हमेशा निराला होता है।

'देखो, किशोर ! ऐसा क्यों कह रहे हो ? यदि तुमने कहा होता तो मैं न जाती !'

तनमन जरा दुःख-पूर्ण स्वरमें पुनः बोली, 'भाई देखो, ऐसा करोगे तब तो नहीं बनेगा। देखो ! मैं तो अब थोड़े ही दिनोंकी मेहमान हूँ।'

एकदम जगतमें जीवन आ गया, तुरन्त उठकर बैठ गया और बोल उठा—'क्यों ?'

'हें, कैसा बोल उठा ! धत्तेरे ढोंगी की !'

'नहीं, नहीं; पहले बताओ न, थोड़े ही दिन क्यों ?'

'हाँ, मैं तो कहना ही भूल गई थी, हम तो जानेवाले हैं।'

'कहाँ ? कब ? हमारा क्या होगा ?'

'पिताजीकी बदली होने वाली है, वे कह रहे थे।'

'सचमुच ?'

'हाँ !'

'तनमन ! तेरे बिना मैं क्या करूँगा ?' बचपन की बातचीत निर्दोष होती है किन्तु उसमें भी गहनता दिखाई पड़ती है। 'मुझे कैसे अच्छा लगेगा ?'

'लेकिन मैं फिर वापस आऊँगी न !'

जगत ऐसा हो गया मानो भयङ्कर दुःख आ पड़नेवाला हो।

'वह कैसे ? तुम्हारे पिताजीको भला फिर यहाँ बदली होगी ?'

दोनों विचारमें पड़ गये। एक दूसरेको उदास चेहरेसे देखने लगे। तनमनने एक उपाय ढूँढ़ निकाला और बोली, 'मैं पत्र लिखूँगी न और बड़ी होनेपर आऊँगी भी।'

यह बात जगतको कुछ ठीक जँची। उसने छाती फुलाकर कहा, 'हाँ, मैं भी बड़ा होऊँगा और कमाऊँगा तब हम सब एक साथ रहेंगे। मैं, तुम और माँ।'

'तब हम विवाह करेंगे।' एकाएक मानो बाल-अज्ञान रूपी अंधकारमें प्रकाश

हुआ हो इस प्रकार तनमन बोली, फिर विचारमें पड़ गई, 'लेकिन किशोर! तुम भूल जाओ तब ?'

'मैं भूल जाऊँगा ?' गर्वसे जगत बोला। इस छोटे वयमें भी उसने कथा-वार्त्ताका अच्छा अध्ययन किया था, जिससे उसकी भाषासे बिलकुल अनभिज्ञ नहीं था। 'मैं भूल जाऊँगा ? अपनी देवीको ! कभी नहीं भूलूँगा, तुमने समझ क्या रखा है ?'

'मेरी कसम !'

'तुम्हारी कसम, इधर आओ !' कहकर मंदिर की कोठरीमें तनमनका हाथ पकड़कर जगत ले गया और मूर्तिके सामने जाकर खड़ा हो गया।

'रामचन्द्रजीकी शपथ लेता हूँ कि तुम्हें नहीं भूल सकता, अब हुआ?'

पाँच मिनट बाद बालकोंके मनमें गंभीरताका संचार हुआ। दूरसे रामकृष्ण-दासजीकी ऊँची आवाज सुनाई दे रही थी, 'रामनामकी लूट है...आ...आ...'

एक विलक्षण पल बीत गया। दोनों बालकोंके हृदय का भार कम हुआ और दोनों ने एक दूसरे के मुँहको देखा। 'मेरा किशोर! मेरी देवी!' कह कर दोनों ने एक दूसरे का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

\+ \+ \+ \+

प्रातःकाल छः बजे रामकृष्णदासजी ने भजन समाप्त किया और भैरवीकी तान ललकारकर बालकोंको ढूँढ़ने के लिये चल पड़े। बिछौने पर दो अधखिली कलीके समान दोनों बालक सो रहे थे। विलग होने की डरसे उनका हाथ एक दूसरे के हाथ में था। प्रातःकालीन बाल-सूर्यकी सुनहली रश्मियाँ दोनों के सुंदर मुखपर पड़ रही थीं। दोनोंके प्राण—उनके शरीरके सुकोमल प्राण—ब्रह्माण्ड-की सफलता के समीप आत्मसमर्पणकी विशुद्ध वेदीके आगे मानो प्रेम-ग्रंथि में ग्रथित होते हों; ऐसा जान पड़ा।

स्वर्गमें देव-देवियाँ सम्भवतः ऐसे ही विवाह-सम्बन्ध से सम्बद्ध होते होंगे !

५

लड़कोंसे छुटकारा पाकर थोड़ी देर बाद रघुभाई राजमहल जानेके लिए निकला। वह विचार करता हुआ, मनमें अनेकों प्लॉट गढ़ता हुआ, वहाँ जा पहुँचा। दीवानगिरी कितनी दूर है; उसका कदम गिन रहा था। रेवाशंकरने राज्यमें इतना प्रभुत्व जमा लिया था कि उनके जीवित रहते वह पद प्राप्त करना असंभव-सा था। राज्यतंत्रमें किसी प्रकारकी निर्बलता या पक्षपात कहीं दिखाई नहीं पड़ता था कि जिससे रघुभाईको लाभ उठानेका अवसर हाथ लगे। सभी कुछ यथावत् चल रहा था। केवल रेवाशंकरका जुल्म अधिक पैसा इकट्ठा करनेमें और कमसे कम खर्च करनेमें दिखाई देता था। मारवाड़ीकी कोठीके समान प्रत्येक वस्तुमेंसे पैसा झरता था। राजासाहबको भी ऐसे दीवानकी आवश्यकता थी, जो उनके आनन्द-केलि केलिए यथेष्ट धन दे, फिर राज्य चाहे भले ही रसातलमें जाय।

विचारमें खलल पड़ा। महलकी चौड़ी सीढ़ीसे कोई उतर रहा था। वह रघुभाईसे टकरा गया।

'कौन ? रघुभाई साहब ! क्षमा करना भाई; चम्पाको खबर करने जा रहा हूँ कि आज हजूर साढ़े आठ बजे आवेंगे।'

'जाओ, भाई ! जाओ।' हँसकर रघुभाई बोला। उसके मनमें एक विचार आया। चम्पाको आये एक मास हो गया और अभी भी उसके जानेका कोई चिन्ह नहीं दिखाई दे रहा था। हजूरके अस्थिर मनपर चम्पा यदि चिर-स्थायी असर करे तो वह भी साधने लायक है या नहीं ?

सीढ़ीके ऊपर बगलमें दीवानखाना था, यहाँ वह गये। जिसे हजूरसे भेंट करना होता, उसके लिए तपश्चर्या करनेका यह स्थान था। हजूर हमेशा संध्या समय पाँच बजे सोकर उठते और घंटा भरके लगभग राज्यका कोई काम-काज हो तो उसे करते; इसी समयमें कोर्निश बजानेकी प्रबल इच्छा रखने वाले उत्कट उत्साही व्यक्तियोंको एक के बाद एक दीवान साहब अन्दर बुलाते थे।

रघुभाईने भीतर आकर दायें-बायें देखा। आठ-दस दर्शनाभिलाषी सज्जन एकत्र होकर बातें कर रहे थे। एक ओर बरामदेमें रघुभाईने एक गेरुआ वस्त्र पहने एक संन्यासीको देखा और वह तुरन्त उसे पहचान गया। क्या यह वही

संन्यासी है ? दो घंटे पूर्व तो यह उसके यहाँ भीख माँगने आया था। यह कौन है ? यह जाननेकी उत्कण्ठाने दूरसे संन्यासीके मुखने उसे आकृष्ट किया। खुशामदियों की सलामी स्वीकार करते हुए व उच्चपदस्थको सलाम करते हुए रघुभाई कमरेमें से होते हुए बरामदेमें गये। संन्यासी रणसिंहके साथ कुछ बातें कर रहे थे। उनका स्वतन्त्र आकर्षक हास्य रघुभाईके कानोंमें पड़ा।

'क्यों रणुभा ! क्या बातचीत चल रही है ?' वाणीमें मिठास भरकर रघुभाईने चुटकी ली।

रणसिंह—रणुभा—हजूरके भतीजा थे। राज्यमें ये भी एक जानने योग्य व्यक्ति थे। सीधे-सादे सरल रणुभाका जीवन एक ही कुञ्जीसे खुलता था—कुत्ते जैसी नमकहलाली द्वारा बालपनसे अबतक उन्होंने हजूरकी सेवाकी थी। वे बहुत ही कम बोलते थे, किसीके बीचमें पड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उनका यह अभ्यास अच्छा था। हजूरके साथ दो-एक बार विलायतकी सैर भी कर आये थे। वे विचारशील और अभ्यासी थे, किन्तु संकुचित मस्तिष्ककी विचारशीलता जहाँ की तहाँ बनी रह गई थी। दूसरेकी भूल वे देखते अवश्य थे किन्तु उसे बतानेकी अभिलाषा अथवा साहस उनमें नहीं था।

'अहा ! आइये कोतवाल साहब !'

'ओ हो हो, स्वामी महाराज !' रघुभाईने चाभी बदली, और इस प्रकार बोले मानो पहलेकी घनिष्ट मित्रता हो। भिक्षा माँगनेके लिए दरवाजेपर कोई आये तो उसे दुत्कारा जा सकता है किन्तु राजमहलमें स्वामीवत् जो खड़ा हो और रणुभा जिसके प्रति ऐसा पूज्य-भाव प्रदर्शित करते हों उसके साथ तो पहले की जान-पहचान दिखाना ही उचित था ! नहीं तो भला रजवाड़ेमें कोई टिक सकता है ? रघुभाईने स्वामीजीपर एक दृष्टि डाली। उनमें रघुभाईके घरपर जो नम्रता थी, उसमें कमी आ गई थी। आत्मनिष्ठा अधिक दिखाई दे रही थी। अधरोंपर थोड़ा तिरस्कारकी आभा स्पष्ट झलक रही थी। जगद्गुरु एक क्षुद्र प्राणीकी वन्दना जिस प्रकार स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार आँखकी पलकसे स्वामीने जवाब दिया और रणुभाकी ओर घूम पड़े तथा अधूरी बात पुनः आगे बढ़ी। स्वामीजीका उच्चारण पर देशी-सा मालूम पड़ता था किन्तु बोलीसे अमृत

टपकता था। बातमें एक अजब प्रकारका गाम्भीर्य और प्रेरणा थी।

'देखो रणुभा! यह निकृष्ट स्वार्थ है, दूसरा कुछ नहीं। धनका संचय कर उसका उपयोग न करने वालेको कंजूस कहते हैं। तुम्हारा विनीतभाव और ज्ञान किस कामका? अपने राज्यको उसका लाभ न दो तो उसके लिए अपराधी तुम हो। तुम्हारे जीवनकी भावना मैंने समझा किंतु ऐसी तुच्छ भावना तो एक मतिमन्द रख सकता है न कि रणुभा। तुम्हारा कुलधर्म क्या है, उसे भूल जाना बहुत बड़ा पाप है। अज्ञान, व्यभिचार, नशेमें गधा बना हुआ कोई राजपूत चाहे जो जीवन पसंद करे—चाहे जैसे रहे, उसको सभी छूट है; किंतु तुम्हें क्षत्रिय-धर्मके योग्य प्रवृत्तियोंको स्वीकार करना आवश्यक है। भले ही नौकरी चली जाय; किंतु देश-सेवा और जन-सेवामें ही तुम्हारा गौरव है। 'क्षत्रात् त्रायते इति क्षत्रियः' अर्थ न हो तो अपनी जाति भी बदल डालो।' कहकर स्वामीजी हँसे। रणुभा लज्जित हुए। रघुभाई तो इस शब्द प्रवाहके आगे गूंगेके समान खड़ा रहा। वह मनमें कुछ गिन रहा था।

स्वामीने रणुभाकी पीठ ठोंकते हुए कहा, 'रणुभा! अभी समय है, चेत जाओ। वापस कब आओगे?'

'हो सकेगा तो आऊँगा! अभी तो हजूर छोड़ नहीं रहे हैं।'

'यह तो तुम्हारा कोतवाल है न?' अधोमुख खड़े हुए रघुभाईको संकेत करते हुए स्वामीने पूछा।

'जी हाँ!'

रघुभाईको स्वामीकी तीव्र दृष्टि स्टीमरके सर्चलाइटके समान लगी; ऐसा ज्ञात हुआ मानो उसके अन्तरके अकल्प्य विचारोंको स्वामी देख लेंगे। रघुभाई अपने हृदयको अगम्य समझते थे। आज उन्हें वह अगम्यता हाथसे निकली जाती हुई मालूम पड़ी। जीवनमें पहली बार जरा नीचे देखते हुए वह खड़े रहे।

'कोतवाल साहब! लोगोंके संरक्षणके लिए कौनसे उपाय काममें ला रहे हो?' दूसरे किसीने रघुभाईको इस प्रकार गम्भीरतासे सम्बोधन किया होता तो वह उसका नाम अपनी काली-पुस्तक (Black-Book) में लिख लिए

होते। पर आज स्वामीके प्रति उबलता हुआ द्वेष भी ऊपर नहीं आ सका। उनके तेजमें—एक मनुष्यके तेजमें—प्रथम बार वह दबा। उत्तर देनेके लिए मनमें खोज की; किन्तु कोई भी जवाब न सूझ पड़ा।

'कौन-सा मार्ग लें? जैसे-तैसे चल रहा है।'

'जिस कार्यमें मार्ग न दिखाई दे उसे छोड़ देना चाहिये। त्याग-पत्र दे दो। दूसरा कार्य जो मनको रुचे वह कार्य-स्वधर्म ढूँढ़ लो।' जरा हँसते हुए स्वामीने कहा। रघुभाई तो मूकवत् खड़ा रहा। वाचाल जीभने भी आज जवाब दे दिया था।

रघुभाईको अपनेपर तिरस्कार आ रहा था। आज उसमें लड़कपनका स्वभाव कहाँसे आ गया? नीति-निपुणता सब कहाँ चली गई?

'कोई बात नहीं। जहाँ भूल की है वहाँसे फिर चलो कोतवाल! तुम्हारा उत्थान निश्चित है।' कहकर रघुभाई पर एक सारगर्भित दृष्टि डालकर स्वामीजी वहाँसे हटे और एक हजूरियाके साथ जो उन्हें बुलाने आया था, हजूरके निजी कमरेमें गये।

'यह कौन हैं रणुभा?'

'तुम नहीं पहचानते? ये वारत मठके स्वामीजी हैं।'

'इनका नाम क्या है?'

'अनन्तानन्दजी; बड़े विद्वान हैं।'

'जी हाँ, ऐसा ही लगता है।' अनन्तानन्दकी उपस्थितिसे हतप्रभ रघुभाईके हृदयमें विष फैल गया। थोड़े समयमें ही उसने देख लिया था कि स्वामी सचमुच महात्मा हैं। उनके सामने वह बालक है। कुछ भी छिपा नहीं सकता। दुष्ट और कुटिलके हृदयमें जब अभिमान प्रवेश करता है तो मिश्रण भयङ्कर होता है और ऐसे हृदयवालेके अभिमानको यदि ठेस लगे तो उसमें विष व्याप्त हुए बिना नहीं रहता। रघुभाई अपनी नई योजना गढ़कर अपने काँटेप अनन्तानन्दको तौलने लगा।

'रणुभा! ये यहाँ क्यों आये हैं?'

'बात यह है कि वारतके मठको अबतक २०००) रु० वार्षिक मिलता था,

उसे दीवानजीने १५००) कर दिया है, जिससे मठके गुरु करुणानंद सरस्वतीकी ओर से आये हैं।'

'तब ये गुरु नहीं हैं ? इनके गुरु कैसे हैं ?'

'नहीं जी, ये तो पाँच वर्षसे ही आये हैं। इसके पहले तो करुणानन्दजी बिलकुल स्वस्थ थे। अब उनमें न कुछ अधिक शक्ति ही है और न ओज। कुछ वर्ष हुए करुणानंदजीके गुरु बारत आये थे। वहीं उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। अनन्तानंदजीको अपने ही साथ लाये थे। करुणानंदजीकी भी वृद्धावस्था थी, उन्हें अपने बाद गुरु-पदको सुशोभित करने के लिए ऐसा कोई दिखाई नहीं दे रहा था, इससे अनन्तानन्दजीको ही रख लिया।'

'अच्छा !'

इतनेमें भीतरसे एक हजूरिया रघुभाईके पास आकर उनसे बोला—'रघुभाई ! आप यहीं हैं न ? जाइयेगा नहीं।'

'क्यों ?'

'दीवानजीने मेरे कानमें कहा है कि देख आओ बाहर आप हैं या नहीं।'

'क्यों, बात क्या है ?'

'हजूर और उस स्वामीमें कुछ चखचख चल रही है।'

रणुभा तो हजूरके खास व्यक्ति थे। इसीसे वह सब कुछ जानते थे; उनसे कुछ छिपा नहीं था। यह सुनकर वे कुछ चिन्ताग्रस्त हो गये और उद्विग्न हो भीतरके कमरेकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद एक कमरेसें आदमियोंके भीड़की ओर उनकी दृष्टि गई और धीरेसे वे वहाँसे सटक गये।

रणुभा इधर-उधर देखते हुए सीढ़ीसे होकर पास ही के दूसरे दीवानखानेमें गये। यदि इसे राजासाहबका आमोद-प्रमोद-गृह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। राजासाहबके मन-संतुष्टिके लिए सब प्रकारकी सामग्रियाँ वहाँ पर थीं। उनपर ध्यान दिये बिना रणुभा उस कमरेसे होते हुए पासके बरामदेमें गये। उनका चेहरा गम्भीर हो गया था। वे अपने मनको वशमें करनेका प्रयत्न कर रहे थे। किंतु निष्फल हुए।

वहाँ एक गद्दीपर करीब तीस वर्षकी एक कोमल युवती निश्चेष्ट पड़ी थी—फेंकी हुई थी। बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार भी बिलकुल उपेक्षासे वह पहने हुई थी; आलस्यमें निश्चिन्त आँखें मींचकर वह लेटी थी। चम्पामें निश्चिन्तताकी सबसे अधिक प्रधानता थी। उसके आकर्षणका मूल कारण भी यही था। राजा साहबने घूम फिरकर बहुत कुछ अनुभव किया था, किंतु ऐसी स्त्री पहली बार ही देखी थी और देखते ही उसके वशमें भी हो गये थे। कुछ देर तक रणुभा उसे देखते रहे फिर बोले—'चम्पा !'

'क्या है ?'—चम्पाने उत्तर इस भावसे दिया मानो बोलने में उसे बहुत कष्ट हो रहा है।

'इस प्रकार क्यों पड़ी हो ?'

'तब क्या करूँ ? आपके हजूरसे तो तोबा !'

'चम्पा ! मुझे क्यों ठग रही हो ? इस प्रकार मुझे क्यों नचा रही हो ?'

'मैं नचाती हूँ कि आप स्वयं नाच रहे हैं ?' मानो बोलनेमें बड़ा परिश्रम पड़ रहा हो, इस प्रकार करवट बदलते हुए चम्पा बोली—'मैं कब कहती हूँ कि मेरे साथ बातचीत कीजिए ? हजूर क्या कर रहे हैं ?'

हजूरकी बातसे रणुभा पुनः चकित होकर बोले—'कुछ काम-काज कर रहे हैं।'

'रणुभा ! वह बाबा कौन है जो अभी थोड़ी देर पहले यहाँ से गया है ?'

'वारतके स्वामीजी हैं।'

'अच्छा !'

'जरा इधर तो देखो !'

'जी नहीं, आँखें दुःख रही हैं। आज रातमें हजूरके सामने गाना है। रणुभा ! मेरा एक काम कर दोगे ? मेरे डेरेपर जाकर जरा मेरे आदमियोंको बुला लाओगे ?'

रणुभा समझ गये कि मुझे यहाँसे हटानेकी यह युक्ति है। 'अच्छा !' कहकर बोझिल मनसे आह भरते हुए धीरे-धीरे वे बाहर चले आये।

———

रत्नगढ़के मालिकोंका इतिहास गुजरातके इतिहासके साथ पहलेसे ही सम्बद्ध होनेसे जानने लायक है। रत्नसिंह सोलङ्की ९२२ ई० में साधारण कुटुम्ब में उत्पन्न हुए थे और साढ़े छः फीटके शरीर और उत्तम वंशके अतिरिक्त कुछ भी दायभाग शायद ही साथ लाये रहे हों। किन्तु उनका भाग्य और साहस अद्भुत था। गुर्जर इतिहास के अमूल रत्न मूलराजने अपने कुटुम्बमें जन्म लिया। बालपनसे ही रत्ना सोलङ्कीने अपना भाग्य अपने रिश्तेदार के साथ सम्बद्ध कर दिया और उनकी उन्नतिके मार्गपर वे भी जाने लगे। लाखाके विरुद्ध मूलराजको लड़ाईमें उतरनेका प्रसंग आया; रत्ना सोलङ्की के सद्भाग्य से एक प्रचण्ड सेनानी ने ऐसा भयानक आक्रमण किया कि वह मूलराजका भाग्य-सूर्य अस्त करनेका कारण होता; किन्तु रत्ना पासमें ही था। अपने रिश्तेदारको— राजाको—बचानेके लिए उसने अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ाया और उसे कट जाने दिया। उपकृत गुर्जरेश ने प्रसन्न होकर रत्ना सोलङ्कीको एक छोटी-सी जागीर उपहार रूप देकर रत्नगढ़ बसाने की आज्ञा दी।

मूलराजके जीवन तक रत्नगढ़ उनके आधीन रहा। उनके स्वर्गवासके दिनसे रत्ना सोलङ्की स्वतन्त्र होकर राजा रत्नसिंह बन गये। बीस वर्ष पश्चात् राजा रत्नसिंह संसार त्याग साधु बन गये, किन्तु अपने पीछे भी अजित वीरकी लता छोड़ते गये। सोलङ्की कुटुम्ब के इन अभिमानी वीरोंने जबतक अणहिलवाड़ में सोलङ्की रहे तबतक उनके नाम का चक्रवर्तीपन स्वीकार किया, किन्तु केवल सिद्धराजने ही कुछ समयतक राजस्व-कर लेकर अपने सम्राट् पदका अधिकार सिद्ध किया था। बघेलाओं के साथ उन्होंने वैर ही कर लिया था। उस समयसे लगभग ९०० वर्षों तक—मराठोंका सूर्य–अस्त होने तथा अँग्रेजों का बल बढ़ने तक— रत्नगढ़के रणवीर प्रायः स्वतन्त्र ही रहे। लड़ते-झगड़ते हुए, बड़े राज्यों के तूफान में लाभ एवं हानि उठाते हुए, रणमें घूमते हुए रत्नसिंह के वंशज अपनी स्वभावजन्य वीरता प्रदर्शित करने से चूकते नहीं थे। इतने वर्षों तक इनकी लताओं में उन्मत्त, जंगली, साहसी, राजा ही फले; एक भी हतवीर्य नहीं

निकला। अंतमें अँग्रेजी साम्राज्यके प्रारम्भमें तेजसिंह सोलङ्कीने अपने कुटुम्ब का स्वभाव छोड़कर, आनेवाले राज्यकी शक्ति का अन्दाज लगाकर लाभप्रद मन्त्रणा की और हाथकी अपेक्षा बुद्धिके शौर्य से राज्य-वृद्धि करने में सफल हुए। उनके पौत्र जसवन्तसिंह, उस लताके वर्त्तमान खिले हुए फूल थे।

जसुभा—युद्ध, शूरवीरताके न रहनेसे 'सिंह' पद अर्थ-हीन हो गया था—विशेष जानने योग्य व्यक्ति थे। लड़कपन से मौज उड़ाना ही इन्होंने अपने जीवनका लक्ष्य बना रखा था। बुद्धि में, वीरता में अथवा किसी भी गुणमें वे अपने कुटुम्बीजन के उच्चपदको लज्जित करें, ऐसा नहीं था; किन्तु राजकुमारों को विशेषरूप से दिये जाने वाले शिक्षणकी विशेषताओं के कारण, अथवा विलासी विलायत में स्वच्छन्द भ्रमण-जनित स्वार्थी विषय-लालसा से, इनके जीवन में 'कष्ट' ही सबसे बढ़कर डर था। सुख कुछ लोग सुखद प्रवृत्तिको मानते हैं किन्तु जसुभा बिना कष्टके मिलनेवाले सुखको ही निर्वाण मानते थे। दौड़कर क्रिकेट खेलना, अथवा कष्ट करके सैर के लिए जाना, इनके लिए दुःखद प्रतीत होता था। ये अपने आप सुख भोग करें, उसमें कोई बाधा न डाले, इसे ये अपने राजाके पदका स्वत्व समझते थे। इसीसे रेवाशंकर द्वारा कष्ट दिये बिना राज्य-तन्त्र चलाये जानेमें इन्हें किसी प्रकार की भी आपत्ति नहीं थी।

अत्यावश्यकतावश यदि काम करना ही पड़े तो उसके लिए एक कमरा अलग रख छोड़ा था; और इस कार्य के लिए सन्ध्या का समय नियत था। इस कमरे में साधारणतः वे सप्ताह में दो बार आते, अन्यथा रेवाशंकर का आफिस होता। हजूर जब वहाँ पधारते तब एक विलायती आराम-कुर्सी पर लम्बा पैर फैलानेका कष्टकर सिगार पीते हुए विलायत में प्रकाशित सस्ते उपन्यास अथवा नवीन निकृष्टतम कहानियाँ पढ़ा करते; बहुत हुआ तो यदि रेसिडेंसीमें कोई पत्र लिखा गया होता और जिसपर उनके हस्ताक्षरकी आवश्यकता होती तो उसपर टेढ़ा-मेढ़ा हस्ताक्षर कर देते। इसके लिए एक सुशोभित मेज और 'रिवॉल्विंग' (Revolving) कुर्सी थी। जो प्रायः उनका सिगारबक्स रखने के ही काम आती।

आज एक बड़ेसे सिगार के धूएँ में अपनी आँखें आधी बन्द किये हुए हजूर साहब पड़े हुए थे।

'रेवाशंकर ! यह क्या प्रपञ्च उठा रखा है ? तुम्हें वेतन किसलिए देता हूँ ?'

'लेकिन सरकार ! यह बाबा मानता ही नहीं तो मैं क्या करूँ ? यह कहता है कि आपसे मिले बिना मैं यहाँसे जाऊँगा ही नहीं।' नाकपर रखे हुए चश्मेंमेंसे छोटी आँखें चमकाते हुए रेवाशङ्कर बोला—'साढ़े तीन बाबाके लिए पन्द्रह सौ रुपया क्या कम है ?'

'किन्तु आज मैं यह बकवाद कहाँतक सुनूँगा ? वहाँ चम्पा कुड़बुड़ा रही होगी।'

'हजूर ! वह तो बाहर खड़ा है और मुझसे कह रहा था कि यदि आप नहीं मिलेंगे तो मजलिसमें आकर मिलेगा।'

'कैसी विपद है ! जाओ तब बुला लाओ।' कहकर हजूरने एक गहरी निःश्वास ली। यदि उनमें शाप देनेकी शक्ति होती तो वह उसीका अवलम्बन करते। इसके बदलेमें धूएँका एक चक्र उनके मुँहसे बाहर निकला।

थोड़ी देरमें दरवाजा खुला और अनन्तानन्दजी भीतर आये। बाहर जो हँसते हुए स्नेहपूर्ण शब्दोंमें शिक्षा दे रहे थे, उस स्वामीमें यहाँ आते ही स्पष्ट परिवर्त्तन दिखाई दे रहा था। चेहरेपर जरा कठोरता, थोड़ी दृढ़ता अधिक हो गई। कर्त्तव्यपरायणता चमक रही थी। इस स्वरूपमें स्वामी यूरोपीय इतिहासके कार्डीनल—मन्त्रियों जैसे—अथवा दिग्विजय करनेके लिए तत्पर चाणक्य भगवानके समान दिखाई दे रहे थे। एक व्यक्तिकी ऐसी स्वाभाविक भिन्नता—प्रसंगवशात् मनुष्यके भिन्न-भिन्न गुणोंका एक ही स्थानमें प्रदर्शन—यह आर्यचारित्र्यके भावनाकी पराकाष्ठा है। अपने यहाँ पूर्णताका अर्थ प्रकृति रूप हो जाना है। जो प्रकृति वसन्तमें प्रस्फुटित होती है, हँसती और हँसाती है, वही एक पलमें संसारको प्रचण्ड मेघगर्जनासे कम्पित कर देती है, रोती है और रुलाती है; फिर भी हृदयमें शान्ति बनी रहती है। मानव-जीवनकी भी यही अपनी भावना है।

अनन्तानन्द सीधे हजूरके सामने गये और रेवाशङ्करकी ओर पीठ करके खड़े हो गये।

'नरेश ! आशीष।'

अपेक्षायुक्त आँखोंसे जसुभाने उन्हें देखा—क्षणभर देखते रहे। राजा अन्दरसे सब कुछ समझनेकी शक्ति प्रदर्शित कर रहे थे। अनन्तानन्दका प्रभाव क्षणमात्रमें वे समझ गये; किन्तु इतने श्रमके पश्चात् ही आशीर्वाद स्वीकार करनेके लिए अपना सिगार वाला हाथ उन्होंने हिलाया।

दो मिनटतक तीनोंमेंसे कोई भी नहीं बोला। स्वामीकी तेजस्वी आँखें दया व तिरस्कारसे जसुभाको देख रही थीं। रेवाशङ्करका तो स्वामीके शरीरके पीछे सर्वग्रास ग्रहण-सा हो गया था। पर अन्तमें तलवारकी धार जैसी दृष्टिके सामने जसुभा घबड़ा ही उठे।

'कैसे हैं महाराज ?'

'सब सच्चिदानन्दकी कृपा है।'

जसुभा धीरेसे हाथकी सिगार रखकर जरा स्वस्थ होकर बोले—'महाराज आप मुझसे भेंट करना चाहते थे ?'

'गुरुजीकी ऐसी ही आज्ञा हुई है।'

'बहुत ठीक, अब आपने भेंट की न, बताइये क्या काम है ?'

'क्षमा कीजिये, अभी आपसे मिला हूँ, अपने राजासे नहीं।'

'दैट्स रादर फनी!' (That's rather funny) यह तो एक विचित्र बात है। अँग्रेजीमें जसुभा बड़बड़ाये। यह भेद बतानेका साहस करने वाला उन्हें आज प्रथम बार मिला। होशियार राजाको यह स्वामी विचित्र लगा। मनमें उनकी थोड़ी प्रशंसा की—कुछ हँसा—'तब मैं कौन हूँ ?'

'इस समय आप केवल जसुभा हैं; आपमें राज्यपदको सुशोभित करनेवाली प्रवृत्ति प्रकट हो उस समय तक मैं खड़ा हूँ। अपनी अभ्यर्थना आपके सम्मुख आपकी इस स्थितिमें रखना मैं अनुचित समझता हूँ।'

अनन्तानन्दजीकी आँखोंमें किसी बालककी भर्त्सना करने जैसी स्नेहपूर्ण कठोरता थी। यह देखकर जसुभाके मनमें कुछ लज्जाका प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु उनका कोमल मन ऐसे विचारोंमें अधिक समय व्यतीत करनेका कष्ट करे, यह असम्भव था।

'स्वामी! इस शिक्षाके लिए धन्यवाद। अब आपको जो कुछ कहना हो

दीवानजीसे कह दीजियेगा, वे मुझसे पूछकर यथोचित आज्ञा दे देंगे।'

'क्षमा कीजिये, मैं माँगने आया हूँ तो मालिकसे ही मागूँगा। लोगोंपर राज्य करनेका अधिकार आपका है। उनकी आत्मापर राज्य करनेका अधिकार मेरे जैसे संसारके जञ्जालसे विरक्त परमानन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेवालेका है। अधिकारी अधिकारीसे ही कह सकता है।'

पीछे बैठे हुए रेवाशङ्कर चकित हुए। उन्हें कोई तुच्छ समझे, यह उन्हें अच्छा नहीं लगा; साथ ही यदि राजासाहब उसकी माँग स्वीकार कर लेंगे तो १५००) व्यर्थ ही नष्ट हो जायगा। वे उठे और एक हाथमें चश्मा तथा दूसरे हाथमें कागज-पत्र संभालते हुए सामने जाकर खड़े हो गये। जसुभाने देखा कि यह स्वामी रेवाशङ्करको जरा नम्रताका पाठ सिखानेमें समर्थ हुआ है। उनके मनमें भी जरा कुतूहल हुआ। अनेकानेक वर्षोंके पश्चात् आज कुर्सीपर लेटे बिना वे बातचीत करने लगे।

'देखिये स्वामीजी! मेरे पास अधिक समय नहीं है, जो कुछ आपको कहना हो, थोड़ेमें कह दीजिये।'

'सरकार मैं आपको बताये देता हूँ।' रेवाशङ्कर जरा तनकर बोले—'इन्हें वार्षिक २०००) रु० मिला करता था जिसे आपने १५००) रु० कर देनेकी आज्ञा दी। उस आज्ञाको वापस कर लेनेके लिए ये बाबा...' कहकर अनन्तानन्दकी ओर हाथसे संकेत किया।

स्वामीके नेत्रोंमेंसे निकलनेवाली विद्युत्ने रेवाशङ्करको परास्त कर दिया। बिना वाक्य पूरा किये ही उनके मुँहको बन्द कर दिया।

'महाराज अपनी ओरसे प्रार्थना करनेके लिए मुझे भाड़ेके जीभकी आवश्यकता नहीं है। आज हजारों वर्षोंसे मिलनेवाले वर्षाशनके बन्द होनेका कारण? लोभियोंका लोभ पूरा करनेके लिए धर्म-मार्गमें व्यय होनेवाला धन बन्द करनेमें ही क्या राज्यके सब सिद्धान्त प्रयुक्त हो जाते हैं? आपको उसमें कमी करना हो तो भले ही कीजिये, मेरे लिए दूसरे बहुतसे क्षेत्र खुले हैं।'

जसुभा घबड़ा गये। बातचीतने तूल पकड़ लिया। बाबा चतुर जान पड़ा। वह अपनी बात छोड़नेवाला नहीं था। आधा बढ़ा देनेकी इच्छा हुई। इतनेमें

रेवाशङ्कर बोल उठे—'सरकार आप मालिक हैं, किन्तु मुझे कहना ही पड़ेगा कि ये लोग धनका अत्यधिक दुरुपयोग करते हैं। कितनी कठिनतासे तो हम धन इकट्ठा करते हैं और ये लोग वहाँ बाग-बगीचा लगाने तथा मौज उड़ानेमें उसे उड़ा देते हैं। सरकार, इन पत्रोंको तो जरा पढ़िये।' यह कहकर कागजका एक पुलिन्दा मेजपर रख दिया।

स्वामी दयासे हँसे और बोले—'हम क्या करते हैं और क्या नहीं करते, यह तो महाराज जब वहाँ आवेंगे तब स्वयं देख लेंगे, इस समय उसका प्रश्न ही नहीं है।'

'तब इस समय पैसा भी नहीं है।' कहकर नाक परसे चश्मा उतारकर रेवाशङ्कर रूमालसे पोंछने लगा।

इतनी देर बाद जसुभा सिगार जलाते हुए उठे। उनके धैर्यका अन्त आ गया था। 'अच्छी बात है स्वामीजी! आगामी वर्ष आइयेगा, इस वर्ष तो इतनेसे ही सन्तोष कीजिये।' कहकर सिगारवाले हाथसे सलाम करके जसुभा दूसरे कमरेमें चले गये।

स्वामीजी रेवाशङ्करकी ओर घूमे—'क्यों दीवान! तो मेरी माँग निष्फल जायगी न?'

'जायगी क्या—गई!'

'कुछ भी आशा नहीं है न?' अनन्तानन्दने एक मार्मिक दृष्टि फेंक कर पूछा।

'नहीं, कुछ भी नहीं; अब तो आशा मेरी मृत्युके पश्चात् करना। दूसरा दीवान जब आये तो आना।'

'अच्छी बात है देखूँगा।' कहकर अनन्तानन्दजी धीरे-धीरे वहाँसे बाहर आये। रेवाशङ्करने रघुभाईको भीतर बुलाया।

'रघुभाई! उस स्वामीको देखा? जरा उसपर नजर रखना, और उसकी चाल-ढाल, आने-जानेकी खबर देते रहना।'

७

जगतका सुख बहुत दिनोंतक स्थिर नहीं रह सका। दो-चार दिनोंमें ही हरिलालके बदलीकी आज्ञा आ गई और वह जानेकी तैयारी करने लग गये। दोनों बालकोंके जीवनमें प्रथम बार बादलकी छाया पड़ी। अभी वह बड़ा नहीं था; भविष्यमें यह बादल प्रलयङ्करी वर्षा करेगा या बिखरकर नष्ट हो जायगा, इसका ज्ञान किसीको नहीं था। भविष्यमें फिर कभी न मिलनेकी चिन्तासे दुःखी होकर उनकी आँखें डबडबा आतीं। आखिर जानेका दिन आ पहुँचा। जगत जिद करके स्टेशन पहुँचाने गया। हरिलालने चलते समय उसके हाथमें रुपया रखा किन्तु जगत न तो हँसा और न उसका हृदय रुलाई रोक सका। गाड़ी छूटनेके पश्चात् जबतक तनमनका मुख दिखाई पड़ा, उसे देखता रहा। उसकी आँखोंसे टपटप आँसू गिरते रहे।

उसी दिनसे जगतको ऐसा मालूम हुआ मानों सूर्यमेंसे तेज ही निकल गया हो; इधर-उधर वह उदास घूमा करता।

'माँ! मुझे अच्छा नहीं लगता।' अपरान्हमें जगतने गुणवंतीसे कहा।

'बेटा, अच्छा लगेगा! जरा धीरज धर।'

'लेकिन माँ! तनमन फिर कब आवेगी?'

'यह मैं क्या जानूँ बेटा कि वह कब आयेगी? लेकिन इस प्रकार घबड़ानेसे कैसे काम चलेगा? संसारमें ऐसे न मालूम कितने संयोग और वियोग होंगे। अभी यह सब समझनेमें तुम्हें देर है।'

'क्या समझनेमें देर है, भाभी?' रघुभाईकी मीठी आवाज बीचमें सुनाई दी। वह अभी ही बाहरसे आया था।

'कुछ नहीं यह तो मैं जगतको दुःख और सुख समझा रही थी।'

'मुझे भी वह तनिक समझाइये!'

कभी-कभी रघुभाई गुणवंतीके साथ परिहासमें बातचीत करते थे। पहले तो रघुभाईका गम्भीर स्वभाव देखते हुए यह विचित्र लगता। कुछ आवाजमें और शब्दोंमें गुप्त भयानक-मर्म जैसा भासित होता। किन्तु घरमें एक साथ रहना है—यह सोचकर गुणवंती इस ओर विशेष ध्यान न देती।

'आपको क्या समझाऊँ ? आप सब सीखे-पढ़े हैं ।'

'नहीं, अभी बहुत बाकी है । किन्तु भाभी ! आप सदैव इस प्रकार गम्भीर रहती हैं, यह उचित नहीं है । जो मनमें आवे कीजिये, जरा भी संकोच करनेकी आवश्यकता नहीं ।'

'नहीं जी ! संकोचकी कौन-सी बात है ? अरे रमाको क्या हुआ ? कमला कहाँ गई ?'—कहती हुई गुणवंती वहाँसे चली गई ।

ऊपर जाकर रघुभाई झूलेपर बैठ गये । झूलेके दोलनके साथ उनका मन भी दोलित हो रहा था । गत रात्रि अनन्तानन्दजीने एक बात कही थी जिससे उनकी प्रत्येक इच्छा सबल हो उठी थी । उनके दो-एक मार्मिक वचनने रघुभाई के मनमें भिन्न ही विचार प्रेरित कर दिये थे । उन्हें दीवानगिरी नजदीक आती हुई दिखाई दे रही थी । स्वामी लोकप्रिय, बुद्धिमान लगता था । पर अपनेसे स्वामीका अधिक बुद्धिमान हो सकना तो असम्भव-सा था; इसका तो रघुभाई को पूर्ण विश्वास था । स्वामी, रणुभा, चम्पा ये सभी क्या उसके शतरंजके मोहरे नहीं बन सकते ? और इसका परिणाम क्या होगा ? रेवाशङ्करका अस्त—रघुभाईका उदय ।

दो दिन बीत गये । रघुभाई आज प्रसन्न थे । थोड़े ही दिनोंमें नायब दीवानगिरी मिलने वाली थी । निश्चय ही भाग्यकी एक सीढ़ी ऊपर वे चढ़ेंगे । मनमें आनन्द था । रघुभाईका मस्तिष्क साधारण मस्तिष्कसे भिन्न था । उनका आनन्द, उनका शोक सबसे न्यारा था । उनके मनमें—हृदयमें सभी कुछ यथा-स्थान स्थित था । बिना मतलबकी खलबलाहट, समझमें न आवे ऐसा स्नेह, अमाप, अपरिमाण अन्तर्वेग जैसी तुच्छ वस्तुओंके लिए उसमें स्थान नहीं था । मस्तिष्क शतरंजकी एक बाजी खेल रहा था अथवा यों कहिये कि अङ्कगणितके एक सिद्धान्तको सिद्ध कर रहा था । राजा, दीवान-पद, कमला, रमा ये सभी एकके बाद एक घूमते थे; सबका निष्कर्ष एक ही था 'रघुभाई'—छोटे-छोटे अक्षरोंमें नहीं बल्कि बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा हुआ 'रघुभाई' था । अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहरना; और सर्वोपरि लोग उन्हें अच्छा कहें, यही सबका निष्कर्ष था । इसके लिये यदि खून भी करना पड़े तो कोई हर्ज नहीं ।

किन्तु निष्कर्षमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आनी चाहिये।

इसमें भी एक अमूल्य रत्न—गुणवंती—आ मिली थी। शतरंजका प्रधान उन्मत्त हो गया था। अच्छा दिखाई पड़नेमें और गुणवंतीको अपनी करनेमें—इन दोनोंमें युद्ध चल रहा था। बिना युद्ध दोनों बातें हो जायँ, इसकी वह तैयारी कर रहा था। तैयारी—नेपोलिअन जैसे रणवीरको सुशोभित करे—ऐसी दूरदर्शी थी। लोग समझते थे कि रघुभाई मैत्री-वश मित्रके स्त्री-पुत्रका पालन करते हैं जिससे उनके उदारताकी प्रशंसा करते थे। गुणवंती पर भी उसके अगणित उपकार चढ़ रहे थे। वह उसपर आसक्त भी हो सकती थी। एक घरमें ही निवास करनेसे दो-चार वर्षमें सब अपने आप ही ठीक हो जायगा। जो जल्दी करे वह पागल। कमलामें इतनी बुद्धि हो नहीं थी कि वह यह सब देख सके और देख भी ले तो उसमें कुछ बोलनेकी शक्ति नहीं थी। 'कुछ नहीं, मेरा भाग्य चटका है।' मस्तकपर हाथ फेरकर रघुभाई अपने मनमें बोले।

रघुभाई ने उठकर खिड़की खोली। सूर्योदयमें अभी कुछ देर थी। अंधेरे में ही नहा-धोकर गुणवंती कपड़ा सुखा रही थी और सूरदासका एक प्रभाती धीरे-धीरे गा रही थी। रघुभाईकी आँखोंमें एक नवीन तेज आया। उसके मनमें शतरंज का खेल भिन्न प्रकारसे चलने लगा। अबतकके व्यवस्थित खेलमें अव्यवस्थित वैचित्र्यका झोंका आया। एक मोहरा पागल हो गया, नियम टूट गया। उसकी श्वास तेजीसे चलने लगी। वक्षस्थलमें न समझ पड़ने वाली गर्मी आई; शांत स्वभावमें अशांति फैल गई; अङ्कगणितके दृढ़ अभ्यासीको बीजगणित के अगम्य अङ्क दिखाई पड़े। भाग्यवश गुणवंती नीचे मुँह किये घूम रही थी; यदि उसने ऊपर दो प्यासी, बुभुक्षित आँखोंको—अपने प्रत्येक अवयव को ग्रास करने की इच्छा करने वाली आँखोंको—देखा होता तो वह वहाँसे तुरन्त भाग खड़ी हुई होती।

रघुभाई जब नीचे आया तो उसके ठंढे स्वरमें कुछ गर्मी, स्थिर हाथोंमें कुछ कंपन था; इसके अतिरिक्त नये अंककी उपस्थिति भी मालूम पड़ रही थी। परोसते समय गुणवंतीका हाथ जब पास आता तो कुछ विचित्र, अकल्पित वायु उसके अन्तर में बहती। भोजनोपरान्त रघुभाई दरबारमें गया।

संध्या समय रघुभाई आज कुछ जल्दी ही चला आया। उसके पैर प्रसन्नता से आज नाच रहे थे, नेत्र हर्षसे चमक रहे थे। आज उसे लाभ हुआ था; माँगी मुराद पूर्ण होनेकी आशा दिखाई पड़ रही थी।

'भाभी!' घरमें घुसते ही रघुभाई बोला—'आज मेरा सितारा बुलंद है।'

'नायब-दीवान हो गये क्या?' कमलाने पूछा।

'नहीं, और कुछ। क्या दीजियेगा? कुछ दीजिये तो बताऊँ।'

गुणवंती ने ऊपर देखा; ऐसी उन्मत्ततापूर्ण आवाज, ऐसा हलका मजाक, रघुभाईमें तो पश्चिममें सूर्योदय होनेके समान आश्चर्यजनक लग रहा था। उसकी आँखें गुणवंतीको विलक्षण लालसासे देख रही थीं। गुणवंती स्वभावतः क्षमाशील थी। उसने सोचा—शायद हर्षमें मनुष्योंमें ऐसा ही परिवर्तन आ जाता हो।

'क्या है? कुछ कहो भी?' कमला बोली।

'नहीं; यह तो भाभीके लाभकी बात है, क्या दीजियेगा? कहिये!'

'मैं भला क्या दे सकती हूँ? लेकिन बात क्या है?'

'आज मैंने जगतकी चर्चा हजूरके सामने चलाई थी। हजूरने उसे बड़े होने तक पेंशन देनेकी आज्ञा दी है।'

'ऐं! क्या कह रहे हैं?' कहकर हर्षसे पागल माँने पासहीमें बैठे हुये जगतको कलेजेसे लगा लिया।

'हाँ, पचीस रुपया मासिक मिला करेगा।'

'सचमुच? चलो, प्रभुने आखिर कुछ दया तो की। अब मुझे जगतको पढ़ानेकी चिन्ता तो नहीं सतावेगी। रघुभाई! आपका यह उपकार मैं कैसे चुका सकूँगी!'

'इसमें उपकारकी कौन-सी बात है! मैंने तो अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। मैं न करूँ तो और कौन करेगा!'

'यह तो ठीक है; किन्तु रघुभाई! आज जेठजीका पत्र आया है। उन्होंने मुझे सूरत आनेके लिए आग्रह किया है।' कहकर गुणवंतीने पत्र आगे बढ़ा दिया। रघुभाईने उसे लिया और काँप उठा। पत्र द्वारा हाथके स्पर्शसे उसके रोम-रोममें

विद्युतका संचार हो गया—उसके हृदयका घंटनाद जैसा स्पंदनका शब्द कानमें सुनाई पड़ने लगा। तैयार किये हुये सूखे तृणपर अंगारा पड़ गया—वह भभक उठा। शतरंजकी बाजी मनमेंसे उड़ गई—एक ही मोहरा रह गया, 'ठीक है, पीछे उत्तर लिख दूँगा।' कहकर वह ऊपर चले गये।

थोड़ी देर पश्चात् गम्भीर विचारमेंसे जैसे जाग्रत होकर जगत बोल उठा—'माँ! पचीस रुपयेमें तीन आदमी रह सकते हैं या नहीं?'

'क्यों?'

'कुछ नहीं यों ही पूछा।'

जगतका छोटा मस्तिष्क कुछ विचारमें लीन हो गया था। गुणवंती जगतका मतलब आसानीसे समझ गई, वह हँसकर बोली—'हाँ, क्यों नहीं?'

जगतके मनमें 'मैं, तुम और माँ' इन शब्दोंकी प्रतिध्वनि हो रही थी।

८

दावानल फट पड़ा—जिससे रघुभाई का गला घुटने लगा। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। 'गुणवंती, गुणवंती' की प्रतिध्वनि उसके रोम-रोमसे निकलने लगी। उसने कपड़ा उतार दिया, बिछौनेपर पड़कर आँखें बंदकर शांत होना चाहा। किंतु वह निष्फल हुआ; वह उठा, ज्यों-त्यों भोजन किया। दो-चार चापलूस मिलने आये थे। उन्हें बिदा किया। उन्हें आश्चर्य हुआ कि मीठा, राजनीति निपुण रघुभाई आज इस प्रकार इस नवीन धुनमें क्यों है। एकने कहा—ठीक ही तो है! यह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेगा, त्यों-त्यों बौखलाहट भी बढ़ती जायगी।

सचमुच आज रघुभाईके मनमें बौखलाहट थी—लेकिन भिन्न प्रकार की। कामका बहाना करके रात्रिमें रघुभाई लिखने बैठ गया। भोली कमला रमाको सुलाकर स्वयं भी सो गई। दिन का कोलाहल बंद हो गया। घर भरमें चारो ओर शांति थी। कोतवालसाहब इस समय दीवान-गिरीके विचारमें नहीं थे;

बल्कि विकृत मस्तिष्कसे हिसाब लगा रहे थे। बीजगणितको अंकगणित समझकर उल्टा हिसाब कर रहे थे। आजका दिन बड़ा ही शुभ था, गुणवंतीपर आज उसने उपकार किया था। आज भी आनाकानी करनेमें वह जरा सकुचायेगी। रघुभाई उठ खड़े हुए, क्या करें ! यह उसकी समझमें नहीं आया।

बारहका घंटा दूरसे सुनाई दिया। बाहर शांति थी, केवल रघुभाईके हृदयमें ही तूफान मचा हुआ था। उसकी आँखोंमें हिंस्र-तेज चमक रहा था। समुद्र ऊपरसे शांत दिखाई पड़ रहा था, उसके अंदर बड़वानल जल रहा था। वह सीढ़ीके पास गया, कुछ देर वहाँ खड़ा रहा। बुद्धिमत्ताने शिक्षा दी—अस्वीकार करे तब ? फजीहत हो तब ? सब कुछ अपने हठसे, बुद्धिसे वशमें करनेकी रघुभाईकी आदत थी। हजूर वशमें हो सकते हैं तब यह क्या है ? एक अस्थिर मनवाली साधारण स्त्री !

धीरे-धीरे वह सीढ़ी उतरा। दीवाल में छोटा दीपक पास की कोठरी में जल रहा था। अभीतक गुणवंती सोई नहीं थी, झूलेपर बैठी हुई कुछ कर रही थी। जगत बिछौनेपर सो रहा था। प्रणयकी उष्णतारहित हिमवान हृदयोंमें एक विशेषता होती है, वहाँ सदैव ठंडक रहती है; किंतु जब पिघलने लगा कि बस हुआ सब पानी। रघुभाईको ऐसा लगा कि उसके हृदयकी धड़कन बंद हो गई। दरवाजे के पीछे वह खड़ा रहा—थोड़ा आगे बढ़ा। धीरे-धीरे झूला पास आता जा रहा था। गुणवंती नीचा सिर किये अपने काममें व्यस्त थी। उसके पीछे जाकर वह खड़ा हो गया। प्रायः न देखने पर भी पीछे खड़े हुए व्यक्ति का बोध हो जाता है, वैसे ही गुणवंती ने सिर उठा कर ऊपर देखा—झूले परसे उतरकर सामने खड़ी हो गई।

'क्या है ?' उसने कठोरता से पूछा।

उसके भावसे रघुभाईके मनको गुणवंतीने पढ़ लिया था। दीपकका धीमा प्रकाश गुणवंतीके स्वस्थ, सुंदर शरीर पर पड़ा। उसपर उस समय अप्सराओंका दिव्य सौंदर्य उतर आया हो, ऐसा रघुभाईको प्रतीत हुआ। उसकी दृष्टिमें उसका सौंदर्य सहस्र गुण-मोहक हो गया। रघुभाईका पूरा शरीर काँप उठा। प्रश्नका उत्तर देने के लिए उसकी जीभ खुल ही न सकी।

'सिरकी दवा......यहाँ है ? ऊपर तो नहीं है।'

'नहीं, यहाँ नहीं है। ऊपर ही है। चले जाओ।' गुणवंतीने कठोरतासे आज्ञा दी। रघुभाई का सिर घूम रहा था। वह तुरन्त आज्ञा का पालन करता पर शरीर तो हिल ही नहीं रहा था। जड़वत हो गया था।

गुणवंती का अभागा स्वभाव इस समय भी दया छोड़नेसे बाज नहीं आया, रघुभाई की व्याकुलताने उसे पिघला दिया—'क्या माथा दुःख रहा है ?'

इस दयापूर्ण वाक्यने अनर्थ कर दिया। रघुभाई का क्षोभ, डर कम हो गया—मनमें स्वाभाविक गणना हुई; मानेगी, क्यों न मानेगी ? दो मिनट वे दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। 'गुणवंती !' रघुभाईका स्वर ही बिलकुल बदल गया था, 'ओ गुणवंती ! मैं क्या करूँ ? मेरी समझमें नहीं आ रहा है।'

'क्या ?' क्या उत्तर दे, इस विपत्तिमें किस मार्गका अवलंबन करे, यह गरीब बिचारी गुणवंतीको सूझ नहीं रहा था।

'क्या ? अरे गुणवंती ! क्या तू समझ नहीं रही है ? मैं मर रहा हूँ, तू जानती है ! फिर क्यों मुझे मार रही है। तेरे बिना सब मिट्टी है।' कहकर उसने हाथ बढ़ाया। ऊपर जैसा कह आये हैं रघुभाई भिन्न प्रकारका व्यक्ति था। इस समय जीवनमें एक बार अपना जाति-स्वभाव वह भूल गया था; अपनी मनोवृत्तियों परसे लगाम हटा दिया था। यदि इस समय गुणवंतीने दबा दिया होता, क्रोध से दो-चार शब्द कह दिया होता, तो रघुभाई चला गया होता; क्योंकि रघुभाईमें साहस कम था, लोकलाज का भय था। इस कारण जिस प्रकार भी होता वह फजीहत रोकने का प्रयत्न करता। किन्तु गुणवंतीने उलटा रास्ता लिया। इस प्रकार वह बोली मानो विनती कर रही हो—'रघुभाई ! इस समय आपका मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। क्या कहना चाहिए, और क्या न कहना चाहिए, इसका भी आपको इस समय ज्ञान नहीं है। जाकर इस समय सोइये।' आँखसे देखते हुए भी गुणवंती इस मनुष्यकी अधमता देखनेमें आनाकानी कर रही थी।

'कैसे सो जाऊँ ? हृदयमें अग्नि धधक रही है; उसे शान्त कर दो ! गुणवंती ! ओ गुणवंती ! मैं तुम्हारा दास हूँ—आओ, आओ।' कहकर रघुभाई पास आया। गुणवंती थोड़ा दूर हट गई।

'यह क्या रघुभाई ! जरा शरम करो। किसके साथ बातें कर रहे हो। यह तो सोचो। अपने भाई को जरा याद करो। मैं निराधार हूँ इससे तुम इस प्रकार का बर्ताव कर रहे हो ?' गुणवंती गिड़गिड़ाई।

गुणवंती बहुमूल्य क्षण नष्ट कर रही थी। इन दयापूर्ण शब्दोंका रघुभाई पर एक ही असर हुआ। उसकी प्रज्वलित अग्नि कुछ ठंढी पड़ गई, बुद्धि विचार की सहायताके लिए आ पहुँची। परिणाममें अङ्कपर अङ्क जुटने लगे। सवाल हल होने लगा। स्त्री जाति है; उसकी युवावस्था एवं स्वभाव-जन्य अस्थिरता सहायता करेगी। आजका उपकार भी याद आवेगा और इतना करनेके पश्चात् पीछे हटना सब आशा पर पानी फेरना होगा। क्षोभ जाता रहा और वह अधिक स्वतंत्रतापूर्वक बोलने लगा—'मैंने सब विचार कर लिया है। सबका सारांश तुम्हीं हो। तुम्हारे बिना सब कुछ व्यर्थ है। तुम्हें मानना होगा, बेकार की बातों से क्या लाभ ? पागलपन छोड़ दो। अब सती-साध्वियोंका जमाना गया।'

वह फीकी हँसी हँसा। रघुभाईका स्वभाव धीरे-धीरे साम्राज्य प्राप्त करनेके लिए तत्पर हो गया था। गुणवंती यह सुनकर घबड़ा गई। उसे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि संसारमें ऐसे पशु भी मनुष्यके नामसे पुकारे जाते हैं, आदर की दृष्टिसे देखे जाते हैं।

'रघुभाई ! रघुभाई।' गुणवंतीने व्याकुल स्वरमें कहा—'आप क्या कह रहे हैं। आप समझते हैं कि मैं निराधार हूँ, आपके घरमें रहती हूँ; इसलिए जो चाहें कह सकते हैं ! मैं साध्वी हूँ या नहीं, यह आपके देखनेकी चीज नहीं है। यही क्या आपकी कृतज्ञता है ? आप मुझे माँ के समान समझने वाले थे, यह क्या भूल गये ? इसीलिए आप मुझे यहाँ लाये थे ?' यह कहते हुए गुणवंती की आँखोंमें पानी आ गया।

ठंढा पड़ जानेवाले मनुष्यके सामने उसका प्रतिद्वंदी विचलित हो जाय, तब उसे अधिक आनन्दानुभव होता है। रघुभाई कामातुर प्रेमीके स्थानपर—चतुर नीतिनिपुण मात्र रह गया।

'तब और किसलिये ? क्या मेरे घरमें अन्न भरा हुआ है कि दो व्यक्तियोंको

मुफ्त भोजन कराऊँ ? गुणवंती ! इस ज़बानदराजीसे लाभ ? व्यर्थ यह लड़का जाग उठेगा।'

'कैसी नराधमता, कैसा विश्वासघात !' गुणवंतीके रोम-रोममें आग व्याप गई। चिल्लाकर जगतको जगा देनेकी इच्छा हुई; फिर विचार करनेसे यह उसे उचित प्रतीत नहीं हुआ। रघुभाईके इस व्यवहारके लज्जास्पद संस्कारसे पुत्रकी रक्षा करने की वह इच्छुक थी।

'यह रघुभाई बोल रहे हैं या राक्षस ? क्या इसीलिए मुझे यहाँ लाकर रखा था ? और क्या आप समझ रहे हैं कि इस प्रकार मैं वशीभूत हो जाऊँगी—आपकी अधम इच्छाके आधीन हो जाऊँगी ? तब आपने मुझे पहचाना ही नहीं !'

रघुभाईको अपने उपरोक्त शब्दोंके लिए पछतावा हुआ; उसकी अपेक्षा नम्रता दिखाना ही उन्हें अधिक ठीक मालूम हुआ। वह बोला—'पहचानता हूँ गुणवंती ! पहचानता हूँ। आज चार माससे प्रतिक्षण मेरे सभी विचार तुम्हारे ऊपर केंद्रित हैं, तुम्हें देख रहे हैं, तुम्हें रट रहे हैं। आओ गुणवंती ! आओ—कहकर नाटकीय खूबीसे गुणवंतीको जोतनेके लिए वह पास आया। घुटने टेककर गुणवंतीका हाथ पकड़नेका उसने प्रयत्न किया। स्पर्श मात्रसे गुणवंतीके मस्तिष्कमें दावानल प्रकट हुआ; आँखें क्रोध और धिक्कारसे अँगारेके समान चमकने लगीं; रोषसे शरीरपर वीर नारीका भयानक रौद्र प्रकट हुआ। रघुभाईके गालपर कसकर उसने एक तमाचा जड़ दिया।

रघुभाई गाल सुहलाता हुआ, लतियाये हुए कुत्तेके समान लज्जित, घुड़कते हुए उठा। सामने क्रुद्ध सिंहनीका सौंदर्य देखा, उसकी कामाग्निको आहुति मिली। दाँत पीसते हुए, लाल-लाल आँखोंसे कुछ देर तक देखता रहा। उसका निश्चय दृढ़ था, मन शान्त था। तमाचाने उसका थोड़ा मान भंगकर दिया था। उसका स्वर खोखला, धीमा, पड़ गया था, पीसते हुए दाँतके बीचसे शब्द निकले—'और कुछ ? तू नहीं मानेगी ? मेरा दासत्व नहीं स्वीकार करेगी ? याद रख, मेरा स्वामित्व तुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा। जो कुछ मैं इच्छा करूँ उसे प्राप्त करने की मेरी आदत है।'

'पापी ! नीच ! चाण्डाल ! जो कुछ तुझसे हो सके कर ! थोड़ी देर भी और रहा तो मैं ज़ोर से चिल्लाऊँगी ।'

रघुभाईके मनमें सब बातें विद्युतके समान दौड़ गईं । यदि गुणवंतीने नहीं माना तो व्यर्थ अपकीर्ति होगी, इज्जत मिट्टीमें मिल जायगी । इसकी अपेक्षा जोर जुल्मसे भी यदि वह पापकी साझीदार बन जाय तो कमसे कम मुँह तो बंद रखेगी । कलसे न माने तो बल कहीं गया है ? तुरन्त वह झपटा और गुणवंती कुछ समझ सके या संभल सके इसके पूर्व उसने उसे अपने बाहुपाशमें जकड़ लिया; लिपटा हुआ सर्प डसनेके लिए फिरे उसी प्रकार अपना विषदंश देनेके लिए गुणवंतीका मुँह अपनी ओर खींचने लगा ।

दुःख और क्रोधसे उत्पन्न शक्तिसे गुणवंतीने उसके पाशसे अपनेको छुड़ाकर पीछे देखा । खिड़की खुली हुई थी, क्षण मात्रमें कूदकर बाहर जा पहुँची ।

कूदनेकी आवाजसे जगत जग पड़ा । कुछ प्रकाश-सा लगा, दूसरे ही क्षण दीपक बुझ गया । उसने सोचा प्रकाश स्वप्नमें दिखाई दिया होगा, और करवट बदलकर वह सो गया ।

६

पुराने जमानेमें मकानका आँगन भी जमीनसे दस फुट ऊँचा होता था । गुणवंती नीचे गिरी, उठकर खड़ी होनेपर उसने ऊपर देखा तो कोठरीमें अँधकार दिखाई दिया । क्या करे ? वापस जाना हो नहीं सकता । जगतको छोड़कर भी जाया नहीं जा सकता । चारों ओर अंधकार और अपमान दिखाई दे रहा था । रामकृष्णदासजी याद आये । उनसे मिले बिना दूसरा मार्ग नहीं था । अंधकारमय निर्जनतामें, मध्यरात्रिके समय, भयानक दिखाई पड़नेवाली गलियोंमें से, सूनसान घरोंके सामनेसे गुणवंती दौड़ती हुई निकली; एक साँसमें रामचन्द्रजीके मंदिरके पास जा पहुँची और दरवाजा खटखटाया । थोड़ी देरमें एक चेला उठा और आँखें मलता हुआ तथा अपनी भाषामें अच्छीसे अच्छी गाली देता हुआ आया तथा दरवाजा खोलकर बड़बड़ाया—'कौन है ?'

चेलाने दरवाजा खटखटानेवालेका चेहरा देखा और पहचानकर लज्जित हो गया। उसने पूछा—'माताजी ! इतनी रातमें ?'

'हाँ, लक्ष्मण ! जरा बाबाजीको उठा दो।'

लक्ष्मणदासने जँभाई लेते हुए दीपक जलाया; मनमें अनेक तर्क-वितर्क और कुतर्क करते हुए भीतर जाकर उसने रामकृष्णदासजी को उठाया। गुणवंतीका नाम सुनते ही 'क्या ?' चिल्लाकर बाबाजी उठे। बाहर आनेपर गुणवंतीको हाँफती देखकर सब समझ गये।

'बेटा ! डंडा लाओ।' उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'क्यों बेटी ?' गुणवंतीसे कहा 'भीतर आ, यहाँ बहुतसे कान सुनते हैं।'

क्या कहना चाहिये, इसका अभी गुणवंतीको ज्ञान नहीं था।

'साले कमजातने कुछ किया ?'

गुणवंतीने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा।

'मैं पहलेसे जानता था। अच्छा ! जगत कहाँ है ?'

'वह तो वहीं है। नीच, जगतको मार डाले तब ?'

'अरे राम कह ! वह साला क्या करेगा ?'

बाबाजी ऐसे समय लाख रुपयेके मनुष्य थे। अनावश्यक एक शब्द भी वे नहीं बोलते थे। चुपचाप दोनों व्यक्ति रघुभाईके मकानके पास पहुँच गये।

'बाबाजी इतना देखियेगा कि कोई अपमानकर बात न हो।'

'कुछ डरना नहीं !'

घरके पीछे दोनों व्यक्ति गये। 'तू इधर खड़ी रह, मैं अभी आता हूँ।' कहकर बीस वर्षके युवककी चपलतासे दीवाल लाँघकर बाबाजी भीतर गये। उन्हें मालूम था कि जगत कहाँ सोया हुआ है; किन्तु उस ओर न जाकर वे बायीं ओर चले और तेजीसे ऊपर चढ़ गये। लज्जित अपमानसे डरता हुआ, घबड़ाया हुआ रघुभाई 'कल क्या होगा ?' का विचार करता हुआ, विचारमें लीन बिछौने-पर पड़ा-पड़ा अनेक तर्क-वितर्क व उधेड़बुनकी जालमें फँसा था। कभी अपनेको फँसा हुआ और कभी बिलकुल बेदाग समझता था। उसने निश्चय समझ लिया था कि गुणवंती रामकृष्णदासजीके यहाँ गई होगी, किन्तु उसने यह स्वप्नमें भी नहीं

सोचा था कि तुरन्त ही बाबाजी यहाँ उसपर भी ऊपर पहुँच जायँगे। इस प्रकार बाबाजीको अचानक ऊपर आया हुआ देखकर रघुभाई सिरसे पैर तक काँप उठा। चिल्लाता है तो अपकीर्ति होती है, इससे चुप पड़े रहकर मरना ही उसने श्रेयस्कर समझा। धीरे-धीरे बाबाजी पास आये। बंदकी हुई आँखोंको वे अँधेरेमें भी देख सकते थे। 'हे भगवान!' मुँहमें ही रघुभाई बड़बड़ाया।

वज्रके समान पञ्जा रघुभाईके गलेपर पड़ा; लोह-खण्डके समान अँगूठा और अँगुलियोंसे दम घुटने लगा। रघुभाईको ऐसा ज्ञात हुआ कि प्राण निकल जायगा। उठकर बिना बैठे उससे नहीं रहा गया। रामकृष्णदासजीने कानमें 'चुप' की फूँक मारी। रघुभाईको प्राण जितना प्यारा था उतना ही अपकीर्तिका डर भी था। इससे प्राण बचानेके लिए वह चिल्लाये या अपकीर्तिसे बचनेके लिए खा मोश रहे, यह समझ नहीं पड़ा। डरपोक हृदयकी भीरुतासे वह एक शब्द भी न बोल सका। अँधेरेमें वज्रपाशकी मूक आज्ञाके वशीभूत होकर वह उठा, लड़खड़ाते हुए पैरसे सीढ़ीके पास खींचकर गया; लुड़कता-पुड़कता नीचे उतरा और प्राङ्गणमें पहुँचा। आकाशमें तारागण चमक रहे थे। गलेमें पड़ा हुआ जबरदस्त पंजा उसे खींचकर कुएँके पास ले गया। 'जरूर यह बाबा अब मुझे जल पिलावेगा।' इसका उसे डर हुआ। इससे पूर्व बाबाजी यदि एक भी शब्द बोले होते, उनके बीच यदि वाद-विवाद हुआ होता, तब तो शतरंजकी चाल चल जाती और रघुभाईकी बुद्धि काम दे जाती। किन्तु प्रसंग विचित्र था, विचार करनेका उसे अवसर ही नहीं मिला और न कुछ कहनेका उसमें साहस ही था। एक-दो बार बोलनेके लिए मुँह खोला किन्तु पीछेसे ऐसा जोरसे गला दबा कि बोलनेकी अपेक्षा चुप रहना ही ठीक मालूम पड़ा। रघुभाईको लगा कि बाबा कुएँकी गड़ारीसे रस्सा खोल रहा है, घड़ा फाँसनेका फंदा बड़ा कर रहा है। देखते ही देखते वह सिरपर आ पहुँचा। क्या फाँसी लगावेगा? रघुभाई चिल्लाया—लेकिन गलेमेंसे पूरी आवाज निकलनेके पूर्व ही इस जोरका एक प्रहार हुआ कि शरीरकी नस-नस काँप उठी, मानो जलती हुई लकड़ी पड़ गई हो इस प्रकार पीठमें जलन होने लगी। एक पलमें—इस प्रहारका पूरा ज्ञान होनेके पहले ही—रस्सेका फंदा नीचे आया—रघुभाईके कमरमें पहुँच गया। तुरन्त ही वह जमीनसे उठ

गया और गड़ारीसे घड़ेके स्थानपर कुएँमें वह लटकने लगा। रस्सीका दूसरा सिरा रामकृष्णदासजीके हाथमें था।

'बाबा जी!' मुँहसे निकला ही था कि आकाश अदृश्य हो गया। चारो ओर कूप की घूमती हुई दीवाल दिखाई दे रही थी। ऊपर कूप के गोलाकार मुँह में तारागण चमकते हुए दिखाई पड़ रहे थे और वे ही नीचे पानीमें भी। रघुभाई का होस-हवास गुम हो गया। उसने दो-एक बार चिल्लाया भी लेकिन पानीमें से केवल प्रतिध्वनि मात्र सुनाई दी। कोतवाल साहबने रस्सीमें बँधे हुए बन्दरके समान तड़फड़ाना प्रारम्भ किया। रघुभाई गुणवंती को, उसके रूप को, बाबा को, जगत को गाली देने लगा; किन्तु ऐसी अवनति में भी डरपोक को प्राण प्यारा होता है; उसने तड़फड़ाना छोड़ दिया। कारण शायद फंदा ढीला पड़ जाय तब? अब डर केवल रह गया तो इस बातका कि उसका चिल्लाना सुनकर कहीं कोई चौकीदार कोतवाल साहब का यह अद्भुत अवलंबन देखनेके लिए न आ पहुँचे अथवा प्रातःकाल नौकर पानी खींचनेके समय अपने मालिक को खींचकर निकाले तो उसका......

रस्सा लकड़ीसें बाँधकर बाबाजी जगत जहाँ सोया हुआ था वहाँ तुरन्त जा पहुँचे। और बिछौने परसे उसे उन्होंने उठा लिया।

'कौन? माँ!'

'नहीं बेटा! मैं हूँ।'

'बाबाजी! माँ कहाँ है?'

'बाहर बेटा! बोलो मत!'

चपल बालकको किसी असाधारण घटना घटनेका ख्याल आ गया, किन्तु बाबाजी पर उसे पूर्ण श्रद्धा थी; इससे वह खामोश रहा। बाबाजीने दरवाजा खोलकर जगतको गुणवंतीको सौंप दिया। जगत आँखें मलकर इधर-उधर देखने लगा; किन्तु कुछ समझ नहीं सका। जब तक बाबाजी एवं गुणवंती उसके पास थे तब तक उसके लिए डरकी कोई बात नहीं थी।

'बेटा! ठहर मैं अभी आता हूँ।' कहकर बाबाजी पीछे प्राङ्गणमें गये। उनका विचार रघुभाईको कूपमें इस प्रकार लटकता हुआ छोड़ देनेका नहीं था! प्रसंग-

वशात् बहुत दिनों का द्वेष शान्त करनेके लिए एवं लज्जावश रघुभाई आजकी घटना किसीसे कहे नहीं, इसी उद्देश्यसे यह योजना उन्होंने की थी। वे रस्सा ऊपर खींचने लगे। ऊपर खींचे जाते हुए देखकर रघुभाईके जीमें जी आया। स्वयं अपमानित होनेकी उसे लज्जा नहीं थी। भय उसे केवल किसीके देख लेनेका था। अँधेरेमें दिये गये तमाचेकी भी उसे परवाह नहीं थी। सफेद कपासके समान अर्ध-मृत कोतवाल ऊपर आया। बाबाजीने उसे एक ओर पटक दिया। रघुभाई मृतवत् पड़ा रहा। जाते-जाते बाबाजी एक लात जमाते हुए बोले—'साला कुत्ता!'

रघुभाईने आगामी प्रातःकाल बाबाजीको राज्यमेंसे निकाल बाहर करनेकी सौगन्ध ली।

१०

जसुभा के जीवन में दो बड़ी पीड़ायें थीं। एक तो विलास क्रीड़ामें बैठे हों और शरीर को आराम देनेके लिए सोनेका मन करे वह; और दूसरे निर्मल प्रातः-काल की मीठी निद्रा का त्याग कर उठना पड़े वह। निद्रा-भंग होनेके पश्चात् भी तुरन्तके देखे हुये स्वप्न का रसपान करनेके लिए आँखें बन्दकर थोड़ी देर वे पड़े रहते और लाचार होने पर ही उठते। वे उठे, आँखें खोलीं; नियमित रणुभा बिछौनेके सामने खड़े थे। उनकी आँखें स्नेहपूर्ण दृष्टिसे जसुभाको देख रही थीं। जसुभा को दूसरोंके द्वारा अपने लिए की जानेवाली सेवा अच्छी लगती थी। वे मुस्कराये।

'क्या है रणु! क्या विचार कर रहे हो?'

'कुछ नहीं! ऐसा मालूम होता है कि आपको निद्रा ठीक से आई नहीं।'

जसुभा के ललाटपर दृष्ट-अदृष्ट रेखायें पड़ गईं। 'कैसे जाना?'

'यह कुछ कठिन नहीं है। आज आपको उठते समय अधिक कष्ट नहीं हुआ।'

'जाने भी दो रणुभा!' सुखके लोभी जसुभा ने 'जहाँ देखो वहाँ दुःख, दुःख और दुःख!' कहकर फिर भीतर जानेके द्वारकी ओर मार्मिक दृष्टिसे देखा।

जिस प्रकार जसुभा को दो बड़ी पीड़ायें थीं उसी प्रकार दो बड़े डर भी थे। पहला डर रेवाशङ्करका, वह आकर हिसाब का अथवा राज्य-प्रपंचका अथवा एजेन्सीका कोई पारायण लेकर बैठ जाय तो जसुभा बिना भड़के रहनेवाले नहीं थे और दूसरा डर उनकी मारवाड़ी पत्नी देवल बाका था। राज्यको सुशोभित करनेके लिए जसुभाकी माँ अपने ननिहालकी एक निकट सम्बन्धीको ले आई थीं। रूपमें राजपूत बाला ठीक ही थी; पढ़नेमें ककहरा भी नहीं; रीति-भाँतिमें पाँच सौ वर्ष पीछे और पहरावामें तो वह राणा सांगाके समयकी याद दिलाती थी, उसपर भी एक झगड़ालू राज्यमें प्रतिपालित होनेसे, राज्यके वातावरणको मामूली खटपट, झूठे गप्प एवं तुच्छ दृष्टिके आघातसे क्योंकर असह्य बनाया जा सकता है इसमें पूर्ण पटु बन गई थी। इस कारणसे जसुभाके लहरी, संस्कृत स्वभावको देखकर देवल बाको त्रास होता। प्रायः दोनों अपने अपने रास्ते जाते थे, लेकिन गरीब बिचारे जसुभाका अभाग्य कि कलसे ही उसने एक नया हठ पकड़ किया है। बस चंपाको निकालो—चाहे जैसे हो; उसे निकाल बाहर करो।

जसुभा सोचते थे कि चम्पाकी चतुराईसे दुःखका विचार भी अनुपस्थित रहता है जिससे उसे यहीं रखनेका उसका विचार था। किन्तु हुआ बिलकुल विपरीत। रात्रि भर चम्पा की बिदाई, देवल बाका क्रोध एवं स्वयं अपनी निराधारताके अनेक स्वप्न उन्हें आये। आज बहुत दिनों बाद निद्राका उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक त्याग किया।

'दुःख किस बात का ?'

'अरे, उस बातको जाने भी दो।'

'बात तो ठीक है लेकिन मुझे जाने दीजिये न!' कहती हुई चम्पा भीतर आई।

चम्पाने विरक्तिको अपना शस्त्र बना लिया था। अत्यन्त स्पृहा से—परिश्रमसे अपने रूपमें एक प्रकार की जंगली किन्तु सुन्दर मोहक अस्पृहा वह ले आई थी। उसके बाल भी ठिकाने नहीं थे एवं साधारण सफेद वस्त्र इस प्रकार धारण किया गया था कि शारीरिक शोभा—देखनेकी अपेक्षा विचार करने पर अधिक मोहक लगे। पीछे थोड़ी दूरपर एक नौकर मोजा ला रहा था। उसका सादा रूप, दोष-रहित अंग और विरक्ति—ये अद्भुत प्रभाव डालते थे। जसुभाके

दुःखी मनपर सुखकी किरणें फूट पड़ीं। रणुभाने दबाये हुये प्रेमको, अपने तीव्र स्नेह से अपनी छाती पर एकाएक हाथ रखकर उछलते हुए हृदय की धड़कन को शान्त करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया।

'मुझे जाने दीजिये।'

'कहाँ ?'

'बम्बई !'

जसुभा पर तो मानो आसमान टूट पड़ा। उसने पूछा—'क्यों ?'

'क्यों क्या ? मैं तो आपके ठाठ-बाटसे आजिज़ आ गई। मुझे तो मेरा घरही अच्छा है।'

'नहीं चम्पा ! तुम्हें तो अब यहीं घर बसाना है।'

'यहाँ ? इस कूड़े में ? वाह ! आप जितना पैसा मुझे देते हैं उतने में तो आपके लिए वहाँ से पाँच भेज दूँगी।'

जसुभा तो उद्वलित हो उठे। 'यह क्या चम्पा ? चारों ओरसे दुःख ही दुःख, मैं तो ऐसे लोगों से परेशान हो गया। प्रतिदिन कोई न कोई रूठता रहता है।'

'इसीसे तो मैं कह रही हूँ कि मुझे जाने दीजिये।'

'तू तो कह चुकी न ! यदि बम्बई जायगी तो मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा। तू यहाँ से गई कि जसुभा को अर्ध-मृत समझ ले। उसके लिए तो चारों ओर अँधेरा ही हो जायगा। तू गई कि सब उसे काटने दौड़ेंगे।'

'किसे काटने दौड़ेंगे ?' बगल के दरवाजेमें से आवाज आई। चिक हटी एवं रौद्र स्वरूप धारण किये हुए दुर्गा के समान देवल बा आई। जसुभा के शब्दों का कुछ मर्म समझ कर तुरन्त ही एक ही वारसे दो टुकड़ा कर देने के लिए वह आई थी। चम्पाको हँसी आ गई ! बिचारे जसुभा को तो दो जोगमाया के बीच अपनी मृत्यु ही दिखाई पड़ने लगी। देवल बाका भय एवं चम्पा के वियोग का दुःख इन दोनोंके बीच किसे पसन्द करे, यह उन्हें सूझ नहीं पड़ा। इस प्रकार की घटना न घटने देने का वे यथाशक्ति प्रयत्न करते थे। इसीसे यह बेचैनी थी। बहुत बड़ी, एक कठिन समस्या सामने आ खड़ी हुई। इस बेचैनीसे कैसे छुटकारा मिले ?

सद्भाग्यसे देवल बाका मारवाड़ी घाँघरा चिक में फँस जानेसे उसे छुड़ानेमें कुछ समय लग गया। 'वाटरलू' के रणक्षेत्रमें पराजयसे बचनेके लिए वेलिंगटन जिस प्रकार ब्लूचरकी राह देख रहा था, उसी प्रकार जसुभा इधर उधर नजर दौड़ाने लगे कि उनकी दृष्टि रणुभापर जा पड़ी। रणुभाकी आँखोंमें और मुखपर चम्पाके प्रति प्रेम झलक रहा था। उसका वश चलता तो वह उसके पैरों पर भी गिर पड़ता। अत्यधिक समयसे दबाया गया प्रेम ऐसा ही होता है। रणुभाके गुप्त प्रेमको जसुभा जानते थे और एक खेलके समान विनोदसे उसे देखा करते थे। घड़ी भर आनन्द मनानेके अतिरिक्त चम्पामें और कोई रस उन्हें नहीं था। अतः दूसरा कोई चम्पाको किसी भी दृष्टिसे देखे, इसकी उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उनके मनमें कोई विचार आया—एक मार्ग सूझ गया।

'किसको क्या ? इसीको तो' जसुभाने उत्तर दिया।

'इसीको याने किसको ?' आँखें फाड़कर देवल बाने कहा।

'देखती नहीं हो, तुम कह रही हो कि चम्पाको निकाल बाहर करो, और चम्पा भी जानेको तैयार बैठी है किन्तु यह तुम्हारा रणु मानता ही नहीं।'

'रणुभाको इससे क्या मतलब ?' रणुभा पर रानीकी स्नेह-दृष्टि थी। उसने सोचा कि अपनी इच्छा छिपानेके लिए जसुभा उसके सिर मढ़ना चाहता है।

'कबसे यह सिर खा रहा है कि चम्पाको न जाने दीजिये, तब मैं क्या करूँ ? किस-किसकी बात मानूँ।'

चम्पा राजाकी चतुराई समझकर हँसी। रणुभाको तो मनमानी मुराद मिल गई। उसका हृदय जोरसे धड़कने लगा।

'क्यों रणुभा ? क्या यह सच है ?'

'सच बात है माताजी ! चम्पाके चले जानेसे तो मेरे लिए चारो ओर अन्धकार ही हो जायगा।' राजाकी बातका समर्थन करते हुए उसने कहा। वास्तवमें उसके लिए यह बात बिलकुल सत्य थी भी।

रानी दाँत पीसने लगी। उसकी समझमें ही नहीं आ रहा था कि इसमें क्या रहस्य है, क्या बात है! इसीसे यह समझ बैठी कि ये सब उसे बना रहे हैं।

कुर्सीपर लेटते हुए जसुभा बोले—'हुआ ! अब मैं क्या करूँ ? रणुभाने

कभी कुछ याचना नहीं की और आज जब कुछ माँगनेके लिए तैयार हुआ, तब क्या उसे अस्वीकार किया जा सकता है ? जाओ ! स्वीकार है । रणुभा ! चम्पा और तुम दोनों आनन्द करो ।'

'एक शर्तपर !' देवल बाने कहा, 'चम्पाको रणुभाके पास रहनेकी आज्ञा दीजिये, यहाँ नहीं ।'

जसुभाने देखा कि यह मारवाड़िन पक्की निकली किन्तु वह यह भी जानते थे कि अब यह हठ छोड़नेवाली नहीं है । स्वीकार कर लेना ही उन्हें अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण जान पड़ा ।

'हाँ, हाँ !'

'अभी !'

'हाँ, अभी ।' कहकर जसुभा दूसरी ओर घूमे ।

'रणु जाओ, चम्पाको अपने कमरेमें ले जाओ ।'

रणुभाका निवास महलके दाहिनी ओर एक अलग कमरेमें था । रणुभाको तो जैसे अंधेको आँख मिल गई । वह यही तो चाहते थे । चम्पाकी ओर देखा । चम्पा भी नहीं चाहती थी कि इस प्रसंगको लेकर राजा-रानीमें अधिक वाद-विवाद चले । उसने रणुभाके कन्धेपर हाथ रख दिया । रणुभाके तो रग-रगमें बिजली-सी दौड़ गई ।

'रणुभा ! चलो मुझे रास्ता दिखाओ ।' चम्पा बोली ।

रानी गर्वसे इस गर्वीली दिखाई पड़नेवाली स्त्रीकी ओर देखती रही । चम्पा ज़रा हँसी, थोड़ा झुकी और आँखपर आई हुई एक लट हटाती हुई वहाँसे चल दी ।

———

११

पहले हमेशा यह नियम था कि राजाको प्रातःकाल उठते ही कोतवालसे [शह]रके सम्बन्धमें बातचीत करनी चाहिये । इस पुराने नियमके स्थानपर राजाके [शय]नागारमेंसे निकलते समय कोतवालको अब सबेरे कोर्निस बजाना मात्र रह [गया] था ।

इस नियमानुसार रघुभाई बाहर खड़े थे। रघुभाईको कूप यात्रा किये हुए आज पन्द्रह दिन हो गये थे, एवं गुणवंती तथा लज्जाको भुलाकर वह राज्यके खटपटमें पुनः प्रवृत्त हो गये थे।

आज उसने रणुभाके कंधेपर हाथ रखे हुए चम्पाको निकलते देखा। रातके झगड़ेके सम्बन्धमें थोड़ा बहुत सुना था, जो कुछ न सुन सका था, उसे उसने अपनी कल्पनासे इस दृश्यको देखकर पूरा कर लिया।

रणुभाके खिले हुए चेहरेकी ओर देखकर रघुभाई जरा मुस्कराये। उसने समझ लिया कि चम्पाकी सत्ता पूर्ण रूपसे जम गई है, राज्यमें जड़ोंसे कोई रास्ता करना हो तो वह मार्ग चम्पा द्वारा ही मिलेगा। इस उदय होनेवाले सूर्यकी पूजाके लिए कौन-कौन सी सामग्रीकी आवश्यकता पड़ेगी, इसका वह विचार करने लगा।

'चम्पा !' सीढ़ी चढ़ते हुए रणुभाने कहा—'आज मेरा अहोभाग्य है।'

'क्यों ? रामजनीको घर ले आये, इसीसे ?' हँसते हुए चम्पा बोली।

'चम्पा ! संसारके लिए तू रामजनी भले ही हो; किन्तु मेरे लिए तो......'

'स...स...स...इस प्रकार बातें मत करो। तुम सब एक समान हो। हम खिलौना हैं क्यों ? किन्तु दिन भर यह कहनेमें तुम लोगोंको न जाने क्या आनंद मिलता है ?'

रणुभाने गहरी आह भरी। बातचीत करते समय चम्पा, उसके साथ जुदाईसे—अंतरसे ही बर्ताव करती। उसका तथा अपना हृदय पास लानेके रणुभाके सब प्रयत्न निष्फल ही होते।

राजमहलका स्वरूप पत्थरके एक महान जंगलके समान था। चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व महलकी नींव पड़ी थी; प्रत्येक शौकीन राजाने अपनी रुचि एवं आवश्यकताके अनुसार उसमें कुछ न कुछ परिवर्त्तन किया था। असंख्य कमरे वर्षों तक बन्द पड़े रहते जिनमें चमगादड़ ही निडरता पूर्वक निवास करतीं। हजारों व्यक्ति भी यदि लगते तो उन्हें ढूँढ़ निकालनेमें असमर्थ थे। तीसरे खण्डमें दाहिनी ओर रणुभाका निवास था। किनारेपर एक कमरेमें वृद्ध नायक पड़ा रहता। बीचके

दो-तीन कमरे साफ किये जा रहे थे; ऐसा लगता था मानो चम्पाके स्वागतकी तैयारी हो रही है।

रणुभामें वाक्-चातुर्य नहीं था जिससे जरा भी विचारमें पड़नेसे उसके बोलने-की शक्ति नष्ट हो जाया करती। दोनों चुपचाप रणुभाके पहले कमरेके पास आये।

'चम्पा!' डरते डरते रणुभाने प्रारम्भ किया।

'क्या?'

'यह सब अपना ही समझना।'

'यह भी क्या कहनेकी बात है! मैं तो दुनियाँमें सब कुछ अपना ही समझती हूँ।'

भीतर घुसते ही कोई बैठा हुआ दिखाई दिया। अनंतानन्दजी एक अजीब गौरवके साथ वहाँ बैठे हुए पुस्तक पढ़ रहे थे। रणुभाने उन्हें देखा और उसके मनमें उबलती हुई अग्नि शान्त पड़ गई। कुछ लज्जा मालूम हुई। चोरी करके काजीके पास जाने वालेकी स्थितिका अनुभव हुआ। स्वामीका गेरुआ वस्त्र और सफाचट सिर देखकर चम्पाने नाक चढ़ायी। अपनी तिरस्कारपूर्ण-नीतिसे धर्म तथा उसके प्रतिनिधिके प्रति वह तिरस्कार एवं घृणासे देखती। इस समय घंटे-आध घंटे रणुभाको चिढ़ानेकी आशासे आई हुई चम्पाको जरा निराशा हुई।

रणुभा स्वामीजीके पास चले गये। चम्पा दरवाजेके पास एक कुर्सीपर बैठ गई।

'रणुभा! आज इतनी जल्दी कैसे आ गये? तुम तो नौ बजे प्रतिदिन ऊपर आते हो।'

कुछ स्वरमें, कुछ शब्दमें नवीनता देखकर विरक्त चम्पा जरा चैतन्य होकर स्वामीकी ओर ध्यानसे देखने लगी। थोड़े शब्दोंमें—अपना प्रेम छिपाकर—सबेरेकी घटित घटना रणुभाने कह सुनायी। जब-जब चम्पाका नाम आता तब-तब स्वामीजी उसकी ओर देखते। चम्पा स्वामीकी ओर आतुरतासे देखने लगी। 'वे मनमें क्या सोचेंगे।' इस विचारमें वह चिन्तामग्न हो गयी।

'तब अब तुम्हारा राज्य शुरू हुआ; क्यों?' यह सुनकर चम्पा जरा चैतन्य हुई। 'तुम अब राज्य कैसे चलाना चाहती हो?'

'मैं कौन-सा राज्य चलाने वाली थी?'

'तब कौन चलानेवाला है? राजाको शोक—दीवानको कमी—रणुभाको भय! इस प्रकार राज्य-तंत्र चलानेकी किसीको भी परवाह नहीं पड़ी है। जब किसीको परवाह ही नहीं है, तब कहा किससे जाय ?'

'रणुभा, भीतर आऊँ क्या ?' रघुभाईकी आवाज दरवाजेपरसे सुनाई दी। नीचे काम सौंपकर, उदयमान सूर्यको अर्घ्य देनेके लिए वह ऊपर चला आया था। उसने सोचा था कि रणुभा और चम्पा दो ही होंगे किन्तु इस अविज्ञाप्य स्वामीकी उपस्थितिसे वह चौंक पड़ा। एक प्रकार से हर्षित भी हुआ। यह स्वामी रेवाशंकरपर क्रुद्ध हुआ है, इसे भी अपना एक साधन बनाया जाय तो क्या बुरा होगा। अनुसंधानसे स्वामीका थोड़ा इतिहास, थोड़ी लोकप्रियताका उसे ज्ञान हो गया था! अनुसंधानमें यह भी पता चला कि स्वामी सर्वत्र घूमता है, एवं रेवाशंकरके कार्योंसे क्या क्या हानि पहुँची है, इसका पता लगा रहा है। यदि वह राज्यमें एक भिन्न पक्ष खड़ा करता हो तो उसका नेता बननेके लिए रघुभाई तैयार था। इसलिए यदि वह हाथपर चढ़ जाय तो बहुत अच्छा हो, ऐसी उसकी प्रबल इच्छा थी।

'कौन, स्वामी महाराज ?' नम्रतामें परिहासका पुट देते हुए रघुभाई बोला—रेवाशंकरजी और आपमें झगड़ा होनेके पश्चात् आपसे यहाँ भेंट होनेकी मुझे आशा नहीं थी।'

'आशायें सभी परिपूर्ण नहीं हुआ करतीं, अभीसे ही क्यों उतावले हो रहे हो ?'

अन्तिम शब्दोंका कुछ मार्मिक अर्थ है, इतना तो रघुभाई समझ गया। किन्तु वह क्या है यह उसकी समझके परे था।

'महाराज! उस दिन तो मेरा कलेजा मुँहको आने लगा था। आप जैसा व्यक्ति आकर याचना करे और वह स्वीकार न हो, यह कितनी बुरी बात है! यों हजारों रुपये व्यय किये जायँ पर आपके लिए कोर कसर की जाय।'

जरा हँसकर स्वामीजी बोले—'इसमें भी तो दोष तुम्हारा है।'

'मेरा ?'

'तुम्हारा और रणुभा जैसे राज-सेवकोंका तथा चम्पा जैसी राज्य-सखीका!'

'इसमें मैं क्या कर सकती हूँ ?' चम्पाने धीरेसे पूछा।

रघुभाई और रणुभा दोनोंने उसकी ओर देखा। यदि दोनों स्वामीजीकी बातचीतमें दत्तचित्त न होते तो देख सकते कि चम्पा व्यवस्थित हो आदर और ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रही थी।

'तुम ! तुम सब कुछ कर सकती हो। संसारमें सब कुछ करनेवाला यदि कोई है तो वह स्त्री ही है, तुम्हारे आधारसे ही हम तरते या मरते हैं।'

'रणुभाजी ! हजूर साहब आपको बुला रहे हैं।'—एक नौकरने आकर कहा।

'महाराज ! मैं अभी आता हूँ, आप रहियेगा न ?'

'नहीं, मैं फिर आऊँगा। सच्चिदानंद, बेटा ! बहन ! अधमतामें रहते हुए भी कुछ तो उद्धार करो।'

'चलिये महाराज ! मैं भी आपके साथ चलता हूँ'—रघुभाईने कहा।

उसकी ओर देखकर स्वामीजीने हँसकर स्वीकृति दी—'अच्छी बात है।'

दोनों व्यक्ति बाहर निकले और बगलमें सीढ़ी थी उससे उतरने लगे ! कुछ सीढ़ियाँ तो वे चुपचाप उतर गये। रघुभाईने यही अवसर स्वामीको वशमें करनेके लिए तजवीज किया था और बड़े ही उमंगसे बात करनेके लिए वह तैयार हुआ था ! उसने कहा —'आप पर देख-रेख रखनेका काम मुझे सौंपा गया है।'

'हो सकता है !'

'आपके संबंधमें मुझे कुछ जाँच-पड़ताल करनी पड़ी थी।'

'हूँ !'

रघुभाई स्वामीजीके इस बेपरवाहीसे जरा चिढ़ गया, 'आप रेवाशङ्करजीको भगानेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह बात मुझे हजूरसे कहनी पड़ेगी।'

'तब कहते क्यों नहीं ?'

'आपके कारण !'

'मेरे और तुम्हारे बीच कोई विशेष स्नेह नहीं है।' फिर स्वामीने धीरेसे कहा—'और यदि नहीं कहते हो तो उसका कारण भी तुम्हारा स्वार्थ ही होगा।'

'मेरा क्या स्वार्थ है ?'—रघुभाई डरता-डरता बोला।

'दीवान होनेका !'

रघुभाईकी तो बोली बंद हो गई। उसने देखा कि स्वामी उसके समान ही

विलक्षण दिमागका है। स्वामीको दबानेके बदले उसे स्वयं ही दबना पड़ गया।

'देखो रघुभाई ! मेरा नियम तो बिलकुल स्पष्ट है। मैं क्या करता हूँ अथवा क्या करना चाहता हूँ इसकी छानबीन करनेवाला मुझे पसंद नहीं। तुम्हें यदि अपना श्रेय-साधन करना हो तो मेरे साथ आओ और जैसा मैं कहूँ उसे वैसा करो; वह पद जो तुमने स्वप्नमें भी न सोचा होगा तुम्हें प्राप्त होगा। तुम्हारी महत्वाकांक्षा पूर्ण होगी। यदि दबाकर, डरा-धमकाकर तुम अपना काम निकालना चाहते हो तो तुम्हारे लिए वह रास्ता भी खुला है। यदि फिर कभी तुमने मेरे काममें दखल देनेका साहस किया तो तुम्हारी क्या दशा होगी यह भगवान ही जानें। अभी मैं तुमसे उत्तर नहीं चाहता। परसों नये अंग-रक्षक चुने जाने वाले हैं। उनका चुनाव तुम्हारे हाथमें है। यदि तुम्हें मेरे साथ रहना हो तो जिन व्यक्तियों को मैं बताऊँ उन्हें नियुक्त करना। नहीं तो मैं समझ लूँगा कि तुम विपरीत मार्ग ग्रहण करना चाहते हो।'

रघुभाई कुआँ में जितना तड़फड़ाया था उससे कहीं अधिक वह इस समय विचलित हो उठा। उस्तादके भी उस्ताद होते हैं, इसका उसे आज ही पहले-पहल ज्ञान हुआ।

'किनको नियुक्त करना है ?'

स्वामीने नाम बताये और रघुभाईको वहीं छोड़कर वे चले गये। रघुभाई कुछ देर तक वहाँ इस प्रकार खड़ा रहा मानो जमीनमें गड़ गया हो; इतनेमें जिस तरफ स्वामी गये थे उसी तरफसे आनेवाली कल्याण नायककी आवाजने उसे चौंका दिया। ८० वर्षका निराधार वृद्धत्व उसके प्रत्येक अङ्गमें व्याप रहा था। वह बहुत दिनोंसे रणुभावाले खण्डमें बायें तरफ रहता था और यह पीछेकी सीढ़ीका उपयोग करता था। इस समय कोई अचानक दुःख टूट पड़ा हो, इस प्रकार वह काँप रहा था। उसके दंतहीन जबड़े बड़ी शीघ्रतासे हिल रहे थे।

'मेरे अन्नदाता ! आप इस प्रकार ? अरे भगवान !'

रघुभाईके कानमें ये शब्द पड़े; उसने समझा कि स्वामीके लिए ही ये शब्द होंगे, पर साधारणतया वे अर्थ-विहीन मालूम पड़े। राज्यमें कल्याण नायकके लिए अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं। राजमाताके समयमें उसका इतना मान

था कि बहुतोंका ऐसा अनुमान था कि साधारण नायक की अपेक्षा उसका मूल्य कहीं अधिक होगा । रघुभाईको कुछ संदेह हुआ ।

'अन्नदाता कौन है, कल्याण नायक ?' उसने मिठाससे पूछा ।

उसका स्वर सुनतेही कल्याण नायकने अपने निर्बल, व्यथित अंगोंपर नियंत्रण किया । उसने सन्देहसे रघुभाईकी ओर देखा 'कौन, नये कोतवाल साहब ? हजूर साहब ! आपके सिवा दूसरा और कौन अन्नदाता होगा ? सलाम !' कहकर लकड़ी ठोंकता, सिर हिलाता, कल्याण नायक चला गया ।

विचार-मग्न रघुभाई अपने घरकी ओर चल पड़ा ।

१२

मार्गमें रघुभाईके मनमें अनेक विचार उथल-पुथल मचाये हुए थे । किस-लिए अनन्तानन्द इतने परिश्रमसे राजकीय मामलोंमें परेशान रहते हैं ? कोई बात है अवश्य नहीं तो बिना मतलब अपने आदमियोंको राजाके पास भला क्यों कोई रखाने का प्रयत्न करेगा ? किसलिये अनन्तानन्दको कल्याण नायक अन्नदाता पुकारेगा ? शिकारी कुत्तेके जैसी तीव्र घ्राणेन्द्रियसे रघुभाईको कोई गम्भीर और अगम्य रहस्यकी गंध आई ।

मस्तिष्कमें किसी बातके आते ही उसका निर्णय करने की रघुभाईको आदत थी । कोई भी बात अधूरी रहने देना उसे अच्छा नहीं लगता था । घर पहुँच कर अपनी कोठरीमें गया, दरवाजा बन्द कर, एक कोनेमें पड़ी हुई पेटी खोलकर उसमेंसे उसने एक फाइल निकाली । सम्पूर्ण फाइल पुराने फटे हुए पत्रों एवं दस्तावेजोंसे भरी हुई थी । प्रत्येक कागजके पीछे एक अच्छा मजबूत कागज चिपकाया हुआ था और प्रत्येक कागज के सिरे पर उस पत्रके विषयमें कुछ महीन अक्षरोंमें लिखा हुआ था । राज-कुल के गुप्त रहस्योंके पढ़नेके शौकीनों को इन कागजों में लिखे हुये इतिहासको पढ़कर बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता था । इन कागजोंको एकत्र करनेमें रघुभाईको कितनी बुद्धि खर्च करनी पड़ी और किस प्रकार सामान्य नीति के शासनोंको एक कोनेमें रख देना पड़ा था,

इसे यदि ये कागज प्रकट कर सकते तो अवश्य ही रघुभाई की कार्य-दक्षता एवं धूर्त्तता की प्रशंसा किये बिना कोई भी रह नहीं सकता था।

फाइलमें से उसने एक कागज निकाला। जैसा कि अन्य लोग समझते थे यह कागज रायजी साहब के जेबमेंसे बहुत वर्ष हुये खो गया था, केवल रघुभाई जानता था कि वह कहाँ पड़ा हुआ है। मानसिंहजी—जसुभाके पिता—मृत्यु-शय्यापर पड़े हुये थे, उस समय रेवाशङ्करने यह पत्र नीलकंठरायको लिखा था। उसपर दृष्टि डालते ही कुछ वाक्योंने उसका ध्यान आकृष्ट किया। बार-बार उन वाक्योंको अपनी आँखें फाड़-फाड़ इस प्रकार देखता रहा मानो वह उन्हें चूस लेना चाहता हो। वाक्य नीचे लिखे अनुसार थे—

'....महलमें क्या चल रहा है, यह कुछ समझमें नहीं आ रहा है। राज-माता, वह साधु तथा कल्याण नायक हमेशा हजूरपर पहरा देते रहते हैं। हजूर मुझसे बातें करना चाहते हैं, उनकी आँखोंमें कुछ कहनेकी उत्कंठा दिखाई देती है किन्तु राजमाताके भयसे कोई शब्द नहीं निकलता। कुछ सुझाई नहीं दे रहा है। कुछ गड़बड़ अवश्य है, किन्तु अब हजूर साहब अधिक नहीं चल सकते। आप कब वापस आवेंगे !...'

इस पत्रको जब इसके पूर्व पढ़ा था तब रघुभाईको उसमें कोई भी रहस्यकी बात नहीं मिली थी। अबतक तो रेवाशङ्कर द्वारा उच्चारित स्वार्थी उद्‌गारोंके कारण वश ही इसे उसने सुरक्षित रख छोड़ा था किन्तु यह लिखावट अब उसे महत्वपूर्ण दीख पड़ी।

रेवाशङ्करको इस भेदका पता नहीं था, ऐसा इस पत्र से मालूम पड़ता है। बहुत विचार करने पर भी मसला कुछ हल होता नजर नहीं आया। साधु कौन ! रामकृष्णदासजी या कोई और ! कैसा भयङ्कर भेद है उसका पता लग भी जाय तो स्वार्थ-साधन में वह कितना उपयोगी होगा !

रघुभाई उठा, फाइल यथास्थान रख, पेटी बन्दकर और पुनः कपड़ा पहन-कर वह नीचे उतरा। नौकर रमाको खेला रहा था उसकी ओर उसने देखा तक नहीं और चौक की ओर वह चला गया।

'कहिये वैद्यराजजी ! कैसे हैं ?' कहते हुए वह एक राजवैद्यकी दूकानपर

चढ़ गया। बल्लभराम पुराने राजवैद्य थे। बंबई से आये हुए डाक्टरों ने इनकी बहुत कुछ आय कम कर दी थी— फिर भी ऐसा लोगोंका ख्याल था कि कुछ दुष्ट व्याधियों पर इनकी मात्राओंका पूर्ण साम्राज्य था, कुछ लोग पुराना समझकर इन्हींके यहाँ से दवा लेते थे एवं राज्य की ओरसे भी कुछ वार्षिक मिलता था; जिससे इस धन्वन्तरि के अर्वाचीन प्रतिनिधि के दिन चैनसे कट रहे थे। सबेरेही तकिया लगाकर गद्दीपर बैठ जाते। आने-जानेवाले लोगों से प्रणाम आशीर्वाद करते एवं साढ़े-तीन पुड़िया के प्रतापसे अनेक श्रद्धालु स्त्री-पुरुषोंको उनका रोग जड़-मूल से दूरकर देनेका वचन देते। कभी-कभीतो इनकी दूकान छोटे 'टाउनहाल' का काम करती एवं लोगोंकी कठिनता तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों की प्रतिष्ठाका अन्त करनेका प्रशंसनीय प्रयत्न वहाँपर जीभ द्वारा होता।

रघुभाईको चढ़ते हुए देखकर बल्लभरामके हर्षका ठिकाना नहीं रहा।

'कौन कोतवालसाहब ? अहा हा ! धन्यभाग मेरी दूकानका ! देखिये, बिना वैद्य क्या किसीका चल सकता है ? दीन-वत्सल ! आपको ऐश्वर्यकी बढ़ती हो, किन्तु मैं तो आपकी गायके समान ही हूँ।'

'अरे ! यह भी कहने की बात है ! जरा नाड़ी देखिये, तबीयत कुछ भारी मालूम पड़ रही है।'

वैद्यराजने अँगरखाकी आस्तीन ऊपर चढ़ाकर रघुभाईकी नाड़ीपर अँगुली रखी। मुँहपर अत्यधिक गम्भीरताका भाव लाकर वह बोले—'रघुभाई ! आप भी ऐसी भूल करते हैं ? तबीयत इतनी बिगड़ जाय और आप चुपचाप बैठे रहें ? कृपानिधान ! यह तो कहिए कि आप समय रहते मेरे पास आ गये।'

'भाई ! मेरा तो यह नियम है कि आपके हाथ मरना अच्छा लेकिन दूसरेके हाथका इलाज नहीं अच्छा।'

'बेशक !' मानो रघुभाईने कोई अत्यधिक सद्गुणवाचक बात कही हो इस प्रकार सिर हिलाते हुए वैद्यजी बोले।

थोड़े ही देरमें बल्लभराम चंगपर चढ़े, तब रघुभाई आवश्यक बात निकालनेका प्रयत्न करने लगे। मानसिंहजी की मृत्युके समय बल्लभरामके पिता दवा करते थे, उस समय या तो वह वहाँ दवा कूटता था अथवा इधर-उधर

घूमता रहता था। बल्लभराम इस प्रकार डींग हाँकने लगे मानो उसने ही मानसिंहजीको मृत्यु-शय्यापरसे उठाकर खड़ा किया हो। वह कहने लगे— 'उस समय मेरे पिता एवं एक साधु दो ही मुख्य थे और उन दोनों की सलाहसे ही मानसिंह की दवा चलती थी।'

'साधु कौन ? रामकृष्णदासजी ?' उछलते हृदयसे रघुभाईने पूछा।

'अरे नहीं मेरे मेहरबान ! साधुका तो नाम ही कुछ और था। ठहरिये मैं—अरे-अरे—' कहकर सिर खुजलाते हुए नाम याद करनेका वैद्यजीने प्रयत्न किया। 'धत् तेरे की ! याद ही नहीं आ रहा है। कुछ दूसरा ही नाम था। मोंघा या सोंघा ऐसा ही कुछ था।'

'अरे जाने भी दीजिये। नहीं याद आता तो न सही।' तिलमें से और तेल निकलनेकी आशा न देखकर रघुभाई बोला, 'अब आज्ञा दीजिये, यह आपकी दवाका दाम है।'

'रखिये, रहने दीजिये ! आपसे भी पैसा लूँगा ?' कहकर वैद्यराजने अपनी अनिच्छा प्रकट की। रघुभाई उसे अच्छी तरह पहचानते थे; अतः हठ करके दवाका दाम देकर घर लौटे।

घर पहुँचते ही एक पत्र लिखकर दफ्तर भेजा। आधे घण्टेमें ही उसका उत्तर आ गया। तुरन्त ऊपर जाकर दरवाजा बन्दकर वह पत्र पढ़ने लगा। पत्र निम्नलिखित था।

श्रीमान् रघुभाई साहब !

श्री राजमाताके समयमें वारतके करुणानन्दजीको वार्षिक वृत्ति दी जाती थी, साथही दरेसालके स्वामी अमोघानन्दको भी मिलती थी। प्रतिवर्ष छः सौ रुपये दिये जाते थे। इसके अलावा और जो कुछ काम-काज हो लिखनेकी कृपा कीजियेगा।

भवदीय—चुन्नीलाल

'अमोघानन्द—मोंघा, सोंघा—' रघुभाई ऊँघता हो, इस प्रकार बोल उठा।

१३

चम्पा—अल्हड़ और लापरवाह, नायिका चम्पा—आज तीन दिनसे विचित्र भावोंका अनुभव कर रही है। जिस सृष्टिपर तिरस्कार की दृष्टि डालना उसने बचपन से सीखा था, जिसके विषयों से, पापों से क्षणिक स्थूल सुख प्राप्त करना उसने सीखा था, वह सृष्टि अब उसके पैरके नीचे से खिसकती जान पड़ी। जसुभा आते और जाते; रणुभा प्रसन्न होते, रिसियाते, मनाते। थोड़े समय के लिए, हमेशाकी आदतवश, वह नायिका बनती और स्थूल देह बेचकर अपना पालन करती। फिर भी अनिर्धारित विचार उसके मनमें आते, मनकी स्थिति विचित्र होती। इस वय में सर्वप्रथम उसे बेचैनी हुई। प्रथमबार उसे गम्भीर विचार की आवश्यकता दिखाई दी। पहले पहल वह अपने जीवनकी तुलना करने बैठी। पहले तो उसे कुछ समझ नहीं पड़ा, केवल दूरसे खड़ाऊँ की खटखटाहट, एक दण्ड की आवाज गगन की गर्जनाके समान उसके हृदयमें घबड़ाहट पैदा कर देती। उसकी कृत्रिम विरक्ति जाती रही। नवोढ़ामें दिखाई पड़ने वाली लज्जा—जिसकी ओर तिरस्कारसे वह अबतक देखा करती थी—उसी की वह भोग बन जाती।

प्रतिदिन दिनमें दो-तीन बार अनंतानंदजी रणुभाके कमरेमें किसी न किसीसे मिलनेके लिए आते। शायद ही कभी चम्पा उनको सामने देखते हुए नमस्कार कर सकती। किंतु उसके एवं रणुभाके कमरेके बीच एक बन्द दरवाजा था; बहुत दिनों से इस बन्द दरवाजे में एक छोटा-सा छेद तक नहीं था। फिर भी वह हमेशा वहाँ बैठती और दूसरे कमरेमें से आने वाली आवाजको सुना करती। उसमें एक आवाज—प्रत्येक श्रोताको द्रवीभूत करनेवाला, दृढ़, प्रसंगवशात् परिवर्तित स्वर—उसके हृदयमें अनिर्वाच्य रस भर देता। उसे सुनकर—उसकी प्रतिध्वनि स्मरण कर—वह जीवित रहती। जसुभाके सुसंस्कृत शब्दोंमें, रणुभाकी स्नेहपूर्ण बातचीत में भी अनंतानंदके प्रभावशाली शब्दोंकी ही विचित्र ध्वनि सुनाई देती।

आज प्रातःकाल चम्पा बैठी बाट देख रही थी। किसकी, यह बताना उसके लिए कठिन था! प्रतीक्षाके प्रति उठनेवाले रसका, भावकी सूक्ष्म लहरी की परम्पराका आज चम्पा अनुभव कर रही थी। बाट देखते समयकी उर्मियोंमें अकल्पित कविताका माधुर्य—अकथ्य एवं अस्फुट माधुर्य—उछलता है।

इतनेमें किसीके पैरकी आवाज सुनाई दी—हृदय धड़कने लगा; आवाज पास आई। चम्पाके हृदयमें निराशाका अन्धकार छा गया। आनेवाली आवाज जूतेकी थी, खड़ाऊँकी नहीं! निराशासे भरी हुई असह्य वेदनाका ऐसेही प्रत्येक प्रणयी अनुभव करता है। चम्पाने निःश्वास लिया। साथही दूसरा विचार भी आया, 'मैं चम्पा नायिका हूँ, मुझे यह कौन-सी व्याधि लग गई?'

'चम्पा!' रणुभाने आते ही पूछा, 'क्या सोच रही हो?'

'कुछ भी नहीं!'

'बड़ी गम्भीर लग रही हो!'

बड़ी कठिनतासे स्वस्थता प्राप्तकर चम्पा बोली—'आप कह नहीं रहे थे कि चम्पा तू गंभीर बन? अब मैं आपके कथनके पालन करनेका प्रयत्न कर रही हूँ।'

'चम्पा! मैं बहुत कुछ कहता हूँ, और तू उसे करती है; पर क्या मेरे प्रेम का प्रतिदान नहीं करेगी?'

'आपको क्या दिनभर यही बात है? मैंने आपसे एक बार तो कह दिया कि यथाशक्ति चाहूँगी। अब क्या करूँ? मैं धोखा देना नहीं चाहती। रणुभा! आप पर मुझे अत्यधिक दया आती है। किंतु जो मेरे पास नहीं है उसे कैसे दूँ? प्रेम और मेरे बीचमें शत्रुता है।' कहकर चम्पाने अनजाने ही गहरी ठंढी साँस ली।

'जो कुछ तूने दिया है उसके लिए मैं तेरा आभारी हूँ।' कहकर रणुभाने चम्पाके कन्धेपर हाथ रखा।

चम्पाने हाथ हटा दिया। अभी-अभी अपने पापी जीवनपर उसे घृणा हो रही थी। जो कुछ उसके प्रतिदिन के अनुभव थे उसकी ओर वह तिरस्कार की दृष्टिसे देखने लगी थी।

इतनेसे ही रणुभाका असन्तोषी स्वभाव दुःखी हुआ। उसकी ओर उलहनाकी दृष्टिसे देखकर वह बोले—

'चम्पा तुझमें तीन गुण, रुप, रंग, और बास'

दूसरी कड़ी/ चम्पाने अपने सुसंस्कृत, मधुर स्वरसे जोड़ दी, वातावरण में उसका स्वर काँप उठा। किसी अकथ्य निराशाका भाव उससे व्यक्त हो रहा था— 'अवगुण तुझमें एक है, भ्रमर न आवे—'

पद अधूरा ही रहा। 'पास' शब्द नहीं निकला। पिछली सीढ़ी का दरवाजा खुला और अनंतानंदजी आये। चुपचाप खाते हुए लड़कोंके पकड़ जानेपर जो दशा उनकी होती है वही दशा इन दोनोंकी हुई। चम्पा शरमा गई, और अपना वस्त्र ठीककर वह उठी। उसके मुख पर लाली दौड़ गई। उसने काँपते हुए हाथसे नमस्कार किया।

'रणुभा ! अंगरक्षकोंमें कौन-कौन चुना गया ?'

रणुभाने नामोंकी सूची दे दी; वही नाम थे जिन्हें स्वामीजीने रघुभाई को दिया था।

'ठीक। अरे रणुभा ! मुझे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि तुम दोनोंमें पटेगी। तुम्हारे विचार एवं तुम्हारी शिक्षा देखते हुए यह परिणाम तो अचिंत्य ही कहा जायगा।' थोड़ा हँसकर कटूक्ति करते हुए स्वामीने कहा।

रणुभाको स्वामीजीके सम्मुख हृदय खोलकर रख देनेका स्वभाव था। अतः उसने सीधा-सादा उत्तर दिया—'महाराज ! आप भी कहेंगे ? आपको अनुभव न हो पर आप समझ तो सकते ही हैं। मेरा हृदय शून्य था, अब वैसा नहीं है। अबतक मैं अकेला था, अब हृदयने जोड़ी ढूँढ़ निकाली है। महाराज ! आपके आशीर्वाद भरकी देर है।'

मूर्ख पुत्रकी भूल देखकर जैसी हँसी पिताके मुखपर आती है वैसी ही हँसी इन शब्दोंको सुनकर स्वामीजीके मुखपर छा गयी। शब्दकी अपेक्षा रणुभा का चेहरा, उनकी आँखोंमें चमकनेवाला तेज, उनके हृदयके भावोंको पूर्णरूपसे व्यक्त कर रहे थे।

'चम्पा ! तुम्हारे सिरपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा है। एक ओर रणुभा और दूसरी ओर जसुभा। अब दोनोंका जीवन उत्कृष्ट करो; यदि न किया तो तुम जानो।'

चम्पाको पैर पकड़ने की इच्छा हुई, स्वामीजीका शरीर स्पर्शकर शांत होने की मनमें तीव्र अभिलाषा हुई, पर उसने दबा रखा। उसका मन विभ्रान्त हो गया था।

'मैं कहाँसे करूँ ? मैं स्वयं ही अधम—'

'नहीं ! फिर कभी ऐसा मुँहसे मत निकालना, उच्चता स्वीकार करो—उच्च बन जाओगी। सृष्टिमें अधमता मान लेना ही पागलपन है।' कहकर मुस्कुराते हुए स्वामीजी वहाँसे चले गये।

थोड़ी देरतक दोनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे।

'चम्पा ! मैंने कहा नहीं था कि स्वामीजी सबसे भिन्न हैं। नहीं तो हमारी ऐसी भूलें कौन क्षमा करेगा ?'

'चम्पाने उद्विग्नतासे सिर घुमा लिया।

रघुभाने चम्पामें होनेवाले परिवर्तनको देखा और स्वामीजीकी संगतिसे वह सुधरती जा रही है, ऐसा उसे लगा। कुछ समयमें चम्पा स्थिर हो जायगी, सदैव के लिए अधमता छोड़कर वह मेरी हो जायगी, इस प्रकारका कुछ-कुछ स्वप्न आने लग गया था।

चम्पा मनमें कह रही थी 'सृष्टिमें कोई अधम नहीं है। क्या यह सच है ?'

———

१४

'रघुभाई ! अभीसे यात्रा करनेकी इच्छा ! तुम्हें यह भूत कहाँसे लग गया ?' रेवाशङ्करने पूछा।

'बहुत दिनोंसे मेरा मन है। फिर इस समय यहाँ कोई विशेष काम भी नहीं है। पहले आबू जाऊँगा, वहाँसे हो सका तो गयाजी श्राद्ध करने जाऊँगा। साथ ही इस समय मेरी तबीयत भी ठीक नहीं है।'

'अच्छी बात है ! लेकिन हो सके तो महीने भर में आ जाना !'

'जैसी आपकी आज्ञा ! एक बात और है। रास्तेमें मुझे दुर्गापुर भी जाना

है । हजूर साहबका ननिहाल है, इसी बहाने देख आऊँगा । एक परिचय-पत्र दे दें तो ठीक हो ।'

'हाँ, हाँ ! उसका प्रबंध हो जायगा ।'

× × × ×

जब कोई काम करनेका निश्चय रघुभाई करता तब उसे शीघ्रतासे पूर्ण भी कर देता । कमला एवं रमाको एक मित्रके यहाँ छोड़कर तुरन्त वह दुर्गापुर पहुँच गया । दुर्गापुरमें रत्नगढ़के लिए बड़ा मान था जिससे वहाँके कोतवालकी हर प्रकारकी खातिरी की गई । जब कार्यकर्त्तागण दूर विदेश जाते हैं तब ज्यों-ज्यों स्वदेशसे अन्तर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों सत्यसे भी अन्तर बढ़ता जाता है । यह गुण रघुभाईने बहुत अच्छी तरह सीखा था । यहाँ उसने ऐसा जाल फैलाया कि सम्पूर्ण दुर्गापुर उसमें फँस गया; किंतु इससे उसका अर्थ सिद्ध नहीं हुआ ।

उसने राजमाता और अमोघानंदके संबंधमें यथाशक्ति पूछताछ की । राजमाताने जिस प्रकार रत्नगढ़में अपना आतंक फैलाया था वैसे ही अविवाहितावस्थामें भी दुर्गापुरमें एक स्मारक छोड़ गई थीं । जब वे यहाँ आतीं तब सभी भयसे काँप उठते । युवावस्था में भी उनका स्वभाव इतना उच्छृंखल था कि उनके संबंधमें अनेक दंतकथायें प्रचलित थीं । ऐसा लोगोंका कहना था कि वे केवल अमोघानंदसे ही वश में रहती थीं । जिस समय जसुभाका जन्म हुआ उस समय तथा उसके पश्चात् भी जब कभी वे आतीं, तब दरेसालमें ही रहतीं । दरेसाल दुर्गापुरसे सात मील दूर था; राजमाताके माँ-बापको भी उनका दूर रहना ही ठीक लगता था । रघुभाईको विश्वास हो गया कि यहाँ कुछ पता चलना नहीं है, जिससे दरेसालके स्वामीके पास संदेशवाहक भेजकर स्वयं भी वहाँ जानेके लिए वह निकल पड़ा । थका माँदा पैर घसीटता हुआ रघुभाई दरेसाल जा पहुँचा । उस समय बिलकुल अँधेरा हो गया था । संध्याके मद्धिम प्रकाशमें एक बड़े खड़हरका आभास दिखाई पड़ा । सामने एक लैम्प जल रहा था । रघुभाईकी गाड़ी पास आई । पुराने चालकी अहमदाबादी पगड़ी पहने हुए एक वृद्ध गृहस्थ आगे आया ।

'कौन मुनीमजी ?' रघुभाईने पूछा ।

दोलाशाने सिर हिलाया। जहाँ कार्य बढ़ाना हो, मालिकका पैसा पचाकर जेब भरना हो, वहाँ गुजरातके अनेक स्थानोंके लोगोंने संसार-प्रसिद्ध प्रसिद्धि प्राप्त की है। दोलाशा भी इसी वर्गका था, साथ ही बड़ा बातूनी और गप्पी भी!

'हाँ! भइशा (भाई साहब) हाँ! भइशा; आपही रघुभाई हैं? मेरा धनभाग्य! पधारिये भइशा! पधारिये। आप कहाँके हैं? श्युरत (सूरत) के? हो हो, क्या कहा आपने?'

बहुत वर्षों से मारवाड़में रहने पर भी दोलाशाने अपनी भाषा अशुद्ध होने नहीं दी थी। यह देखकर रघुभाई थोड़ा हँसा और यह संदिग्ध निमंत्रण स्वीकारकर मठमें गया। भीतर गद्दीपर भगवा वेशमें एक वृद्ध बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। उसकी आँखें नशेमें डूबी हुई थीं। ऐसा मठाधिपति देखकर रघुभाई को आश्चर्य हुआ। जिस मठमें कल्याणानन्दका सादापन एवं अनंतानन्दकी भव्यता प्रस्फुटित हुई, उसका मालिक यह! उसे पता नहीं था कि अमोघानन्द वारतमें मर गये जिससे उत्तराधिकारी वरण करनेका उन्हें बिलकुल समय ही नहीं मिला।

रघुभाईकी आवभगत करनेका भार दोलाशाको सौंपकर स्वामी महाराज थोड़ी देर पश्चात् भीतर चले गये। उनके जानेके बाद दो-तीन स्वामी आकर वारतका हाल-चाल पूछने लगे। रघुभाईको समझनेमें देर न लगी कि अनंतानन्द यहाँ अनेक मित्रोंमें पूज्यभाव छोड़ गये हैं एवं उनमें अपनी भव्यताका कुछ अंश भी भर गये हैं। दोलाशाको भी अनंतानन्दके प्रति पूरा आदर था और जब बहुत खुश हो जाता तब अपने और अनन्तानन्दमें मित्रताके प्रमाण में चमन को पेश करता जो अहमदाबादमें परचूनकी दुकान करता था।

रघुभाईको अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। उसने ऐसा भाव दिखाया मानो उसमें तथा अनंतानन्दमें अटूट मित्रता है और वह उन्हें ईश्वरसे भी अधिक मानता है।

आखिर दोलाशा उन्हें ऊपर ले गया और जहाँ वह स्वयं सोता था वहीं रघुभाईके सोनेका भी प्रबन्ध कर दिया। रघुभाई चाहता भी यही था। उसने दोलाशाकी खूब प्रशंसा की। बात पर बात चली। राजमाता यहाँ कहाँपर

उतरतीं, कहाँ रहतीं, जसुभाको किस प्रकार रखतीं आदि सभी बातें मालूम कर लिया। तदुपरांत अनंतानन्दके बचपनकी बात रघुभाईने छेड़ी, पर बात फेरकर अहमदाबादी चतुराईसे निद्राका बहाना कर दोलाशा सो गया।

रघुभाईने रातभर विचार किया। एकतो राजमाताका भेद था और दूसरा अनंतानन्द का। एक भेदका दो हो गया। दोलाशाकी चालाकी तो वह समझ गया किन्तु वह बात जिसे दोलाशा छिपाना चाहता है, क्या है यह नहीं समझ सका।

प्रातःकाल उठनेपर दोलाशा जरा दूर ही रहा किन्तु उसकी चपल जीभ रघुभाईके मिठासके आकर्षणके सामने ठहर नहीं सकी। दिनभर रघुभाईने दोलाशाकी खुशामद की और रात्रिमें जब सोनेके लिए आया तबतक तो दोलाशा पिघलकर पानी हो गया था।

'दोलाशा! अब मैं कल जाऊँगा। याद कीजियेगा न?'

'अरे क्या कहा भईशा? आपको अवश्य लिखता रहूँगा भईशा! अहमदाबाद जाना तो पतासाकी पोल है न? वहीं चमनसे मिलना, मैं भी उसे लिख दूँगा।'

'यह तो ठीक है दोलाशा! पर मैं यहाँ किसलिए आया हूँ, पता है?'

'जी नहीं!'

'मुझे स्वामीजीने तुम्हारे लिए ही भेजा है।'

'भईशा! मैं क्या कह नहीं रहा था? शामीजी किसी दिन मुझे या चमन को भूल नहीं सकते।' अनंतानन्दने याद किया इस हर्षमें आँखें मलकाते हुए दोलाशा बोला।

'मुझसे कहा है कि दरेसाल जाकर मेरे परम मित्र दोलाशासे एक बात मालूम कर आओ।'

सन्देहसे दोलाशाने अपने आस-पास देखा, 'कौनसी बात?'

रघुभाई धीमी आवाजमें कहने लगा। दीपके मद्धिम प्रकाशमें ऐसा लग रहा था मानो दो चोर आपसमें सलाह कर रहे हैं।

'दोलाशा! यही तो। स्वामीजीने कहलाया है कि पुरानोंमें अब तुम्हीं, रह गये हो और तुम्हारी नमकहलाली दिखानेका प्रसङ्ग भी अब आया है इसलिए जो बातें हों वह मुझे बता देना।' रघुभाई गप्प-पुराणका पृष्ठ खोलते

हुए बोला। बनियाके मनमें पुनः कुछ संदेह हुआ कि यह कोई कूटनीतिज्ञ न हो किंतु रघुभाईके जादूका असर उसपर पूर्णरीतिसे हो गया था। उसका विश्वास पुनः दृढ़ हो गया।

'शास्रीजीको क्या काम है ?'

'इतना भी नहीं समझते ? राजकीय समस्यायें और क्या!' कहकर दोलाशा का उसने हाथ दबाया। दोलाशाका संदेह दूर हो गया, उसकी जीभ खुल गई और निर्दोष हृदयसे उसने सब बातें बता दी। सावधानीसे रघुभाईने धीरे-धीरे सब निकलवा लिया। उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उसके हृदयमें भेदके ज्ञानसे हर्ष हुआ; भेदके भारसे थोड़ा-बहुत डर भी पैदा हुआ।

× × × ×

'किन्तु इसका प्रमाण क्या है ?'

'दोलाशा क्या कच्चा है भईशा ? थोड़े बहुत कागज पत्र भी हैं।' कहकर वह उठा और एक भण्डरिया खोलकर उसमेंसे एक छोटी पोटली निकालकर धूल झाड़कर दो-तीन पत्र तथा एक जन्मपत्रका पुलिंदा उसने बाहर निकालकर पढ़ा—और रघुभाईको दे दिया।

दूसरे दिन विजयका नाद रघुभाईके कानमें गूँजने लगा और उसने वहाँ से बिदा ली—दो दिन वह दूसरी खोजमें दुर्गापुर रहा। आखिर, यात्राकी बात भुलाकर रत्नगढ़ जानेकी वह तैयारी करने लगा। उसका हर्षित हृदय उछलने लगा। मनमें विचार—स्वच्छ महत्वाकांक्षी विचार—आने लगे। अपने भविष्यके सामने सर टी० माधवरावका जीवन भी उसे तुच्छ जान पड़ा।

———

१५

'चम्पा !' जसुभाने जँभाई लेते हुए कहा 'तू दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है।'

'कैसे ?'

'अब तो तू गम्भीरताका स्वाँग भरने लगी है !'

'यह आपने कैसे समझ लिया ?'

'हाँ, जबसे ऊपर रहने लगी है तबसे पहलेकी अपेक्षा तुम्हारी प्रफुल्लता कम हो गई है। इसका कारण?'

धीरेसे चम्पाने ठंढी सांस भरी। अकथनीय भार उसके मनपर रखा हो ऐसा लगा। उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो दूसरोंको प्रसन्न करनेवाला नायिकाका लक्षण उसमेंसे जाता रहा। बड़े परिश्रमसे उड़े जाते हुए विचारोंको स्थिर कर, अपनी बची हुई मानसिक शक्तिको उसने इकट्ठा किया। उसके इसी अल्हड़पन की विशेषताके कारण जसुभा उसे रखनेके लिए उत्सुक थे। अब जब चम्पाके नवीन भाव उसे इस स्थलपर रहनेके लिए आज्ञा दे रहे थे, तब उस भावसे उत्पन्न गाम्भीर्य जसुभाको कंटकित कर रहे थे। अभी भी उसकी मोहिनीके पाशसे जसुभा छूटे नहीं थे। बची हुई मोहिनीको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करना चाहिये, ऐसी चम्पाकी धारणा थी।

'क्या करूँ, जब मैं गम्भीर न रहती तब भी आप खीजते थे और अब कुछ सुधर गई तब भी मेरा दुर्भाग्य! राजाकी चाकरीसे तो सूखी रोटी भली!'

'तब कलसे सूखी रोटीका प्रबन्ध कर दूँ!'

'अर्थात् चाकरी और रोटी दोनों का कष्ट है?' यथाशक्त कृत्रिम बाचा बतासे चम्पाने कहा, 'तब यह बुलबुल अपने गुलके साथ उड़ न जायगी?'

'तेरा गुल कौन?'

'गुल? रणुभा! मैं जाऊँगी तो भला वह रहेगा?'

'वह मुझे छोड़कर न जाय तब?'

'यह तो समय आनेपर पता चलेगा' चम्पाने कहा।

इतनेमें बाहर रणुभा जा रहे थे, उन्हें जसुभाने देखा।

'रणु!'

'जी!'

'आज डाकमें नये नॉवेल आये हैं क्या?'

'जी हाँ! अभी पार्सल खोलकर आपकी मेजपर रखे आ रहा हूँ।'

'अच्छी बात है। चम्पा! इस समय तो मैं जाता हूँ। रणुभा! देखना तुम और चम्पा भाग मत जाना, समझे!'

रणुभा जरा हँसे, चम्पा भी हँसने ही वाली थी कि दूरसे खड़ाऊँकी आवाज उसके कानमें पड़ी और उसका हृदय धड़क उठा। उसके चेहरेपर से हँसी जाती रही। जसुभाने बाहरसे आवाज दी—'जरा यहाँ आओ रणु! कुछ काम है।'

चम्पाको छोड़नेसे दुःखित होता हुआ रणुभा आज्ञाधीन हुआ। जाते-जाते एक दृष्टि उसने चम्पापर डाली; देर लगे तो अनंतानन्दका स्वागत करनेका अर्थ भी उसमें निहित था। जसुभा और रणुभा दोनों वहाँसे चले गये।

चम्पा खड़ी रही। हृदय रणुभाके बैठककी ओर आकृष्ट हो रहा था—उड़ा जा रहा था। सूक्ष्म दृष्टि वहाँ बैठे हुए व्यक्तिका रूप, गौरव देख रही थी, स्थूल शरीर वहाँ जानेके लिए—पैर पकड़नेके लिए आतुर हो रहा था। प्रेमी हृदयकी शङ्का, लज्जा घबड़ाहट उसे रोक रही थी। जीवन भर तरसनेके बाद जब अन्तमें साध्यके समीप जानेका अवसर मिलता है तब ठीक उसी समय हृदय दगा देता है; पैरको उठनेसे मना कर देता है। ऐसी स्थितिका किसे अनुभव नहीं है? चम्पा लुक-छिपकर अनंतानंदको देखती; बहुतसे लोग उपस्थित रहते तो एक कोनेमें बैठकर चोरीसे उनकी कान्ति निहारती। विचारकी स्पष्टताका तेज न पड़ सकनेवाले अंतरकी गंभीरतामें उनसे मिलनेके लिए कुछ कर डालनेकी प्रबल उत्कण्ठायें पैदा होतीं। किन्तु उत्कण्ठायें जहाँ की तहाँ लय हो जातीं। अनंतानंदकी अलौकिक भव्यता देखकर सभी स्वार्थी विचार शान्त पड़ जाते। बहुतोंके हृदयकी आराध्य-मूर्तियाँ, सत्यकी दृष्टिसे देखनेपर, पत्थरकी निकल जाती हैं। जिस मूर्तिको हृदयमें रखकर चम्पा अपना प्रेम अर्पण कर रही थी, वह बाहर अस्पर्श्य, अलभ्य, सहस्रगुण अधिक स्वर्गीय लगती, उसके और अपने बीचमें असीम अंतर देखकर वह काँप उठती—निराश होती। निराशा अग्नि पैदा करती जिससे दिनों-दिन वह अधिकाधिक जला करती। एक दृष्टि-बिंदुसे वह अपनेको तुच्छ मानती। नायिकाकी स्वच्छंदता एवं स्वस्थता अपने स्वभावमेंसे जाती हुई देखकर उसे घबड़ाहट होती। नवीन प्रलय-समुद्रकी गगन-बिहारी तरङ्गें इन किनारोंको कभीका तोड़ चुकी थीं। चम्पाका हृदय अरक्षित हो चुका था।

बहुत दिनों बाद आज अकेले मिलनेका अवसर मिला था। मिलूँ? क्या

करूँ ? अन्यमनस्क भावसे वह निकली, अस्थिर पैरसे वह आगे बढ़ी। रणुभा के कमरेके दरवाजे तक गई—घबड़ाई—पीछे लौटी। जाऊँ ? क्या करूँ, यह निश्चय करनेके लिए पर्याप्त समय चाहिये। अभी सभी शक्तियाँ मन्द पड़ गई थीं। इतनेमें अनायास अनंतानन्द घूमते हुए दरवाजेके पास आये और चम्पा को देखकर जरा हँसे।

'कहो चम्पा, कैसी हो ?'

स्थिति स्वयं सुलझ गई, पर वह क्या करे यह उसे सूझा ही नहीं।

'जी, ठीक है।' कहकर वह भीतर चली गई, पर अब बात क्या करे ? मनमें कहनेके लिये तो बहुत कुछ था, लेकिन वह कहे कैसे ?

'चम्पा ! तुम दिनों दिन बदलती जा रही हो।'

दोनों व्यक्तियोंका—जसुभा और अनंतानन्दका—एकही अभिप्राय !

'किस प्रकार ?'

'कुछ-कुछ तुममें गाम्भीर्यका भास हो रहा है।'

चम्पाने अचिन्त्य निःश्वास ली और बात हँसीमें उड़ानेका प्रयत्न करते हुए कहा—'गाम्भीर्य ! मैं गम्भीर थी कब ?'

अनंतानन्दके बड़े-बड़े तेजोमय नेत्रोंमें से अमृत बरस रहा था। आनन्द-विह्वला पागल चम्पा उसका पान कर रही थी।

'अबतक मैंने सब कुछ देखा, लेकिन तुम अपनी जातिके साथ अत्यधिक अन्याय कर रही हो। तुमसे मुझे बहुत कुछ आशा है। तुच्छ जीवनमें रहते हुए भी अपना स्वभाव शुद्ध रख सकी हो, इतना ही क्या कम है; पर अब उसमें विकास की आवश्यकता है।'

'महाराज ! क्या बदलूँ, मेरा दुर्भाग्य ? सैकड़ों बाधायें और रुकावटें आकर खड़ी हो जाती हैं।'

'बाधाओंको दूर कर डालो।'

'दूर नहीं होतीं, स्वामीजी ! नहीं होतीं !' जरा अपनी दबी हुई उर्मियोंको उभाड़ते हुए बोली—'आपतो दैवी पुरुष हैं, महात्मा हैं, मैं क्षुद्र हूँ। कभी-कभी तो ऐसा मन होता है कि आत्महत्या कर लूँ।'

इस निराशा, इस जोशपर स्वामीके सात्विक स्नेहका जल-सिञ्चन हुआ—'यह भी आनन्दकी बात है। अबतक तू मोहमें पड़ी थी, तेरे स्वभावमें जड़ता फैली हुई थी, अब बरफ पिघलेगा और निर्मल पानी बहेगा। तेरे अंतःकरणमें इस समय जो अग्नि जल रही है उसी आगसे पहलेकी स्थूलता जाती रहेगी। तमोगुण नष्ट करनेके लिए रजोगुणकी आवश्यकता है। जरा भी घबड़ाना मत। इस समय जो जल रहा है वही निराशा एवं क्रोध है वे ही तुझे बचनेका मार्ग दिखावेंगे। अग्निमें गिरने पर ही उसमें से निकलनेका मार्ग दिखाई देता है।'

चम्पाके हृदयमें कुछ-कुछ बोलनेकी इच्छा हो रही थी। अनंतानन्द उसका इतना ध्यान रखते हैं, यह देखकर वह पागल-सी हो गई। मनमें जो कुछ हो रहा था उसे कह देनेकी इच्छा हुई किंतु अनंतानन्दके शब्दोंमें ऐसी अस्पर्श्यता थी, उनके गौरवमें इतना अन्तर था कि शब्द ओंठपर आकर रुक जाते। हिमाच्छादित गौरीशङ्कर जैसे व्योमचुम्बी शिखरकी शीतलता भव्य होती है, जाने-अनजानेमें हम उसकी प्रशंसा करते हैं; किंतु घरके छप्पर पर तो खपरैल ही रखा जा सकता है, हिमालय नहीं।

'न जाने कब दिखाई देगा ? अभी तो कुछ सूझता नहीं है।'

'सूझेगा, सूझेगा !'

इतनेमें रघुभाई आ गया। उसकी पदोन्नति हो गई थी। एक-दो बार स्वामीके पास उसने संदेशा कहलाया था किंतु दुर्गापुरसे आनेके पश्चात् आज ही पहले-पहल उनसे मिला था। उसने जब आकर इन दोनोंको एकान्तमें बात करते हुए देखा तो उसके मुँहपर हँसी छा गई। गुणवंतीने जो अनुभव उसे कराया था वह उसे याद था और दुनियाको वह अपने ही पापी हृदयके मापसे मापता था। आज अनंतानन्दका स्वरूप उसे भिन्न ही लगा; उसका विचार वह स्वयं समझ सकेगा, ऐसा उसे विश्वास हो गया। अब यह बाबा बहुत बुद्धिमानी नहीं बघारेगा क्योंकि अब वह उसका भेद पा गया था।

'कहिये महाराज ! अच्छी तरह तो हैं ?' बड़ी नम्रतासे उसने पूछा।

स्वामीका रूप बदल गया। थोड़ी देर पूर्व जहाँ स्नेहमय पिताका उछलता हुआ स्नेह चमक रहा था, वहाँ कठोरता एवं परिवर्तन दिखाई दिया। इस परि-

वर्तनसे रघुभाई का द्वेष अधिक हो उठा 'यह घमण्ड कब दूर होगा कि जिससे मुझे शान्ति मिले।' वह मनमें बोला।

'हाँ, वायु-परिवर्तनके लिए गये थे क्या? लेकिन तुम तो पहलेसे भी अधिक कमजोर हो गये!'

'इसीसे लौट आया, मुझे कहीं आराम नहीं मिला।'

'अरे रघुभाई! तुम रामकृष्णदासजीको क्यों तङ्ग कर रहे हो?'

'अरे जाने भी दीजिये महाराज! यह बाबा इतना बड़ा पाजी है कि इसे यदि शहरसे निकाल दिया जाय तब भी पाप नहीं लगेगा।'

'रघुभाई, बाबा तो मैं भी हूँ; क्यों?'

'अरे आप?'

'रामकृष्णदासजीको शहर-बाहर करनेके पूर्व तो बहुतोंको शहरसे बाहर निकालना पड़ेगा।'

रघुभाईने दाँत पीसा। उसका पासा तो ठीक पड़ ही नहीं रहा था। उसने सोचा कि यदि दिनभर अनंतानन्दका कहा करता रहूँगा तो अपना मतलब कभी भी न गठेगा।

'जो भी हो पर मैं तो अपना निश्चय पूरा ही करूँगा। हम सबका अपना-अपना उद्देश्य होता है। मुझे रामकृष्णदासको ठीक करना है।'

ये शब्द रघुभाईने अनंतानन्दको चौंकानेके लिए कहे थे पर उसका प्रयत्न निष्फल गया। अनंतानन्दने रघुभाईको इस प्रकार तरेरकर देखा मानो उसने बाहर, कोई बड़ी मूर्खतापूर्ण बात मुँहसे निकाल दी हो। रघुभाई बोल तो गया किन्तु पीछे पछताने लगा।

'रघुभाई! जब रामकृष्णदासजीको मैं रखना चाहता हूँ तब वे रहेंगे ही, उन्हें कोई निकाल नहीं सकता। यह असम्भव है। अपना हाथ पैर पटकनेके लिए तुम स्वतंत्र हो।' धीरे-धीरे भाग्यदेवीकी निश्चल भयङ्करताकी तरह स्वामी बोले। अनजानमें ही रघुभाई काँप उठे।

स्वामी चम्पाकी ओर घूमे—'तुम रामकृष्णदासजीको जानती हो न?'

'जी नहीं, कौन हैं वे?'

'सीधे-सादे, संतोषी, हरि-भक्त हैं, रत्नगढ़के गुप्त रत्न हैं। यहाँ। जो रामचन्द्रजीका मंदिर है उसीके वे महंत हैं।'

'अरे! जहाँ आप रहते हैं वहीं न?'

'हाँ, मैं वहीं ठहरता हूँ।'

रघुभाईके विस्मयका ठिकाना नहीं रहा। इस बाबाके साथ काम करते समय आज्ञा देना तो दूर रहा सदैव आज्ञा-पालन करना पड़ता था। यह दूसरी बार दाँवमें वह हारा और दुनिया भरको शाप देता हुआ वह वहाँसे उठा।

'रघुभाई! थोड़े ही दिनमें तुम्हें लाभ होगा।' स्वामीने कहा।

'क्या?'

'नायब-दीवानकी जगह खाली होनेवाली है।'

'जी हाँ, किन्तु महाराज तो बाहरसे किसीको बुलानेवाले हैं!'

'घबड़ाना नहीं, अपना भी हाथ है न? तुम्हीं चुने जाओगे।'

रघुभाई हँसा, उसका दबा हुआ जोश पुनः उछल पड़ा; कोई बात नहीं; निर्धारित निशानपर पहुचूँगा अवश्य। पहली सीढ़ी भी अनन्तानन्द की मददसे चढ़नेमें समर्थ हुआ यह उसे अच्छा नहीं लगा। रघुभाईके लिए यह बात कष्टकर थी क्योंकि कब और किस प्रकार यह बाबा इस कृपाका मूल्य माँग बैठेगा, यह उसकी समझमें नहीं आ रहा था।

———

१६

अनन्तानन्दने दूसरे दिन रामकृष्णदासजी से सब बातें पूछीं। बाबाजी से सारांशमें ही सुनकर स्वामीजी सम्पूर्ण वस्तु-स्थिति स्वयं समझ गये। संध्या समय वारतसे पत्र लेकर एक आदमी आया। पत्र पढ़ते ही स्वामीने वारत जाने का अपना निश्चय प्रकट किया।

'रामकृष्णदासजी! वहाँ कुछ काम है। मैं शीघ्र ही आ जाऊँगा।'

'अच्छा महाराज! जल्दी ही आइयेगा।'

अनन्तानन्दके चले जानेके थोड़ी ही देर बाद गाड़ीमें बैठकर चम्पा और रणुभा आ पहुँचे।

'लो यह मंदिर आ गया, हुआ ?' रणुभा ने पूछा।

चम्पा आज दूसरी ही लग रही थी। पाउडरके लालीकी शोभा उसने छोड़ दी थी। प्रत्येक अंग तथा मुँहपर चिन्ताकी झलक दिखाई पड़ रही थी। शरीरपर फीकापन कुछ अधिक दिखाई दे रहा था।

उसने मंदिर देखा—मंदिरके चारो कोनेमें दृष्टि डाली। मंदिर था किन्तु उसकी आत्मा अदृश्य थी।

'अनन्तानन्दजी कहाँ हैं ?' बड़ी कठिनतासे उसने पूछा।

'अभी शहर गये हैं, कल जाने वाले हैं।'

'कहाँ ?' चम्पा और रणुभा दोनों बोल उठे।

'वारत। वहाँसे एक पत्र आया है जिसे पढ़कर जानेका निश्चय भी कर लिया।'

चम्पाके हृदयका दीपक बुझ गया, श्वाँस भी रुँधती हुई-सी मालूम पड़ने लगी।

रणुभाने पूछा—'कब जाने वाले हैं ?'

'कल प्रातःकाल।'

दोनों वापस लौटे। रणुभा जरा खिन्न हो गये और चम्पाका तो प्राण ही निकलता-सा मालूम पड़ा। आज कितने ही दिनोंसे उनके शब्दकी प्रतिध्वनि, उनके मुखकी स्मृतिपर ही वह जी रही थी; शून्य बने हुए संसारमें इतना ही उसके साथ था। चित्तको बड़ी कठिनतासे वशमें रखकर, स्वामीको देखने, स्मरण करने, स्वप्नमें देखनेमें ही उसका जीवन सीमित था। और इस प्रकार वे चले जा रहे हैं! भेंट तक नहीं की! हाय! हाय! कैसे सहन होगा? अनेक वर्षों की कुटिलतासे प्राप्त लज्जाहीनता छोड़कर, अपने एवं स्वामीके बीचका अन्तर भुलाकर, अपनी ढलती हुई जवानीका विचार त्यागकर, चम्पा प्रेम-विह्वल हो गई। स्वामीको दूरसे ही देखकर भजनेका उसका संकल्प नष्ट हो गया। अपनी स्थूलता छोड़कर स्वामी द्वारा निर्दिष्ट किये हुए मार्गपर चलकर अपना जीवन प्रस्फुटित करनेका उसका स्वप्न विनष्ट हो गया। चम्पाके हृदयमें अभि

प्रज्वलित हो उठी—मन, बुद्धि, विवेक सभीपरसे संयम जाता रहा।

वे घर गये। स्वामी वहाँ एक पत्र छोड़ चले गये थे।

'चि० रणुभा,

आशीर्वाद ! मैं कल जानेवाला हूँ; यदि नायब-दीवान की जगह खाली हो तो ऐसा प्रयत्न करना कि रघुभाई नियुक्त हो जाय। चम्पासे कहना, वह चाहेगी तो काम हो जायगा। —अनन्तानन्द।'

रणुभाने उसे पढ़कर चम्पा को दे दिया। चम्पा की छाती एक हाथ ऊँची हो गई। अनन्तानन्द चम्पाको इतना उच्च स्थान दें, उसकी बुद्धि एवं कलापर इतना विश्वास करें, इससे अधिक गर्व करनेका कारण और क्या हो सकता है ? भले ही गोवर्धन-धारी स्वयं गवोर्धन उठावें, पर विक्षिप्त गोपियाँ तो तुच्छ लकड़ी का सहारा देकर ही हृदयमें आनन्दित होंगी। प्रेम ही सहजीवन, सहकारिता की पराकाष्ठा है। चम्पा हर्षसे उन्मत्त हो गई।

रात हुई। रणुभा मन बहलाव करनेके लिए आये। चम्पाने सिर-दर्दका बहानाकर उसे विदा किया। बेचारा रणुभा चला गया और बिछौनेपर पड़कर निर्दोष निद्राके आधीन हो गया। चम्पाका मन उस समय घुड़दौड़ लगा रहा था नगरके बाहर रामचन्द्रजीके मन्दिरमें। स्वामीजीके जानेके विचारने उसे पागल बना दिया था; मन की सभी वृत्तियाँ व्याकुल हो उठीं। उससे मिले बिना, उसे देखे बिना वे जा रहे हैं ? सब शरीर, ओंठ तड़प रहा था; किसलिए ? निर्णय न कर सकी। नायिका-जीवनका स्वभाव छोड़कर, त्यागी जीवनका अन्तर भूलकर, सच्चे मानुषी स्वभावके प्रेमका आनन्द, और अधिकार प्राप्तिके लिए—भोगनेके लिए वह उत्सुक हो रही थी।

पानीसे उसने मुँह धोया। दावानल क्या पानीसे बुझ सकता है ? उसने उठकर कपड़ा पहना, कुछ निश्चय किया। जाऊँ, मिल लूँ। एक बार भेंटकर हृदय ठंढा करूँ; सिर काटना हो तो भले ही काट डालें, एक बार तो उनकी गोद में उसे रख दूँ। दूसरे क्षण मन पूछता—'चम्पा ? तू यह क्या कर रही है ?' पर उत्तर मिलनेके पहले ही अनन्तानन्द आँखोंके आगे आ जाते, और अज्ञान फतिङ्गके समान दीपकपर वह नाचने लगती।

वह नीचे उतरी, बागके पीछे के रास्तेसे आगे बढ़ी। भय जैसी वस्तु उसके हृदयमें थी ही नहीं। संसारके निम्नतर कोटिका अनुभव होनेसे स्त्री-जाति के स्वभावके कितने ही भाव उसमें थे ही नहीं। जिस बाजारसे गुणवंती कुछ दिन पूर्व लज्जासे दौड़ती हुई गई थी, उसी रास्तेसे बाघिनके समान प्रेम-क्षुधा से व्याकुल चम्पा निडरतासे चली जा रही थी। अर्धरात्रिका समय था, रात अँधेरी थी। तारागणके चमकनेसे थोड़ा-बहुत प्रकाश हो रहा था।

रामचन्द्रजीका मन्दिर दिखाई पड़ा। चम्पा और तेजीसे चलने लगी। उसे ऐसा लगा मानो कुछ चोरी करने आई हो। उसने अनन्तानन्दजीके सोनेका स्थान पहलेसे ही पूछ लिया था, वह उसी ओर गई।

रामकृष्णदासजी आधी रातके समय उठे, तम्बाकू खाने की इच्छा हुई, खानेपर थूकने की आवश्यकता पड़ी। खिड़कीके पास आकर आँखें मलने लगे; 'यह क्या ?'

दूरसे एक स्त्री तेजीसे चली आ रही थी। कुछ शक हुआ। इस समय राजाकी रखेली इस प्रकार अकेली यहाँ क्यों ? कैसा अत्याचार! अनन्तानन्द जहाँ सोये हुए थे उस ओर वह बढ़ी। बाबाजी आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। प्रश्न उठा—'दुनिया पागल हो गई है अथवा मैं स्वप्न देख रहा हूँ? अनन्तानन्द और यह स्त्री! राम! राम!!'

अधिक जानने की मनमें आकांक्षा हुई जिससे वे उस खिड़कीसे उठकर दूसरे पर जा बैठे। उसके नीचे ही चबूतरेपर अनन्तानन्दजी सोये हुए थे। वृद्धने सिर हिलाया—'दुनिया भी क्या है! हे राम!'

———

१७

चम्पा आई। पूर्व दिशामें कृष्णपक्षका देरसे प्रकट होने वाला लालचन्द्र उदय होने की तैयारी कर रहा था। वह चबूतरेके नीचे खड़ी रही, काँप उठी, थोड़ी देर रुकी, कान खोलकर सुना, इधर-उधर देखा, चारो ओर शान्ति थी। तेजीसे वह सीढ़ी चढ़ गई, ठोकर लगी, खड़ी हो गई। उसके माथेमें तोपके

धड़ाकेका शब्द हो रहा हो ऐसा लगा। उसने हाथसे सिर दबाया, छाती दबायी। कलेजा धड़क रहा था, श्वाँस की गति भयंकर थी। उसे लगा कि सब देख रहे हैं, पीछे लौटनेसे तो प्राण जाते हैं। अतः वह जहाँ की तहाँ खड़ी रही।

वह और पास पहुँची। प्रेम की, काम की, धधकती हुई, सृष्टि-संहारक इच्छा उसके अंग-प्रत्यंगको भस्म कर रही थी। इंच-इंच कर स्वामीके पास पहुँची। दुनियाका जो चाहे हो, इस समय तो अपनी इच्छा पूर्ण किये बिना लौटना उसके लिए असम्भव था।

वह खड़ी रही। उसने आस-पास देखा। कृष्णपक्षका नवमी-दशमीका लालचन्द्र आकाशमें चढ़ा, सृष्टिपर कृत्रिम लाल प्रकाश छा गया। अनन्तानन्द का शरीर, उनका भव्यमुख स्पष्ट दिखाई पड़ा। अकेलेमें शान्तिसे स्वामीजी सो रहे थे। अपना मस्तक—विशाल ललाटके तेजसे चमकता हुआ मस्तक—अपने हाथपर टेके हुए थे। मुँह पर शान्ति, और सुख था। वहाँ सत्ता की शान्ति, तृप्तिका सुख नहीं, सच्चिदानन्द स्वरूप की प्रत्यक्ष झाँकी थी। योगियों द्वारा प्राप्त, वर्णित आनन्दका शान्त गौरव वहाँ विराज रहा था। इसी शान्ति द्वारा मनुष्याहारी जानवरोंको पुरातन ऋषियोंने वशमें किया था। इस शान्तिसे चम्पा के हृदय का तूफान भी शान्त पड़ गया।

स्वामी की भव्यता आज ही उसने अच्छी तरह देखी। चम्पा पराजित हुई। वासना, प्रेम, काम की प्रबल इच्छायें सब नष्ट हो गईं। पूज्य-भाव प्रकट हुआ। चम्पा स्त्रीसे भक्त बन गई। जिन विचारोंसे आई थी उनमें निर्मलता ही अवशेष रह गई। हृदय धुल गया—पवित्र बन गया।

बहुत देर तक वहाँ खड़ी रही। अनन्तानन्दका मुखारबिंद एक टक वह देखती रही। चन्द्र की साधारण लालिमामें उनके चेहरेकी रेखायें देखती रही, पढ़ती रही। फिर वह किसी विचारमें तल्लीन हो गई। धीरे-धीरे वह नीचे झुकी, बैठ गई। अनन्तानन्दके पैरोंपर अपना सिर नमाया, अपना मस्तक उनकी उँगलियोंपर रखा।

स्पर्शसे स्वामी जग पड़े। अपने अद्भुत नेत्रोंका पूर्णतेज चम्पाके कम्पायमान

शरीर पर डाला। हाथ जोड़कर मानो प्राणकी याचना कर रही हो इस प्रकार चम्पा चुपचाप स्वामीकी ओर देख रही थी। प्रसंगको समझ न सकनेके कारण स्वामी विस्मयसे उसकी ओर देख रहे थे; मानो याचिता धराकी तरफ तप-भ्रष्ट प्रजापति देख रहे हों।

पल मात्रमें स्वामी सब समझ गये—'चम्पा ! तू इस समय यहाँ कहाँसे ?'

'महाराज ! स्वामीजी ! शरणागत ! तिरस्कार न करें !' करुण स्वरमें चम्पाने कहा।

'चम्पा ! घबड़ा मत, तेरा दुःख मैं समझता हूँ। इस समय तू निष्कलंक हो गई है यह भी मैं समझ गया हूँ। मैंने तुझसे क्या कहा था ? तमोगुण रजोगुणसे ही नष्ट होगा। अब रजोगुणका सत्वसे संहार होगा। आजसे तेरा उद्धार प्रारम्भ हो गया। अब मनुष्यरूपमें देवी होकर तू रहेगी। इस समय तू मुझसे मिलने आई है, समय पाकर तू अपना जीवन मुझे अर्पण करने आवेगी। मैं उसे लूँगा, तुझे खरीदूँगा, तेरी वासनाओंको लेकर शांति और सुख दूँगा।'

'प्रभो ! स्वामीजी ! मेरी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा है। आपके शब्द मेरे कानमें जाते तो हैं, पर ज्ञान न होनेसे आपकी बात समझती ही नहीं।' निराशासे छातीकी ओर अपना माथा झुकाते हुए चम्पा बोली।

'चम्पा आज तेरा पुनर्जन्म हुआ है, अब सब कुछ समझमें आ जायगा। ज्ञान-तप करेगी तभी प्रेममय तन्मय होगी। तभी मेरेमें—जिसमें मैं समाया हुआ हूँ उसमें—समाएगी; तभी ज्ञान होगा कि तू चम्पा, मैं अनंतानन्द भिन्न नहीं हैं। 'तू' और 'मैं' यही भ्रम है। हम विश्व हैं—उससे भिन्न नहीं हैं। हमारे कर्म हमारे नहीं हैं बल्कि विश्वके अचल कार्यक्रमके अंश हैं। तू मुझे चाहे, मैं तुझे चाहूँ; यह प्रेमीकी अधम भूमिका है। हम प्रेमसागरकी बिन्दु हैं, सदाके सम्बन्धी हैं; अपना बिन्दुत्व छोड़ना—इस शाश्वत सम्बन्धको अधिक स्पष्ट करना—यही प्रेमकी पराकाष्ठा है।'

अन्तिम शब्द बोलते समय स्वामीके अङ्ग-अङ्ग फड़कने लगे। किसी सत्य-परम पदारूढ़ योगी महात्माके समान—कोई सिद्धार्थ विश्वनिर्माणके महावाक्य का उच्चारण करता हो उसी प्रकार—अत्यन्त सरलतासे अनंतानन्दने यह

प्राचीन तत्वज्ञान कृत्रिम नायिकासे कहा—समझाया । जीभसे निकला हुआ रस-विहीन यह ज्ञान शुष्क नहीं था—सिद्ध था; जीवनके अङ्ग-अङ्गमें पूर्णरूपसे व्याप्त था ।

स्वामीने चम्पाको उठाकर कहा—'चम्पा ! रात अधिक गई, अब जा ।'

'जी हाँ महाराज ! जाती हूँ ।'

अनंतानन्द स्वगत बोले:—

वीत राग भय क्रोध मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञान तपसा पूता मद्भावमागताः ।।

ऊपर खिड़कीमें रामकृष्णदासजी विस्मयापन्न होकर खड़े थे । उनके नेत्रमें, मुँहपर अचम्भा एवं पूज्य-भाव विराज रहा था । अनंतानन्दके अन्तिम शब्द सुनकर उनकी आँखें डबडबा आईं । बहुत देरतक उन्हें निद्रा नहीं आई । उनका स्वच्छ भला हृदय स्वामीकी पूजा करनेके लिए तरस रहा था ।

१८

जिस समय रामकृष्णदासजी द्वारा दी गई शिक्षाकी थकावट रघुभाई मिटा रहा था उस समय सूरतमें हुकमतरायजी हुक्का गड़गड़ा रहे थे, सफेद मूछोंपर अनजानेमें ताव दे रहे थे और एक रसिककी कलामें मुँहसे धूएँका चक्र छोड़ रहे थे । देखनेवाले सोचते थे कि रायजी विचारमें होंगे किन्तु जो लोग इन्हें अच्छी तरह जानते थे उन्हें विश्वास था कि उनका मस्तिष्क ऐसा शक्तिशाली था ही नहीं कि गम्भीर विचार तक पहुँच सके; यदि होता भी तो उसका उपयोग करनेका उनका तनिक भी स्वभाव नहीं था । थोड़ी देर बाद हुक्का रखकर, झोला खोल पान-तम्बाकू तैयार करनेमें वे लग गये ।

'क्यों, बैठे-बैठे क्या विचार कर रहे हैं' महाकोर आतेही बोल उठीं, 'मना करते-करते मेरी जीभ घिस गई लेकिन आपको तो मेरा नीलकण्ठ, मेरा नीलकण्ठ को छोड़ दूसरा कुछ है ही नहीं, लो अब बला गले लगी न ! अपना बोझा कुछ कम था ! क्यों ?'

स्वभावसे अच्छी तरह परिचित अनुभवी पतिके समान शान्तिपूर्वक बड़े रावजीने सिर हिलाया और मुँहमें पान रखते हुए वे बोले—'बच्चू लेने गया है ?'

'अरे हाँ जी ! सब करो न । बच्चू की बहूको बुलाना है, इधर कीकी बेटी का कुछ ठिकाना नहीं है, उसपर यह !'

'भाई ! मैं तो तुम्हारे तानोंसे आजिज़ आ गया । कैसे जान लिया कि गुणवन्ती एक बला सिद्ध होगी ?'

'नहीं जी ! वह तो मेरा उद्धार कर देगी, देखूँगी न !'

बड़े रायजी जरा हँसकर बोले—'लो. गाड़ी आ गई । देखो आये क्या ?'

गाड़ी खड़ी हुई । बच्चूने निकलकर नौकरको पुकारा और 'आइये चाचीजी' कहकर वह आगे बढ़ा । भारी हृदय और डबडबाई आँखोंसे गुणवंतीने अनेक वर्षोंके पश्चात् पुनः श्वसुरालयमें पैर रखा । जिस जीवन-मुकुटके साथ उसने संसारमें पैर रखा था उन्हें खोकर वैधव्यकी निराधारतामें पराश्रित रहकर दो मुट्ठी अन्नके लिए गुणवंती जेठके यहाँ आई । अश्रुपूर्ण आँखोंको नीचे किए हुए वह भीतर चली गई ।

बड़े रायजी उठे । उनमें छोटे भाईकी विधवाको ढाढ़स देनेका साहस बाकी नहीं रहा । साठ वर्षका जीर्ण हृदय पुत्रवत् छोटे भाई की अकाल मृत्यु याद करके दुःखी हुआ । झुर्री पड़े हुए गालोंपर आँखोंसे दो बड़े आँसू ढलक पड़े । स्वागत करने की मुस्कुराहट मुँहपर थी—किन्तु मुँहके कोने अनजानमें तन गये, जो दबे हुए प्रेम की प्रबलता सूचित कर रहे थे ।

पश्चात् जगत आया । रायजीने उसे बुलाया । वृद्धकी आवाज रुँधी हुई मालूम पड़ रही थी ।

'बेटा जगत ! पहचानते हो ?'

नीलकंठराय एवं गुणवंती की बातचीतसे जगत ताऊको इतने आदरसे देखता था कि इस प्रकारके सम्बोधनसे उसका तो होशहवास ही जाता रहा । शरमाता हुआ, घबड़ाया-सा वह खड़ा रहा ।

रायजीने उसका हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और उसके माथेपर

हाथ रखकर आशीर्वाद दिया—'बेटा ! शतायु हो, बापका नाम रखना ! जाओ बेटा ! भीतर जाकर कपड़ा बदल डालो ।'

जगत भीतर गया । महाकोर भोजन बनानेके लिए सामग्री निकाल रही थीं ।

'यह तुम्हारा लड़का है ? ठीक !'

बहुत देर तक माँ-बेटे चुपचाप बैठे रहे । नवागन्तुक बेचारे क्या बोलें ? बहुत देर तक दोनों योंही बैठे रहे; न किसीने कपड़ा बदलनेके लिए कहा और न कुछ खबर ही पूछी । गुणवंतीका हृदय फटा जा रहा था । उसने सोचा कि हमारा आना महाकोरको पसन्द नहीं आया । लेकिन जाय कहाँ ? संसारमें दूसरा ठिकाना भी तो नहीं था । इतनेमें बच्चू —गुणवंतराय आया ।

'अरे चाची ! इस प्रकार क्यों बैठी हैं ? ऊपर चलिये, ऊपर । चलो दोस्त, जगत, ऐसे ढीले क्यों पड़ गये हो ?' कहकर जगतको ऊपर ले गया । बच्चू सोलह वर्षका, लाड़-प्यारमें बिगड़ा हुआ; भावार्थी, भोला एवं कुछ मंद-बुद्धि बालक था । उसमें एवं उसकी माँमें खड़ाष्टक योग था, केवल पिताके क्रोधसे वह काँपता था । किन्तु बड़े रायजी इतने उदासीन रहते कि काँपनेका कभी प्रसङ्ग आने ही न पाता ।

वे दोनों ऊपर गये और बच्चूने शोरगुलके साथ बक्स रखवाया और दो-एक खूँटी खाली कर दिया ।

'चाची ! मैं एक बात कहूँ ? देखिये माँसे आप कुछ मत कहियेगा, जो कुछ चाहे मुझे बताइयेगा, नहीं तो वे जान ही ले लेंगी ।'

गुणवंतीने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया; केवल कृतज्ञतासे हँसकर कहा 'बेटा ! जगत तुम्हारे हाथमें है, समझे । इसे सब कुछ नया-सा लगेगा ।'

'अरे कोई परवाह नहीं है ! दो दिनमें ठीक हो जायगा; जरा इधर तो देखो, क्यों दोस्त !' किसी बिगड़े रईस मित्रसे यह रसिक वार्ता सीख आया था जिसका यदाकदा उपयोग करनेमें वह बड़ी बहादुरी समझता था ।

'बच्चू भाई ! क्या पढ़ते हो ?'

'पढ़ूँ क्या ? छठे दर्जेमें फेल हो गया ।

'अँग्रेजी ?'

'हाँ हाँ' बच्चूने हँसकर उत्तर दिया, 'अँग्रेजी पढ़ें किसलिए ? यों कहो न कि यहाँ तक किसी प्रकार पहुँच गया।'

'क्यों तुमसे अधिक तो जगत पढ़ा है।'

'इसमें मेरा क्या दोष ? साले फेल ही कर देते हैं' इस प्रकार बोला मानो उसमें उसका कोई दोष ही नहीं था।

'तुम पढ़ते ही न होगे !'

'नहीं चाची ! पढ़ता तो बहुत हूँ' उसने धीमें स्वरमें कहा 'पर मैं क्या करूँ, पिताजीको तो सिफारिश करने आती नहीं और साली हर वर्ष बराबर मास्टरके सामने मेरी ही सीट लगती है; सभी नकल करते हैं और मैं ही अभागा रह जाता हूँ।'

गुणवंतीको दुःखमें भी हँसी आ गई। इतनेमें नीचेसे बुलाहट हुई 'बच्चू-बच्चू ! हाय हाय, ऊपर क्या होम-जप कर रहा है ?'

× × ×

अपरान्हमें चार बजे जगत और बच्चू बातचीत कर रहे थे; गुणवंती नीचे महाकोरके पास बैठी थी। इतनेमें खिड़कीके नीचे सीटी बजी। तुरन्त उठकर बच्चू ने सीटी बजानेवालेको उत्तर दिया 'ऊपर आओ रमण ! मेरा भाई आया है।'

फटाफट सीढ़ी चढ़कर एक लड़का ऊपर आया। ४५ अंशका कोण बनाती हुई टेढ़ी टोपीमेंसे तेलसे तर काकुल उसके ललाटपर लटक रहा था। उसके चेहरेसे अवारापन टपक रहा था, अङ्गपर पुराना जैकेट और कोट था जो किसी समय फैशनेबुल रहा होगा; साथ ही महीन लहरी छटासे पहनी हुई धोती और पुराना पंप शू शोभा दे रहा था। पन्द्रह-सोलह वर्षके लड़केमें यह शौक, यह कपड़ा देखकर जगततो चकित ही हो गया।

'कौन धिस ? (यह)' कहकर जगत की ओर रमणने उँगलीसे संकेत किया।

'किन्तु रमण ! यह तो 'सेवेंथ' में है।'

'कौन, धिस किड, (यह लड़का) ?' कहकर एक तिरस्कार पूर्ण दृष्टि जगतपर उसने डाली।

पहले तो जगतको सूझा ही नहीं कि वह क्या उत्तर दे। फिर उसने धीरेसे पूछा 'आप किस दर्जेमें हैं ?'

'हा-हा-हा ! बंदा तो फिफ्थमें है। पढ़े सो माँगे भीख बच्चा' कहकर रमणलालने अपना बचाव किया।

जगतको यह चाल-ढाल, यह बोली एवं अन्तमें रमण द्वारा निकाली हुई सिगरेट इतना अधिक विचित्र लगा—गुणवंती की शिक्षाके इतना विरुद्ध जान पड़ा कि वह चुपचाप बैठा ही रह गया। थोड़ी देरमें बच्चू एवं रमण घूमने चले गये। रमणलाल एक लक्षाधिपतिका इकलौता पुत्र था और हरएक फनमें पटु था।

इसी प्रकार समय बीतने लगा। गुणवंतीने धीरे-धीरे जेठानीको भी वशमें कर लिया। दो महीना भी नहीं व्यतीत हुआ कि सम्पूर्ण घरका भार उसने स्वयं उठा लिया। बड़े रायजीने देखा कि घरमें स्वच्छता, शांति और कार्य-कुशलता बढ़ गई है। इसे गुणवंतीके प्रभावका परिणाम समझा। लड़के भी माँ की अपेक्षा गुणवंतीके प्रति अधिक स्नेह प्रदर्शित करते। जगतका भी मन धीरे-धीरे लगने लगा। मूर्ख बच्चू अपने भाईकी बुद्धिपर प्रसन्न होता और उसकी प्रशंसा करनेमें ही अपना बड़प्पन समझता, साथ ही एक नमक-हलाल कुत्तेकी वफादारीके समान जगतको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता। रमणलाल भी अपने बड़प्पनके शिखरसे उतरकर जगतकी ओर देखने लगा, फिर भी प्रायः वह व्यसन-विहीन जगतको तिरस्कारसे देखकर उसे 'लड़की' का खिताब देनेसे नहीं चूकता था।

जगत बढ़ा—शरीर और बुद्धिमें। विनयशील, बुद्धिमान, परिश्रमी एवं भावार्थी जगत सबकी प्रशंसाका पात्र था किन्तु इस प्रशंसाका अभिमान किए बिना वह अपने मार्गपर बढ़ा चला जा रहा था। कभी-कभी वह उदास हो जाता; तनमनका मुख उसके सामने आकर उसे विह्वल कर देता; उसके जीवनमें असन्तोष आ जाता। वह एक कोनेमें अकेले बैठकर उसका स्मरण करता और अज्ञानमें आँसू गिराता; परिश्रमकर जीवनको सार्थक बनाकर, तनमनको प्राप्त करनेकी आशासे वह अपने अभ्यासमें पुनः लग जाता। गुणवंती ऐसे पुत्रको पाकर फूली न समाती !

किन्तु माँ-बेटेके बीच एक अन्तर पड़ गया था। रघुभाईके यहाँसे निकल भागनेका कारण किसीको बतानेके लिए गुणवंतीने उसे मना किया था। ज्यों-ज्यों जगत बड़ा हुआ त्यों-त्यों सच्ची घटनाकी झाँकी उसे होने लगी, किन्तु गुणवंती से पूछनेपर वह बात उड़ा देती। इस कारणसे संदेहवश रघुभाईको वह शत्रु समझने लगा।

दो-तीन वर्षोंमें ही यमराजका पदार्पण हुआ। बच्चू की छोटी बहन पहले गई। उसके पश्चात् व्याकुल, घबड़ाई हुई, गाली देती हुई महाकोर, किसीको भी कुछ विशेष कष्ट दिये बिना चली गई। तत्पश्चात् दो वर्ष बाद बड़े रावजी, जैसे जीवनमें थे वैसे ही, प्रतिष्ठा, स्नेह और सम्मानके साथ स्वधाम पधारे। अंकुश के हट जानेपर २१ वर्ष की वयमें आठवीं कक्षामें ही रहकर बच्चूभाईने सरस्वती देवीको प्रणाम किया। वह बड़े घमण्डसे कहता कि 'एक घरमें दो भाइयोंके पढ़नेसे क्या लाभ ?' उसने बाप-दादाके साधारण जमीन-जायदादका लगान वसूल करनेके भगीरथ कार्यके पीछे अपना जीवन अर्पण कर देनेका उच्च निश्चय किया। बड़े रायजी गाड़ी रखे हुए थे; उसे उसने निकाल दिया लेकिन शहर की नाक रखनेके उद्देश्यसे एक छोटासा एक्का, और बकरे जितना बड़ा बैल रखा और इस राष्ट्रीय वाहनमें विराज कर, भीड़-भाड़से बचकर सूनसान किलेके बाजारमें फिरने में अथवा रानीके बागमें निष्पुष्प सूखे वृक्षोंकी हवा खानेमें या बहुत हुआ तो सिविल लाइन्सके खाली बँगले तक घूम आनेमें ही बच्चूभाई अपने जीवनकी सार्थकता समझते। एक साधारण सूरत-निवासीके दृष्टि-विंदुसे उसने अपना जीवन देखना प्रारम्भ किया।

पेरिस निवासी कहते हैं कि पेरिसके बाहर कुछ सीखनेके लिए है ही नहीं। सूरत गुजरातका रमणीय पेरिस और बच्चूभाई उसके निवासी थे। अतः इस भोले-भाले नागरिक का भी ऐसा ही मन्तव्य हो तो कोई नवीनता नहीं।

१६

इस प्रकार दिनपर दिन बीतते गये। जगतको यहाँ आये छः वर्ष हो गये। पहले का छोटा जगत इस समय कालेजमें पढ़ रहा था। कालेजमें छुट्टी हुई जिससे वह सूरत आया। बच्चूभाई उसे लेनेके लिए स्टेशन गया।

'क्यों भाई! कैसे हो?'

'अच्छी तरह हूँ, माँ तो मजेमें हैं न?'

'हाँ!'

समान लिवाकर दोनों आगे बढ़े और सेकेण्ड क्लासके पास आकर रुक गये।

'हलो, डियर जगत!' कहकर तपाकसे रमणलालने 'शेकहैण्ड' किया। 'बच्चू बीबी! कैसी हो? वह विनय-भ्रष्ट पारसी मित्रोंका साथी है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देते हुए उसने अपना स्नेह प्रकट किया 'आनन्दसे तो हो न?'

रमणलाल बम्बई में कुछ व्यापार करता था, व्यापार क्या था यह तो कोई कह नहीं सकता था लेकिन लोगोंकी धारणा थी कि वह लाखोंका वारा न्यारा करता है और उसके रहनेका तरीका भी लोगोंमें ऐसे ही विचारोंकी पुष्टि करता था।

'मैं डुम्मस जाता हूँ, बुड्ढा वहीं है। एक महीना वहीं आराम करेंगे।'

'अच्छी बात है। यहाँ कितने दिन ठहरोगे?'

'एक दो दिन। तुम्हारा शहर कितना भद्दा है! यहाँ भला क्या अच्छा लगेगा? पर जगत, बच्चू! ओल्ड ब्म्राएज़! (पुराने मित्र) तुम भी चलो न। बुड्ढा भी खुश होगा। तुमपर तो वह फिदा है जगत!'

'नहीं भाई! तीन महीने पर तो घर आ रहा हूँ और फिर घूमता फिरूँ!'

'ऐ यू (तुम)! तू तो निरा चूल्हा-पोतना निकला! चलो, मेरी गाड़ी आई होगी, तुम्हें घरपर उतारता जाऊँगा!'

घर पहुँचकर रमणने गुणवंतीसे कहा—'चाचीजी! यह रहा आपका चूल्हा-पोतना। लेकिन इस बार तो इसे मैं डुम्मस अपने साथ ले जाऊँगा। बुड्ढेको अच्छा नहीं लगता होगा, जिससे उसके हाथ एक बढ़िया खिलौना लग जायगा।'

माधवलाल पिता हैं जिन्हें आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये, इस बातको रमणलाल अपनी लच्छेदार बातचीतमें हमेशा भूल जाता था।

'अच्छा भाई। पीछे बात होगी; दोपहरको आना।'

माँ-बेटे मिले, दोनोंने एक दूसरेका कुशलक्षेम पूछा। दोपहरमें रमणलाल आ उपस्थित हुआ। उसके मनमें जो धुन समा जाती थी वह कभी निकलती ही नहीं थी।

'नहीं चाची! उस जगत को भेजना ही होगा। बच्चूको तो लगान उगाहना है, पर जगतको क्या करना है? हम लोगोंका जीवनतो यों ही गया।'

'नहीं जी, मैं रोकती नहीं, जाकर पन्द्रह दिन घूम-फिर आवे। जा जगत! शरीर भी कुछ सुधर जायगा।'

रमणकी जीत हुई, जगत डुम्मस जानेकी तैयारी करने लगा। जानेके पहले, रातमें माता व पुत्र बैठे हुए थे।

'माँ। जानेके पूर्व एक बात पूछूँ, बुरा तो न मानोगी!'

'क्या?' जरा हँसकर गुणवंतीने पूछा।

'तुम्हारी तबीयत दिनों-दिन गिरती जा रही है। तुम इस ओर कुछ ध्यान क्यों नहीं देती?'

'नहीं बेटा! तुझे योंही दिखाई पड़ रहा है।'

'नहीं क्या? कपासके समान सफेद पड़ गई हो, जरा अपना मुँह तो देखो, बिलकुल बुड्ढी जैसी हो गई हो!'

'अब मुझे करना ही क्या है? तू बड़ा हो गया, अब तेरी बहू आ जाय तो मेरी आँख ठंढी हो, फिर मौत भले ही आवे!'

'अभीतो मरनेमें बहुत देर है?' जगतने उत्तर दिया। दिनों-दिन बहू लाने की इच्छा गुणवंतीमें बढ़ती जा रही थी, किन्तु जब वह बात करती तब जगत की छाती फटने लगती, गला रुँधने लगता; कानमें शब्द प्रतिध्वनित होते, 'मैं तुम और माँ।'

———

रमणलालने हाथमें लगाम ली और गाड़ी चल पड़ी। इस प्रकार वह तेज हाँकने लगा मानो उसके पहुँचने पर हजारों व्यक्तियोंका जीवन अवलंबित हो; दूसरी सभी गाड़ियोंको पिछाड़कर रमणलाल जगतको लेकर डुम्मस पहुँचा।

जगत प्रथम बार इस ओर आया था। डुम्मसकी मीठी, ठंढी हवाका, उसकी शांत, अमी-रस बरसाने वाली सन्ध्याका उसका यह अनुभव पहला ही था। उसकी आत्मा रसिक थी; उसे कविताका शौक था और उसके बचपनके जीवनकी दो-एक सुन्दर घटनायें ऐसी थीं कि जिनका स्मरण उसमें अनेक मीठे स्फुरण उत्पन्न कर देता था। उसे वहाँ आनेसे सचमुच आनन्द हुआ।

समुद्रके किनारेसे होता हुआ रमण अपने बँगलेपर पहुँचा। बँगलेके बरामदेमें माधवदास बैठे हुए अपने किसी मित्रसे वार्तालाप कर रहे थे। उन्होंने अपनी आँखोंके सामने हाथ रखकर ध्यानपूर्वक देखा और पूछा 'तुम्हारे साथ कौन है रमण ?'

'आपके फ्रेण्ड—मि० जगत !'

'कौन ? जगत ! आओ, आओ, कैसे हो ? कॉलेजसे कब आये ?'

'तीन दिन हुए, चाचाजी ! आप अच्छी तरह तो हैं ?'

'यह क्या नीलकण्ठरायका पुत्र है ?' पासमें बैठे हुए उनके मित्रने पूछा।

जगतने उनकी ओर देखा और उन्हें पहचानकर उछलते हुए हृदयसे पूछा 'हरिलाल चाचा ? ओह !'

'हाँ, मैं ही हूँ। पाँच-छः वर्षमें कैसा बढ़ गया है ? तुम्हारा मैट्रिक पास होना तो मैंने सुना था। तनमन तुम्हें बहुत याद करती है।'

पहचानते ही उसके सम्बन्धमें जगत की पूछने की इच्छा थी, अब उसने साहस किया; 'वह कहाँ है ?'

'कौन तनमन ? अपनी माँ के पास बैठी होगी। पास ही के बँगलेमें हम रहते हैं; बुलाऊँ ? रामा ! जा, जरा बीबीको बुला तो ला।'

रत्नगढ़से जानेके पश्चात् हरिलाल पर यथेष्ठ धन और लकवाका रोग—दोनोंकी ही कृपा हुई थी। पेंशन लेनेके पश्चात् वे यहाँ आकर रहते थे और

एक प्यारी पुत्री एवं नई-बहू इन दोनोंमें ही अपना समय व्यतीत करते थे ।

'मणि कहाँ है ?' माधवदासकी ओर देखते हुए जगतने पूछा ।

'मणि भी वहीं होगी' माधवदासने कहा । मणि उनकी पुत्री थी ।

जगतका मन किसी दूसरे ही विचारमें मग्न था । छः वर्ष पहलेका अनुभव, उसका मीठा स्मरण, फिरसे ताजा हो रहा था । इन दो वृद्ध गृहस्थोंके साथ बात करते समय उसका मन रत्नगढ़के राम-मन्दिरमें था; उसके कान पासके बंगलेसे आनेवाली पगदण्डी पर थे । थोड़ी ही देरमें उसके आतुर कानोंमें पैर की आवाज पड़ी, उसका हृदय धड़क उठा । पीछे घूमकर देखनेका भी साहस वह न कर सका ।

'कहिये पिताजी ! क्या काम है ?' माधुर्यकी वर्षा करता हुआ स्वर सुनाई दिया; इस स्वरसे जगतके अन्तरके कुल तार झङ्करित हो उठे ।

'जरा इधर तो आ, अपने पुराने साथीको भी भूल गई ? धत् तेरा भला हो!'

जगतकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया, उसी धुँधले प्रकाशमें उसने तनमनको देखा । वह किस दुनिया में है, इसका उसे ज्ञान नहीं रहा । जवान हो गया है यह भी भूल गया । उसे छोटी लड़की देखनेकी आशा थी । उसके बदलेमें यह तो—वह छोटा-सा मुँह आज आनेवाली जवानीकी प्रभाको प्रकाशित कर रहा था, उन नटखट छोटी आँखोंमें आज विद्युतकी रसमय दीप्ति थी । वह आठ वर्षकी हँसती, कूदती हरिणके समान बाल सखीसे विलग हुआ था; आज उसकी 'देवी' रति-रूपमें पुनः मिलेगी इसकी उसे स्वप्नमें भी सम्भावना नहीं थी । इस परिवर्तनसे उसके मनमें जरा भयका सञ्चार हुआ । यह उसकी 'देवी' क्या वैसी ही होगी ? सोचा कि यदि इस रूपगर्विता बाल-सखीसे भेंट न हुई होती तो अच्छा था; पहलेके सम्बन्धकी स्मृति तो बनी रहती !

जगतको क्षोभने परास्त कर दिया । तनमनके निर्मल मुखपर समझमें न आने वाली लाली दौड़ गई । स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित सुडौल शरीर अद्भुत छटासे चमक रहा था ।

'कैसे हैं जगतकिशोर ?' दोनों में तनमन ही अधिक स्वस्थ थी ।

'तनमन ! मुझे जरा डर लगा। मैंने सोचा कि शायद तू भूल न गई हो।' कहकर जगत और तनमन दोनों बेञ्चपर बैठ गये।

'तनमनको आपकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह वचन पालन करने आता है।'

'यह तो मुझे सब खबर है। व्यंग करने में तो तुम पटु हो ही ! क्यों, ठीक है न ?'

'व्यंग्य ? अच्छा बताइये कितनी बार आप मुझे स्मरण करते थे ?' जगतके कन्धेपर हाथ रखते हुए तनमननें पूछा।

'बहुत बार।'

'नहीं, ऐसे नहीं ! दिनमें कितनी बार ?'

जगतने अपराध स्वीकार किया। वह प्रतिदिन स्मरण नहीं करता था।

'तुममें और मुझमें यही अन्तर है। मैं प्रतिदिन दो बार याद करती थी।'

'यह तो झूठी बात है। क्या गिनकर याद करती रही ?'

'और नहीं तो क्या ? सबेरे उठती थी तब और रातको सोने जाती थी तब वही भजन गाती थी और आपको याद करती थी।'

'कौन ? "पिया, तैं कहाँ गयो नेहरा लगाय" वाला !'

'हाँ, याद है न ?' नयनों से अमीकी वर्षा करते हुए तनमनने कहा।

जगतके हृदयमें स्नेहकी कुछ अजीब बिजली-सी दौड़ गई। मानो उसका अन्तर 'देवी' का सत्कार करनेके लिए दौड़ रहा हो, ऐसा उछलने लगा। जगतने अपने कन्धे पर पड़े हुए तनमनके हाथको अपने हाथमें ले लिया—दबाया, दब गया। तनमन जरा हँसी।

थोड़ी देर बाद हरिलाल नौकरके कन्धेपर हाथ रखे हुए वहाँ आये। खड़े रहनेपर वे अधिक निर्बल मालूम पड़ते थे।

'क्यों बच्चों ! बात पूरी हुई या नहीं ? चलो अब बाकी कल करना।'

जगत वहीं खड़ा रहा; सूर्यास्तके मन्द प्रकाशमें जाती हुई प्रिय बाल-सखी का रम्य स्वरूप वह देख रहा था। जैसे वह स्वर्गकी सीढ़ीपर चढ़ गया हो, जीवनके सभी सम्बन्धी उसे हलके लगे, उन्हें पदभ्रष्ट किया; केवल एक ही अलौकिक प्रेमिकाको हृदय-साम्राज्यका सिरताज पहनाया।

× × × ×

रातभर जगतको निद्रा नहीं आई, वह स्वर्ग में घूमता रहा। वहाँ अप्सरायें अधिक नहीं थीं; एक ही थी। उषःकालके समय स्वप्न-स्वर्ग तुच्छ जान पड़ा। उससे सहस्रगुण सुखमय—अनुभव निश्चित् आशाके क्षितिजमें छिपा था।

२१

जड़ताके अवतार पर्वत निश्चय पड़े रहते हैं, उनपर मुनिगण निवास करते हैं, प्राणी आते जाते हैं पर उनमेंसे एकको भी इस बातका ज्ञान नहीं होता कि किसी समय ये जड़ताके अवतार भी एक क्षणमात्रमें बदल जायँगे। ऐसे ही किसी पर्वतसे, कभी-कभी, हजारों वर्षोंसे दबी हुई, भयङ्कर प्रलय-वह्नि प्रकट हो जाती है और संपूर्ण जड़ता इस वह्निकी ज्वालामें अदृश्य हो जाती है; इन ज्वालाओंकी अग्नि-सरितायें पर्वतोंसे निकल पृथ्वीपर नृत्य करने लगती हैं; समस्त जीवित विश्वको डुबा देती हैं, बहुतेरे गावोंमें अपनी भयानक विनाशक शक्तिसे हाहाकार मचा देती हैं। मनुष्यकी परिस्थिति भी किसी अवस्थामें ऐसी ही होती है। जगतको आत्म-निरीक्षणका शौक था। वह अपने स्वभावको बुद्धि-प्रधान मानता था। कितने ही मित्र उसे भावहीन, एकान्तवासी मानते थे। कितने ही रमणलाल उसे नीरस, बुद्धू समझते थे। किसीको पता नहीं था कि इस सलज्ज एवं एकान्तवासी मनुष्यके मनके शांत मनोराज्यके नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है—फटनेकी तैयारी पर है। अभी उसका ज्वालामुखी फटान था, जरा-सा कल कुछ धूँआ निकला था, इसे उसने विशेष महत्व नहीं दिया।

माधवदास, रमण और जगत चा पी रहे थे।

रमण मेजके बिलकुल कोनेपर बैठा हुआ हाथमें नवीनतम 'स्टाइल' का प्याला लिये हुए था, उसने पूछा, 'क्यों पिताजी! अब यहाँ हमारा अचार पड़ेगा क्या?'

'क्यों?'

'क्यों क्या? यह भी कोई जगह में जगह है? अब यहाँ किया क्या जाय?'

'जो सब मनुष्य करते हैं। खाओ, पीओ और मौज करो!'

'यह तो जानता ही हूँ। हलो डियर बॉय! कब्रगाह देखने चलते हो? बड़ी फाइन जगह है। वहाँका लाइट-हाउस भी देखने योग्य है।'

'मैंने तो यह सब देखा ही नहीं है।' जगत बोला।

'क्या देखा नहीं है? चलिये मैं दिखलाऊँ।' कहती हुई तनमन आकर, गृहिणीकी तरह जगतकी कुर्सीके पीछे दोनों हाथ रखकर खड़ी हो गई।

'कब्रगाह! तू भी चलेगी? तबतो जरूर कुछ दालमें काला है!' रमणने कटाक्ष किया।

तनमन चाहे जिस स्वतंत्रतासे बोले-चाले किन्तु उसका गौरव अस्पर्श्य था। रमण की चाल-ढालको वह तिरस्कारसे देखती थी; एवं दो-एक बार उसे फटकार भी चुकी थी।

'रमणलाल? इसकी तुम्हें क्या पञ्चायत है? मैंने तुमसे क्या कहा था? मुझे तुम्हारा मज़ाक नहीं सुनना है। सुनना होगा तो बता दूँगी।' उसने इस प्रकार डाँटा कि रमणकी तो बोली ही बन्द हो गई।

जगतके लिये यह नया अनुभव था। गर्वसे उसने तनमनका गौरव एवं दर्प देखा। किसके साथ किस प्रकार बातचीत करनी चाहिये, इसकी अधिकारिणी वह स्वयं थी। यह देखकर वह मनमें जरा प्रफुल्लित हुआ।

'जगत भाई, तुम चलोगे?' तनमनने गम्भीरतासे पूछा।

'हाँ! विचार तो है। तुम भी चलोगी?'

'हाँ, तब मैं भी जरूर ही चलूँगी।'

'ठीक, तब दोपहरको चला जाय। मल्लाहोंको कहला दूँ।' कहकर रमणलाल चला गया। माधवदास बारहो मास प्रातःकाल मोटे ऊनके मोजे एवं सदरी पहन कर किनारे पर वायु-सेवनके लिए जाया करते थे; जिससे वे भी गये। उन्होंने स्वयं धनोपार्जन किया था, जिससे प्रत्येक वस्तुपर वे निगाह रखते थे।

'तनमन!' जगतसे कहे बिना रहा नहीं गया, 'मुझपर भी ऐसे ही रोब गाठोगी क्या?'

तनमन झूठे क्रोधसे दाँत पीसने लगी। रोषमें उसका सौन्दर्य अधिक आकर्षक लगता था। फिर उसने हँस दिया, 'किशोर! तुमपर? पागल तो नहीं हो

गये हो ?' कहकर जगतके कन्धेपर मुक्का मारकर तनमन वहाँसे भाग गई। जगतने मीठी मार खाई नहीं थी। जब वह किशोर कहकर पुकारती तब स्नेह-वर्द्धक 'तुम' निकल ही जाता था।

'अरे, इधर तो आओ' कहकर वह भी उठा।

× × ×

वे सब लोग रवाना हुए। गर्मी के दोपहरका ताप समुद्रके ठंढे पवनमें मालूम नहीं पड़ता था। सभी प्रफुल्लित थे। जगत और तनमन एक पास बैठे—हँसे—बोले। यात्राके आल्हादमें रमणकी दो-एक परिहासोक्ति भी तनमनने सहन कर ली। कब्रगाहकी एकान्त रमणीयतामें वे दौड़े और कूदे। प्रकृतिकी गोदमें बैठनेके लिए ही ऐसे स्थल शायद निर्मित हुए होंगे। अधिक समय जगत और तनमन दोनोंको चुपचाप चलनेमें ही आनन्द आता।

धीरे-धीरे वे लोग लाइट-हाउस पर चढ़ने लगे। सबसे पहले मणिको कन्धे पर लिए हुए एक नौकर, उसके पीछे रमण सिगार पीता हुआ और सबके पीछे तनमन तथा जगत चढ़ रहे थे। बीचमें एक छोटी खिड़की थी जिसका कुछ भाग समुद्र की ओर पड़ता था। तनमन उछलती कूदती हुई वहाँ गई। उसके पहुँचते ही एक चमगादड़ चौंककर फड़फड़ करता हुआ उड़ा और तनमनके चेहरे से जा टकराया। तनमन घबड़ा उठी, उसका होश-हवास गुम हो गया।

'ओ किशोर !' पुकारती हुई भयसे चीख पड़ी। धीरे-धीरे चलते हुए जगत ऊपर पहुँच गया था। चीख सुनते ही वह वहाँ एक छलाङ्गमें जा पहुँचा। तनमन भयसे काँप रही थी, उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था।

'क्या है देवी।' जगतने पूछा। पर जगतके पूछनेके पूर्व ही उसका हाथ तनमनने जोरसे पकड़ लिया। खिड़कीकी ओर देखनेसे भयका कारण दोनोंको मालूम हो गया।

यह तो चमगादड़ है, कुछ नहीं, जरा शान्त रह, अपना मुँहतो देख। ऐसा सफेद पड़ गया है जैसे मुर्दा !

'बहुत डर गई किशोर ? मेरा हृदयतो जैसे बिलकुल बैठ गया।'

'अरे मैं सब ठीक कर दूँगा।' जगत कह तो गया किन्तु उसे अपने ही

शब्दोंमें कुछ रहस्य-सा मालूम हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसने कोई पाप किया हो। डरते-डरते उसने तनमनकी ओर देखा। दोनों की नजर मिलते ही रस-सागर लहरा उठा। प्रकृतिके अनिर्वाच्य रस-वाक्योंसे तनमनकी आखें कुछ कह रहीं थी, जगतकी आखोंने, हृदयने कुछ सुना—स्वीकार किया।

थोड़ी देरमें दोनोंने रमणको पकड़ लिया। अब तनमन, जगतके कन्धेपर हाथ रखे हुए चढ़ रही थी।

२२

भारत-सूर्य भारतीयोंको, उनके हृदयको, बुद्धिको समयसे पहले ही परिपक्व कर देता है। जिस वयमें अन्य देशोंमें बाल-चेष्टायें होती रहती हैं, उस वयमें यहाँ गम्भीर भाव उत्पन्न हो जाते है, जबकि पाश्चात्य युवक-युवतियाँ निश्चिन्त हो खेलते-कूदते रहते हैं, उस समय हम उत्तरदायित्वसे दबे रहते हैं। ग्रीष्म-प्रधान देशोंका वातावरण जीवन-वृक्ष पहले ही बढ़ाता है, पुष्पित करता है, पतन करता है। जगत और तनमनके विचार एवं भाव वयस्क मनुष्योंको सुशोभित करनेवाले जैसे थे। रसिकताका मोहपूर्ण भण्डार, जीवन-कलाके अगम्य भेद, उनके हृदय-नेत्रके समक्ष क्रमशः आने लगे थे। धीरे-धीरे कोई शक्ति उन्हें विचित्र मार्गपर ले जा रही थी।

दूसरे दिन हरिलाल, माधवदास, जगत बैठे हुए शिक्षित युवकोंके सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। रमणलाल बीच-बीचमें बराबर अपना मन्तव्य प्रगट कर शिक्षाके सम्बन्धमें टीका कर रहा था। थोड़ी देरमें तनमन आई, वह भी बारम्बर कटूक्ति करने लगी। शिक्षित पुरुष अपनी पत्नी की परवाह करते हैं या नहीं, इस विषयमें चर्चा चली। थोड़ी देरमें नौकर बुलाने आया, जिससे दोनों वृद्ध चले गये

'तुम सब 'एजुकेटेड' पागल हो पागल' अशिक्षित होनेके अभिमानसे रमणने कहा 'अपनी पत्नीको नहीं पढ़ा सकते तब और क्या करोगे?'

'किसलिए पढ़ावें?' जगतने उत्तर दिया 'हमारे जीवन की सार्थकता स्त्रीका

शिक्षक बननेमें ही सीमित नहीं है। हमें कुछ महान् आदर्शोंका भी पालन करना है। अपने जीवनका रस निकालकर अपनी भावनाओंके लिए मरना है। उसमें यह पीड़ा क्यों मोल ली जाय? एक मूर्ख स्त्रीको पढ़ानेमें जितना प्रयत्न करना पड़ेगा उतनेसे तो गाँव भरका भला होगा। माँ-बाप विवाह करनेके लिए तो तड़पते रहते हैं पर पढ़ाते क्यों नहीं? यह लाभ क्या मुफ्तमें मिलता है?'

'माँ-बाप किसलिए?' तनमनने हास्यजनक बनावटी निर्दोषतासे पूछा 'जोशी महाराज क्यों नहीं? सच पूछा जाय तो वे ही विवाह कराते हैं।'

यह सुनकर सभी हँस पड़े।

'पर मेरा कथन—' रमणने कहा।

'भैयाजी! बाबूजी बुला रहे हैं' नौकरने आकर कहा। रमणको इस माथा-पच्चीसे छुटकारा मिला; जिससे बात अधूरी ही छोड़कर वह चला गया। तनमनने बात आगे बढ़ाते हुए कहा—'आपके कहनेका क्या अर्थ है कि स्त्रियोंको सुशिक्षित बनाने लगें तो पुरुष कोई महत्वपूर्ण काम कर ही नहीं सकेंगे।'

'नहीं, मैं यह नहीं कहता। लेकिन अशिक्षित स्त्रियाँ प्रायः अपने पतियोंका गला घोंटनेवाली होती हैं।'

'लेकिन सच पूछा जाय तो' बातका भिन्न रूप देते हुए तनमनने कहा 'पढ़ी लिखी स्त्रीको विवाह करना क्यों अच्छा लगने लगा? हमारे पास बम्बईमें एक मनुष्य रहता था, वह प्रतिदिन अपनी स्त्रीको मारता था। वह बेचारी इतनी बुद्धिमती थी कि कुछ कहनेकी बात नहीं। मानो हमलोग मार खानेके लिए ही पैदा हुई हैं, क्यों?' छोटी-सी नाक फुलाते हुए उसने पूछा। पर उसकी आँखोंमें स्नेहपूर्ण मादकता नाच रही थी।

'यह किसने कहा? और तुम्हारे समान तो अवश्य ही नहीं!' जगतने हँसते हुए कहा।

'अच्छा किशोर! तुम्हें कैसी पत्नी चाहिये?' बातको पुनः नवीन रूप देते हुए तनमनने पूछा।

'अरे वाह! यह प्रश्न कहाँ से उठ गया? मुझे ऐसी पत्नी चाहिये जो मेरे सभी प्रयत्नों, मेरी आशाओं, मेरी भावनाओंकी भागीदार बने।'

तनमन चुपचाप अपने रसाल ओंठ बन्दकर धीरे-धीरे सीटी बजाने लगी।

'ऐसी स्त्रीको आप एक मिनट भी नहीं रख सकेंगे। यदि प्रत्येक बातमें आपकी भागीदार हो जायगी तो आपका रोब वह जरा भी चलने नहीं देगी। बुद्धिमान होगी तो आपको कुछ गिनेगी भी नहीं, समझते हैं?' आखें नचाते हुए तनमनने कहा।

'आज मुझपर इतनी अधिक नाराजगी क्यों?'

'नाराजगी नहीं, यह तो अधिकारकी बात है। आपमें स्वयं कितना अधिक क्रोध है? देखिये न, कल लौटते समय, मामूली बातपर बिचारी मणिको धमका दिया। मेरे जैसी हो और ऐसी साधारण हँसी पर कोई ऐसा मिजाज़ दिखावे तब मैं तो उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँ।'

नौकर बुलाने आया।

जगत कुर्सीपरसे उठते हुए बोला 'तनमन! यदि मैं अपने पसन्दकी स्त्रीके साथ विवाह करूँगा तो उसे प्रसन्न रखना अपने जीवनका सर्वप्रथम कर्त्तव्य समझूँगा।' उसकी आवाजमें—शब्दोंमें कुछ अलौकिक झङ्कार था।

'अच्छी बात है, अब जाती हूँ। देखना, ऐसी मिल जाय तो अपने क्रोधी स्वभाव....!' कहते हुए परिहाससे रूमालका गेंद बनाकर तनमनने जगतपर फेंका। कहे हुए शब्दों की अपेक्षा बिना कहे हुए शब्द उसके भाव अधिक स्पष्ट रूपसे व्यक्त कर रहे थे।

रस सागरमें यह अनुभवहीन प्रेमी-युगल बहा जा रहा था। किस जगह, कौनसे तीरपर वे लगेंगे, इसे कोई नहीं बता सकता था; भविष्य की अगम्य आशापर श्रद्धा रखकर उन्होंने अभी गोता लगाया था। इस सागरकी तरंगमें नहाते, खेलते, हँसते हुए दिन गुजर रहे थे। वे अपने निःशङ्क मनमें समझ रहे थे कि जीवन-क्रमका स्वाभाविक मार्ग यही है।

× × × ×

जगत, तनमन और मणि तीनों बैठे हुए थे। वहाँ अधिक लोग नहीं आते थे। पास ही समुद्र गर्जन कर रहा था। अस्ताचलगामी सूर्यका प्रतिबिम्ब, पानी में पड़कर, अस्त होनेके पूर्व मानो कुछ विचार करता हो, इस प्रकार सामने खड़ा

था। पवनमें मादकता थी। ऐसी ममता थी मानो प्रकृति बालकोंको लाड़से खिला रही हो। दोनों धीरे-धीरे कुछ वार्त्तालाप कर रहे थे और मणि शंख चुन रही थी।

उनकी बातचीतमें सदैव अकथनीय विषयका अधिक समावेश रहता था। उनके विचार न तो भविष्यके होते थे और न भूत के। वर्तमानका आनन्द—सृष्टि सौन्दर्य, सुहृद-समागमका आनन्द—वे हमेशा अनुभव करते थे। समुद्र तटपर अथवा आम्रनिकुञ्जमें बेञ्चपर बैठे हुए इस प्रकार वे घण्टों बातचीत किया करते। कभी-कभी तनमन खीज उठती, जगतके साथ झगड़ती अथवा मीठे समाधानों की शर्तें निश्चित करनेमें ही प्रायः समय व्यतीत होता।

प्रायः संसार की नई-नई वस्तुओं और जगतकी बड़ी-बड़ी आशाओंकी बातें होतीं। सहजीवन दैवी है, स्थूलताका जीवन कभी भी सुखद नहीं होता। ऐसा सहजीवन ही मनुष्य-जीवनके विकाश की पराकाष्ठा है।

जगत रेतीपर लेटा हुआ था, इतनेमें दूरसे एक केवटका लड़का दौड़ता हुआ आया। उसके पीछे दूसरा पकड़नेके लिए दौड़ रहा था। पहला पानीमें चला गया, दूसरा भी दौड़ा। पहला बालक जगतके पैरके पास ही पानीसे निकला, छींटा उड़ा और जगतके पैरसे ठोकर खाकर वह वहीं गिर पड़ा। पानी और कीचड़से जगतका कपड़ा खराब हो गया। वह आपेसे बाहर हो उठा। वह रेतपर गिरे हुए बालकको छड़ीसे पीटने लगा। यह देखकर तनमनका चित्त दुःखी हुआ।

वह बोल उठी 'जगत! यह क्या? छोटे बालकके साथ यह क्या कर रहे हो?'

जगतमें सहनशीलताकी कमी थी। जरा सी बातसे उसका खून खौल उठता और उस समय उसमें आगा-पीछा सोचनेकी भी शक्ति न रहती।

'क्या है? इसे तो—' कहकर उसने फिर छड़ी उठाई।

'बस हो गया, शर्म तो नहीं आती? तुम इससे बड़े हो, इसलिए इस गरीब बिचारेको मार डालोगे क्या?'

जगतकी उग्रता शांत नही हुई, उलटे तनमनकी व्यंग्योक्तिसे कुछ बढ़ ही गई। उसका स्वभाव ऐसा नहीं था कि किसीकी सत्ता सहन कर सके।

'तू क्यों बीचमें बोल रही है ? तेरा इसमें क्या जाता है ?' जगत बोला। उसका चेहरा लाल हो गया था। पर जगतको क्रुद्ध देखकर तनमनको बड़ा आनन्द आता था। उसे चिढ़ानेकी आदत पुरानी थी।

'मेरा ? अभी कल तो समान हकके खैरख्वाह बन रहे थे' अपने कामदेवके धनुषके समान ओठोंपर तिरस्कार लाकर तनमनने कहा 'और आज इस बिचारे को अधमुआ कर डाला।'

एक का क्रोध बढ़ता गया दूसरेने शान्त पर तीक्ष्ण शब्द-बाणोंसे उसे विद्ध-कर डाला। पाँच मिनटमें ही रङ्गका भङ्ग हो गया। थोड़ी देरमें तीनों चुपचाप बंगलेपर लौट आये। क्रोधके कारण जगत झुँझला रहा था। जगतके अन्याय, अत्याचार निरर्थक क्रोध एवं अपनी सलाहके अमान्य किये जानेसे तनमन दुखी हुई। मणि बिचारीतो दिग्मूढ़ ही बन गई।

'तनमन ! आज तुम्हारा मुँह कुछ उतरा क्यों है ?'

'कुछ तो नहीं गुलाब चाची !' तनमन चौंक पड़ी।

'गुलाब चाची (तनमनकी विमाता) ने तब कुछ नहीं कहा। तनमनको मनमें अधिक खेद हुआ। जगतको उसने क्यों चिढ़ाया ? पहले तो तनमनको आशा थी कि जगत सदैव की तरह मनाने आवेगा किन्तु यह तो उलटा हो गया। यह विचित्र समस्या किस प्रकार हल होगी ? जगत क्या मान जायगा ? अब कब मिलेंगे ? तनमनके सिरपर तो दुःखका पहाड़-सा टूट पड़ा। उसके निर्दोष, सुखी बाल-जीवनमें प्रथम चिन्ता, प्रथम दुःख चारो ओरसे उमड़ आया। जगत क्या मनाने नहीं आवेगा ? तब मैं ही क्यों जाऊँ ? इसी प्रकारके विचारमें वह मग्न थी कि हरिलाल आ पहुँचे। सबने भोजन किया और सोने की तैयारी होने लगी। हरिलाल संगीतके शौकीन थे, इससे सूरतसे गायक उन्होंने बुलाया था। दूसरे दिन सन्ध्या समय संगीत होनेवाला था जिसकी तैयारी करनेके लिए माँ-बेटी जल्दी ही उठनेवाली थीं; अतः सभी जल्दी सोने चले गये।

लेकिन तनमनको निद्रा ही क्यों आने लगी ! वह विचार करने लगी। 'जगत बिना कैसे चलेगा। वह कैसा क्रोधी है ? नहीं, नहीं, मैं स्वयं ही दोषी हूँ। उसे क्यों चिढ़ाती हूँ ? यदि चिढ़ाया न होता तो और दिनोंकी तरह आज भी

हमलोग आनन्द पूर्वक बिदा हुये होते। जगत मुझसे कितना स्नेह रखता है! मुझे सन्तुष्ट रखनेके लिए कितना प्रयास करता है! अपने उग्र स्वभावको कितना दबाता है। बड़ी हुई लेकिन अभी मूर्खता गई नहीं। जगत यदि रूठा रहे तब? यदि वह चला जाय तब? हे भगवान! तब क्या होगा?' तनमन की आँखोंसे अविरल अश्रुपात होने लगा। 'नहीं, कल तड़के ही उठकर जगतके पास जाऊँगी—मिलूँगी और मिलकर सब समाधान कर लूँगी। किशोर तू ऐसा कैसे हो गया?' तनमन बड़बड़ाई।

इस प्रकार विचार करते-करते अन्तमें सबेरा होते-होते निद्रा आई—स्वप्न आया यह कहना ठीक होगा। सभी स्वप्नोंमें जगत और प्रत्येकका अन्त दुःख-मय। एकमें जगत डूब गया; दूसरेमें स्वयं कहीं भटक गई; तीसरेमें दोनों गिर गये। उषाःकाल होने पर निद्रा भङ्ग हुई, नीचे उतरी और झूलेपर बैठकर झूलने लगी। सूर्योदय होने पर निराशा कुछ कम हुई। 'अभी जाकर हो आऊँ' सोच ही रही थी कि गुलाब चाची उसे काम करनेके लिए बुला गईं। दाँत पर दाँत बैठाकर, कलेजे पर पत्थर रखकर तनमन आज्ञानुसार घरके कामोंमें लगी।

जगतने भी रात्रि ऐसे ही व्यतीत की। प्रातःकाल होनेपर निराशा कुछ कम हुई और थोड़ा अभिमान आया। प्रतिदिन तनमन रूठती है तो मैं तुरन्त माफी माँगता हुआ जाता हूँ। इस बार वही क्यों न आये? फिर विचार आया 'बीती ताहि विसार दे। अभी आयेगी तो तुरन्त बुलाऊँगा।' घंटा बीता—दो घंटा बीता। एक ओर दुःख, दूसरी ओर तनमनकी अनुपस्थितिसे क्रोध; 'आई क्यों नहीं?' फिर विचार आया 'बीमार तो नहीं पड़ गई? नहीं! वह तो अपना मतलब साधनेमें होगी। अच्छी बात है, मैं भी बैठता हूँ मुझे क्या पड़ी है; उसे गरज हो तो आवे।' मन व्याकुल था फिर भी कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। दोपहर हुई फिर भी तनमनका कहीं नामो-निशान नहीं था। दोपहर बाद वह जानेके लिए निकला तब रमणने उसे बुला लिया। ज्यों-ज्यों देर हो रही थी त्यों-त्यों उसकी खीझ बढ़ती ही जा रही थी।

दो बजेके करीब तनमन मणिको पुकारती हुई आई। दूरसे उसे आते हुए

देखकर जगतने ऐसा ढोंग रचा मानो वह क्रोधसे भरा हुआ है। वह देख रहा था कि तनमनका दीप्त चेहरा आज निस्तेज है। मणिको बुलाकर उसने कुछ बातें कीं। दोनोंने बोलनेका प्रयत्न किया किन्तु कुछ तो लज्जावश और कुछ अभिमान से दोनों ही चुप रहे। इतनेमें गुलाब चाचीने बुलवाया जिससे तनमन चली गई।

संध्या समय जगतकी बेचैनी बढ़ी। रात्रिके जागरण एवं चिन्तासे उसका सिर दर्द करने लगा। सोचने लगा—शामको संगीतमें जाऊँ या नहीं। अंतमें उसने जानेका ही निश्चय किया। अवश्य ही तनमनका मन उससे फिर गया है, पहलेका स्नेह अब वह भुला देगी; मनकी ऐसी अनिश्चित स्थितिमें तनमनका मुख देख-देखकर ही संतोष कर लेनेकी इच्छासे वह हरिलालके बंगलेपर गया। दालानमें कुछ स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। सुन्दर तनमन इधर-उधर कार्यवश आ-जा रही थी। सफेद स्वच्छ वस्त्रके भीतरसे उसका सुन्दर शरीर झलक रहा था। प्रकाशमें वह कपड़ेसे छनता हुआ उसका अवयव-लावण्य देख रहा था—कल्पना कर रहा था। संगीत प्रारम्भ हुआ। जब चित्त अन्यमनस्क रहता है तब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसका सिर अत्यधिक दुःखने लगा। धीरेसे वह उठा सीढ़ी उतरकर वह अपने बँगलेपर जाने लगा। वह इतना व्याकुल हो गया था कि यदि किसीने जरा भी छेड़ दिया होता तो रो देता। नीचे चबूतरेपर आकर वह खड़ा हो गया। नीचे कोई नहीं था, बाहर बिलकुल अँधेरा था। हाथपर माथा टेककर वह दीवालके सहारे खड़ा हो गया और दूरपर उछलती हुई समुद्र की तरङ्गोंको देखने लगा। ऊपरसे गानेकी झंकार आ रही थी, सारङ्गी उसे विलाप करती हुई मालूम पड़ी। दुःखी बनानेकी सभी सामग्रियाँ थीं; कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। यदि तनमनसे भेंट नहीं हुई तो जीवित रहना व्यर्थ-सा मालूम पड़ा।

स्वप्नमें कोई पुकारता हो ऐसी पीछेसे आवाज आई 'किशोर!'

जगतने सुना, वह सचेतहो गया, उसने पीछे घूमकर देखा। रक्तहीन मुख एवं डबडबायी हुई आँखोंसे तनमन वहाँ खड़ी थी—कुछ काँप रही थी। वह तनमन नहीं थी—स्वप्नवत् मालूम पड़ रही थी। तारागणके साधारण प्रकाशमें स्वर्गसे

अवतरित कोई देव-सुन्दरीके समान दिखलाई पड़ रही थी। जगत इसे भी सच मान नहीं सका और मूक खड़ा रहा।

हाथ फैलाकर दयापूर्ण रुँधे हुए स्वरमें तनमनने कहा 'किशोर! क्षमा नहीं करोगे!'

इस आवाजमें मृदुता थी, शोक था एवं दबे हुए प्रेमका प्रकंपन था।

जगतका हृदय फट-सा गया। एक क्षण पूर्व ऐसा मालूम होता था कि हृदयका धड़कना बंद हो जायगा, अब महासागर उछल रहा हो ऐसा जान पड़ा। दुःखनेवाले सिरमें सुखकी उर्मियाँ उछलने लगीं; रग-रगके तार झंकृत हो उठे। वह पृथ्वीपर है या नहीं, इसका भी ज्ञान न रहा। उसके गलेसे आवाज भी न निकल सकी, बड़ी कठिनतासे बोला 'तनमन! प्यारी!'

भगवती प्रकृतिके चमत्कारकी सच्ची घड़ी आ उपस्थित हुई। अनजानमें, होशमें अथवा बेहोशीमें जगतने हाथ बढ़ाया—वह बढ़ गया। दूसरे ही क्षण तनमन और जगतके उछलते हुए हृदय एक साथ मिल गये। अनन्त संगमपर चिरस्मरणीय मुहूर्त्तमें दो सरितायें मिलकर एक हो गईं। विपल मात्रमें युगोंका दुःख दूर हो गया, संपूर्ण रात्रिके असह्य दुःखोंका उपचार हो गया। यह पूछनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी कि दोष किसका था। स्वाभाविक स्नेहके मार्गका उन्होंने अवलंबन किया। जहाँ हृदयमें पाप नहीं है, वहाँ हृदयके प्रेमकी परिचर्या सदा पवित्र ही रहती है।

तनमनकी आँखोंमें पानी था, चेहरेपर स्नेहपूर्ण मुस्कुराहट थी।

जगतने हँसते हुए कहा—'ऊपर चलो, संगीत न सुनोगी?'

जरा आँखें मटकाकर तनमन बोली—'ऊपर! और यहाँ क्या हो रहा है?'

सृष्टि-क्रमके भव्य संगीतका स्वर उनके हृदयमें झङ्करित हो रहा था; तब दूसरे संगीतकी उन्हें क्या आवश्यकता थी?

२३

इस प्रकार संतोष और सुखमें एक सप्ताह व्यतीत हो गया। तार पाकर रमणलाल सूरत चला गया। जगत और तनमन एक साथ पढ़ते, वार्त्तालाप करते, घूमने जाते। कभी-कभी तनमनके हारमोनियमपर दोनों एक साथ ही गाते। मनुष्यने अपना स्वभाव बिगाड़ा न होता तो देवोंके लिए भी दुर्लभ यह संसार क्या ऐसा होता? हजार पाप अपने हाथोंसे करके एवं सहस्र पापोंपर आँखें बन्द करके पानी डालकर, संसारमें बुद्धिमान कहे जानेवालोंकी बुद्धिमत्ता यह सम्बन्ध देखकर भड़क उठती तथा किसी पाखण्डी द्वारा बनाई हुई, ढोंगी द्वारा प्रचारित एवं मूर्खों द्वारा मानी गई कोई कहावतें कहकर इन निर्दोष बालकोंके स्वप्नको भी अज्ञात पापोंका अधिकारी बनाकर बैठा देती। किन्तु ऐसे सम्बन्धका निर्दोषतम हृदयोंने अनुभव किया है, श्रेष्ठतम कवियोंने इसकी प्रशंसा की है, बुद्धिमानसे बुद्धिमान पुरुषोंने इसे समझा है। इसकी निन्दा करना घृणित है, द्रष्टाकी अधमतासे कोई दृश्य अधम नहीं बन जाता।

गुलाबने दुनिया देखी थी, वह पक्की थी। उसकी दक्ष आँखोंसे तनमनकी सांसारिक स्थिति छिपी नहीं रह सकती थी। इसपर हरिलालका तनमनके प्रति प्यार उसे और भी जलाता था। घरमें भी पुत्रीकी चतुराईके सामने विमाताको कोई कुछ समझता ही नहीं था जिससे वह उसका दर्प चूर करनेकी चिन्तामें अवसरकी ताकमें बराबर रहती। तनमन भी दबनेवाली न थी। जहाँ गुलाबने उसके मनके विरुद्ध कोई बात उठायी कि वह शोर मचाने लगती। गुलाबको चुप हो जाना पड़ता, और पराजित होकर वहाँसे उसे हट जाना पड़ता। बारंबार वह तनमनका ब्याह कर देनेके लिए कहती किन्तु हरिलालकी आँखें खुलती ही नहीं थीं। जातिमें ढूँढ़नेपर वर साढ़े तीन मिले। एक बंबईमें बंदरपर काम करता था, दूसरा कचहरीमें अहलमद था और तीसरा बाप-दादाका धन फूँककर, जायदादको गिरवी रखकर अपना काम चलाता था। आधा वर ५० वर्षका था जिसका चौथा ब्याह था और जिसके उत्पातसे परेशान होकर सरकार उसे पेंशन देनेवाली थी। इनमें से तनमन किसे भाग्यशाली बनायेगी? स्नेहमय पिताका साहस कहाँ तक काम देगा?

'किशोर' आम्रवाटिकामें बेञ्चपर बैठते हुए तनमनने कहा 'आज तो मेरे भाग्य-निर्णयके बारेमें विचार-विमर्श हो रहा था।'

'क्या ?'

'मेरा भाग्य-निर्णय ! अरे ये जो मेरी विमाता हैं न, वही मेरे विवाहकी बात कर रहीं हैं।' उसकी बातमें कटाक्ष स्पष्ट रूपसे प्रकट हो रहा था।

'विवाहकी ?' जगतने जरा विचारमें पड़कर पूछा। उन शब्दोंने कुछ विचार-गाम्भीर्य पैदा कर दिया। तनमनने उसे देखा और उसे चिढ़ानेका मन हुआ।

'क्यों, इसमें नवीनता क्या मालूम पड़ी ? देखना न ! हम विवाह करेंगे बरात निकलेगी, वर राजा आवेगा, उसके घर जाऊँगी।'

उसने यह ऐसे भावसे कहा कि किसी दूसरे अवसरपर जगत ठहाका मारकर हँस पड़ता। पर इन शब्दोंने ऐसी कल्पना-सृष्टि खड़ी कर दी कि जगत घबड़ा उठा। उसने भर्राई हुई आवाजमें पूछा—'कब विवाह होगा ?'

'अरे यह बात तो पीछे तैं होगी। लेकिन विवाहमें स्त्रियाँ गीत गावेंगी, पीछे मेरे पतिराज पीली हर्दीसे रंगे हुए, महान् राजाके समान ऐश्वर्यशाली बनकर, सुनहला जामा पहनकर आवेंगे और उनके सिरपर गगरी जैसी डब्बाशाही पगड़ी होगी !'

'तनमन ! तू मुझे चिढ़ा मत। जहन्नुममें गया तेरा पतिराज और जहन्नुममें गई तेरी डब्बाशाही पगड़ी। तुझे सीधेसे बात न करना हो तो ले 'यह मैं चला !' निराशासे जगत बोला।

तनमनने हाथ पकड़कर उसे बैठाया 'हाय हाय रे मेरी अम्मा ! ऐसा भी कहा जाता है ? मेरा पति जहन्नुममें जायगा तो मैं क्या करूँगी ?' जरा हँसमुख चेहरेसे रोनी-सी आवाज बनाकर तनमन बोली।

'तू तो जैसी की तैसी ही रही। ओफ् !' कर जगत उठा।

'मेरी शपथ जो जाओ तो किशोर !'

'तब मजाक करना छोड़। तुझे तो हँसी सूझी है और मेरा दम निकला जा रहा है।'

'नहीं नहीं, पर इतना बिगड़ क्यों रहे हो ?'

तनमन मनाये और जगत रूठा रहे, यह कैसे हो सकता है ? जगत फिर बैठ गया। उसके उत्तरसे मानो संसारका दुःख शान्त हो जायगा, इस प्रकार जगतने पूछा—'तुम्हारा विवाह कब होगा ?'

'तुम जब कहो !'

'मैं ? किसके साथ ?' जगत अर्ध विक्षिप्त-सा हो रहा था।

तनमनकी आँखें पुनः नाच उठीं—'एक व्यक्तिके साथ।'

'यह तो मैंने समझा, पर वह है कौन ?' जगतका स्वर काँप रहा था।

'बता दूँ ? जाइये, नहीं बताती।'

'बताओ न !'

'बताऊँ !'

'कौन ?'

हँसते हुए उसने जगतके गालपर चपत लगा दिया, 'पूछते हुए शरम नहीं आती ?'

'बता न देवी ! किसके साथ ?'

'मैं दुबारा विवाह नहीं करती !'

अब जगतने कुछ समझा।

'लेकिन पहली बार किसके साथ विवाह करनेवाली है ?'

'पहली बार तो विवाह कर चुकी !' तनमन हँसी।

'देख, फिर मजाक करने लगी ? देवी ! देवी ! तुझे जरा भी दया नहीं आती ? घड़ी भरसे मेरे प्राण उड़े जा रहे हैं और तू इस प्रकार रुला रही है। देख, दो-तीन दिनमें तो मैं चला ही जाऊँगा।'

इतना व्याकुल होनेसे क्या लाभ ? किशोर ! मेरा पागल ! तुम्हारी बुद्धि क्या मारी गई है ? मैं अपने किशोरको छोड़ दूसरे किसके साथ विवाह करूँगी ? छः वर्ष पहले विवाह किया था वह क्या भूल गये ? इतने दिनोंतक क्या हम खेल करते रहे ? गुलाबी चाची अपना सिर पटककर भले ही मर जायँ। कल 'शुभ्र स्वर्गमें निवास करनेवाली' पढ़ा था, वह भूल गये क्या ? या तो अपने महादेवको वरूँगी अथवा कुँवारी रहूँगी। मैं तुम्हारे साथ विवाह करूँगी या किसीके

साथ भी नहीं। बनूँगी तो तुम्हारी पत्नी; यदि नहीं तो तुम्हारे जीवित रहते तुम्हारी ही विधवा।'

उसके मुखपर दिव्य ज्योति छिटक रही थी। उसने जगतकी ओर विजयिनी प्रेम-दृष्टिसे देखा। किसी साम्राज्यकी साम्राज्ञीके निश्चल शासन जैसा प्रभाव उसके दृढ़ और अटल शब्दोंमें था। वयकी अपेक्षा बुद्धि पहलेसे ही उसमें अधिक थी। उसके चारित्र्यमें सदैव अवर्णनीय नवीनता दिखाई पड़ती थी।

जगतने उसका यह स्वरूप आज ही देखा। राजसभामें रोषसे जाज्वल्यमान द्रौपदीका गौरव कुछ ऐसा ही रहा होगा। वह जमीनपर बैठ गया। उसने बेञ्चपर बैठी हुई तनमनके पैरपर हाथ रखा; उसका हाथ पकड़कर दबाया 'देवी! देवी! मुझे क्षमा करना, कहाँ मैं और कहाँ तू? बचपनकी मैत्री तू प्रतिदिन दो बार स्मरण करती थी, मैं सप्ताहमें कदाचित् ही एकबार। मैं इस समय विचारके भँवरजालमें पड़ा हुआ हूँ, तूने कभीका ही निश्चय कर लिया है, देवी तू तो सचमुच देवी ही है' उसने उसके पैरपर सिर रख दिया। अकथ्य स्नेहसे, मृदुतासे तनमनने जगतके माथेपर हाथ फेरा।

'किशोर! तुम क्या विचार कर रहे हो?'

'मैं बहुत दिनोंसे विचार कर रहा हूँ कि हम इस प्रकार कब तक रहेंगे? एक साथ कोई रहने देगा नहीं; विलग हमसे रहा नहीं जायगा। मेरा आशा-स्वप्न महान् है। मैं अभी बालक हूँ, यह मैं जानता हूँ; लेकिन मेरी अभिलाषायें बड़ी हैं। अपना जीवन सचमुच सार्थक करनेकी मेरी इच्छा है। यदि सब कुछ सानुकूल हुआ तो कुछ ऐसा लिखूँगा, कुछ ऐसा करूँगा, ऐसा कुछ छोड़ जाऊँगा कि दुनिया देखती रह जायगी; किन्तु यह सब होगा तुम्हारे लिए ही; देवी! तुम्हें हो प्रसन्न करनेके लिए। बचपनसे मेरा सुख तुमसे ही लिपटा हुआ है। तुम्हारे बिना मैं मृतवत् हो जाऊँगा। देवी! तू मुझे शस्त्रोंसे सुसज्जित करेगी तभी मैं विजयी होऊँगा। तू जीवन-दीप जलावेगी तभी मेरा प्रकाश फैलेगा। मेरी देवी!' आवेशसे शब्द-स्रोत रुक गया। अपना सिर उसके हाथपर रखकर जगत चुप हो रहा।

'लेकिन जगत! ये सब विवाह न करने दें तब?'

'यदि हम दृढ़ रहें तो ये लोग क्या कर सकेंगे ? जाँत-पाँत किसीकी भी परवाह नहीं है । तू मेरे साथ रहेगी तो मेरेमें विश्व जीतनेका सामर्थ्य है ।'

शुतुरमुर्गकी कहावतके अनुसार उसने सूक्ष्म दृष्टिसे रेतीमें माथा गड़ा दिया; सोचा कि तूफान यों ही निकल जायगा । अभी भी हिंदू-संसार जगन्नाथजीका रथ है, वह चलता है और हजारों निरपराधियोंको पहियाके नीचे कुचल देता है इसका कुछ भी उसे ज्ञान नहीं था । उसके कथनानुसार सभी प्रश्नोंका निराकरण हो गया । सुनहले स्वपनोंकी कल्पना और उनका अनुभव करते-करते पर्याप्त समय निकल गया । उठते समय तनमनके मुँहपर प्रेमकी एक तेज रेखा विद्युत-सी चमक उठी । दोनों हथेलियोंके बीचमें उसने जगतका मुँह दबाकर उसके नेत्रोंमें अपने नेत्रोंकी सुधा उँड़ेल दी । उमड़ते प्रेम-तरंगोंसे विह्वल होकर उसने अपना हाथ जगतके वक्षःस्थलपर रख दिया एवं हृदयके आह्लादसे दबे हुए स्वरमें वह बोल उठी 'मेरे नाथ !'

२४

गत प्रकरणकी बातोंके पश्चात् वे मनको समझाये बैठे थे । अगम्य भविष्यको स्वर्णसे मढ़ा हुआ समझकर उसकी ओर आशा एवं शान्तिसे टकटकी लगाये थे । आखिर शुक्रवार भी आ पहुँचा । जगत दूसरे दिन प्रातःकाल जानेवाला था । तनमन और जगतने अन्तिम पाठ पढ़ा, साथमें अन्तिम गाना गाया, अन्तिम बार कामदेवका चित्र देखा, एक साथ ही अन्तिम बार सागरकी लहरोंका अनुभव किया । ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था त्यों-त्यों दोनोंमें कँपकँपी छूटती थी । आनेवाले वियोगका स्मरण मनमें मानो आने देना नहीं चाहते, इस प्रकार, वे अधिक हँसे बोले, काँपते हुए हृदयसे सूर्य-बिंबको सागरमें स्नान करते हुए उन्होंने देखा । घूम फिरकर वापस आनेपर पद-पद पर हृदयका तार तनता हुआ—टूटता हुआ जान पड़ा ।

'अच्छा, मैं भोजन करके अभी आता हूँ' कहकर पीछे देखे बिना जगत चला गया । उसे छः वर्ष पूर्वकी बिदाईका स्मरण हो आया । 'यह अचानक

पुनर्मिलाप, उसका मीठा अनुभव उसके मनके सामने नाचने लगा, सिरपर लटकती हुई तलवारके समान वर्तमान बिदाईके विचारसे हृदय फटने लगा। यदि फिर न भेंट हुई तब ? दिये हुए वचनका पालन न हुआ तब ? उसे संसार शत्रुवत् लगा। यह किसलिए स्नेही हृदयोंको दूर रखकर दुःख देता है ? जातिकी कृत्रिमता कैसी ? वृद्धोंका कैसा अत्याचार ? पवित्र प्रेम-मार्गपर जाते समय यह विघ्न कैसा ? हनुमानजी की कलासे क्या प्रेम-सागर पार नहीं किया जा सकता ? इस विशाल पृथ्वीमें क्या एक निर्जन कोना ऐसा नहीं बना है जहाँ प्रेमी-हृदय एक दूसरेके साथ संसार, उसके पाप, उसमें प्रचलित विचित्र सम्बन्धोंको भुलाकर स्वाभाविक मार्गमें सच्चिदानन्दको प्राप्त कर सकें ? विचार में मग्न जगतने भोजन किया और हरिलालसे आज्ञा लेनेके लिए चला। वहाँ बैठा, बातचीत की। रेगिस्तानमें जानेवाला मनुष्य जैसे भरपेट पानी पी लेता है, वैसे ही जगतने बातें की लेकिन प्यास ज्यों की त्यों बनी रही। ग्यारह बजे उसने बिदा माँगी। सबके सामने वह तनमनसे भला क्या कहे ?

'तनमन ! सूरत या बम्बई आना तब लिखना। मैं तुरन्त मिलूँगा ! अब चलता हूँ। गुलाब काकी ! आप भी जरूर।'

अपनी घबड़ाहट छिपानेके लिए वह उसी समय नीचे उतर गया। उसे आशा थी कि तनमन अभी पहुँचाने आवेगी। तनमनको न आती देख उसके मनने उलहना दिया कि प्रेमीकी बिदाई क्या ऐसी ही होती है ? इससे अच्छा तो दुश्मन बिदाई देता और लेता है ? वह थोड़ी देरतक यही सब सोच रहा था कि तनमन पीछेकी सीढ़ीसे उतरी और उसके पास आकर खड़ी हो गई। जगत आगे बढ़ा, उसका हाथ अपने हाथमें लिया—दबाया। हाथमें हाथ लिए हुए दोनों फाटक तक आये।

'प्यारे ! किशोर ! अब कब तक मिलन होगा ?'

'क्या कहूँ ? मेरा वश चले तो जल्दीसे जल्दी। जरा धैर्य रखना। प्रबन्ध करके हम दोनों ही परिणय-सूत्रमें बँधकर यहाँसे चल चलेंगे, माँको भी साथ ले लूँगा, जरा भी घबड़ाना मत।'

डबडबाई हुई आँखें साहससे ऊँचीकर तनमन बोली—'किशोर ! जब तक

तुम हो तब तक घबड़ाहट कैसी ? लेकिन जल्दी मिलना। जाओ, और मुझे भी आज्ञा दो। यदि गुलाब चाचीको मालूम हो जाय तो आफत मचा डालेंगी। मैं तो चुपकेसे आई हूँ।'

'देवी ! तब बिदा' जगतने हाथ बढ़ाया और तनमन आलिंगन-पाशमें बँध गई। आँसूमें आँसू मिल गया। यह आलिंगन, यह मिलाप लाखों भँवरोंकी फेरी देने बाद जैसा था। फाटककी खिड़कीसे कूदकर जगत दूसरी ओर गया। हाथका दबना, गालपरकी एक ज्वलंत चिनगारी सदृश चपत, ओष्ठ-स्पर्श; खिड़कीका दरवाजा बन्द करनेकी आवाज; कङ्कणपर तेजीसे दौड़कर जाती हुई तनमनकी परछाईं आदि जगतके स्मृति-पटलपर एकके बाद एक आने लगे। वह उपहास करती हुई सर्द, निर्दय चाँदनीमें खड़ा था। सृष्टिपर निर्जनता व्याप रही थी; वैसी ही निर्जनता उसके हृदयमें भी थी। उसने एक ठंढी साँस भरी; आँखें पोंछी और भारी हृदयसे वहाँ से वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

२५

ऊपर गुलाबने खिड़की खोली और जब यह सब दृश्य दिखाई पड़ा तो उसे अपने पतिको दिखानेके लिए उनका ध्यान आकृष्टकर बोली—'जरा इधर आइये ! "मेरी तनमन बेटी ऐसी" और "मेरी तनमन बेटी वैसी" कहा करते हैं, जरा आकर देखिये ! मेरा तो नाम ही बदनाम है।'

'क्या है ?' कहते हुए हरिलाल खिड़कीके पास आये। उन्होंने दो परछाइयोंको एक दूसरेकी ओर बढ़ते हुए, आलिंगन करते हुए और विलग होते हुए देखा। एक परछाईं दौड़ती हुई आकर बँगलेमें घुसी, दूसरी धीरे-धीरे चली जा रही थी। भोले हरिलालकी आँखोंके सामनेसे पर्दा हट गया, उन्होंने अपनी बेटीको भयंकर अग्निके समीप खड़ी पाया। 'यह मेरी तनमन ! और यह जगत !' इस विचार-मात्रने उन्हें दिग्मूढ़ बना दिया। शांत-स्वभाववश अपनी मूर्खतापर उन्हें तिरस्कार हुआ।

'यह मैं क्यों नहीं देख सका ? पन्द्रह वर्षकी लड़की बच्ची नहीं कही जा

सकती, यह मैं कैसे भूल गया ? ये कहाँ तक आगे बढ़े हैं ?' इस विचारमें उनका मस्तिष्क बेतरह उलझ गया और उनका रोगिष्ट मन घबड़ा उठा। सिरपर हाथ रखकर वह एक चारपाईपर बैठ गये।

'मैं सच कह रही थी या नहीं ? मैं नहीं कह रही थी कि इतनी बड़ी लड़की कुँवारी रखना ठीक नहीं ? लेकिन आप तो सुधारक हैं न ! लीजिये, अब सुधारका फल चखिये।'

'गजब हो गया ! मुझे तो इसका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था।'

'मुझे तो बहुत पहलेसे ही खबर थी कि इनका भाई-बहनका नाता कैसा है। लेकिन आपको तो 'तनमन, तनमन और तनमन !' गुलाबने यह भी ताना दिया कि —मेरी अपनी लड़की होती तो चीरकर रख देती !

हरिलालको समझ ही नहीं पड़ रहा था कि वे क्या करें। विश्वास-पात्रके विश्वास-घातक सिद्ध होनेपर खिन्नताका होना स्वाभाविक है। लेकिन अभी तनमनपर स्नेह वैसा ही बना हुआ था, एकाएक विश्वास उठ जाना कठिन था। इसपर गुलाब जब विमाताका भाव प्रदर्शित करती तब तो उनके तन-बदनमें आग लग जाती थी। वे चिड़चिड़ाकर बोले 'अरी ओ सौतेली माँ ! अपनी चतुराई जाने दे, क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसका मुझे सब ज्ञान है। जा, चुपचाप जाकर सो।'

हरिलाल भी सोने चले गए। थोड़ी देरमें गुलाबकी नाक बोलने लगी, पर हरिलालको निद्रा नहीं आई। दो बजे तक निःश्वाँस लेते हुए वे करवट बदलते रहे ! आखिर रहा नहीं गया 'हा बेटी !' कहकर वे उठे और सावधानीसे ताकि गुलाब न उठ पड़े, पीछेके कमरेमें गये। तनमन वहाँ अर्द्ध-निद्रामें पड़ी हुई थी। जगतका दिया हुआ रूमाल, जिसपर अपने बालसे उसने उसका नाम काढ़ा था, उसके हाथमें मुँहके पास पड़ा था। हरिलाल वहाँ खड़े रहे। बाहरसे अमृतकी वर्षा करती हुई ज्योत्स्नाका मीठा रसमय प्रकाश आ रहा था। निद्रामें तनमन जरा हँसी। हरिलालकी आँखें भीनी हो गईं। किसीकी उपस्थितिका निद्रामें कुछ ज्ञान हुआ हो इस प्रकार वह थोड़ा जाग उठी; और अद्भुत मधुर स्वप्नमें बोली 'कौन किशोर ?'

हरिलालके मुखपर दुःखका बादल छा गया। उसी समय तनमनने आँखें खोलीं और पिताको खड़े देखा।

'क्या है पिताजी! इस समय?' तुरन्त उसे असाधारण प्रसंगका संदेह हुआ। सावधानीसे रूमाल उसने अपनी जेबमें छिपा लिया।

चारपाईपर बैठकर हरिलालने तनमनके कँधेपर हाथ रखा। बचपनसे पाली हुई, मातृ-हीना कन्याके प्रति उनका स्नेह उमड़ आया—रोष सब जाता रहा। तनमनका हाथ पकड़कर कहा 'बेटी! तुझसे कुछ बातें करने आया हूँ।'

'मुझसे? इस समय?'

'हाँ! नींद नहीं आ रही है' अत्यधिक शोकसे सिर हिलाते हुए उन्होंने पूछा 'अभी उठते समय तू क्या बड़बड़ा रही थी, पता है?'

'कुछ तो नहीं!' तनमन घबड़ा उठी; पिताजीको मालूम हो गया क्या? बड़ी सावधानीसे बातचीत करनेका उसने निश्चय किया।

'तूने जगतका नाम लिया था?'

'ओह! वह आज गया है इससे ऐसा हो गया होगा।'

'तनमन! बेटी! मुझीको ठगेगी? बचपनसे, जितना तेरी माँ करती उससे भी अधिक प्यारसे तुझे पाला, पढ़ाया। वृद्धावस्थामें दिनों-दिन मैं अपङ्ग होता जा रहा हूँ, इस समय मुझे ही धोखा देगी?'

यदि क्रोध किया होता तब तो तनमन साहस रखती। किंतु अपने पिताके ये दयनीय भावसे कहे गये शब्द वह सहन न कर सकी। पिताकी गोदमें सिर रखकर वह बोली 'पिताजी! पिताजी ऐसा क्यों कह रहे हैं? आपको मैं धोखा दूँगी?'

'तब सच-सच बता, जगतने तुझसे क्या कहा है?'

भावुक माँ-बाप अपने लड़कोंकी अपेक्षा दूसरोंका दोष अधिक देखते हैं।

'जगतने? कुछ भी तो नहीं।'

'सच बता दे बेटी! तुझको विलग होते हुए मैंने स्वयं देखा।'

तनमनका हृदय भर आया। उसने सब कह देना ही ठीक समझा।

'पिताजी ! व्यर्थ किसीके साथ अन्याय मत कीजिये। क्षमा प्रदान करें तो सब बता दूँ।'

'तनमन ! आजतक कभी भी तुझे कुछ नहीं कहा और न कहूँगा। तेरे सुखसे ही सुखी हूँ।'

पिताके कंधेपर सिर रखकर काँपती हुई लज्जाशील बालाने पितासे कहने योग्य सभी बातें कह दीं। बचपनमें ली हुई शपथ, एवं बड़े होनेपर की प्रतिज्ञा भी कही। न्यायी, स्नेही पिता भी पुत्रीका क्या दोष निकाले ? वह तो स्वाभाविक, सरल सत्य ही कह रही थी। अनुभवी आँखोंसे घूरते हुए भी हरिलालने पुत्रीकी प्रशंसा की।

'लेकिन बेटी ! अब सब भुला दे। जगतको भी भुला दे।'

'पिताजी ! आप ऐसा कह रहे हैं ? बचपनमें सतियों की, प्रेममयी पत्नियों की कथा कहकर मेरे विचार आपने पुष्ट किये, उसका पालन न कर मैं अपराधिनी नहीं हो सकती। इसमें मेरा दोष ही क्या है ?'

'दोष क्या है ? किंतु जगतके साथ प्रेम किस कामका ? उससे भला विवाह हो सकता है ?'

'क्यों नहीं ?'

'बेटी ! वह अन्य जातिका है नहीं तो कभीका उसके साथ तेरा विवाह मैंने कर दिया होता।'

'जातिका झंझट आनेसे तो मेरी मृत्यु निश्चित है। पिताजी ! आप तो सुधारवादी हैं, आपको तो इस जात-पाँतको तोड़ना होगा।'

'इस वृद्धावस्थामें तोड़ा जा सकता है ? नहीं।' कुछ ठहरकर बोले 'विचार करूँगा, यह काम सरल नहीं है।'

'मेरा सिर विचार करना है ?' कहती हुई गुलाब आ धमकी।

आध घंटे तक दरवाजेके पीछे छिपकर बाप-बेटीकी बातचीत उसने सुनी थी। वह पुराने विचार वाले कुटुम्बकी लड़की थी। 'लड़की इस प्रकार मुँहपर कालिख लगावे, बाप सुने और जाति बाहर विवाह करनेका विचार करे ! बुद्धि कहीं चली तो नहीं गई है ?' बात सुधारनेके लिए वह आगे बढ़ी। हरिलाल

देखते रहे। तनमनने बापके कंधे पर से सिर उठाया। सिंहनीकी भाँति सिर हिलाया—विमाता की ओर देखने लगी।

'आप भी क्या हैं? अपने कुलके लाजकी भी क्या परवाह नहीं है? यह चार बित्तेकी छोकड़ी जो मुँहमें आवे बकती जाय और आप चुपचाप सुन रहे हैं?

'तू घबरा मत' डरसे धीरे स्वरमें हरिलाल बोले। वे गुलाबकी बिलायती धारवाली जीभसे अत्यधिक डरते थे; 'जरा सुनो तो सही!'

'सुन चुकी, सुन चुकी! यह भी सुननेकी बात है? दीजिये दो थप्पड़ अभी सीधी हो जाती है। 'मैंने तो प्रतिज्ञा की है, बड़ी प्रतिज्ञा करने वाली! कल पत्र लिखकर विवाह जल्दी ही कर डालिये। सब शेखी भूल जायगी। बड़ी 'मेरा किशोर' वाली!' गुलाब आवेशमें बोल गई। हरिलाल तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ ही हो गये। उनका शांत स्वभाव गुलाबके गुस्सेके आगे प्रायः दब जाता था; लेकिन तनमनसे नहीं रहा गया।

'गुलाबचाची! जरा जबान सम्भालकर बोलिये। पिताजीके रहते इतनी बुद्धिमत्ता क्यों खर्च कर रही हैं? मुझे आपके भाईके साथ विवाह करना होगा तो आपसे पूछने आऊँगी।' गौरवसे ~~तनमन~~ व्यंग्य करते हुए बोल उठी। उसके ओंठ एक पर एक बैठे हुए थे। उसके बड़े-बड़े नेत्र कौमुदीके प्रकाशमें चमक रहे थे। पहले जैसा बताया जा चुका है, साढ़े तीन वरोंमें से घर गिरवी रखनेवाला एक लहरी युवक उसका मौसेरा भाई भी था।

गुलाबका मिजाज हाथ से जाता रहा। तनमनको सीधा करनेके इरादेसे वह बोली—'लीजिये, सुन लीजिये। बड़ी बोलनेवाली बना रखा है। बड़े-छोटे का भी कुछ विचार है या नहीं? इतनी बड़ी हुई, इतना भी ज्ञान नहीं है। यदि तेरा बाप ठीक होता तो अबसे तू दो लड़कोंकी माँ हो गई होती! देख, कलही तेरे श्यामदास मामाको पत्र लिखकर विवाह पक्का कराती हूँ। दिमाग तो देखो! विवाहकी प्रतिज्ञा लेकर बड़ी बैठनेवाली। सीधे बापको सता रही है। लेकिन मैं देखती हूँ कि तू कैसे विवाह कर चुकी है और फिर कैसे नहीं करती, लुच्ची कहीं की!'

'वाह गुलाबचाची वाह! आपने भी आज विमाताका चण्डी रूप खूब

धारण किया है ! क्या बात है ? मेरी समझमें जो आयेगा करूँगी और जिससे इच्छा होगी विवाह करूँगी। आपको मेरे बीचमें दखल देनेका कोई हक नहीं है।' उसके ओंठ तिरस्कारसे विकृत हो गये, 'मैं भी आपका घमण्ड देखूँगी कि आप मेरा कैसे विवाह करती हैं। आप जैसी कितनी मेरे सामने आयेंगी, हार मानेंगी और सिर पटककर मर जायेंगी। श्यामू मामा प्राण ले लेंगे बस न कि और कुछ करेंगे ? जो आपसे हो सके कर डालिये, अपनी शत्रुता निकाल डालिये काट डालिये—मैं तो किशोर की थी, किशोर की हूँ और किशोरकी ही रहूँगी। मनसा, वाचा, कर्मणा मैं तो उनकी ही पत्नी हूँ। समय आनेपर उनके लिए प्राण भी निछावर कर दूँगी बस ? फिर कौन ब्याहने आयेगा ?'

वह तनकर खड़ी थी। आँखोंमें दृढ़ तेजोमय तिरस्कार चमक रहा था। वह ऐसी दीप्त हो रही थी जैसे कोई वीराङ्गना निर्भयतापूर्वक शत्रुको समरमें निमंत्रण दे रही हो। कुछ समय तक वहाँ शांति रही।

'तनमन ! बेटी—' बोलते-बोलते हरिलालकी जीभ ऐंठ गई। चीखकर वह लेट गये। यह उनपर लकवाका दूसरा आक्रमण था।

२६

गुलाब गत रात्रिका अपमान सहन नहीं कर सकी। तुरन्त ही तनमनको वशमें करनेके उपायकी उसने योजना की। दूसरे ही दिन उसने श्यामदासको बुलवाया।

तनमनका मामा जानने योग्य व्यक्ति था। जातिके सभी लोग उससे डरते थे एवं घरके सभी लोग उससे काँपते थे। लड़ाई-झगड़ा करनेमें, चिल्लानेमें एक, दिलका कड़ा एवं बुद्धिका मन्द था। पञ्चायतमें इसके उपस्थित रहनेपर सज्जन पुरुष अपना मान भङ्ग होनेके डरसे वहाँसे उठकर चले जाते थे एवं सदैव बाकी बचे हुए मूर्खोंकी सहायतासे अपना निर्धारित कार्य वह पूरा कर लिया करता था। वह शिक्षक था, पर छड़ीसे पीटनेके सिवा दूसरी कोई विद्या उसे नहीं आती थी। किंतु पाठशालाकी शिक्षासमितिके मेम्बरोंके यहाँ भोज,

चाय-पानी आदि के अवसरों पर वह इतना उपयोगी सिद्ध होता कि म्युनिस्पैलिटी के पैसेसे ऐसा योग्य कार्यकर्त्ता रखनेमें सभी मेम्बर सहमत थे। यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी कि तनमनकी माँ बिचारी इसीके डरसे मर गई। हरिलाल उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे, किन्तु निकट सम्बन्धी होनेसे उसका आदर तो उन्हें करना ही पड़ता था।

श्यामदास आया। गुलाबने नमक-मिर्च लगाकर सब बातें कह डालीं। लड़कियोंको वयस्क करके विवाह करनेका नाम सुनकर तो वह जल उठता था, वह इसे आर्य-धर्मके विरुद्ध समझता था। इसका कारण एक और भी था, इसने कुटुम्बकी लज्जा रखनेके स्तुत्य हेतुसे अपनी साढ़े सात वर्षकी कन्याका विवाह नौ वर्षके लड़केके साथ कर दिया था; जिससे लोगोंने उसकी निन्दाकी थी। अतः यह बात सुनते ही वह आँखें फाड़कर देखने लगा।

हरिलालकी शारीरिक स्थिति लकवेके आक्रमणसे गम्भीर हो गई थी, जिससे उनकी सेवामें ही तनमन चौबीसो घंटे लगी रहती। दवाका, पथ्यका, सोनेका सब प्रबन्ध वह स्वयं करती; कौन औषधि कब देना है, इसका तो गुलाबको कुछ ध्यान ही नहीं रहता था, वह चारपाईसे कुछ दूर बैठी रहती; इतनेसे ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेती थी। रात्रिमें बारह-एक बजे जब हरिलालको कुछ निद्रा आ जाती तब उनके पैरके पास अपना सिर रखकर तनमन जेबमेंसे जगतका रूमाल निकालकर, उसे चूमकर, थोड़ा-बहुत सो लेती।

कुछ दिनोंतक तो श्यामदास उर्फ श्यामू भाईको बात करनेका अवसर ही नहीं मिला; एक दिन तनमन भोजन कर रही थी उस समय यह वहाँ गया।

'तनमन! तेरी तो बड़ी शिकायत सुन रहा हूँ!' हमेशाकी तरह आँखें निकालकर जोरसे श्यामू बोला। तनमन जानती थी कि ऐसा ही कोई आक्रमण होगा जिससे इसके लिए वह पहलेसे ही तैयार थी। शूरवीर हृदयसे उसने निश्चय किया था। वह श्यामू मामाके सात पीढ़ीके भी तरेरने एवं घुड़कनेसे डरनेवाली नहीं थी। वह उसकी ओर अनिमेष आँखोंसे देखती रही।

'अभी तो जरा शान्त रहो, पिताजीकी तबीयतका तो जरा विचार करो।'

'अहा! तुझे ही केवल चिन्ता है या और किसीको भी? विवाहके

सम्बन्धमें तेरी धींगाधींगी नहीं चलेगी, समझती है ? लड़का कुँवारा सुना है लेकिन क्या लड़की भी कहीं कुँवारी सुना गया है ?'

'श्यामू मामा ! यदि गुलाव चाचीने डराने धमकानेके लिए बुलाया हो तो प्रयत्न व्यर्थ है । अपना निश्चय मैंने पिताजीसे कह दिया है, उससे मैं डिगने वाली नहीं ।'

'ऐसा' व्यंगसे सिर हिलाते हुए वोला—'मेरा कहा नहीं मानेगी ?'

'मामा, तुमसे मेरेमें बुद्धि कम नहीं है अपने निश्चयानुसार ही करूँगी ।'

'हूँ !' श्यामू मामा आग बबूला हो गये । मानो आँखसे ही डरा देना चाहते हों, इस प्रकार आँखें फाड़फाड़कर देखते रहे । तनमन डरनेवाली नहीं थी । श्यामू उठा, बड़बड़ाया 'यह सीधी तरहसे नहीं मानेगी ।'

श्यामू मामाके आनेपर ही तनमनके जीमें डर पैदा हो गया था । यह उपद्रव करेगा तो बहुत कुछ सहना होगा, यह निश्चित था । उस रात्रिमें पिताको पंखा झलते समय जगत याद आया । उसका मुख, उसकी आकृति, उसके शब्द याद करके वह मुस्कुराई, छाती पर रखे हुए रूमालको जरा दबाया और 'मेरा किशोर !' हठात् उसके मुँहसे निकल पड़ा । हरिलालने आँख खोलीं । उन्हें होश आ गया था जिससे कुछ-कुछ समझते थे । लेकिन बड़े परिश्रमसे बहुत थोड़ा ही उनसे बोला जाता था । आँखके संकेतसे तनमनका माथा अपने मुँहके पास रखनेके लिए कहा । ऐंठी हुई जीभसे एक ही शब्द 'जगत' निकला । तनमन समझ गई; उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी, हरिलालकी आँखें भी डबडबा आईं । पिता और पुत्री पास ही पास सिर रखकर सो गये ।

थोड़ी देर बाद पास ही सोई हुई गुलाब जागी और उन दोनोंको इस प्रकार सोये हुए देखकर वह मनमें बड़बड़ाई इतनी बीमारीमें भी कितना प्रेम दोनोंमें है ?' और करवट बदलकर सो गई ।

चार-पाँच दिनमें हरिलालकी स्थितिमें कुछ सुधार हुआ । आरामकुर्सी पर नौकर उन्हें पकड़कर बैठाते और वे कुछ बोल सकते थे ।

'तनमन ! श्यामदास क्यों आया था ?' हरिलालने पूछा ।

'मुझे धमकानेके लिए गुलाब चाचीने बुलाया था ।'

हरिलालने ठंढी साँस खींची। उन्हें विश्वास हो गया कि उसकी इस फूलके समान सुकुमार पुत्रीको उसकी विमाता और मामा दोनों मिलकर मार डालेंगे। वे स्वयं दिनोंदिन रोग-ग्रस्त होते जा रहे थे। शरीरका कुछ ठिकाना नहीं था। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे आकाशकी ओर देखा मानो तनमनको ईश्वरके चरणों में सौंप दिया हो।

दो-चार दिन और व्यतीत हो गये; श्यामूका पत्र आया। हरिलाल पत्र तनमन ही पढ़ती थी। तनमनने उसे खोला एवं रोलीका छींटा देखकर वह डरी।

'परम माननीय हरिलालकी सेवा में'

सूरतसे लिखा सेवक श्यामदास गोरधनदासका जैगोपाल वंचना। आपकी पुत्री तनमनका विवाह बम्बईके सेठ करमदास त्रिभुवनके साथ पक्का कर दिया है। लग्नकी तिथि मिति वैशाख कृष्ण द्वादशी वार भौम निश्चित हुई है! सो जानियेगा। सब तैयारी मैं कर लूँगा, किसी बातकी चिन्ता मत कीजियेगा। चैत कृष्ण अमावस्या, १९.........'

पढ़ते-पढ़ते तनमनका गला भर गया, उसकी आँखोंमेंसे आँसू गिरने लगे। पत्र पूरा होते ही चिल्लाकर वह रो पड़ी 'पिताजी! मुझे सचमुच ही मार डालेंगे क्या?'

अन्तिम आक्रमणके पश्चात् हरिलाल बिलकुल दुर्बल हो गये थे, उनकी आँखोंसे भी आँसू गिरने लगे।

'बेटी! भगवान जो करेंगे वही होगा। मैं सब ठीक कर दूँगा, घबड़ा मत!'

तनमनने देखा कि उसके पिता अपङ्ग हो रहे हैं और उनमें मानसिक अथवा शारीरिक शक्ति नहीं रह गई है।

'पिताजी! किशोरको लिखूँ?'

'लिखनेसे लाभ? वह बालक है, व्यर्थ वह भी दुःखी होगा। हे प्रभु!'

'ठीक है!' तनमनने सोचा कि जगतको लिखनेसे कोई लाभ नहीं है, वह भी क्या कर सकेगा? आशा केवल पिताजीके स्वस्थ होने पर थी।

दूसरे ही दिन निमन्त्रणपत्रका बण्डल आ गया। श्यामदासने लिखा था कि 'सब जगह भेज दिया है, कोई बच गया हो तो उसके पास भेज देनेकी कृपा करेंगे।' यह शीघ्रता देखकर तनमन और हरिलाल दोनों घबड़ा गये। गुलाबकी खुशीका पारावार नहीं था, वह तो फूली नहीं समा रही थी।

'अब एक ही उपाय है। मैं स्वयं सूरत जाकर इसे रोकूँगा; इतनी जल्दी क्या पड़ी है ?' हरिलालने कहा। डाक्टरने, पूछनेपर दो-एक दिन बाद जानेकी अनुमति दी, लाचार रुकना ही पड़ा।

तनमनका मन अधिकाधिक भीरु होता जा रहा था। यथाशक्ति उसका सब समय पिताकी सेवामें ही व्यतीत होता था। पितासे जगतके सम्बन्धमें बात करनेपर उसका दुःख कुछ कम होता जाता था। हरिलालसे वह इस प्रकार बात करती मानो जगतके साथ उसका विवाह हो चुका हो। संगीत वाली रात्रिमें हुई रूठने मनानेकी बात भी उसने कह डाली।

'धत् तेरे की ! तू इतनी जबरी है; यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ। जब जगतको इतना परेशान करती है तब दूसरे की क्या ?'

तनमन जरा लज्जित होकर बोली 'नहीं पिताजी ! किशोरको कभी सताती नहीं। यह तो न मालूम क्या हो जाता है कि उससे लड़ जाती हूँ।'

'और पीछे मेल होता है' हरिलालने कहा, 'वह पुस्तक निकाल !'

पुस्तकमें बताई हुई कविता तनमनने पढ़ा।

Blessing on the falling out
Which all the more endears
When we fall out with those we love
And kiss again with tears.

इस कविताका अर्थ तनमन समझ सकती थी जिससे उसका मुँह लाल हो गया। यह उसके सुखकी घड़ी थी।

'पिताजी ! सब कुछ आप ही के हाथमें है।'

'बेटी ! जो कुछ हो सकेगा अवश्य करूँगा।'

तीसरे दिन वे सूरत चले गये।

———

२७

श्यामूभाईने कुछ भी उठा नहीं रखा। घर रंग गया था, निमंत्रण पत्र बँट गया था, खाने-पीनेका सब प्रबंध हो गया था। करमदास सेठ भी तनमनके साथ विवाह करनेके लिये उतने ही आतुर थे। उनका अन्तिम मकान चौथी बार रेहन रखा जा चुका था। बालकेश्वरका उनके बङ्गलेका कुछ भाग भी किरायेपर उठ गया था। इस गरीबीमें हरिलालका उत्तराधिकारी होना तो उसके लिए स्वाति-बूँदके समान था। बंबईसे उनके कुटुम्बके लोग आ पहुँचे थे, केवल स्वयं वही अभी बाकी थे। नौ-दस दिनमें श्यामदासने नवीन सृष्टि रच दी थी।

हरिलालके आते ही उन्हें तीसरे खण्डपर पहुँचवा दिया जहाँसे उनके लिए हटना ही कठिन हो गया। वे तो वहाँ कैदी बन गये। श्यामूभाईने सभी नौकरोंको रुपयेका लालच देकर अपने वशमें कर लिया था। हरिलालके आनेपर दो दिन तो वह उनसे मिला तक नहीं। मिलनेपर हरिलालने पूछा 'क्यों श्यामदास! यह क्या कर रहे हो?'

'दूसरा क्या? तनमनके विवाहकी तैयारी!'

'मुझसे तो कोई कुछ पूछता ही नहीं?' बीमारीमें भी क्रोधसे उन्होंने पूछा।

'आप बीमार हैं, इससे आपको कष्ट देनेसे मतलब?'

'लेकिन मुझे करमदासके साथ तनमनका विवाह नहीं करना है।'

'पागल हो गये हैं क्या? हम भी कोई पासी-चमार हैं कि इस प्रकार ब्याह छूट जायगा?'

'लेकिन—'

'इस समय मुझे बहुत काम है, पीछे बात करूँगा' कहकर श्यामदासने चल दिया।

निराश होकर बिचारे हरिलालने बिछौनेपर हाथ पटका। सामने बैठी तनमनका प्राण अब-तब-सा हो रहा था। षड्यंत्र कैसा रचा जा रहा है, वह देख रही थी। इसका परिणाम क्या होगा, यह भी वह अच्छी तरह समझती थी।

'पिताजी! यह तो मेरा गला घोंटनेका प्रबन्ध हो रहा है।'

'मैं क्या करूँ ?' हरिलाल भी रो पड़े, 'मेरा भाग्य इस समय विपरीत है, कोई नौकर भी नमकहलाल नहीं है। जिस नौकरको वकील बुलानेके लिए भेजा था उसने लौटकर मुँह भी नहीं दिखाया। क्या करूँ ? बेटी ! मेरी लाड़ली ! तेरे भाग्यमें क्या बदा है ?'

'पिताजी ! मैं स्वयं वकीलको बुला लाऊँ ?'

'तुमसे होगा ?'

'क्यों नहीं होगा' कहकर वह सीढ़ी उतरने लगी।

'कहाँ जा रही है ? अरे ओ तनमन !' गुलाबने पूछा।

'कुछ काम है, अभी आती हूँ।'

'नहीं जाना है ! खड़ी रह; नहीं तो तेरे मामाको बुलाती हूँ।'

'तुम मना करनेवाली होती कौन हो ? तुम अपना काम करो' कहकर तेजीसे वह सीढ़ी उतर गई। तुरन्त गुलाबने श्यामदासको बुलाकर पीछे भेजा। तनमनको दो काम था। एक तो वकीलसे संदेशा कहना और दूसरा जगतसे भेंट करना। इस विपदके समय जगतके सिवा और कौन दूसरा सहायक था।

वकीलके यहाँ पहुँची, और उनसे सारी परिस्थितियाँ बतलाईं। संध्या हो गई थी जिससे वह तेजीसे वहाँ से निकली। बड़े रायजीका घर उसने देखा नहीं था, भाड़ेकी गाड़ी करके वहाँ जानेका उसने विचार किया। नजदीकी रास्तेसे जानेके लिए वह अंधेरी गलीमें घुसी ही थी कि तुरन्त पीछेसे दो मजबूत हाथोंने उसे पकड़ लिया, चिल्लानेके पहले ही उसका मुँह किसीने हाथसे दबा दिया। वह बहुत छटपटाई, किन्तु सब निरर्थक हुआ। बहुत दिनोंकी थकावट, जागरण, वियोग एवं विलापने उसके सुन्दर, तेजस्वी शरीरको क्षीण तथा निर्बल बना दिया था। जिस पुष्पकलीसी कुमारीने थोड़े दिन पूर्व जगतको बिदा किया था वह आज कुम्हला गई थी। वह थककर मूर्च्छित हो गई।

२८

होशमें आने पर तनमनने अपनेको हरिलालके कमरेमें बिछौनेपर पड़ा पाया। हरिलाल सो रहे थे। तनमनका सिर दुःख रहा था, उसका सब शरीर अकड़ गया था। उठकर उसने मुँह धोया, शीशेमें देखा। रातमें दीपकके मन्द प्रकाशमें प्रफुल्लवदन, नाचती हुई, मदोद्धत तनमनके बदले कान्तिहीना, मुक्त-कुन्तला, रुग्णा तनमन देखकर एक आह निकल गई, जाकर आराम कुर्सीपर बैठ गई। अपनी स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी; आजके अनुभवसे इतना तो निश्चय हो गया कि श्यामू जिस प्रकार भी होगा विवाह करेगा। हरिलालका विचार चाहे जो भी हो, वे कुछ कर सकनेमें बिलकुल ही असमर्थ थे। इस समय उनकी अपङ्ग एवं निराधार अवस्थामें तो तनमन ही उनका एक आश्रय थी। वह भला तनमनकी क्या सहायता कर सकते थे? तनमनको छोड़ घरके किसी भी व्यक्तिको उनकी चिन्ता न थी।

जगतको बुलाना असम्भव था। कलसे पत्र भी उसे देना बन्द कर दिया गया था। जगत आकर ही क्या कर सकेगा? विवाहका लग्न इतना पास आ गया था कि घरके आदमीके सिवा कोई उसे रोक नहीं सकता था। तनमन भयसे काँप उठी; उसके लिए तो अब भागकर जाना असम्भव था; इससे भी अधिक कठिन काम था सन्देशा भेजना। शायद ही दो फर्लाङ्गकी दूरी पर उसका किशोर रहता होगा, उसे स्मरण करता होगा, डुम्मसमें अपना प्रेम-सन्देश भेजता होगा किन्तु इस समय तो उन दोनोंके बीच आकाश-पातालका अन्तर था। कोई नौकर ऊपर नहीं आने पाता था, आता भी तो कुछ जवाब न देता। गुलाब आया-जाया करती थी किन्तु वही तो सब दुःखोंकी जड़ थी।

क्रमशः तनमनके मनमें स्थिति स्पष्ट होती गई, वे उसे विवाह देनेके लिए कटिबद्ध हैं। उसे पता था कि करमदास तो हरिलालके धनके साथ विवाह करने आया है इसलिए चाहे वह कितना ही उपाय क्यों न करे; वह वापस लौटनेवाला जीव नहीं है। तनमनको इसका ज्ञान हो गया; उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। डुम्मसका स्वप्न पूर्ण होनेकी आशा जाती रही; जगत अब नहीं मिलेगा, अपनी प्रतिज्ञाका पालन वह नहीं कर सकेगी, स्वर्ण-मय सुखके बाँधे

हुए हवाई किलेमें जाकर वह बस नहीं सकेगी, उसकी भविष्यकी मधुर स्वर्णिम कल्पनायें यों ही अपूर्ण रह जायँगी। अपने किशोरकी भावी चिरसंगिनी बनकर, उसके सन्तानकी माता बनकर, उसके सुखसे ही सुखी होकर स्वयं उसके साथ उच्च प्रेमके सहजीवनमें सम्बद्ध नहीं हो सकेगी। यह विचार उसके लिए वज्राघात सदृश था। उसने छाती पर हाथ रखा और उसके मुँहसे अनायास ही निकल पड़ा—

'हे भगवान ! ओ मेरे किशोर !'

'बेटी क्या कर रही है ?' बिछौने परसे हरिलाल का मन्द स्वर सुनाई दिया।

तनमन उठकर पिताके पास गई। पिताने वकीलके सम्बन्धमें पूछा। उत्तरमें तनमनने सब आप-बीती कह सुनाई। हरिलाल सारा वृत्तान्त सुनकर अवाक् रह गए।

'पिताजी ! कुछ समझ नहीं पड़ता कि मैं क्या करूँ ? मेरी क्या गति होने वाली है ?' हरिलाल पर अपना विचार उसने प्रकट किया।

'मेरी लाड़ली ! हाय ! हाय ! यह दिन भी मुझे देखना बदा था। सच है ये राक्षस तुझे जीवित नहीं रहने देंगे। अपनी दशा देखकर मरनेकी इच्छा होती है, पर तेरा क्या होगा ? ऐसे पतिके साथ तेरा कैसे निर्वाह होगा ? मेरी आँखों की तारा ! तेरा जीवन कैसे बीतेगा ?'

'पिताजी ! आप घबड़ाइये नहीं। मेरे शरीरके इस ढाँचेके साथ भले ही विवाह कर लें, पर स्वीकार करना या न करना मेरे हाथकी बात है। मुझे भले ही मार डालें पर वे मुझे वशमें नहीं कर सकेंगे।'

'तनमन ! व्याकुल मत हो, बहुतोंको पहले ऐसा ही होता है, पीछे उनका जीवन सुधर जाता है। तेरा भाग्य भी शायद ऐसा ही हो।'

'पिताजी ! पिताजी ! ऐसा मुँहसे न निकालिये। आप मुझे पहचानते नहीं ! यह संसारके सुधरनेकी तो बात जाने दीजिये। जोर-जुल्मसे विवाह कर देंगे तब क्या आप समझ रहे हैं कि करमदासकी पत्नी बनकर दूसरी लड़कियोंके समान मैं संसार चलाऊँगी ? पिताजी ! मैंने अपने किशोरसे कह रखा है कि यदि मैं उन्हें न पा सकी तो उनके जीते जी उनकी विधवा रहूँगी। जिस दिन

करमदासके साथ मेरा विवाह होगा उसी दिन मैं अपनी चूड़ी फूटी समझ लूँगी। किशोरने एक बात कही थी, आयर्लैंण्डकी एक बाला 'प्रमेट' पतिके वियोगमें कुम्हलाकर मर गई थी। वह बात मुझे प्रायः ही स्मरण आती है। दिन भर अपने मनमें मैं वैसा ही देखती रहती हूँ, बल्कि उससे भी अधिक। वह गरीब बेचारी शान्त थी किन्तु इन पापियोंका मुँह काला करनेके लिए मैं ऐसी बन जाऊँगी कि ये भी जन्म भर याद करेंगे। जीवन देना पड़ेगा तो वह भी दे दूँगी किन्तु सतियोंके—राजपूत-रमणियोंके समान। श्मशानमें भी यमराज एवं यमदूत काँप उठेंगे।'

उसका मीठा स्वर प्रेमावेशसे काँप रहा था। जिन आँखोंमें रसिकताका गुप्त भण्डार सदैव झलकता रहता था वहाँ तलवारकी तीक्ष्णता चमक उठी। उसके हाथकी मुट्ठी बँधी हुई थी, दाँत पर दाँत बैठे हुए थे। हरिलाल कुछ देर तक उसे देखते रहे।

'बेटी! बेटी! तू कह क्या रही है?' हरिलाल इतना ही बोल सके।

'पिताजी! मैं पागल नहीं हूँ, मैं सच कह रही हूँ। आपने मुझे राजकुमारीके समान पाला है; अपने किशोरकी रानी बनकर रही हूँ और यदि अभाग्यवश बुरा समय आ गया तो यह भी दिखा दूँगी कि मैं रानी होने लायक हूँ। आपको या आपकी शिक्षाको लांछन नहीं लगाऊँगी।'

'तनमन! यह रूप, यह गुण क्या इसी प्रकार नष्ट हो जायगा? हे प्रभो! जब तू छोटी थी तब तेरी माँका वियोग भुलानेके लिए मैं तुझे अपनी छातीपर लिए फिरता था? अपने ऑफिसमें अपने पास ही छोटी कुर्सी पर तुझे बैठाता था। अपनी चोटी खोलकर बालसे तू मेरी आँखें ढँक देती थी, याद है? बेटी तेरा अहर्निश हँसना कहाँ गया?' विलाप करते हुए हरिलाल बोले। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी झरने लग गई।

'तनमन! एक बार तो हँस दे, आज कितने दिन हुए! वह राग तेरा कहाँ गया? वह खूबी कहाँ गई?'

'पिताजी क्या हसूँ? आपको प्रसन्न करनेके लिए जो कहिये वह करूँ

किन्तु हँसी नहीं आती। ऐसा लगता है कि मैं वह तनमन ही नहीं हूँ, गाया भी नहीं जाता।'

'कुछ तो गा, बहुत दिनोंसे कुछ सुना नहीं है।'

'क्या गाऊँ ?'

'जो तुझे—अच्छा लगे !'

'पिया तैं कहाँ गयो नेहरा लगाय—गाऊँ ?'

'यह तो तेरे किशोरका लगता है, क्यों ?'

तनमनने सिर जरा झुका लिया, कांति-हीन गालोंमें नये खूनका स्फुरण मालूम पड़ा; धीमी रागसे उसने गाया; गानेके बाद गहरी आह भरी। हंसिनी मृत्यु-गान गा रही थी।

× × ×

इस प्रकार कुछ दिन और व्यतीत हुए, धूमधाम शुरू हुई। लोग आने-जाने लगे। कन्या और कन्याके पिता कैदीके समान ऊपर पड़े हुथ थे। बढ़िया कपड़ा पहनकर, उल्लाससे नाचती। हुई गुलाब दो-चार बार ऊपर आती। हरिलाल बड़ी कठिनतासे काँपते हुए खड़े हो पाते थे, तनमन बराबर उनके पास रहती थी। ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो बाप-बेटीका बलिदान करनेकी तैयारी हो रही है।

पाणिग्रहणके एक दिन पूर्व गुलाब पुत्रीको उबटन लगानेके लिए आई। 'तनमन इधर आ !'

कठोरतासे शान्तिपूर्वक तनमनने पूछा, 'क्यों ?'

'काम है, उबटन लगाना है।'

'उसे लगाओ जिसका विवाह होता हो, न तो मेरा विवाह है और न मैं उबटन लगाऊँगी।'

'हाय हाय ! भला यह कैसा हठ ?' कहकर तनमनका हाथ पकड़नेके लिए वह आगे बढ़ी।

'गुलाब चाची ! खबरदार जो मुझे उँगली लगायी तो !'

'अरे ओ—' बिछौने परसे हरिलाल बोले 'तू मुझे मार डालनेके लिए

तैयार हुई है, व्यर्थ उसकी जान क्यों ले रहो है ?'

'आप पड़े रहिये, आप ही ने तो उसे चौपट कर डाला है। शकुनका उबटन लगाये बिना कहीं चल सकता है ?'

'कमजात ! इसीके लिए तुझसे शादी की थी ?'

'अरे जरा आज तो चुप रहते, लीजिये मैं जाती हूँ।' (तनमनसे) 'ठहर ! अभी तेरे मामाको भेजती हूँ।'

तनमनने गुलाबको तिरस्कारसे देखा और गर्वसे चुपचाप खड़ी रही। वह दिन यों ही बीत गया। रातमें बढ़िया कपड़ा पहनकर स्त्रियाँ आईं, बैठीं और उन्होंने गीत गाये। गुलाबने तो 'मेरो तनमत' की गीत गानेमें अपना गलाही बैठा लिया। ऊपर तनमन क्रोधमें हँसी। वह उस वीर योद्धाके समान, जो अपने वचनके लिए हजारों योद्धाओंसे घिरे रहने पर भी यमराजके यहाँ विजयी होकर जानेका विचार कर रहा हो, तैयारी करने लगी। रातमें कमरेका दरवाजा बन्द करके बाप-बेटी सोये।

१६

श्यामू मामा तड़के ही उठा। आठ बजे पाणिग्रहणका मुहूर्त्त था, जिससे सभी तैयारी करनी थी। वह भी समझ रहा था कि असली मुसीबत अब आने वाली है किन्तु सब प्रकार से मुकाबला करनेके लिए वह तैयार था। उसने नीचे बरात की अगवानी करनेके लिए आदमियोंको भेज दिया; पुरोहितों की जेब गरम कर शीघ्रातिशीघ्र विवाह करा देनेका प्रबन्ध किया, अपनी पत्नीको स्त्रियोंका सत्कार करनेपर नियुक्त किया, स्वयं उसने एवं गुलाबने तनमनको मनानेका काम हाथमें लिया। जब बरात नजदीक आ गई तब वह तनमनको बुलाने ऊपर गया।

हरिलालका कमरा बन्द था, साँकल खड़खड़ानेपर भी कोई उत्तर नहीं मिला, तनमतको पुकारा तब भी कोई उत्तर नहीं। श्यामदास इस प्रकार पराजय मानने वाला नहीं था। नौकर भेजकर तुरन्त उसने लोहार बुलवाया और दरवाजा

उतरवाकर भीतर पैठा । हरिलाल चारपाईपर बैठे थे । पास ही में निर्बल, कान्तिहीन पर गौरवसे सुशोभित तनमन खड़ी थी । उसके रक्तहीन सफेद चेहरेपर विजयी साम्राज्ञी की, रुष्ठ देवी की भव्य निश्चलता प्रकट हो रही थी । दरवाजा के टूटनेके समय बायरनके 'ग्लैडियेटर' के सामने जिस प्रकार स्वदेश स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था उसी प्रकार उसकी आँखोंके सामने रत्नगढ़का राम-मंदिर, डुम्मसकी आम्रवाटिका, किशोरकी स्मित मुख-मुद्रा एक-एक कर नाचने लगीं । उसने अपने वक्षःस्थल पर रखे हुए रूमालको दबाया ।

'छोकड़ी चल !'

'कहाँ ?' हरिलालने पूछा ।

'कहाँ ? बरात आ गई, इसके हठसे क्या मुहूर्त्त टल जायगा ? हरिलाल, तुम व्यर्थ बीचमें बोलो मत । यह लड़की इसी प्रकार सीधी रहेगी ।'

'मुझे लड़कीको सीधी नहीं करना है, तुमसे विवाह खोजनेके लिए किसने कहा था ? अपने घरमें ही मुझे कैदी बना रखा है, साले चाण्डाल ।' हरिलाल क्रोधसे आगबबूला होकर बोले ।

तनमन बीचमें ही बोल उठी; इतनी उत्तेजना पिताके स्वास्थ्यके लिए उसे ठीक नहीं मालूम पड़ी; उसकी आवाज शान्त पर कटाक्षमय थी । 'पिताजी ! आप क्यों उत्तेजित हो रहे हैं ? श्यामू मामा ! आपसे यह सब करनेके लिए किसने कहा था ? पिताजीकी इस अवस्थाका लाभ उठाकर उन्हींके घरमें बैठ कर आपलोग मौज उड़ा रहे हैं, उनकी इकलौती पुत्रीका गला घोंटनेके लिए तैयार हुए हैं, लज्जा नहीं आती । अधिक उत्पात मचायेंगे तो आपकी बरातके स्थानपर दूसरी ही बरात निकलेगी ।'

'अरे चुप रह बारात वाली !' श्यामू चिल्ला उठा । वह अभी-अभी कोतवाल साहबके यहाँसे सब प्रबन्ध ठीक करके आया था; जिससे निडर था ।

'चलती है या नहीं, नहीं तो अभी गला घोंट दूँगा ।'

'तू कौन है मेरी पुत्रीका गला घोंटनेवाला ? निकल मेरे घरमें से' कहकर पुनः उत्तेजित होकर हरिलाल उठकर बैठ गये ।

'ऐसी लड़कीको जीवित रहने देने की अपेक्षा गला घोंट देना हजार गुना अच्छा है। उतर ! चलती है या नहीं ?'

हरिलालकी आँखें निकल आईं। 'हरामखोर ! चो—' उत्तेजनासे, क्रोधसे हरिलालकी जीभ ऐंठ गई, लकवाका पुनः आक्रमण हुआ। उनकी आँखें पथरा गई, वे धड़ामसे गिर पड़े; तनमन चिल्ला उठी। श्यामू तनमनके पास जाकर खड़ा हो गया और बोला—'गुलाब बहन ! हरिलालको देखो तो, मैं तनमनको ले जाऊँ। वर उतरा या नहीं ?'

ऊपर घरका मालिक दम तोड़ रहा था और नीचे शहनाई बज रही थी।

'हाय मेरे पिता जी !' कहकर तनमन चारपाई पर झुकी। हरिलालके पास जाकर गुलाबने तनमनको ढकेल दिया। श्यामदासने उसे पकड़ लिया। तनमनने जी-तोड़ छुड़ानेका प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ।

'मामा ! मुझे छोड़ दो नहीं तो दाँत काट लूँगी, छोड़ो।' उसकी आँखें निकली हुई थीं, उसकी चिल्लाहट कमरेमें गूँज उठी। श्यामदास जरा घबरा गया और उसे छोड़ते हुए उसने पूछा—'चलती है या नहीं ?'

'चलती हूँ, तुम्हारे मुँहमें कालिख पोतने। मेरी माँको तो मार ही डाला, अब मुझे भी मार डाल। और गुलाब चाची ! अब तू निश्चिन्त होकर वैधव्य भोग। नीच चाण्डालों ! मैं तो मर जाऊँगी लेकिन तुम्हारे रोम-रोममें कीड़ा पड़ेगा।' उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें तेज चमक रहा था। उसने अपना शरीर वशमें किया। उसके चेहरेपर मृतकी रक्तहीनता व स्थिरता थी। कोमल, हँसमुखी, देवाङ्गनाके समान तनमन किसी संहारकारिणी दुर्गाकी दृढ़तासे, गर्वसे बाहर निकली। मरणोन्मुख राज-हंसिनी जिस प्रकार अपने डैनोंको फड़फड़ाती है, उसी प्रकार उसने अपना वस्त्र ठीक किया। पीछे-पीछे श्यामदास चला।

तनमनका मन उद्विग्नतासे परिपूर्ण था, उसकी आँखोंके सामने अँधकार मालूम पड़ने लगा। धीरे-धीरे पैर रखती हुई वह उतरी; मनुष्योंकी भीड़ देखी, इधर-उधर आदमी घूमते हुए दिखाई दिये। प्रातःकालका समय था; फिर भी रात्रि जैसा अँधेरा देखकर उसे आश्चर्य हुआ। सारा ब्रह्माण्ड उसे घूमता हुआ मालूम पड़ रहा था, कोई मण्डपमें चिल्ला रहा था। एकाएक बाजा बजने

लगा—हो हा शुरु हुआ। तनमनका दम घुटने-सा लगा; छातीपर रखे हुए रूमालको बायें हाथसे उसने दबाया, दाहिना हाथ कोई पकड़े था। वह कौन था उसे दिखाई नहीं दे रहा था। 'मेरे किशोर!' थोड़ी हँसी आई; 'चारो ओर अंधकार ही अंधकार—हो गया—सब हो गया—सब अँधेरा हो गया।' कहकर तनमन गिर पड़ी।

लग्न-मण्डपमें धमाचौकड़ी मच गई। कन्या मूर्च्छित हो गई थी; उधर कन्याका बाप दम तोड़ रहा था।

३०

मूर्च्छित तनमनको विवाह-मण्डपमें छोड़ कर- पाठक चलें हम रघुभाईकी खबर लें। अंतिम बार जब हमने उसे देखा था उस समयसे पाँच वर्ष व्यतीत हो गये हैं। धीरे-धीरे अनपेक्षित रीतिसे, कार्यकर्त्तागण, सिपाही, रेजिडेंसी सभी उसके निपुण हाथमें आते गये। कभी-कभी अपना हाथ दिखानेकी उसकी इच्छा होती किन्तु साहस जवाब दे जाता। शायद निर्धारित लक्ष्यपर जल्दीमें वार खाली न चला जाय। उसपर अनंतानंद बीचमें ही कूद पड़ते थे।

यह चमत्कारी पुरुष अपनी विशाल बुद्धि एवं अद्भुत व्यक्तित्वसे राज्यमें भ्रमण किया करता था और बहुतसे मनुष्योंको उसने अपने पक्षमें कर लिया था। वारतमठका कम किया हुआ वर्षाशनके पूर्तिकी याचना करने वह पुनः नहीं आये। उसके तीसरे वर्ष रेवाशङ्करने मठका बाकी वार्षिक भी बंद कर दिया; रघुभाईने पुनः स्वामीको देखनेकी आशा की थी किन्तु वे किसी कार्यमें व्यस्त थे। उनके गुरु करुणानंद मर गये एवं मठाधिपति अनंतानंद हुए, यह भी सुना गया। सभी बातें रघुभाईकी समक्षमें आतीं किन्तु इस स्वामीकी चाल अगम्य जान पड़ती। उसकी इस अगम्यतासे उसे पसीना छूटता जिससे वह कोई कदम आगे रखनेमें आगा-पीछा करता।

रेवाशङ्करको वर्षाशन बंद कर देनेसे ही संतोष नहीं हुआ। उन्होंने सुना कि वारतमठकी जमीनमें, जो अब तक परती पड़ी हुई थी, अब अत्यधिक

पैदावार होती है। उनका लोभ उन जमीनोंको हड़पनेके लिए उद्वेलित होने लगा। दो वर्ष पश्चात् उसने ऐसा आज्ञा-पत्र भी भेज दिया, बहुत दिनोंतक लिखा-पढ़ी चलती रही। कितने ही खातोंपर राज्यका अधिकार दिखाया गया; धीरे-धीरे बारतकी जमीन-जायदादके जप्त हो जानेका लोगोंको भय होने लगा। रेवाशङ्कर दृढ़ स्वभावके व्यक्ति थे, बारतपर उनकी निगाह गड़ी हुई थी।

जसुभा तो ज्यों के त्यों बने हुए थे। चम्पा अभी भी रणुभाके साथ रहती थी और राजाको फुसलाती थी। क्रमशः उसमें गम्भीरता और गौरव बढ़ गया था। देवलबाने ईर्ष्या करना भी छोड़ दिया था।

अब जसुभामें भी कुछ चेतनता आने लगी। राज्यमें घूमनेके लिए इच्छा प्रकट की। रेवाशङ्करका चश्मा विस्मयसे जमीनपर गिर पड़ा। उसने समझ लिया कि यह लगाम किसी दूसरे द्वारा खींची गई है, किन्तु बीस वर्ष पुराना दीवान ऐसी बातोंको तृणवत् समझता था। उन्होंने 'यात्रा' की तैयारी कर दी और जसुभा निकल पड़े।

३१

ऐसे समय रघुभाई केवलपुरकी धर्मशालामें जा बैठा। इस बीचमें रघुभाईमें अधिक परिवर्त्तन नहीं हुआ था। चेहरेपर अधिक वयका गाम्भीर्य अवश्य कुछ बढ़ गया था। धर्मशालामें कामचलाऊ दफ्तर बन गया था क्योंकि जसुभाके पर्यटनके प्रबंधका भार नायब-दीवानपर था। धर्मशालासे थोड़ी ही दूरपर जसुभाका पड़ाव पड़ा हुआ था।

'रघुभाई! तुम्हारे लिए बड़ा ही कठिन समय आ रहा है।' सामने बैठे हुए मनुष्यने कहा

वह ४०-५० वर्षका चश्माधारी, जमाना देखे हुए पारसी था। वह रत्नगढ़के रेसीडेंटका सरिश्तेदार था एवं साहब के नवागन्तुक होनेसे सब कारोबार पेस्तनजी सेठके ही हाथमें था। उनकी भाषा भी पूर्ण लच्छेदार पारसीशाही थी जिसका शुद्ध रूप ही यहाँ दिया जाता है।

'कठिनताकी तो बात ही मत कीजिये, यह आखिरी दाँव है। दस वर्षके परिश्रमका फल मिलनेवाला है। सब कुछ सेठ आप ही पर निर्भर है।'

'कुछ चिन्ता नहीं, दोस्त!' पेस्तनजीने कहा 'जो कुछ मुझसे हो सकेगा मैं करूँगा, किन्तु इस बावासे तुम इतना क्यों घबड़ाते हो?'

पेस्तनजी एवं नायब-दीवानमें बाप-बेटे का सम्बन्ध था। रघुभाई या पेस्तनजी दो में से किसीसे काम निकालना हो, तो किसी एकके पास नजराना भेज देनेसे तुरन्त काम हो जाता था, ऐसी लोकोक्ति थी।

'सेठ! इस बाबाके तो नामसे मुझे डर लगता है, जो वह कहता है उसे तुरन्त करना पड़ता है, नहीं तो क्या महाराज 'टूर' (यात्रा) पर भला निकलनेवाले थे। यह तो रणुभा और चम्पाके कहनेसे ऐसा हुआ है और मुझे तो विश्वास है कि इन्हें उभाड़नेवाला यह बाबा ही है।'

'चम्पा और महाराज में पहले जैसा व्यवहार तो अब नहीं मालूम देता।'

'नहीं जी! यह दूसरी ही स्त्री है। राजकी एवं अनंतानंदकी सहचरी तथा रणुभाकी स्त्री! इसकी तो विशेषता ही न्यारी है। आई तब छटी हुई नायिका थी, और अब साधुनीका ढोंग करती है एवं राज्यतंत्र हथियानेकी इच्छा रखती है।'

'ले चुकी राज्यतंत्र! यह तो उसका चेहरा ही बता रहा है।'

'यह मत कहिये। धीरे-धीरे महाराजकी सभी आज्ञाओंमें दखल देती है। रेवाशङ्कर तो आजकल हवा हो गये हैं।'

'किन्तु यह बाबा किसलिए महाराज, 'टूर' पर ले आया है! यह घोटाला कुछ समझमें नहीं आ रहा है।'

'देखो ऐसा है' हथेलीपर हथेली दबाते हुए रघुभाई बोला 'बाबाकी इच्छा महाराजको वारत ले आनेकी है। सुना गया है कि बाबाकी सत्ता वहाँ पूर्णरूपसे बैठी हुई है, इससे कहा नहीं जा सकता वहाँ क्या होगा। आज पाँच वर्षका समय बीत गया; न तो यह बाबा कुछ करता है और न करने देता है। इसका दाँव तो समझ ही में नहीं आ रहा है।'

'लेकिन जब तक रेवाशङ्करको हटाया नहीं जाता तबतक क्या हो सकता है?'

'हाँ, ऐसा संयोग उत्पन्न करना भी दो ही के हाथमें है। एक बाबा और दूसरा–'

'दूसरा किसका ?' पेस्तनजीने मुँह फैलाकर पूछा।

'आपके सेवक का। किन्तु इस समय मुझसे कुछ हो नहीं सकेगा। सेठजी ! आपके प्रतापसे रेसीडेंसी तो हाथमें है। लेकिन पूर्णरूपसे सब तैयार है या नहीं, इसकी बाट जोह रहा हूँ।'

'इस समय मुझे किसलिये बुलाया है ?'

'केवल इसीलिए कि आवश्यकताके समय यहाँ आप तैयार रहें। जसुभाकी रक्षा करनेकी आवश्यकता पड़े—मुझे कोई जरूरत आ पड़े—'

'लेकिन आवश्यकता कब पड़ेगी ?'

'अधीर मत बनो। मुझे महाराजको बारत जाने देनेकी इच्छा नहीं है। वहाँ जानेसे बाबाके आधीन हो जाना पड़ेगा। महाराज वापस लौटें तो मैं अपना प्रभाव दिखाऊँ।'

'लेकिन वह प्रभाव है क्या, यह तो रघुभाई तुम बताते ही नहीं हो।'

'सेठजी ! इसके लिए क्षमा करो। यह प्रभाव तो प्रकाशित होनेपर ही मालूम होगा। अभी तो उसे मनके भीतर ही छिपा रखनेकी आवश्यकता है। रेसीडेंट एवं सेक्रेटेरियट इन दो स्थानोंमें गुप्त संदेश भेजा है किन्तु बाजी पूरी हुए बिना कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'ठीक है मुझे कुछ—'

इतनेमें किसीने बाहरसे दरवाजा ठोंका। उठकर रघुभाईने जरा दरवाजा खोला।

'कौन है ? मैंने क्या कहा था ?'

'किन्तु अन्नदाता ! यह तो स्वामीजी हैं।'

'कौन अनन्तानन्द ?' जरा घबड़ाये हुए स्वरमें रघुभाईने पूछा।

'जी हाँ !'

उसने बायें हाथसे दरवाजा पकड़ा और दाहिने हाथसे पेस्तनजीको कोठरीमें चले जानेका संकेत किया। भीतर जाकर पेस्तनजीने दरवाजा बन्द कर दिया, तब रघुभाईने दरवाजा पूरा खोलकर कहा—'रणछोड़ ले आ !'

'बहुत अच्छा !'

अनन्तानन्दजी आये, छः वर्षके अन्तरसे उनमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था। आँखकी एक तीक्ष्ण दृष्टि चारो ओर उन्होंने दौड़ाई। रघुभाईने जरा भयसे भीतरकी कोठरीकी ओर देखा।

'कहिये महाराज, क्या आज्ञा है?'

'आज्ञा क्या? जसुभा वारत कब आ रहे हैं?'

'वे तो महाराज, बराबर अस्वीकार ही करते जा रहे हैं।

'तब तुम 'स्वीकार' कराओ।'

'मैं कैसे कराऊँ?'

'तब दीवान कैसे बनोगे? मैंने तुमसे कहा था न? वारत ले जाये बिना छुटकारा नहीं है। रेवाशंकरकी अत्याचारपूर्ण तथा भीखमंगी राजनीतिसे राज्य मिट्टीमें मिल रहा है, इसका उन्हें तभी ज्ञान होगा। पहले तो पैसे पर ही उनकी दृष्टि थी अब तो वारतमठका नामोनिशान मिटा देनेकी फिक्रमें हैं। अतः हमारा विग्रह तो भयङ्कर है।'

रेवाशङ्करने अनन्तानन्दके बढ़ते हुए प्रभावका स्वाद चखा था, और वारत-मठको हटानेके लिए प्रयत्नशील थे। इसीसे बाध्य होकर स्वामीने राजाका पर्यटन पर निकलनेका प्रबन्ध किया था। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि अब दो मेंसे एक—रेवाशङ्कर या अनन्तानन्द रह सकते थे। रेवाशङ्करको हटानेमें स्वामी सफल नहीं हो सके थे क्योंकि रेसीडेण्ट, बम्बईका सेक्रेटेरियट और जसुभा तीनों उसपर मुग्ध थे।

'महाराज आपके लिए जो कहें मैं करनेके लिए तैयार हूँ किन्तु—'

'रघुभाई! किन्तु-विन्तुकी बात तो मेरे सामने करना व्यर्थ है। कल प्रातः-काल जसुभाको वारतमें आना ही चाहिये। उनका स्वागत करनेके लिए सब सामग्री तैयार है। अब उन्हें वहाँ ले आने भरकी देर है।'

'वे न स्वीकार करें तब। इस सम्बन्धमें उन्होंने बड़ा हठ पकड़ लिया है।'

'रघुभाई! यह बात मैं नहीं जानता, जसुभाको वारत आना ही पड़ेगा और इसे तुम्हें भी स्वीकार करना ही होगा' जब स्वामीजी ने ऐसे वाक्य कठोर

स्वरमें कहा तब रघुभाईको पैरके नीचेकी मिट्टी सरकती हुई जान पड़ी। उनके शब्द भाग्य-रेखाके समान निश्चल दिखाई पड़े।

'अच्छी बात है, जो कुछ मुझसे हो सकेगा करूँगा।'

'अवश्य, इतना तो करना ही पड़ेगा; मुझे पता है कि अब 'टूर' के आगेके प्रोग्राम पर विचार करनेके लिए तुम्हें साढ़े पाँच बजे महाराजने बुलाया है। वहाँ निश्चय करना और बाहर निकलते ही छोटू जमादारसे कह देना, मुझे सूचना मिल जायगी। तद्पश्चात् क्या करना है यह मैं देख लूँगा' कहकर उस कोठरीकी ओर एक दृष्टि डालकर अनन्तानन्द चले गये।

रघुभाई पुनः गद्देपर लेट गया। धीरेसे सिर निकालकर पेस्तनजी सेठ बाहर आये।

'यही तुम्हारा बाबा था ? मैंने तो उसे अच्छी तरह देखा ही नहीं।'

रघुभाईने सिरसे पसीना पोंछा और कुछ स्वस्थ होने पर पेस्तनजीसे बोला—'अब कुछ करना चाहिये, बहुत दिनों तक बैठा रहा। अच्छा पेस्तनजी सेठ! अपने आदमियोंके साथ आप तालोदमें रहियेगा। वारत वहाँसे पास ही है; जरूरत होने पर आदमी भेजूँगा अथवा मैं स्वयं आऊँगा।'

पेस्तनजी उठे, उसने ओवरकोट पहना। रघुभाईने उठकर उनके हाथमें नोटका एक /बण्डल पकड़ा दिया जिसे बिना देखे पेस्तनजी सेठने जेबमें डाल लिया और मुँह छिपाकर पीछेके दरवाजेसे वे चले गये।

रघुभाई गद्दीपर पुनः लेट गया, इस समय उसकी स्थिति नाजुक थी। रेवाशङ्कर उसे शत्रु समझते थे और इसकी प्रतिक्रिया उसे लाचार होकर बर्दाश्त करनी पड़ती थी। अनन्तानन्दकी अद्भुत शक्तिने चारो ओर जाल बिछा रखा था जिसमें वह स्वयं फँस गया था। अनन्तानन्दका हेतु अभी तक उसे मालूम नहीं हुआ था। जैसे बाबा नचाता, उसे नाचना पड़ता था किन्तु उसे हाथमें रखे बिना छुटकारा भी नहीं था। रणुभा उनका, चम्पा उनकी; इन सबसे बचकर अपनी महत्ता सिद्ध करनेका मार्ग उसने ढूँढ़ निकाला था। उसके पास जो भेद था उसका लाभप्रद उपयोग उसी समय हो सकता था जब कि यही राज्य-तन्त्र बना रहे एवं वह दीवान पदपर आसीन हो जाय। राजा बननेकी अपेक्षा

राजाको काबूमें रखकर राज्य करनेवालेका पद भले ही नीचा हो किन्तु पैसा, शान्ति तथा निर्भयता उससे अधिक मिल सकती है। बहुत विचारके पश्चात् रघुभाई इस निष्कर्ष पर पहुँचा। इस भेदके प्रतापसे जसुभा पर यदि विजय प्राप्त की जा सकी तो बिना परिश्रम रेवाशङ्कर निकाल बाहर हो जायँगे, अनंतानंदका प्रताप जाता रहेगा और वह स्वयं रेसीडेन्सी तथा राज्य दोनोंका मालिक बन जायगा।

जसुभाको सर करनेका अवसर वह ढूँढ़ रहा था; अनन्तानन्दकी अगम्यता के कारण उसे सूझ नहीं रहा था कि ऐसा अवसर कब आयेगा। रघुभाई अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षामें बैठा था, परिस्थितियोंसे उसे आभास मिल रहा था कि वह अवसर अब दूर नहीं है।

३२

जसुभा खेमेमें एकान्त बैठे हुए थे। बगलमें मेजपर बिजलीका पंखा चल रहा था। वे स्वयं चाय पी रहे थे। रणुभा पत्र लिख रहे थे, इतनेमें रघुभाई आया और सलाम करके नम्रतापूर्वक खड़ा हो गया।

'रघुभाई!' ऊपर देखे बिना जसुभा बोले 'यदि इस जिलेका निरीक्षण हो गया हो तो यहाँसे चला जाय।'

'जी हाँ अन्नदाता! निरीक्षण हो गया। महाराजकी आज्ञा हो तो यहाँसे कूच किया जाय।'

'रणु! अब व्यर्थ वारत चलनेका हठ कर रहे हो? अरे रघुभाई!' जरा तनकर बैठते हुए महाराजने पूछा, 'तुमने वारतका कारोबार देखा सुना?'

'जी हाँ, देख लिया; सब ठीक है।'

'हूँ, यह तो ठीक है' थोड़े विस्मयके साथ जसुभा बोले 'यह मैं नहीं पूछता।' जसुभा अधिक समय तक बात कर ही नहीं सकते थे, बातचीत इच्छाके अनुसार ही होनी चाहिये। उन्होंने चायका एक घूँट पिया, तब तक रघुभाई पूरी बात सुननेकी प्रतीक्षामें खड़ा रहा।

'क्या तुमने यह पुस्तिका देखी ? यह वारतमें छपी है' जसुभाने एक पुस्तक उठाकर देखते हुए कहा, 'कैसी अच्छी छपाई है ? ऐसी छपाई अपने यहाँ तो नहीं होती ?'

'अन्नदाता ! यह तो मैंने भी सुना है कि यहाँ की बहुत-सी वस्तुएँ अच्छी होती हैं।'

'कौन शिक्षा देता है ?'

'कौन जाने महाराज !' सत्यको छिपाते हुए रघुभाई बोला। अर्द्ध-निमीलित नेत्रोंसे जसुभाने रघुभाईकी ओर देखा। जसुभाने स्वाभाविक दक्षतासे जान लिया था कि कोई नया दाँव-पेंच उसके आसपास चल रहा है। वारतकी ख्याति, वहाँकी कला, वहाँ पर स्वामीका प्रभाव ज्यों-ज्यों वह पास पहुँचता गया त्यों-त्यों उसके ध्यान पर अधिकाधिक प्रकाश डालता गया। वह आसानीसे देख सकता था कि चारों ओर वारतका आश्चर्यजनक प्रभाव फैला हुआ है; दो हजारकी बस्ती वाला गाँव आठ-नौ वर्षमें नौ-दस हजारकी बस्ती वाला हो गया है। आलस्यसे चिढ़कर, चम्पा और रणुभा उन्हें कायर न समझने लगें, इस हेतुसे जसुभा पर्यटन पर निकले थे। रघुभाई न मालूम क्यों इस योजनाका समर्थक न था, इस समय वारत जानेके विरुद्ध था एवं उसकी मीठासके नीचे बेहद महत्वाकांक्षा छिपी थी। ये सब बातें राजासे छिपी नहीं थीं। ये सब दाँव-पेंच उनके लिए आनन्दप्रद थे। रणु और चम्पा क्यों रघुभाईको पराजित करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं, रेवाशङ्कर और रघुभाईके बीच कैसी तनातनी चलती है, ये सभी बातें उनके विनोदका कारण होतीं एवं एक प्रेक्षकके समान विरक्तिसे सबको निराश करनेमें ही उन्हें सन्तोष मिलता था। इस समय रघुभाई पासा खेल रहा है, यह वे जानते थे। किन्तु वह क्या है, इसे समझनेका प्रयत्न उनसे न होता।

'यह स्वामी कौन है ?'

'कौन, महाराज ! वारतवाला ? एक चालाक स्वामी है। वहाँ कुछ उलटा-सीधा कर रहा है, किन्तु है अपने विचारका बड़ा पक्का। किसी भी कारपरदाज़को क्षण भरके लिए शान्तिसे बैठने नहीं देता।'

'क्यों ?'

'कौन जाने ?'

'किन्तु मुझसे कोई कह रहा था कि वारत देखने लायक है। यहाँसे वह कितनी दूर है ?'

'यही लगभग सात मील होगा, लेकिन वहाँ कुछ विशेष देखने लायक नहीं है।' थककर रघुभाईने अपना पासा फेंका।

'ओह ! आई सी' [मैं समझता हूँ]। चाय पीकर सिगार जलाते हुए जसुभाने पूछा—'तुमने देखा है ?'

'नहीं महाराज, लोग कहते हैं।'

'तब रणु।' रणुकी ओर देखकर जसुभा बोले, 'व्यर्थ हठ क्यों करते हो ? वारतमें क्या हीरा-मोती जड़े हैं ?'

रणुभाने कुर्सीपर घूमकर कहा—'यदि आप न जाना चाहते हों तो एक दिनके लिए मुझे आज्ञा दीजिये, चम्पाके साथ मैं जाकर हो आऊँ।'

'जी हाँ महाराज ! आपको जानेमें कष्ट भी बहुत होगा, रास्ता अच्छा नहीं है' रघुभाईने अपनी ओरसे जोड़ दिया।

रणुभा 'मैंने सुना है कि वहाँ जानेके लिए रास्ता बहुत ही अच्छा है।'

'नहीं रणुभा साहब ! वारतवालोंने सड़क बनवानेके लिए आज्ञा माँगी थी किंतु रेवाभाईने सड़क बनाने कहाँ दिया ?'

'ठीक, तब तुम्हारा अभिप्राय नहीं है; क्यों रघुभाई ? तब यहाँसे वापस लौट चलना चाहिये क्यों, ?' चम्पा और रणुभाको थोड़ा चिढ़ानेके हेतुसे जसुभा बोले।

'महाराजकी जैसी इच्छा।'

'अब जाओ, जो करना हो करो, इतना घूमकर देख लिया, बहुत हुआ। वारतमें ऐसी कौनसी महत्वपूर्ण वस्तु रखी है ! अब वापस चलो।' कहकर पैर फैलाकर जसुभाने अपना निश्चय प्रकट किया।

वारत देखनेकी आकांक्षाकी अपेक्षा यात्रासे होनेवाले कष्टका उन्हें अधिक डर था।

यह निश्चय सुनकर रघुभाई मौका चूकनेवाला नहीं था। हजूरको सलामकर वह बाहर छोटू नायककी तलाशमें गया। पाँच मिनटमें स्वामीको राजाका निश्चय मालूम हो गया।

जसुभा मुँहमें बड़बड़ाये, 'चोर! मुझे बारत दिखाना नहीं चाहता, इसलिए इतना बहाना बता रहा है!' जोरसे 'रणुभा! अब तुम सबलोगोंको राज्यसे पेंशन लेना पड़ेगा।'

'क्यों ?'

'यह तुम्हें एक घड़ी भी टिकने नहीं देगा।'

'यह कौन ?'

'रघुभाई, इसे दीवान तो होने दो' जरा हँसकर जसुभा बोले।

रणुभा आँखें मींचकर कटाक्ष पूर्वक बोले—'मियाँ मर जायँगे तो क्या मस्जिदमें दिया नहीं जलेगा ?'

बात बदलते हुए जसुभा बोले—'मुझे तुम्हारे स्वामीसे मिलनेकी बड़ी इच्छा है।'

'इसीसे कहता हूँ कि बारत चलिये। आपको याद है? पाँच-छः वर्ष पूर्व जब प्रथम बार वर्षाशन बंद किया गया था तब वे आपसे मिलने आये थे।'

याद है, कुछ थोड़ा थोड़ा; किन्तु लोगोंपर उनका इतना प्रभाव है, यह तो मैंने आज ही देखा।'

'यह तो मै आपसे कहते-कहते थक गया कि इनके जैसा......।'

'हुश' कहकर जसुभाने उँगलीसे इशारा किया, 'राज्य प्रपञ्चकी बात जाने दो। अच्छा हुआ, लो यह चम्पा आ गई। तुमसे तो यह भगतिन चम्पा अच्छी, क्यों ठीक है या नहीं ?'

'क्या ?' पूछती हुई चम्पा आई। इस बीचमें चम्पामें विरक्ति, सौंदर्य, आसक्ति कम हो गई थी। अब वह अधिक गम्भीर तथा शान्त हो गई थी। उसने वेश्याका रहन-सहन सब छोड़ दिया था, इस समय वह एक पतिपरायणा गृहिणीके समान लगती थी। राज्यमें उसका स्थान, जैसा कि ऊपर रघुभाईने कहा है ठीक वैसा ही, विचित्र था। रणुभाकी तो मानो वह पत्नीके समान

ही थी। जसुभाके साथ वेश्याकी तरहका उसका सम्बन्ध दिनोंदिन कम हो रहा था, किन्तु मनोरञ्जन करनेकी जो अद्भुत कला उसमें थी, उसके द्वारा जसुभासे जो चाहे करा सकती थी। विशेष परिश्रम पूर्वक वह शिक्षा एवं अच्छे संस्कार प्राप्त करनेका प्रयत्न करती और राज्यमें रेवाशङ्करके बाद वही गण्यमान्य समझी जाती थी। जसुभा, रणभा, दीवान, नायब दीवान सभीको थोड़ा बहुत अपने वशमें रखती थी।

'वही जो तू साधू बन गई।'

'उसमें आपको क्या ? आपके लिए नरक तो हमेशा तैयार है। वहाँकी जन संख्या अभी ज्यादा नहीं हो पायी है !'

'चम्पा ! वारत जानेका हमने अपना विचार बदल दिया।'

'बहुत अच्छा किया, अब मैं अकेले वहाँ जा सकूँगी।'

'अरे रणु ! यह चम्पा और स्वामीके बीच अच्छा भाई-बहनका सम्बन्ध है। क्या तुम्हारा स्वामी वैष्णव संप्रदायका है ?'

'आप इस सम्प्रदायमें नहीं हैं, इसीका मुझे संतोष है। किन्तु आपने विचार क्यों बदल दिया ?'

'नायब-दीवानकी ऐसी ही राय है।'

'ऐसा ? कोई खास बात हुई !'

'यह तो तुम जानो ! अरे चम्पा, अपने स्वामीका तो हाल-चाल बतला।'

'अभी आप इस योग्य कहाँ हुए हैं ? जब हो जायँगे तो सब बतलाऊँगी।'

इस प्रकार बातचीतमें दो घंटे व्यतीत हो गये। भोजनोपरांत तीनों व्यक्ति खेमेके बाहर आ गए। चम्पाने सितार उठाया और संध्या समयकी ठंढी लहरोंपर उसका मधुर स्वर गूँजने लगा। जसुभा 'रिवाल्विग चेयर' [घूमनेवाली कुर्सी] पर पड़े हुए संगीतका आनन्द लेते हुए झूम रहे थे। थोड़ी दूरपर अङ्ग-रक्षक मूर्तिवत् खड़े थे। तंबूके दरवाजेके सामने 'सन्तरी' यांत्रिक खिलौनेके समान पैतरा भर रहा था। थोड़ी देरमें वहाँ कुछ बातचीत सुनाई दी। राजाके एकान्त सेवनमें कोई विघ्न न पड़े, इसका प्रबन्ध करनेके लिए दो 'सन्तरी' तथा एक अंग-रक्षक वहाँ दौड़ पड़े, किन्तु शान्ति स्थापन करनेमें समर्थ नहीं हुए। चम्पाका

गायन समाप्त होते ही कोलाहलकी भनक जसुभाके कानमें पड़ी।

'नायक !' अपने मंद संस्कृत आवाज से उन्होंने पुकारा।

अङ्ग-रक्षकका नायक उपस्थित हुआ।

'पाँच मिनट भी शान्तिपूर्वक हम बैठ नहीं सकते, क्यों ?'

'अभी देखे आता हूँ सरकार !' कहकर वह गया और शीघ्र ही वापस लौटा।

'अन्नदाता ! कुछ मनुष्य आपसे भेंट करना चाहते हैं।'

'इस समय ?'

'वे कह रहे हैं कि जब तक सरकार स्वयं अस्वीकार न करेंगे तब तक वे नहीं जायेंगे।'

रणुभाने पूछा—'आखिर वे हैं कौन ?'

'कहते हैं कि वे वारतके पक्ष हैं और सरकारको बुलानेके लिए आये हैं।'

जसुभाको आनन्द हुआ। जबसे वारत जानेका विचार त्याग दिया था तबसे आपसकी लड़ाईका खेल बंद हो गया था। जब तक रणुभा और चम्पा कुछ चिढ़ते न थे तब तक जसुभाको आनंद ही न आता। इस आलस्यमय जीवनमें दूसरोंके लड़ने, झगड़ने, रूठनेसे उनके मनको सुख व शान्तिका अनुभव होता।

'कल आनेके लिए कहो' जसुभा बोले।

'महाराज ! वे कहते हैं कल ही तो वह काम है जिसके लिए वे आपसे मिलना चाहते हैं।'

'तब रघुभाईसे मिलनेके लिए कह दो।'

'अन्नदाता ! यह भी कहा; किन्तु वे नहीं सुनते।'

'तब मिल क्यों नहीं लेते ?' चम्पा बोली।

'ऐसा ही करूँगा' जसुभा बोले।

जसुभाके लहरी स्वभावने सभी कृत्रिम रीत-रिवाजोंको कुछ अंशों तक कुचल डाला था; वह एक साधारण व्यक्तिके समान ही घूमते, फिरते और सबसे मिलते-जुलते थे।

'तब सोच क्या रहे हैं ? उनकी बात सुन लीजिये, अनावश्यक समझ पड़े तो सुबह बुलाइए।'

'अच्छी बात है, ले आओ' कहकर जसुभा थककर पुनः कुर्सीपर लेट गये।

तत्पश्चात् पाँच व्यक्ति भीतर आये, इनमें एक संन्यासी और एक सेठ मालूम पड़ते थे। प्रत्येक व्यक्तिके चेहरेपर दूसरे गाँव वालोंकी अपेक्षा अधिक संस्कृति दिखाई देती थी। पंचोंने झुककर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

'आप कौन हैं?' जसुभाने पूछा।

'महाराज! हम वारतके पञ्च हैं। सरकारको निमंत्रित करनेके लिए आये हैं।'

'आप हैं कौन?' जसुभाने लापरवाहीसे उकताकर पूछा।

'नगर-सेठ हूँ सरकार!' उस छोटेसे गाँवके नगर-सेठने गौरवसे कहा।

'कहाँ के लिए निमंत्रण देने आये हैं?'

'अन्नदाता! वारतमें पाठशालाके नये भवनका उद्घाटन समारोह है, हमलोग आपके पवित्र कर-कमलोंसे वह कार्य-संपादन कराना चाहते हैं। महाराज! हमने सुना कि आपने अपना वहाँ पधारनेका विचार त्याग दिया है। हम आपसे प्रार्थना करनेके लिये आये हैं कि हमने बड़ी कठिनता तथा परिश्रमसे यह भवन तैयार कराया है, आपके न पधारनेसे हम लोगोंका सारा उत्साह ठंढा पड़ जायगा।' किसी महाजनको समझा रहा हो इस प्रकार नगर-सेठ बोले।

'पाठशाला कैसी है?'

'महाराज हमारे यहाँ एक ही पाठशाला है जिसमें ककहरासे लेकर प्रोफेसर होने तककी शिक्षा दी जाती है।'

यह प्रशंसा सुनकर जसुभा हँसे, 'उसमें कितने लड़के हैं?'

'महाराज! ये हमारी पाठशालाके अध्यक्ष हैं, ये जानते होंगे।'

संन्यासी एक कदम आगे आकर बोला—'सरकार लड़कियाँ और लड़के दोनों मिलाकर ३२०० होंगे।'

'ह्वाट्?' (क्या) जीवनमें प्रथम बार आश्चर्यसे सीधे बैठते हुए जसुभा बोल उठे।

संन्यासीने शुद्ध अँग्रेजीमें शान्तिसे उत्तर दिया—'विस्मित होनेकी कोई

बात नहीं है महाराज ? ५४-५५ बालक बीमार हैं, बाकी सभी पाठशालामें पढ़ रहे हैं।'

'इन सबका प्रबन्ध कैसे होता है ?' रघुभाईने पूछा। वह इस निमन्त्रण की बात सुनकर अनन्तानन्दको गाली देते हुए वहाँ आ पहुँचा था।

'ग्राम-वासियोंसे' नगर-सेठसे शान्त उत्तर मिला।

'किस कक्षा तककी शिक्षा देते हो ?' जसुभाने पूछा।

उन्हें वारतका, उसे बड़ा बनानेवाले व्यक्तिकी भव्यताका ज्ञान हुआ। उनके सामने छः वर्ष पूर्व देखी हुई स्वामीकी मूर्ति नाचने लगी।

'महाराज हमारे यहाँ पदवी या डिग्री नहीं है। बालक २० वर्षकी अवस्था तक विद्याभ्यास करता है, इसके पश्चात् जो जिसकी इच्छा होती है, पढ़ता है।'

'आप कहाँ तक पढ़े हैं ?'

'मैंने काशी-विश्व-विद्यालयमें इण्टर तक पढ़ा था, इसके पश्चात् आठ वर्ष वारतमें पढ़ा।'

'वारतमें किसने पढ़ाया ?'

'महात्मा अनन्तानन्दजीने !'

जसुभा शुद्ध भावनाओंके जोशमें रघुभाईकी ओर घूमे। उनकी आवाजमें कठोरता थी। 'नायब-दीवान ! हम समझते हैं कि हमारा राज्य बड़ी अच्छी तरहसे चल रहा है क्यों ?'

रघुभाई जवाब नहीं दे सका। उसने अनन्तानन्दको केवल झगड़ालू समझ रखा था, इससे अधिक कुछ भी नहीं। साथ ही दीवान एवं कर्मचारीगण वारतकी ओर पहलेसे ही बहुत कम ध्यान देते थे। एक तो वह राज्यके बिलकुल सरहद पर था, दूसरे बीचमें बहुत बड़ा जङ्गल पड़ता था और बहुतसी जमीन मठकी होनेसे वसूली बहुत कम थी। वहाँ क्या सुधार हो रहा है यह सभी सुनते थे, किन्तु जानते नहीं थे कि वह क्या है।

जसुभा नगर-सेठकी ओर घूमकर बोले 'आप लोगोंने नया भवन निर्माण कराया है...किन्तु हम शायद ही आ सकें। वापस लौटनेकी आज्ञा निकल चुकी है।'

'महाराज आपकी गरीब प्रजा याचना करे, उसे आप अस्वीकार कर दें, यह तो हम मान ही नहीं सकते। संपूर्ण वारत आपका स्वागत करनेके लिए आतुर है हमारे महात्माजी भी अत्यन्त प्रसन्न होंगे।' पंचोंकी ओरसे अनुरोध हुआ।

'महात्माजी कौन; अनन्तानन्द ?' जसुभा चौंक पड़े।

'जी हाँ, महाराज !'

'अच्छा, रघुभाई ! हमें अपना क्रम बदलना होगा। इतनी दूर आये हैं तो वारत भी हो आना चाहिए। हमारा 'कैंप' यहीं पड़ा रहेगा। (पञ्चोंसे) अच्छी बात है। कल प्रातः छः बजे मैं आऊँगा।' कहकर जसुभा उठ गये।

रघुभाई दाँत पीसने लगा।

'वहाँ सब तैयार है महाराज !' कहकर नगर-सेठ भी दूसरे सज्जनोंके साथ बिदा हुए।

थोड़ी देरमें महाराजके जानेकी तैयारी हो गई। प्रसन्न होकर चम्पा और रघुभाने एक दूसरेका हाथ दबाया।

३३

वारत देखनेकी आतुरतामें आज जसुभा बहुत जल्दी उठे और चार बजे ही घोड़े पर सवार हो गये। रघुभाईने रास्तेको खराब बतलाया था पर रास्ता अच्छा था। चम्पा गाड़ीमें आ रही थी। साथमें थोड़ा बहुत रिसाला भी था। ग्रीष्मके उषःकालका प्रकाश फैलते-फैलते सभी वारतकी सरहद पर जा पहुँचे। वहाँ पंच, वारतका पटवारी और पच्चीस सवार स्वागत करनेके लिए तैयार थे। जसुभाने इतनी अधिक आशा बाँध रखी कि यदि वहाँ दूसरा 'लण्डन' दिखाई पड़ता तब भी उन्हें आश्चर्य न होता। घोड़े परसे ही उन्होंने पञ्चोंके अभिवादनकी, सवारोंकी सलामीका उत्तर दिया और दोनों तरफ लगाये हुए वृक्षोंसे सुशोभित मार्गसे एक छोटे लेकिन सुन्दर बंगले पर पहुँचे।

जसुभा भीतर जाकर एक आरामकुर्सी पर लेट गये। उनकी प्रत्येक आव-

श्यकताकी वस्तुओंका वहाँ पर प्रबन्ध था। ऐसी शान्ति रत्नगढ़में स्वप्नमें भी नहीं दिखाई देती थी। रेवाशङ्कर और रघुभाईके कथनानुसार यह एक मामूली गाँव था या बड़े शहरोंमें रहनेवाले कुछ धनी व्यक्तियोंके रहनेका स्थान?

देरसे उठनेकी आदतके कारण जसुभाकी आँखें लग गईं किन्तु एकाएक मधुर गानेकी आवाजने उन्हें जगा दिया। थोड़ी दूरसे मीठा स्वर आ रहा था—कुछ लड़के गा रहे थे। जसुभा उठे और जिस ओरसे आवाज आ रही थी उसी ओर बरामदेमें गये। बरामदाके नीचे बड़ा सा उपवन था। सूर्योदयके पूर्वकी रक्तिम रश्मियाँ उसके वृक्षशिखरोंको सोनेसे मढ़ रही थीं। गानेकी आवाज वहींसे आ रही थी। एक हजारसे अधिक बालक-बालिकायें वहाँ पर खेल-कूद रहे थे, फूल बीन रहे थे। बालक सफेद वस्त्र पहने हुए थे और बालिकायें गुलाबी; सभी सातसे अठारह-बीस वर्षके भीतरकी अवस्थाके थे।

प्रातःकालीन पवनकी स्निग्धता, उपवनका वासन्ती वातावरण, बालकोंकी चंचलता, उनका कोकिल कंठस्वर, इन सभी बातोंसे जसुभाने कुछ विचित्र आनन्दका अनुभव किया, नीचे खिड़कीमें रणुभा और चम्पा खड़े थे। दूर नये बने हुए मकानमेंसे एक संन्यासी आता हुआ दिखाई दिया। वह जिस बालक से मिलता उसीसे खिलवाड़ करता, किसीके सिर पर चपत लगा देता, कोई उसके पीछे दौड़ता। जसुभाने उसे पहचाना। वह पञ्चोंमेंसे एक था। वही बड़ा अध्यक्ष था किन्तु लड़के उससे भयभीत नहीं होते थे और न नमस्कार करनेके कृत्रिम विनय दिखानेके फेरमें अपने आनन्दमें विघ्न डालते थे।

'रणु! उस स्वामीजीको बुला न, वारत तो बड़ा रसिक गाँव दिखाई पड़ता है।'

दो मिनटमें संन्यासी रणुभा और चम्पाके साथ आये। 'स्वामीजी यह सब क्या है? ये आज क्यों निकले हैं?'

'महाराज! आज कोई नई बात नहीं है। प्रति दिन गाँव भरके लड़के घरसे निकलकर यहाँ फूल बीननेके लिए आते हैं, अब यहाँसे पाठशाला जायँगे।'

'पाठशालामें प्रातःकालसे कबतक पढ़ाई होती है?'

जरा हँसते हुए स्वामीजीने कहा–'महाराज! यह कहा जाय तो अत्युक्ति

न होगी कि हमारी शिक्षा-पद्धति और इस प्रकार संपूर्ण जीवनचर्या ही भिन्न प्रकारकी है। छः वर्ष तक सभी बालक बालगृहमें प्रतिपालित होते हैं, केवल रातमें अपनी माँके पास रहते हैं, तद्पश्चात् पाठशालामें जाते हैं। प्रातःकाल यहाँ आते हैं। दिन भर यहीं रहते हैं, खाते-पीते हैं, खेलते हैं, पढ़ते हैं और संध्या-समय अपने-अपने घर जाते हैं। हमारी पाठशालामें केवल पढ़ाई ही नहीं होती।'

'आपकी पाठशालामें विद्यार्थी कब तक रहते हैं?'

'बालकके २० वर्ष और बालिकाके १८ वर्षकी उम्र तक। इसके बाद हमारे यहाँ वयस्क लोगोंके लिए भी विभाग हैं; जैसे कि लोहार, बढ़ई, बुनकर आदि। इस विभागमें लोग दिन भर अपने कारखानेमें परिश्रम पूर्वक काम कर उस कलामें प्रवीण बननेका प्रयत्न करते हैं।'

'लेकिन बालक बालिकाओंको एक साथ पढ़ानेसे नैतिक हानि नहीं होती?' चम्पाने पूछा।

'नैतिक हानि सहाध्यायमें! यह तो भ्रम है। मेरा तो अपना मत है कि जितना एक साथ पढ़ानेमें लाभ है उतना अलग-अलग पढ़ानेसे नहीं होता। कक्षामें दो लड़कियाँ हों तो दो सौ लड़के विनयी और सुशील बनते हैं वैसे ही लड़कियाँ भी। कक्षामें केवल स्वजातीय लड़कियाँ ही न होनेसे परस्पर सम्बन्ध अधिक व्यावहारिक एवं विनयी बनता है। लेकिन एक दूसरा लाभ भी है?'

'वह क्या?' जसुभाने पूछा।

'अधिक अनीति होनेका कारण यह है कि बचपनसे हम उन्हें विलग रखकर, नर और नारीके बीच जो स्वाभाविक भिन्नता है, उसकी अपेक्षा अधिक भेद करके इच्छा और कामनाको अत्यधिक तीव्र व उग्र होनेका अवकाश देते हैं। एक साथ रहनेसे वह अवकाश नहीं मिलता। इस प्रकार प्रत्येक एक दूसरेके प्रति आदर पूर्वक व्यवहार करता है एवं अविदित इच्छा स्वयं अपनेमें ही लीन हो जाती है।'

'आप विवाह-सम्बन्ध कब करते हैं?'

'जब बालक इच्छा करे। यदि पाठशाला छोड़नेके पूर्व इच्छा करे तो

उसका विवाह पक्का कर दिया जाता है और यदि २० वर्ष पूर्ण होने पर इच्छा करे तो उसका विवाह करके उसे एक अलग घर दे दिया जाता है।' जसुभाको उत्तर मिला।

'यह सब तो ठीक है, किन्तु इन सब प्रबन्धोंके लिए धन कहाँसे आता है?'

'धन! महाराज, जहाँ आत्मत्याग हो वहाँ धनकी क्या कमी है? वारत-मठकी सभी आय इसमें व्यय होती है। हमारे ग्राम-निवासियोंने जो कौशल सीखा है उससे अच्छीसे अच्छी वस्तु अल्प मूल्यमें तैयार कर हम बेचते हैं।'

'लेकिन वह तो बनानेवाला ले लेता होगा?'

'जी नहीं! प्रत्येक मनुष्यको आवश्यक वस्तुएँ गाँवकी दूकानसे दी जाती हैं। नियमित समय पर मन बहलानेके साधनका प्रबन्ध किया जाता है। उनकी जीवितावस्थामें साथ ही मृत्युके पश्चात् भी उनके बालकोंका पालन-पोषण ग्रामकी ओरसे होता है। इस प्रकार उसकी सभी आय गाँवके कोषमें जाती है।'

'अच्छा!' साश्चर्य जसुभा बोले, 'यह तो मानो दूसरा स्वर्ग ही बना डाला है। आपकी इन बातोंको सुनकर तो इच्छा होती है कि आपलोगोंको पराजित करनेके लिए, ग्रामनिवासियोंकी त्रुटियोंका पता लगाऊँ।'

'आप ही पराजित हो जायँगे, जब तक महात्माजी हैं तब तक तो, अवश्य ही।'

'क्यों रणु! तुम्हारा स्वामी ही इस स्वर्गका स्रष्टा है क्या?'

चम्पा और रणुभा दोनोंका मुख गर्वसे खिल उठा।

चम्पा—'जी हाँ! आपके रेवाशंकर कहते थे कि बाबा पैसा उड़ाते हैं; अब देखा आपने!'

'अच्छा अध्यक्ष महोदय! कष्ट क्षमा कीजियेगा।' कहकर जसुभाने उन्हें बिदा किया और स्वगत बोले—'अपने देशी राज्य भी इसी ढंग पर चलें तो कैसा अच्छा हो!'

'नहीं चल सकते क्योंकि जसुभा जैसे व्यक्ति प्रत्येक राज्यमें भरे पड़े हैं।' चम्पा बोली।

———

३४

चम्पा और रणुभा नीचे आये। उनका सम्बन्ध देखनेमें शान्त लगता था पर वास्तवमें वैसा था नहीं। चम्पाका अनंतानंदके साथ राम-मंदिरमें घटी घटनाका हाल छः वर्षमें भी रणुभाको मालूम नहीं हुआ था। उस समयसे चम्पा बदल गई थी। रणुभाने सोचा कि वह भी स्वामीजीको शिष्या बन गई अतः अब दोनों व्यक्तियोंके लिए एक ही जीवन-स्रोतमें बहना सरल होगा। चम्पा इस प्रकार आचरण करती मानो वह रणुभाकी विवाहिता हो, तो भी रणुभा देखते कि पहलेकी विरक्तिमें जैसा उसका हृदय शुद्ध था वैसा अब नहीं है। वह सभीको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करती, राज्यकार्यमें सुधार करनेके लिए माथा मारती, किन्तु उसके हृदयकी बात किसीको मालूम न होती। रणुभा पहले तो कुछ कुपित हुए, फिर शक हुआ कि उनकी पत्नी किसी अन्य पुरुषकी मूर्ति हृदयमें धारण किए हुए है, किन्तु उनका सम्बन्ध किसी बंधनके आधारसे बँधा नहीं था जिससे वह बोल ही क्या सकते थे? जिस पुरुषको वह प्यार करती थी वह उसका भी पूज्य गुरु था, जिससे पहले तो कुछ बाधा खड़ी नहीं हुई। बहुत दिनोंतक अनंतानंद रत्नगढ़ आये ही नहीं, इससे रणुभाका यह डर जाता रहा। पर ज्यों-ज्यों उन दोनोंके बीचका यह अंतर-स्नेह वह दूर करनेका प्रयत्न करता त्यों-त्यों वह बढ़ता जाता था। चम्पा शरीरसे उसकी थी पर उसका मन तो स्वामीजीमें ही मस्त रहता था।

यहाँ आनेपर स्वामीजीके प्रभावका सच्चा परिणाम देखकर दोनों हर्षित हुए, किन्तु दोनोंके हर्षका कारण भिन्न था। रणुभा गुरुके सुखसे सुखी होता, वह भी उन्हींका शिष्य है, यह सोचकर आनंदित होता। चम्पा भिन्न दृष्टिसे देखती; अनंतानंद उसके हैं यह उसने सोच रखा था; ऐसा उसे लगता मानो उनके प्राणमें अपने प्राणका लय कराकर ऐक्य-पद प्राप्तकर लिया हो। पिताके विजयसे पुत्री एवं पत्नी दोनोंको हर्ष होता है किन्तु दोनोंके हर्षमें भेद होता है – एक हर्ष पूज्य-भावका द्योतक—अधूरा; दूसरा स्वामित्वका—पूर्ण।

'रणुभा !' एकाएक गम्भीरतासे चम्पा बोली—'हम लोगोंके लिए भी यह नया ही है । हम तो स्वयं कुछ करते ही नहीं ।'

'परमेश्वरकी कृपा होगी तो सब कुछ होगा ।'

'हम भला क्या करेंगे ? हमारेमें शक्ति कहाँ है ? हृदयमें पवित्रता कहाँ है ?' चम्पा दुःखसे बोली । यह विषय रणुभाको व्यर्थ-सा लगा । शुद्धताके आवेशमें वह कहाँसे कहाँ पहुँच गई ।

'तुम्हारी राय हो तो, चलो हम विवाह कर लें !' कुछ आतुरतासे रणुने कहा ।

'नहीं, रणुजी ! यह नहीं हो सकता' चम्पा बोली, 'विवाह करके आपको क्यों दुःखी बनाऊँ ? जीवनके आनंदोल्लासमें बहुत कुछ देख लिया, कौड़ीके लिए बिक गई, विषयी मनुष्योंका मनोरञ्जन करनेके लिए अपने जीवनको नीलामपर चढ़ा दिया । अब सभी कुछ तिरस्कारपूर्ण जान पड़ता है । कुछ दिन पूर्व वेश्या थी, अब न तो आपके साथ रहना अच्छा लगता है और न जसुभाके लिए गला फाड़ना ही ।'

'तब क्या करोगी ?' दुःखार्त्त हो रणुभाने पूछा ।

'स्वामीजी जो कहेंगे ! चलिये, दर्शनकर आवें ।'

'नहीं......' जरा चिड़चिड़ाकर रणुभा बोले । द्वेषसे कुछ विक्षिप्त-से हो रहे थे, 'तुम जाओ, मुझे काम है ।'

३५

संध्याको पाँच बजे पञ्च पुनः बुलाने आये । जसुभा सब रिसालाके साथ घोड़े पर सवार होकर पाठशालाकी ओर चले । गाँव दो भागोंमें विभाजित था; एक तरफ रहनेके लिए एक ही प्रकारके छोटे किन्तु हवादार मकान बने थे दूसरी ओर दूकान, कारखाने, आदि । दोनोंके बीचमें चौड़ी साफ सुथरी सड़क थी जो बड़े शहरोंकी म्युनिस्पैलिटीको भी लज्जित करती थी । पाठशालाके सामने लंबा-चौड़ा मैदान था, सामने मठपर भगवा ध्वज फहरा रहा था । थोड़ी दूरपर

एक छोटी नदी धीरे-धीरे बह रही थी। एक बड़े खेमेमें स्वागतका प्रबंध किया गया था। वहाँ संपूर्ण गाँवके सभी स्त्री-पुरुष सकुटुम्ब एकत्र हुए हों ऐसा लगता था। जसुभाकी शौकीन आँखें इस संमेलनपर पड़ी, वे कैसा जीवन व्यतीत कर सकते थे इसका क्षणभरके लिए ज्ञान हुआ, रणमें शत्रुको पराजित करके वापस लौटनेपर उनके पिता-पितामह आदिका उनकी स्वतंत्र प्रजा कैसा स्वागत करती थी इसका स्वप्न देखा; देशकी वर्त्तमान दशाका एवं इतने वर्षोंसे प्रजाका खून चूसकर विलास करनेवाले राजाओंके स्वाभाविक कर्त्तव्योंका ख्याल आया। उनकी छातीमें स्पंदन हुआ, उनकी आँखोंमें पुरातन वीरोंका तेज चमक उठा। अपना शानदार स्वागत देखकर वे हँसे। घूमनेपर रघुभाईके मीठे, विचक्षण चेहरेपर दृष्टि पड़ी। उसे देखकर जसुभा कुछ उदास हुए। पाँच मिनट पश्चात् एक उच्च सिंहासनपर आसीन होनेपर वे पुनः आनन्द-मग्न हो गये।

बैठनेपर कुछ लड़के आये; वे सभी सादे वेशमें थे। व्यूह रचकर उन्होंने गाना गाया, गाना वीर-रससे पूर्ण था। उसमें त्याग, देशोन्नति, वीरताका वर्णन प्रभावोत्पादक, मनोरम भाषामें किया गया था। रणुभाकी आँखोंमें शूरवीरता चमकने लगी।

थोड़ी देरमें 'जय ध्वनि' हुई और मठकी ओरसे अनंतानंदजी पधारे। पद-पदपर लोग उनका आदर कर रहे थे, सभी खड़े हो गये। पाश्चात्य रीति-रिवाज छोड़कर जसुभाने भी खड़े होकर नमस्कार किया। अनंतानंदजी जसुभाके पास आकर बैठ गये।

तद्पश्चात् नगर सेठने एक छोटे-से भाषणमें जसुभाका स्वागत किया। पाठशालाके अध्यक्षने पाठशाला सम्बन्धी विवरण संक्षेपमें कह सुनाया। यह सब सुनकर जसुभाकी सुध-बुध जाती रही, जीवनमें कभी भी अनुभव न किए हुए रसका अनुभव हुआ। अनंतानंदने उठकर कहा कि लोग उनसे भी कुछ सुननेकी आशा रखते हैं। जसुभा उठे। वातावरणमें उत्साह था। बिना अभ्यासकी जीभ भी खुल गई। उन्होंने लोगोंका उपकार स्वीकार करते हुए वारतमठकी प्रशंसा की एवं उनके प्रशंसनीय कार्यमें सहायता देनेका वचन दिया। कुछ देरके लिए रेवाशङ्करकी धाक भूल गये। वह भी आत्मत्यागके प्रवाहमें थोड़ा बहुत बह

गये। लोगोंने ध्यानपूर्वक भाषण सुनकर हर्ष प्रकट किया। धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

अनंतानन्द अब तक चुपचाप बैठे हुए थे, सभा विसर्जनोपरान्त जसुभाको अपने साथ ले जाकर उन्होंने एक विशाल भवन दिखलाया। उन्नतिशील प्रजाकी उन्नतिके लिए सभी साधनोंका वहाँ प्रबन्ध किया गया था। उच्चतम कक्षाकी शिक्षाका आयोजन देखकर जसुभाको पाश्चात्य कालेजोंके साधनोंका स्मरण हो आया।

'स्वामीजी! आपने तो नई सृष्टि ही रच दी है!'

'अभी तो सब काम बाकी ही है, केवल नींवकी रचना हुई है। जिस दिन विजय-स्तम्भका गगनभेदी गुम्बद खड़ा होगा उस दिन मेरी मनोकामना पूर्ण होगी।' उनके शब्दोंमें विश्वास आकृष्ट करनेकी शक्ति थी। उस समय जसुभा के मनमें भी कुछ पूज्य भावका स्फुरण हुआ। विविध विषयोंपर बात करते हुए, प्रेरणात्मक वाक्योंसे सुधाकी वर्षा करते हुए अनंतानन्दजी वहाँसे आगे बढ़े।

'महाराज! आपको समय हो तो इस मठमें पधारें, और मेरा आतिथ्य थोड़ा स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें।' हँसते हुए स्वामीजीने कहा।

'हाँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, रणु! तुम भी चलते हो?'

'जी हाँ!'

मठ पहले एक किला था। मकान बहुत ही पुराना किन्तु मजबूत था। ग्राममें जितने संन्यासी थे—जिनकी संख्या लगभग दो सौ थी—सब यहीं रहते थे। तृतीय खण्डमें एक कोनेमें अनंतानन्दजीका वास था। वहाँ जाते समय जसुभाने कहा—'रणु! मेरा सिगार-केस छूट गया! जरा ले आओ। स्वामीजी, आपको तो कोई आपत्ति नहीं है?'

'मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? जाओ रणुभा! ले आओ। आप भी जरा आराम कीजिये। आत्मानन्द!'

'जी!' कहकर एक संन्यासी आया।

'महाराजके लिए सब प्रकारका प्रबन्ध कर दो। रणुभा! आप भी थोड़ी

सहायता कर दें। मैं अभी आता हूँ।' कहकर अनंतानन्द चले गये। जसुभा को यह व्यवहार कुछ अनुचित-सा लगा। कमरा बिलकुल सादा था, वहाँ पर कुर्सियाँ साधारण थीं। थोड़ी देरमें एक संन्यासी चाय और जलपान ले आया; जिसका उन्हें अत्यधिक शौक था। उस सामग्रीको यहाँ पाकर जसुभाने स्वामीजी की दूरंदेशी एवं आतिथ्य-सत्कारकी मनमें प्रशंसा की। क्रमशः स्वामीके जादूका प्रभाव उनपर होने लग गया था।

'रणु! अब उठो, सिगार बिना मैं रह नहीं सकता। जल्दी आना, समझे!'

'जी हाँ, अभी आया।'

रणुभा वहाँसे चले। वे विचार करने लगे कि दिन भरसे आज चम्पा कहाँ लापता है। उनका मन उद्विग्न हो रहा था। अनंतानन्दमें तो दोष होना असम्भव है; किन्तु चम्पा है तो वेश्या ही—यह विचार स्पष्ट रूपसे आते ही वे चौंक पड़े, गुरुतर अपराध किया हो, इस प्रकार घबड़ा उठे। अनंतानन्दके सम्बन्धमें ऐसा विचार! इतने वर्षोंका पूज्य भाव मनमें उदय हुआ। नहीं, नहीं, ऐसा विचार करनेवाले मनको चीरकर निकाल देना अधिक ठीक होगा। दाँत पीसते हुए वे तेजीसे बढ़े।

जिस सीढ़ीसे जसुभाके साथ वे ऊपर गये थे, उसे वे भूल गए और एक दूसरी सीढ़ीसे वे उतरने लगे। संध्याका समय था जिससे प्रकाश कम हो रहा था। वे एकाएक खड़े हो गये। हृदयमें वज्राघात हुआ। पास ही से चम्पाका काँपता हुआ अश्रुपूर्ण भग्न स्वर आ रहा था।

'स्वामीजी! मुझे इतनी आज्ञा दीजिये, अपनी दासीकी याचना स्वीकार कीजिये।'

'चम्पा!' अनंतानंदकी कण्ठध्वनि स्नेहपूर्ण थी। रणुभाको ऐसा लगा कि उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।

'यह बहुत ही अविवेकपूर्ण होगा। अच्छी बात है।'

'तब आपकी आज्ञा है न, महाराज?' आतुरतासे चम्पाने पूछा।

'हाँ, किन्तु देखो पछताओगी!' ऐसा मालूम हुआ मानो यह कहकर

स्वामीजी वहाँसे चले गये। रणुभा वहाँसे हटनेका विचार कर ही रहे थे कि एक विचित्र आवाज उनके कानमें जा पहुँची। ओह! चुम्बनकी आवाज! नीच चम्पा! दुष्ट अनन्तानन्द! रणुभाने कमरेमें दृष्टि डाली। जमीन पर मुँह रखकर चम्पा भूमि चूम रही थी; अनन्तानन्द वहाँ पर थे ही नहीं! बिना विचारे ही केवल चुम्बनकी ध्वनि मात्र सुनकर रणुभा विक्षिप्त हो गये। सिर पकड़े हुए वे सीढ़ी उतरे—दौड़े-भागे। शरीर भरमें विष व्याप गया। अनन्तानन्दको धिक्कारने लगे। बाहर निकलकर स्वामीजीके बुद्धिप्राबल्यका जीवित तथा निर्जीव परिणाम देखा—इसमे उन्हें और भी दुःख हुआ। ऐसे पापी पुरुष संसारमें किसलिए जन्म लेते हैं? चम्पा—शिष्या; स्वयं मैं शिष्य; और यह कर्म! इनसे तो भिखमंगे अच्छे! बाहर शीतल पवन लगनेसे जरा शान्ति हुई! क्या चम्पा जमीन चूम रही थी? यह कैसे हो सकता है? फिर अवश्य ही वही बात है। चम्पा! अन्तमें यह किया? वेश्या किसकी हुई है? बंगले पर पहुँचकर सिगार-केस लेकर रणुभा वापस लौटे। पुनः विचार करने लगे कि अनन्तानन्द तो इतने अधम नहीं हो सकते! मनुष्य कितना ही बुद्धिमान और वैरागी क्यों न हो, पर वासना दुर्जय है। अब क्या किया जाय? नदीके किनारे-किनारे शीतल वायु का सेवन करते हुए रणुभाने किसी निश्चय पर पहुँचनेका प्रयत्न किया। क्या अनन्तानन्दसे बदला लूँ? या चम्पासे लूँ? इनमें दोष किसका है? वेश्या सर्वजन सम्पत्ति है। वह केवल रणुभा की ही नहीं थी। किन्तु स्वामीको क्या ऐसा उचित था? इतना विश्वासघात! रणुभाने निश्चय किया कि अनंतानंदकी शिक्षाके अनुसार चलकर उन्हें लज्जित करना ठीक होगा। क्यों न स्वयं आत्म-त्यागकर, अपना दुःखार्त्त जीवन किसी उत्तम कार्यमें अर्पण करके और आवश्यकता पड़ने पर मरकर भी अनन्तानन्दको कुछ शिक्षा न दे जाय? हाँ! रणुभा को यही मार्ग ठीक जँचा।

इतनेमें दस-पन्द्रह हथियार बन्द मनुष्योंको छिपकर मठके पाससे जाते हुए रणुभाने देखा। वे अपने ही विचारमें लीन थे; उस ओर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया।

३६

अनंतानंद ऊपर आये तब जसुभा बरामदेसे गाँव देख रहे थे और सिगार-केसकी अनुपस्थितिमें सीटी बजा रहे थे। अनंतानंदका सुगठित शरीर, बड़ा सिर एवं तेजस्वी आँखें देखकर जसुभाने मनमें उनकी प्रशंसा की।

भाव सहित स्वामीजीने पूछा—'कहिये महाराज! आपने जलपान किया?'

'जी हाँ स्वामीजी! मुझे आपको धन्यवाद देना चाहिये।'

'वह क्यों?'

'मेरे राज्यमें ऐसे स्वर्गकी रचना की, इसके लिए।'

'मेरा बनाया हुआ नहीं है महाराज! यह तो काल-क्रम उत्साहकी प्रेरणा करता है और नवीन सृष्टि रचता है।'

'जो भी हो किंतु आपके प्रयोगसे अच्छे-अच्छे राजाओंको शिक्षा मिल सकती है।'

'महाराज! यह मेरी शिक्षाका परिणाम है, यह सोचना भूल है। जो कोई भी आँख खोलकर देखे, उसे दिखाई पड़ सकता है। आप भी थोड़ा ध्यान दें तो बहुत अच्छा हो।'

'मुझसे नहीं होता, मैं करूँ क्या? मेरा स्वभाव तो कुत्तेकी दुमकी तरह है, सीधा होता ही नहीं।'

'मैं एक मार्ग बताता हूँ। जिसमें उत्साह हो, जो अच्छी तरह कार्य-सम्पादन कर सके, उसे इस कार्य-भारको सौंपिये। ईश्वरने इस कार्यके लिए जिसे उत्पन्न किया है उसे ही इस युद्धमें कूदने दीजिये।'

'ऐसा व्यक्ति मिलना बड़ा कठिन है।'

'महाराज! इसीलिए मैं आपको यहाँ ले आया हूँ। मुझे आपसे दो बातें करनी हैं। छः वर्ष पूर्व आपके पास पन्द्रह सौकी भिक्षा माँगने आया था, यह क्या आपको स्मरण है? उस समय आपने मुझे निकाल बाहर किया, इसके पश्चात् तो रेवाशङ्करने सारा वर्षाशन ही बंद कर दिया।'

'उसके लिए मुझे दुःख है। मुझे क्या पता था कि वारतमें दिये जानेवाले

धनका इस प्रकार उपयोग होता है। आगामी वर्षसे पाँच हजार रुपये वार्षिक देनेके लिए आज्ञा दे दूँगा। इसे निश्चय समझिये।'

'महाराज! मेरा स्वभाव याचना करनेका नहीं है किंतु आपके पर्यटन पर निकलनेका कारण मैं था, यहाँ आप आये भी मेरे ही कारण और मेरी केवल एक याचना सुननेके लिए।'

'स्वामीजी! इस समय आपपर मैं इतना प्रसन्न हूँ कि आप कुछ भी मागें उसे अस्वीकार नहीं कर सकता।'

स्वामीजी छतके मुँडेराके पास खड़े थे। अस्ताचलगामी सूर्यका प्रकाश उनके चेहरेको जगमगा रहा था।

'महाराज! आप देखते हैं' गाँवकी ओर संकेत करते हुए अनंतानंद बोले, 'इस समय यहाँ दस सहस्र प्राणी, संसारमें जो सबसे अच्छा जीवन हो सकता है वैसा सुखी एवं पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसारके कथित सुख-भोग करनेकी अपेक्षा देशके लिए, धर्मके लिए, ईश्वरके लिए वे अपना सर्वस्व अर्पण करनेके लिए सदैव तत्पर रहते हैं—अर्पण करते हैं—यह मेरे बारह वर्षके प्रयत्नका फल है! जिस समय मैं आया उस समय डेढ़ हजार मनुष्य-जन्तु बाबाओंके अत्याचारसे पीड़ित ज्यों-त्यों जीवन यापन कर रहे थे। आज ऐसा निवासस्थल भूतलमें मिलना कठिन है। आप देखते हैं और मुझे धन्यवाद देते हैं; आपसे इतनी ही याचना करता हूँ कि मुझे अपना प्रयोग निर्विघ्न करने दीजिये—जो योजना मैंने बनाई है उसे दूर दूर फैलने दीजिये—अपने राज्यमें प्रत्येक स्थान में वारतका झण्डा फहराने दीजिये।' उनकी आवाज मंद थी किंतु भावसे काँप रही थी। उनकी आँखोंमें कवियोंका, राष्ट्र-कर्त्ताओं का सृष्टिकारक तेज चमक रहा था।

'मैं कहाँ मना कर रहा हूँ? भगवान करे आपका प्रयोग सिद्ध हो।'

'यह नहीं, महाराज! मैं कुछ और माँग रहा हूँ। आपके राज्यमें मैंने प्रयोग आरम्भ किया है, आपका राज्य मुझे आदर्श रूप बनाना है, उसके लिए मुझे बड़े क्षेत्रकी आवश्यकता है। अपना स्वप्न सिद्ध करनेके लिए मुझे दस लाख

मनुष्य, संपूर्ण देश चाहिये। इसके लिए दो ही वस्तु की आवश्यकता है। मेरे मठको रत्नगढ़में स्थान दीजिये और रेवाशङ्करको जवाब।'

जसुभा हँसे, स्वामी महाराज थोड़े लोभी मालूम पड़े।

'महाराज! यह भी कहीं हो सकता है? रत्नगढ़ आना हो तो भले ही पधारें थोड़ी जमीन दे दूँगा किंतु राज्य प्रपञ्चमें आप व्यर्थ क्यों पड़ते हैं?' धीरे-धीरे जसुभामें शिथिलता आ रही थी।

'राज्य-प्रपञ्चमें मैं पड़ना कहीं चाहता, मुझे तो राज्य प्रपञ्चको विनष्ट करना है। देशी राज्योंका उसने सत्यानाश कर दिया है। रेवाशङ्करके रहते हुए राज्यमें कोई भी परिवर्त्तन करना सम्भव नहीं है; प्रजा पीड़ित और सन्तप्त है। बलात् सब प्रकार अत्याचार सहन करती है। यह समय कूपमण्डूकताका नहीं है, बल्कि विशाल चक्षुवाले राजर्षियोंका युग है। आपसे मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें निकाल बाहर कीजिये एवं अपने राज्यका उद्धार कीजिये।

'मान लीजिये कि उन्हें निकाल भी दें तो राज्य कौन चलावेगा?'

'कौन चलावेगा? रणुभा हैं।'

'कौन डीयर रणु?' जरा हँसते हुए जसुभा बोले 'फिर क्या पूछना है?'

'रणुभा निकम्मा लगता है? अच्छी बात है, मुझे दीजिये। केवल आपके हठके वश यह पद मैं स्वीकार करूँगा और आपकी राज्योन्नति कर आपके नामको अमर कर दूँगा।'

जसुभा मूर्ख नहीं थे, उन्होंने सोचा कि स्वामीने दीवान बननेके लिए यह सब तरकीब रची है। उनका उत्साह ठंढा पड़ने लगा। स्वाभाविक विरक्ति एवं शिथिलता आने लगी। कटाक्षपूर्ण शब्दोंमें उन्होंने उत्तर दिया—'स्वामीजी! आप? मुझे पता नहीं था कि संन्यस्तमें भी आपने सत्ताकी वांच्छनाका त्याग नहीं किया है?'

अनंतानंदकी आँखें तीव्र हो उठीं, असह्य तिरस्कारसे उनके नथने फूल गये। आवाजमें तलवारके समान पूर्ण तीक्ष्णता थी—'श्रीमान्! उलटा अर्थ मत लगाइये। संसारकी सत्ता एवं उसके वैभवको कभीका मैंने छोड़ दिया है। यदि मुझे उसकी इच्छा होती तो क्या मैं आपसे इस प्रकार भिक्षा माँगता?

शिक्षाके समय ऐसा अवसर भी आया था कि यदि मैंने सत्ताको अच्छा समझा होता तो संपूर्ण पृथ्वीमंडलकी सत्ता पा गया होता। उसे छोड़ा—सच्चिदानन्द प्राप्त करनेके लिए। यदि इच्छा करूँ तो मेरी शक्ति मुझे श्रेष्ठतम सत्ता अर्पित कर सकती है तब किसलिए भला मैं आपकी बुभुक्षित राज्यकी गाय जैसी प्रजा पर तुच्छ सत्ता प्राप्त करनेका प्रयास करूँ ? जिस राज्यके स्वामित्व पर आपको घमण्ड है उस ओर तो मैं आँख उठाकर भी न देखूँ किन्तु मुझे अपना कर्त्तव्य करना है।'

'महाराज ! इस समय मैं अस्वस्थ हूँ, यह बात अब इतनी बढ़ गई है कि रत्नगढ़ जाने पर ही विचार कर मैं कुछ उत्तर दे सकूँगा।'

'राजन्! इसमें विचार करनेका अवकाश है ही नहीं। रेवाशङ्करको निकालना ही होगा।'

'इस प्रकारकी बातें सुननेकी मुझे आदत नहीं है' कहकर भाव-हीन लापरवाही दिखाते हुए जसुभा कुर्सीपर बैठ गये।

'मुझे याचना करनेकी भी आदत नहीं है। आप जब तक उन्हें राज्य छोड़नेकी आज्ञा नहीं देंगे, तब तक मुझे आपको यहाँ रखना पड़ेगा।' इस प्रकार कहकर अनंतानन्द वहाँसे चले गये, मानो राज्य-सत्ता उन्हींके हाथमें थी।

३७

रणुभाने आकर सिगारकेस जसुभाको दिया। जसुभाने चुपचाप एक सिगार जलाया। गत चौबीस घण्टेकी अनुभव परम्पराने जसुभाके निडर मनको दूसरी दिशामें फेर दिया था। ये प्रयोग राज्य-प्रपञ्च एवं बुद्धिमान पुरुषोंकी अपने पास चलनेवाली खींचातानीसे उसमें भाग लेनेकी उनकी इच्छा हुई थी। वे विनोदप्रिय थे, सुखी थे। उन्हें आज प्रथमवार प्रवृत्तिमें सुख दिखाई दिया।

सदैव अपनी इच्छानुसार परिवर्त्तन करनेके अभ्यस्त होनेसे उन्होंने स्वामीकी याचना स्वीकार नहीं की। तदुरापन्त रेवाशङ्कर उनको जीवनमें इतने आवश्यक

मालूम पड़ते कि उनकी समझमें आ नहीं रहा था कि उसके बिना काम कैसे चलेगा। अनंतानन्दकी प्रेरणाशक्तिने भी विचित्र भाव उत्पन्न कर दिया। जसुभाके हृदयमें वीर-रसका संचार हुआ।

'इस स्वामीको भी दिखा दिया कि जसुभा सोलङ्की हीन-वीर्य नहीं है' धीमे स्वस्थ कंठसे वे बोले। उनके स्वरमें इस समय सदैवकी विरक्ति अनुपस्थित थी।

'रणु ! हम तो जालमें फँस गये हैं।'

'क्या ?' अपने विचारमें लीन रणुभा बोल उठे।

'क्या-क्या ? इस समय बुद्धि कहीं चली गई है क्या ?'

'जी नहीं सरकार !'

'अभी अभी मेरे और तुम्हारे स्वामीके बीच चखचख हो गई।'

'एं ! किसलिए ?' स्वामीका नाम सुनकर रणुभाने आतुरतासे पूछा।

'यह रेवाशङ्करको निकालकर स्वयं फ्रांसका प्रधानमंत्री रिशेल्यु Richelieu बनना चाहता है। मैंने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया।'

रणुभाके मनमें भी जसुभाके समान ही विचार उत्पन्न हुआ, क्या अनंतानन्द सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं ? अब मैं तो संसारसे विलग होता हूँ, मुझे क्या ?

'क्या दीवान बनना चाहते हैं ?'

'नहीं, वह तो तुम्हें बनाना चाहता है।'

'मुझे ?'

'हाँ, मुझसे कह गया है कि जब तक यह आज्ञा नहीं दूँगा तब तक मैं यहाँसे जाने नहीं पाऊँगा।'

'इसका मतलब ?'

'अर्थात् हम कैदी हैं, इतना ही !' शान्त चित्तसे जसुभाने उत्तर दिया। रणुभा बरामदेके बाहर देखने लगे।

'अच्छा ! यह तो सेना एकत्र हो रही है !' वारत वासियोंकी चार-पाँच टुकड़ियोंको इधर-उधर जाते हुए देखकर जसुभा बोले। रात्रि हो गई थी फिर

भी बिजलीके प्रकाशमें साफ दिखाई पड़ रहा था।

'जी हाँ!' सिर ठोंकते हुए रणुभा बोले, 'मठके पास भी एक टुकड़ी मैंने देखी थी किन्तु उस ओर मैंने तनिक भी ध्यान नहीं दिया।'

'अब हमें क्या करना है?'

'स्वामी करेगा क्या? थोड़ा दबाव डालनेके लिए उसने ऐसा कहा होगा।' रणुभा बोले।

रणुभाके मनमें इससे विशेष भय नहीं हुआ। उनके जीवनका दूसरा लक्ष्य जसुभाकी सेवा थी। इस समय दुःखसे छुटकारा पानेका मार्ग उसे मिल गया। यदि राजाको बन्दी बनानेका प्रयत्न होगा तो मरते दम तक लड़कर, सोलङ्की वंशके नामको उज्ज्वल करनेके लिये यथाशक्ति अधिकसे अधिक व्यक्तियों का संहार करेगा एवं स्वयं भी उनके शस्त्रसे आहत होकर वीर शय्या पर सोयेगा। इस प्रकार चम्पा और अनन्तानन्दकी कृतघ्नतासे छूटकर विजयी मार्ग प्राप्त करेगा। सदैव वह तलवार बाँधता था। अनजानमें ही उसपर हाथ पहुँच गया।

'कुछ कहा नहीं जा सकता। स्वामीमें दृढ़ताकी कमी नहीं है।' जसुभा परिस्थिति समझ रहे थे।

'तब अपनेमें वीरताकी ही क्या कमी है? महाराज! हम दो हैं फिर भी दो सौ मार भगावेंगे।'

'मुझमें भी प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न हुई है। हो सके तो स्वामीको भी दो-एक पाठ पढ़ाकर यहाँसे चला जाय।' जसुभाने प्रोत्साहन दिया।

'आप जब कहें मैं तैयार हूँ। इन गँवारों को भी सिखा दूँ कि महाराज पर पहरा बैठानेका कैसा मजा मिलता है!'

'रणु! ऐसा मालूम पड़ता है मानो प्राचीन समय आ गया हो। इस समय यहाँ यदि रेवाशङ्कर होता तो और भी आनंद आता।'

रणु खामोश रहा। वह वीर था। निश्चयात्मक प्रवृत्तिकी बात सामने आने पर हँसी मज़ाककी ओर उसका ध्यान नहीं जाता था। एक ही लक्ष्य उसकी आँखोंके सामने नाच रहा था। अनंतानन्दका पीछे चाहे जो हो, इस समय उन्हें

परास्त कर जसुभाको छुड़ाना ही उसका ध्येय था। दृढ़ मुट्ठी बाँधकर वह खड़ा था, उसका हाथ तलवार खींचनेके लिए तड़प रहा था।

आत्मानन्दने आकर बिजलीका प्रकाश कर दिया।

'महाराज! नायब-दीवान साहब आये हैं और आपसे एकान्तमें मिलना चाहते हैं।'

'रणु! देखो ये दूसरे महापुरुष आये।'

'बुला लीजिये, मैं इस दरवाजेके पीछे खड़ा हो जाता हूँ, जरा इनका रङ्ग-ढङ्ग भी देखिये।'

जसुभा कुर्सीपर बैठ गये और आरामसे सिगार पीते हुए बोले—'भेज दो!'

३८

जिस प्रकार दूसरे सब रिसाले राजासे छूट गये उसी प्रकार रघुभाई स्वयं ही छूट गये थे। जसुभाने ऐसी साधारण गृहस्थ जैसी परिपाटी चला दी थी कि उनके साथ अङ्ग-रक्षक अथवा रिसाला रहनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। दूसरे सबलोग घूमनेके लिए निकल गये। रघुभाई धीरे-धीरे घूमते हुए बंगलेके पीछे पहुँचे। नीचे जहाँ इनके ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था वहाँ पर एक व्यक्ति बैठा था।

'कहो रणछोड़! सब ठीक है?'

'जी हाँ, पेस्तनजी सेठ स्वयं तालोद आये हैं। साथमें पचीस मनुष्य भी लाये हैं, यहाँसे करीब आधे कोस पर ठहरे हैं।'

'ठीक है, अच्छा, माना नायकको तो जरा बुलाओ।'

'माना! अब तक तुमने बड़ी ही योग्यतासे काम किया है। प्रभु चाहेंगे तो चौबीस घण्टेमें मेरा और तुम्हारा दोनोंका बेड़ा पार हो जायगा। इस समय बड़ी सावधानीसे चलनेका काम है।' रघुभाईने समझाया।

'जी!'

'मठमें महाराज गये हैं। नदीपर उनकी खिड़की पड़ती है वहाँपर तीन घोड़े तैयार रखना। घोड़े मजबूत हों, समझे! उनकी चुस्तीपर ही अपना भविष्य अवलम्बित रहेगा।'

'कुछ चिंता नहीं, अन्नदाता! कितने बजे?'

'नौ बजेके लगभग!' कहकर माना नायकको विदा किया।

रघुभाईने पुनः विचारकर देखा कि अब तककी कार्य-कुशलताके फल-स्वरूप शिखरपर चढ़नेका समय आ गया है। ऐसा मौका फिर हाथ नहीं लगेगा। जसुभा इस समय अकेले हैं, कोई दूसरा उनके पास सलाहकार नहीं है और आज अपनी स्वाभाविक विलासिता भुलाकर राज्यकी ओर कुछ ध्यान देतेसे जान पड़ते हैं। साथ ही अनंतानंद भी अवश्य ही कुछ न कुछ करेंगे लेकिन पता नहीं वे क्या करेंगे क्योंकि बिना मतलब महाराजको वह यहाँ बुलानेवाले नहीं हैं। उनका इसमें क्या हेतु हो सकता है? रघुभाई और स्वामीमें बहुत दिनोंसे अनबन हो गई थी; राजाको पकड़कर क्या मुझे परास्त करनेका प्रयत्न करेंगे? यह भी स्वाभाविक लगा किंतु रेसीडेंसीमें इस सम्बंधमें कुछ भी बातचीत चल नहीं रही थी। उसे डर लग रहा था कि कहीं उसकी जीती बाजी स्वामी न हड़प लें। यदि डरा धमकाकर रेवाशङ्करको रुखसत करा दे तब क्या होगा? तब रघुभाईके सिवा और किसे दीवानगिरी मिलेगी? ऐसा हुआ तो जो भेद उसने प्राप्त किया है उसका मूल्य आधा हो जायगा, तब तो बाबाका ही बोल-बाला हो जायगा। बाबा यह भेद जानता होगा या नहीं, इसका उसे संदेह हुआ; रघुभाईको विश्वास हो गया कि वह इसे जानता न होगा अन्यथा इतने दिनों तक वह इस प्रकार खामोश क्यों बैठा रहता? पलमात्रमें वह जसुभाको पदभ्रष्ट कर सकता था। तब अवश्य यही समय उपयुक्त है। इसी समय पासा फेंककर विजय प्राप्त कर लेना उचित होगा। यह निश्चय कर वह उठा।

बाहर निकलते ही उसकी तीक्ष्ण दृष्टि मठके पास बैठी हुई सेनाकी एक टुकड़ी पर पड़ी; उसने सोचा अवश्य ही कोई षड्यंत्र रचा गया है। यह अधिक उत्तम हुआ, जसुभा उपकार मानेंगे। यह रघुभाईने पहलेसे ही पता लगा लिया था कि अनंतानंद ७–२१ से ८–३० तक मठमें नहीं रहेंगे। यही समय उसे

उपयुक्त जान पड़ा।

मठके समीप दरयाफ्त करनेसे रघुभाईको पता चला कि अनंतानंद मठमें नहीं हैं, यह जानकर उसे निश्चिन्तता हुई। जसुभासे मिलनेकी इच्छा प्रकट करने पर आत्मानंद उसे उनके पास ले गये।

'कहिये अन्नदाता! मेरे लिए कोई आज्ञा?' रघुभाईने बात शुरू की।

जसुभाके चेहरेसे यह कोई पता नहीं पा सकता था कि उनकी स्थिति इस समय गम्भीर है। सदैवके समान ही अपनी स्वाभाविक थकावटसे वे हँसे।

'अब तक कहाँ थे रघुभाई?'

'महाराज! कल सवेरे चलनेकी तैयारी करनेमें लगा था।'

जसुभा चुप रहे। रघुभाई साहस कर बोले—'महाराज! एक जरूरी खबर देनेके लिए आया हूँ।'

'अभी, इस समय?' इतनी शान्तिसे जसुभाने पूछा कि रघुभाईका कलेजा दहल उठा।

'जी हाँ सरकार! इस समय हम दुश्मनके पन्जेमें हैं।'

'दुश्मन! ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित मुझ जैसे देशी राजाका दुश्मन भला क्या कर सकता है?' बिलकुल अनजान बनकर जसुभाने पूछा।

'महाराज! इस समय आपपर पहरा बैठा हुआ है। आपका जीवन भी सुरक्षित नहीं है। कितनी कठिनतासे मैं आ सका हूँ।'

'लेकिन किसका पहरा? रघुभाई! कुछ पागल तो नहीं हो गये हो?'

'नहीं सरकार!' रघुभाईको विश्वास हो गया कि जसुभाको कुछ पता नहीं है। 'इस समय अनंतानंद आपको पकड़कर यहाँ रखना चाहते हैं। मठके चारो ओर हथियारबंद सिपाहियोंका पहरा है, दो-चारको मैंने स्वयं देखा है। अनंतानंदने भयङ्कर जाल फैला रखा है।'

'किसलिए? उनका क्या लाभ है? मुझे पकड़ेगा तो कल ही कैदखानेकी हवा खानी पड़ेगी, मालूम है?'

'जी नहीं! इसके विपरीत सत्ताधीश बन बैठेगा।'

'वह कैसे?'

'सरकार ! एक बड़ा भेद है जिसे यह बाबा जानता है आसानीसे ही आपको गद्दीपर से उतार दे सकता है ।'

जसुभा समझ गये कि यह भी इस समय अपना उल्लू सीधा करने आया है । जसुभा शान्त और स्वस्थ रहे । रणुभाने उनके धैर्यकी प्रशंसा की ।

'आश्चर्यकी बात है कि अब तक किसीने गद्दीपरसे उतारनेका प्रयत्न नहीं किया ! अच्छी बात है, स्वामी आवेगा तो देख लूँगा ।'

रघुभाई इस शान्तिसे जरा घबड़ाया । 'महाराज ! स्वामीकी बाट जोहनेका समय नहीं है । वह बाहर गया है । पीछे घोड़ा मैंने तैयार रखा है, आपके चलने भरकी देर है ।'

'हाँ हाँ चलो, बँगले चल चलें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।'

'जी नहीं सरकार ! हमें वारतकी सीमासे बाहर हो जाना पड़ेगा । यहाँ तो पाँच मिनट भी हम नहीं ठहर सकेंगे । आप अनंतानंदको पहचानते नहीं । यदि बिगड़ा तो ताण्डव नृत्य कर डालेगा ।'

'अर्थात् तुम्हारे कहनेका सारांश यह है कि हम कायरके समान यहाँसे निकल भागें ।'

'यह बात नहीं है । दो ही चार घण्टेमें आप पुनः विजयी बनकर यहाँ पदार्पण करेंगे, मैंने सब प्रबंध कर रखा है ।'

'ऐसा ? इससे अच्छी क्या बात हो सकती है ?' कहकर जसुभा उठने लगे, 'यहाँसे निकलनेका मार्ग तुम यदि दिखा सकते हो तो व्यर्थ समय क्यों नष्ट किया जाय ?'

'महाराज ! एक मिनट ! यह समय झूठी खुशामदका नहीं है । इस समय मैं कितनी जोखिम उठा रहा हूँ, इसका आप विचार करें । कुशलपूर्वक रत्नगढ़ आपके पहुँच जानेसे मेरा लाभ ?'

जसुभा चौंक पड़े । उन्होंने देखा कि यह धूर्त्त भी कुछ चाहता है । वे पुनः शान्तिपूर्वक कुर्सीपर बैठकर बोले—'इतने वर्षके पुराने नौकरसे कर्त्तव्यपरायणता के सिवा और कौन सी आशा रखूँ । भविष्यमें मैं इसका क्या पुरस्कार दूँगा, इसे नौकरको पूछनेका कोई अधिकार नहीं ।'

'सरकार ! तब क्षमा करें। विपक्षी मुझे क्या देनेके लिए तैयार है, इसका आपको पता नहीं है। जो भेद मैं जानता हूँ उसे गुप्त रखनेके लिए अनंतानंद मुझे जो कुछ माँगू, देंगे।'

'अच्छी बात है, तब यह भेद उन्हींके हाथ बेचो। मैंने तुम्हें इतने वर्षों तक वेतन दिया, तुमने घूस खाया उस ओर मैंने ध्यान भी नहीं दिया, यही क्या कम है ?'

'महाराज ! यह मैं जानता हूँ, किन्तु वह तो मेरी नौकरीका बदला था। आपको पता नहीं है कि इस समय एक फूँकमें आपको मिट्टीमें मिला दे सकता हूँ ! सरकार ! आपको पता नहीं है। इसके मूल्यका पता इसे जाननेपर आपको लगेगा।'

'है क्या ?'

'बता दूँ ? अच्छी बात है, रत्नगढ़ गद्दीके अधिकारी आप नहीं हैं, दूसरा है !'

'कौन है ?'

'यह कैसे कहा जा सकता है ? यह सब षड्यन्त्र उसीके लिए रचा जा रहा है। अनंतानन्दसे उससे गहरा सम्बन्ध है।'

'और यह भेद खरीदनेका मूल्य क्या है ?'

'बहुत थोड़ा !'

'क्या ?'

'मुझे दीवान बना दिया जाय और अनंतानन्दको देश निकाला दिया जाय।'

जसुभा खिलखिलाकर हँस पड़े। दो घंटेके बीचमें दो व्यक्तियोंने एक ही माँग की किन्तु दोनोंमें कितना अंतर था ? एकने नरसिंहके गौरवसे याचनाकी थी और दूसरा दासकी अधमतासे हुकुम दे रहा था। तिरस्कारसे विकृत स्वरसे जसुभा बोले—'साथ ही मुझे भी देश निकाला नहीं ?'

'सरकार ! हँसीकी बात नहीं है। आपको नहीं रुचता तो मेरा भेद मेरे पास रहा किन्तु आप पछताइयेगा।' बाजी हाथसे जाती हुई देखकर हताश

स्वरमें रघुभाई बोला ।

'मेरा नमकहराम नायब-दीवान ! देख वह दरवाजा तेरे लिए खुला है । जसुभा सोलङ्की चाण्डाल कुत्तोंके साथ बात करना नहीं चाहता; तेरे जैसे चापलूसों द्वारा बचनेकी अपेक्षा अनंतानंदके हाथसे मरना अधिक पसंद करता है । रणु !'

'जी !' कहते हुए रणुभा भीतर आये ।

'क्षणभर भी यदि यह नीच नमकहराम यहाँ रुके तो इसका सिर धड़से अलग कर दो' कुछ भी उत्तेजित हुए बिना साधारण रूपसे कहकर सिगारकेससे सिगार निकालकर जसुभा जलाने लगे ।

यह आज्ञा सुनते ही रघुभाई तुरन्त वहाँसे चला गया ।

३६

रघुभाईके चले जाने पर जसुभाने रणुकी ओर देखकर कहा—'और भी कोई बाकी रह गया है ?'

रणुभाने सिर हिलाया ।

'रणु ! अब हमें यहाँसे निकल चलना अधिक अच्छा होगा !'

रणुभाका मन इस समय शान्त हो गया था । दिनभर मनमें जो तर्क-वितर्क चल रहा था वह इस समय जाता रहा । इस अवसरपर जसुभाकी रक्षामें अपनी दुःखी आत्माको वीरताकी वेदीपर आत्मोत्सर्ग कर देनेका दृढ़ निश्चय उसने कर लिया ।

'इन दस-पन्द्रह गँवारोंका तो पल भरमें खात्मा कर दूँगा ।'

'इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी' खड़े होते हुए जसुभा बोले । 'देखो ! इस सदर दरवाजाके पास बैठे हुए लोग गप्प मार रहे हैं । रघुभाई कह गया है कि पीछेके दरवाजेपर उसने घोड़ा तैयार रखा है, वहाँ पर पहरा नहीं होगा । उसी घोड़ेका उपयोग कर चलो हमलोग केवलपुर चल चलें ।'

'सरकार ! इस प्रकार चलना क्या उचित होगा ?'

'रणु ! तुम्हारे जैसे सीधे स्वभाव के लड़ने वाले वीरोंका समय अब नहीं रहा, अब तो बुद्धि-युगका जमाना है ।'

'जैसी महाराजकी इच्छा !'

'लेकिन रास्ता भी तो मिलना कठिन होगा, यह मठ तो एक बड़े किलेके समान है ।'

'रास्ता ढूँढ़ निकालनेमें देर नहीं लगेगी' कहकर रणुभाने तलवारका कमरबन्द जरा ढीला किया । जसुभा छड़ी लेकर रणुभाके साथ इस प्रकार चले मानो वायु-सेवनके लिए जा रहे हों । बाहर अँधेरा था । कहीं कहीं बिजलीकी रोशनी थी, बाकी सब जगह भयंकर अंधकारका साम्राज्य छाया हुआ था । चुपचाप दोनों व्यक्ति नीचे उतरने लगे । आगे-आगे जसुभा और उनके पीछे रणुभा । थोड़ी देरमें एक स्वामी मिला जिसने बटन दबाकर थोड़ी दूरमें प्रकाश कर दिया । तुरन्त कूदकर जसुभा एक दरवाजेके पीछे छिप गये, उनके पीछे-पीछे रणुभा भी छिप गये । थोड़ी ही देरमें बिजली बुझाकर स्वामी वहाँसे चला गया । बीचमें ही पकड़ जानेके भयसे जसुभाने सामनेका रास्ता लिया और जल्दी-जल्दी चलनेका प्रयत्न किया । तुरन्त ही दोनों व्यक्ति चौंककर खड़े हो गये । दूरसे दो आवाज सुनाई दी जिसे सुनकर दोनोंके हृदयमें भिन्न-भिन्न भाव उत्पन्न हुए । उनमेंसे एक अनंतानन्दकी विविध भाव दर्शाने वाली सुसंस्कृत आवाज थी और दूसरी मोटी बोली रघुभाईकी लग रही थी । आवाज पास आई । दोनों दीवालमें सटकर साँस रोककर खड़े हो गये ।

'कल प्रातःकाल बात न हो सकेगी ?' अनंतानन्दने पूछा । 'इस समय मैं बहुत काममें हूँ ।'

'मेरा काम भी अत्यन्त आवश्यक है नहीं तो इस समय आपको क्यों रोकता ? एकान्तमें चलिये, यदि मेरा कथन आवश्यक जान न पड़ेगा तो मैं चला जाऊँगा ।'

'अच्छी बात है ।' कहकर दोनों आगे बढ़ गये ।

'रणु !' जसुभाने धीरेसे कहा, 'इन दोनों धूर्त्तोंको देखा ? चलो, हम भी इनके पीछे चलें ।'

'महाराज ! उन्हें जाने दीजिये, अब तो यहाँसे निकल चलनेमें ही अपनी कुशल है। यदि हम पकड़ गये तब ?' धीरेसे कहकर रणुभाने उनका हाथ पकड़ लिया।

जसुभा इस समय पूर्ण आवेशमें थे। घरमें पाला हुआ शेर लोहू चखकर जिस प्रकार भयङ्कर होता है वैसे ही भय और साहसके कारण उनकी सुप्त वीरता जागृत हो उठी थी और भय-जनक प्रसंगका भरपूर आनन्द लेनेकी दृढ़ इच्छा उनमें उत्पन्न हो गई थी।

'नहीं, तुम जाना चाहो तो जा सकते हो, मैं तो इनके पीछे जाऊँगा।' कहकर जसुभा उन दोनोंके पीछे चले। विवश हो रणुने भी चुपचाप उनका साथ दिया। अनंतानंदका स्वर जिसे वह आज तक पूज्य समझता था, सुनकर वह पुनः व्यथित हो उठा; संध्याके अनुभवका स्मरण हरा हो गया। स्वामीपर क्रोध उत्पन्न हो आया। किये गये विश्वासघातसे उसे चोट पहुँची। उसका वश चलता तो अनंतानंदका कभी मुँह भी न देखता, किंतु इस समय राज-भक्तिसे लाचार था।

आवाजका अनुसरण करते हुए दोनों व्यक्ति चले। तीसरे खण्डपर पहुँचकर उन्होंने स्वामीको जा पकड़ा। उन्हें बराबर डर बना रहता था कि कहींसे एका-एक बिजलीका प्रकाश उनकी उपस्थिति प्रकट न कर दे। इस प्रकार चलते हुए सब लोग एक लम्बे गलियारेमें पहुँचे जिसमें एकके पीछे एक बहुत सी आल-मारियोंका जमघट था। सावधानीसे जसुभा उनके पीछे-पीछे चले जा रहे थे। सबसे अन्तिम कमरेमें पहुँचकर अनंतानंदने बिजली जलाई। बिजलीके प्रकाश से कमरेमें रखी हुई पुस्तकोंको देखकर जसुभा आश्चर्यचकित हो गये। ये पुस्तकें उन्हें भिन्न-भिन्न भाषाकी जान पड़ीं। उन्होंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि स्वामीजी इतने दिग्गज विद्वान होंगे।

बिजलीके नीचे एक विशाल टेबुल पड़ा हुआ था। यह कमरा किसी पाश्चात्य प्रोफेसरके अभ्यासगृह जैसा लग रहा था। रघुभाईके बैठनेके लिए एक कुर्सी देकर स्वामीजी उसके सामने बैठ गये। जसुभा एक आलमारीके पीछे छिप-कर उन दोनोंकी बातचीत सुनने लगे।

कुछ देर तक अनंतानंद घूरकर रघुभाईको देखते रहे। रघुभाईने अंतिम द्वन्द्वयुद्धके लिए अपनी पूरी शक्ति एकत्र की।

'कहो रघुभाई, क्या कहना चाहते हो ?' स्वामीने पूछा।

इस समय भी उनका गौरव देखकर जसुभा चकित हुए। धूर्त्तोंमें रहनेवाली अधमताकी छोटी से छोटी रेखाका चिन्ह भी उनके चेहरेपर नहीं था। 'स्वामी जबरदस्त है' वह बड़बड़ाया।

'महाराज ! आज छः वर्षसे आपके साथ काम कर रहा हूँ, आज ही साफ साफ बातें करनेका समय मिला है।'

'यह तो तुम जानो, लेकिन मेरा व्यवहार तो बिल्कुल साफ और स्पष्ट रहा है।'

'उसे कहने-सुननेका यह समय नहीं है' सिर नीचा कर रघुभाईने अपनी बात कहना आरम्भ किया, 'महाराज ! मुझे तो इतना ही कहना है कि जबसे मैंने आपके साथ काम करना प्रारम्भ किया तबसे आजतक आपके ही लिए मैंने सब प्रयत्न किये हैं और उसका प्रमाण देनेके लिए ही मैं इस समय आपके पास आया हूँ जिससे आपको विश्वास हो जायगा कि आपके हितके लिए मैं कितना प्रयत्नशील रहा हूँ।'

'अपनी तेजस्वी आँखोंकी निर्मल प्रभासे रघुभाईके हृदयको उत्तर दे रहे हों इस प्रकार देखते हुए स्वामीजी बोले—'हूँ।'

'जसुभा इस समय यहीं हैं ?'

'हाँ !'

'तब तो यह अवसर बड़ा अच्छा है, जो कुछ हम लोगोंने सोच रखा है, उसे कर डालना चाहिये।'

४०

'हम लोगोंने क्या सोच रखा है ?'

'महाराज ! यह तो आप ही जानते होंगे ! नहीं तो रेवाशङ्करकी कुव्यवस्था-का प्रमाण आप एकत्र क्यों करते और महाराजको यहाँ लानेका इतना परिश्रम

क्यों करते ? आपके लक्ष्यका मुझे पता है और उसे प्राप्त करनेमें सहायता करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।'

'बहुत ठीक, तब इस समय तुम क्या करना चाहते हो ?' एक तटस्थ व्यक्तिके जैसी विरक्तिके साथ स्वामीजीने पूछा ।

'क्या-क्या ?' ऐसा अवसर भी क्या फिर हाथ लगेगा ? जसुभा अपने हाथमें हैं । मेरे पास एक अद्भुत भेद है जिसे मैं आपको बतानेके लिए आया हूँ । उसका उपयोग कीजिये, और आपकी पौ बारह है ।

'यह अद्भुत भेद मुझे बतानेके लिए आनेका कारण ?'

यह सुनकर जसुभाने सन्तोषकी साँस लिया । अनंतानंदके प्रति उनका आदर बढ़ता गया । उन्हें विश्वास हो गया कि रघुभाई और स्वामी दोनों एक ही श्रेणीमें नहीं रखे जा सकते ।

'कारण दूसरा क्या ? आपके साथ मैं काम कर रहा हूँ और यह भेद आपके स्वार्थका है बस इतना ही ।'

'मेरा स्वार्थ ? संन्यासियोंको कोई स्वत्व ही नहीं होता तब स्वार्थ कैसा ?'

'स्वार्थ कहिये, परमार्थ कहिये, इसे चाहे जो कुछ समझें ।' थोड़ा व्यंग करते हुए रघुभाईने कहा । स्वामीके ऐसे ढङ्गसे वह हमेशा घबड़ा उठता था । 'यह अवसर चूक जानेसे फिर हाथ नहीं लगेगा । आपको क्या पता कि जसुभा क्षण भरमें पदभ्रष्ट किये जा सकते हैं ? इसका पता अकेले मुझे है ।'

'उनके नौकर होते हुए भी तुम्हारा ऐसा कहना क्या तुम्हारे लिए नमक-हरामी नहीं कही जा सकती ?'

'महाराज ! ऐसे खोटे राजाकी नमकहलाली मुझसे नहीं होती । मैं तो अच्छे राजाकी ही करूँगा; स्वर्गीय मानसिंहके पुत्रका जहाँ पसीना गिरेगा वहाँ मेरा खून गिरेगा ।'

अनन्तानन्द चुपचाप उसकी ओर देखते रहे ।

'महाराज ! यह समय न तो इस प्रकार बैठ रहनेका है और न अधिक सोच-विचार करनेका है । मुझे आज्ञा दीजिये तो चौबीस घंटेमें जसुभाको दर-दर का भिखारी बना दूँ ।'

यह सुनकर जसुभा दाँत पीसने लगे।

'किस प्रकार ?' स्वामीजीने पूछा।

'किस प्रकार ? आपको क्या नहीं मालूम ?' रघुभाईने समझा कि स्वामी को कुछ पता नहीं है इससे उसने आखिरी पासा फेंका, 'स्वामीजी ! स्वामीजी ! आप यह कह क्या रहे हैं ? रत्नगढ़का राज्य क्या इस भिखमंगेका है ? रत्नगढ़की विशाल भूमिके सच्चे मालिक तो आप हैं।'

'मैं ?' शान्त स्वरमें स्वामीजीने पूछा। उनकी आँखें केवल रघुभाई पर ही गड़ी हुई थीं।

जसुभा अँधेरेमें आखें फाड़-फाड़कर देखने लगे।

'जी हाँ, आप ! सच्चे अधिकारी आप हैं। यदि आप आज्ञा दें तो तीन मासमें ही आप गद्दीपर विराजने लगें।'

'जसुभा कौन हैं ?'

'जसुभा ! महाराज क्षमा करें, मुझे राजबाकी चरित्र-हीनता बतलानी ही पड़ेगी; लाचारी है ! राजबाको दो पुत्र थे, एक विवाहके पूर्व उत्पन्न वह जसुभा; एवं दूसरा विवाहके पश्चात् उत्पन्न वह आप।'

यह सुनकर स्वामीके चेहरे पर तनिक भी परिवर्तन दिखाई नहीं दिया।

'तब वह कैसे गद्दीपर बैठा ?'

रघुभाईने समझा कि अब स्वामी ठिकाने आया, वह बोला—'राजबा दरेसाल रहती थीं। आपके गुरु अमोघानन्दकी वे शिष्या थीं। पहला बालक उनको सौंप दिया, इसके पश्चात् आप हुए, किन्तु प्रथम पुत्रपर उन्हें अथाह प्रेम था, अतः बड़ा होने पर दोनोंमें अदल-बदल हुआ और जसुभा राजकुमार माने जाने लगे।'

आलमारी के पीछे रणुभा और जसुभा एक दूसरेकी ओर देखने लगे। दोनोंका हृदय धड़क रहा था।

'इसका प्रमाण ?' स्वस्थ स्वरमें अनन्तानन्दने पूछा।

'प्रमाण ? जितना चाहें। दोलाशा, कल्याण नायक, पत्र, जन्म-पत्रिका, जो भी आप चाहें। आपकी आज्ञा भरकी देर है। रेसीडेंसी सब अपने हाथमें है।

'और मेरी आज्ञा लेनेके लिए यहाँ आये हो रघुभाई ? क्यों !' शान्तिपूर्वक स्वामीजी बोले; किन्तु उनकी आवाजमें गूढ़ प्रभावकी झङ्कार थी। 'यह तुमने कैसे समझ लिया कि अनंतानंद तुम्हारी बात मान लेगा ? जैसा तुम कह रहे हो वैसी ही आज्ञा दे देगा ? एवं संन्यास छोड़कर तुम्हारे दर्शाये हुए मार्ग पर चलेगा ?' उनकी आवाजमें ग्लानि आई, 'रघुभाई ! रघुभाई ! तुमपर मुझे दया आती है। तुम्हारी बुद्धि एवं कुशलताके प्रमाणमें यदि तुममें शुद्ध अभिलाषा होती तो आज तुम अनेक प्राणियोंके सुखके साधनरूप हो जाते किन्तु तुम्हारा घड़ा भर गया है।'

रघुभाई तो भयसे काँप उठा। यह तो स्वामीजीकी चमकती हुई आँखों को मूकवत् देखता रह गया।

'तुम समझते हो कि मैं कुछ जानता नहीं ! क्यों ? तुम्हारी दुर्गापुरकी यात्रा, दोलाशासे मिलाप, मुझसे छिपा है ? जसुभाको वारत आनेसे कौन रोक रहा था ? पेस्तनजीके साथ छिपकर कौन बात कर रहा था ? इस समय यहाँ मुझे पकड़नेके लिए और जसुभाको ले जानेके लिए रेसीडेंसीके मनुष्योंको किसने तैयार रखा है ? तुमने—रघुभाई ! अभी जसुभासे क्या बातें कर आये हो ? दीवानी माँगने गये थे ! क्यों ? जसुभा द्वारा निकाले जानेपर मेरे पास आये हो ! क्यों ? अभी तक तुम्हें पता नहीं है कि अनंतानंदको धोखा देना टेढ़ी खीर है !'

'जो कुछ भी हो, यदि आपको मेरे भेदका उपयोग करना हो तो कीजिये, मुझे क्या ?' हाथमेंसे बाजीको निकली जाती हुई देखकर आखिरी दाँव रघुभाईने रखा।

'तुम्हारा भेद ? इस भेदको तो मैं आज बीस वर्षसे जानता हूँ। किन्तु तुम्हारा भेद और तुम्हारे क्षुद्र राज्यकी मुझे क्या परवाह है ? तुम्हारा पराधीन राज्य एवं भाड़ेका अधिकार तो क्या, साम्राज्यके अधिकारकी अपेक्षा भी मेरा संन्यस्त मुझे अधिक प्रिय है, अधिक प्रभावशाली है। यदि राजबाने भूल की तो अच्छेके लिए ही, नहीं तो जो आनंद एवं जो साम्राज्यका अनुभव आज मैं कर सकता हूँ, उसका अंशमात्र भी न मिल सकता। यदि जसुभाको पदभ्रष्ट करना होता तो क्या मुझे देर लगती ? लेकिन किसलिये ? मुझे राजपाटका क्या करना है ? उसे

राजभोग करनेका शौक है तो भले ही करे—मुझे सचमुच राज्य करना होगा तो वह सत्ता प्राप्त करनेमें क्या मुझे देर लगेगी ? मुझे राज्यका उद्धार करना है, विनाश नहीं। रेवाशङ्करको निकालनेसे उसने अस्वीकार कर दिया, प्रातःकाल उसके पास पुनः जाऊँगा, पुनः उसके पैर पड़ूँगा—कहूँगा कि सच्चा अधिकारी होते हुए भी भिक्षा माँगता हूँ कि राज्यका उद्धार करनेकी सत्ता मुझे दो। यह तुम्हारा भेद मैं किसीपर भी प्रकट न करता किंतु जसुभा न मानेगा तो उसका उपयोग इस रूपमें करूँगा। इस समय उस विचारेको खबर नहीं है कि—'

'नहीं क्यों ? है।' गद्‌गद् कंठसे आलमारीके पीछेसे बाहर आते हुए जसुभा बोले। उनके मनपर पड़ा हुआ अंधकार नष्ट हो गया था। उसने रहस्य समझा, अनंतानंदको पहचाना, उनकी भावना, उनकी भव्यताका पूर्ण ज्ञान हुआ। उनका हृदय भर गया था, उनकी आँखोंमें आँसू थे, भ्रातृ-भावने, पूज्य-भावने उनके स्वार्थका—स्वार्थवृत्तिका नाश कर दिया था।

स्वामी और रघुभाई चौंककर उधर घूमे। रघुभाईको अपने पराजित होनेका विश्वास हो गया। उसकी सब हक्की-बक्की भूल गई।

'ओ हो जसुभा !' मुस्कुराते हुए स्वामीजी बोले। वे पूर्ण शांतिसे बैठे हुए थे। 'इस समय आपके लिए बहुत सी बातें सुनने लायक नहीं थीं।'

किन्तु इस कथनके पूर्व ही जसुभा स्वामीके पैरपर गिर पड़े, उनके अश्रु-बिन्दुओंसे जमीन तर होने लगी।

'भाई ! भाई ! तुम तो देवता हो। इसी समयकी बातें तो मेरे सुनने लायक थीं।'

स्वामीजीने जसुभाको उठाकर उनके सिरपर हाथ फेरा।

'जसुभा ! यह सम्बन्ध भूल जाओ, मुझे सम्बन्धसे क्या मतलब ? जिसमें जितना अंश सच्चिदानंदत्व है उतने ही अंशमें वह मेरा सम्बन्धी है। तुम्हारी भाषामें मैं कहूँ तो आप मेरे महाराजा हैं और मैं आपका संन्यासी हूँ। आइये विराजिये !' कहकर अपनी कुर्सीपर बैठनेका अनंतानंदने संकेत किया।

जसुभा बैठे नहीं, खड़े ही रहे। चारों व्यक्ति खड़े रहे। रणुभाका मन व्याकुल हो रहा था। उनका पूज्यभाव तो उनका हृदय फाड़कर बाहर निकलना

चाहता था, केवल चंपाकी स्मृति उसे रोक रही थी। किन्तु मानसिंहजीके पुत्र और स्वयं उनके गुरु! भले ही चम्पाको ले जाँय, उनके लिए चम्पा अब अस्पर्श्य है।

'किन्तु जसुभा!' रघुभाईकी ओर घूमते ही स्वामीजीके चेहरेपर कठोरता एवं आँखोंमें दया-हीनता आ गई; वसंतकी रसमयता लुप्त हो गई, उसका स्थान ग्रीष्मके प्रारम्भकी शुष्कताने ले लिया, 'एक गृहस्थकी हमलोग विनती भी स्वीकार न कर सके, क्यों रघुभाई! तुम्हारा तुच्छ, स्वार्थपूर्ण खेल समाप्त हो गया।'

'रघुभाई! अब अपना मुँह काला करो, तुम्हें छुट्टी है।' जसुभा क्रोधसे बोले।

'यह तो सवेरे देखियेगा' रघुभाईमें अब भी ताव था।

'क्या? मरनेपर भी मियाँजी कब्रमें टाँग ऊँची किये हुए हैं!' जसुभा बोले, 'कल सबेरे ही रेसीडेंसीमें लिखूँगा कि तू मुझे धमकाने आया था।'

'महाराज! आपकी घमण्डी अनीतिका प्रमाण—'

वाक्य पूरा करनेके पूर्व ही रणुभाने उसका गला धर दबाया। अनंतानंद ने गौरवसे हाथ ऊँचा किया, उनके शांत स्वरने रणुभाको रोका—'रणुभा! जाने दो। यह जंतु तुम्हारे क्रोधका भी पात्र होने योग्य नहीं है।'

'रघुभाई? व्यर्थ शेखी मत बघारो' कहकर टेबुलके दराज़मेंसे कुछ कागज निकाला। 'यह है तुम्हारी दौलत और ये हैं तुम्हारे पत्र जिन्हें तुमने पेस्तनजीको लिखा था! और कुछ बाकी है? तुम्हारे सभी आदमी कैद हो चुके हैं। तुम्हारा पारसी मित्र मेरा नौकर है। और कुछ? हाँ एक ही बात बाकी है। जसुभा! जरा यहाँ बैठो और रघुभाईको राज्य छोड़नेका आज्ञा-पत्र तो लिखो।'

जसुभा वैसा करनेके लिए बैठ गये। उनके चेहरेपर छोटे बालककी नम्रता व्याप रही थी।

'रघुभाई! जाओ; इस राज्यमें अब तुम्हारा काम नहीं है। पृथ्वी विशाल है किन्तु रत्नगढ़के राजकीय खटपटमें यदि तुमने भाग लिया तब समझ रखना। रामकृष्णदासजीने तो कुएँमें लटकाकर वापस निकाल लिया, अनंतानंद उतना भी नहीं करेगा। जाओ परमेश्वरका भजन करो ताकि वह तुम्हारे मलीन हृदयको

निर्मल करे।' टेबुलपर रखी हुई घंटी उन्होंने बजाई, एक नौकर आया, 'जाओ नीतिसेनको बुला लाओ।'

'जसुभा! एक कृपा और करोगे?'

'जो आज्ञा दीजिये।'

'रेवाशंकरको एक पत्र नौकरीसे हट जानेका लिख दो।'

'आप अपना निश्चय ही करावेंगे क्यों? गरीब बिचारा रेवाशङ्कर!' कहकर जसुभाने कलम हाथमें ली। थोड़ी देरमें नीतिसेन आया। वह बीस-बाईस वर्षका हृष्ट-पुष्ट युवक था।

'जसुभा! यह आपके वारतका कोतवाल है!'

'कुछ छोटा है, क्यों?' हँसकर जसुभाने पूछा।

'जी नहीं, हमारे यहाँ प्रत्येक बालक बीससे बाईस वर्ष तक गाँवका रक्षण करना सीखता है।

'मिलीशिया! स्वामी! आपने यूरपमें जन्म लिया होता तो कहीं अच्छा होता।'

'कैसे जाना! 'पुअर हाउस' में भूखसे मर न गया होता? नीतिसेन! यह पत्र ले जाकर रत्नगढ़के दीवानको दो। साथमें पचीस मनुष्य लेते जाओ और आज्ञानुसार कार्य करना। रणुभा! तुम्हें जाकर रेवाशङ्करसे चार्ज लेना है।'

'मुझे?' रणुभाने चकित होकर पूछा।

उसने शंकासे जसुभाकी ओर देखा। 'बहुत ठीक, रणु दीवान! यह भी एक खेल है।'

'मैं जाऊँ, सरकार?' रणुभा स्तम्भित था।

'घबड़ाओ मत', स्वामीजी मनका भाव ताड़कर बोले 'तुम्हारे जसुभाका बाल भी बाँका नहीं होगा। नीतिसेन! पाँच मनुष्य इस रघुभाईके साथ भेज दो, देखो रत्नगढ़की सरहदतक किसीसे भी इसे बात करने मत देना। जाओ, व्यर्थ घोड़े इन्तजारीमें खड़े होंगे।'

'पहलेसे ही तैयार रखा है क्या?' जसुभाने पूछा।

'जी नहीं, यह तो भाई साहबकी कृपा है, रेसीडेंसीकी फौज तो इन्होंने मँगाई थी।'

क्रोध एवं ईर्ष्यासे अनंतानंदकी ओर देखकर सिर नीचा किये हुए रघुभाई बाहर निकले। पीछे नीतिसेन गया, किन्तु रणुभाका पैर नहीं उठता था। 'रणुभा !' स्वामीजीने कहा, 'चम्पाके कारण उदास हो रहे हो क्या ?'

रणुभा नीचे देखने लगे। उसकी चिंताका कारण स्वामीजी समझ गये थे। 'मैं कहीं ले नहीं गया हूँ, स्वयं गिरनार गई है, कुछ दिन तक योगिनी रहकर वापस लौटेगी। जाओ अब निश्चिन्तता-पूर्वक रेवाशङ्करको बिदा करो।'

रणुभाने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टिसे स्वामीजीकी ओर देखा और वे हलके मनसे बाहर निकले।

४१

पाठक ! रघुभाईको यहीं छोड़कर चलिये जरा जगतकी खोज खबर लें। डुम्मससे वह हर्षित होकर लौटा। उसमें अभीतक पूर्ण-ज्ञानका संचार नहीं हुआ था। बिदा जैसे गंभीर अवसरपर जैसी दूरदर्शिता चाहिये, तनमनके मिलापके पश्चात् इस प्रकारके प्रेमके परिणाम स्वरूप जैसे गंभीर विचार आने चाहिये, वे सब उसमें आये नहीं थे। उसका मन तो एक प्रकारसे प्रफुल्लित था। तनमन जैसी प्रियतमा प्राप्त करनेकी आशासे उसके हाथमें सहस्रगुण ताकत आ गई थी, येन-केन प्रकारेण अपनी शिक्षा पूर्ण कर, तनमनको अपनी बनाकर, जीवन यथाशक्ति सार्थक करना, यही विचार उसके मनमें बराबर चक्कर लगाया करते थे।

वह सूरत आया ! गुणवंतीने कठिन परिश्रम एवं उपवास कर बीमारी बुला लिया था। एक पखवाड़ेमें हो उसकी निर्बलता अत्यधिक बढ़ गई थी जिससे बड़ी कठिनतासे वह बिछौने परसे उठ सकती थी। बच्चूने डाक्टरकी दवा प्रारम्भ कर दी थी। जगतको देखकर उसकी आँखें स्नेहार्द्र हो गईं।

'जगत ! आ गये ? स्वास्थ्य तो पहलेसे बहुत सुधरा हुआ है।'

'लेकिन माँ ! आपको यह क्या हो गया है ?'

'कुछ नहीं जी !' जरा बेफिक्री दिखाते हुए गुणवंतीने कहा, 'थोड़ा

ज्वर आ रहा है; वह जाता रहेगा। डुम्मसमें मन लगता था न!'

'हाँ' जरा खुश होकर जगत बोला, 'माँ! आपको प्रणाम कहा है।'

'किसने?'

'तनमन आपको याद है?' जगतने पूछा। उसके मुँह परकी मुस्कुराहट एवं स्वरका कंपन उसके हृदयके भावको बता रहे थे।

'कौन तुम्हारी 'देवी'? उससे भेंट हुई थी क्या? अब तो बड़ी हो गई होगी?'

जगतकी इच्छा सब कुछ बता देनेकी हुई किन्तु उसकी जीभने जवाब दे दिया।

'जी हाँ! हरिलाल काका तो बहुत वृद्ध हो गये हैं।'

'अवश्य ही हो गये होंगे। तू कितना छोटा था और अब कितना बड़ा हो गया है?'

जगतको डुम्मस स्मरण करनेका अधिक समय नहीं मिला। गुणवंतीकी हालत दिनों-दिन खराब होती गई जिससे दिन-रात उसकी सेवामें ही जगतको लगे रहना पड़ता था। उसे विचार करनेका अधिक समय नहीं मिलता था; फिर भी तनमन उसकी आँखोंके सामने नाचा करती थी। कभी-कभी हवाई किले बनानेमें ही वह मस्त रहता। तनमन पर पड़ी हुई विपदका उसे कुछ पता नहीं था। वह डुम्मसमें इस प्रकार घूमती होगी, इस प्रकार गाती होगी, आम्र-वाटिकामें बैठकर—'पिया, तैं कहाँ गयो नेहरा लगाय' यह ललित पद गाती होगी, इस प्रकारके विचारोंमें मग्न हो जाता एवं गुणवंतीके बीमारीकी सेवा-शुश्रूषा से विमुक्त होते ही अपनी 'देवी' लायक होनेका प्रयत्न करनेका निश्चय करता। उसका जीवन अभी तक अनियमित था, उसमें तनमनका अब प्रवेश हो गया था। उसका मन गर्वसे प्रमुदित हो गया, साहस बढ़ा। संसारमें विजय प्राप्त करना, यह बहुत साधारण-सी बात मालूम पड़ी। अपनी प्रेयसीकी प्रशंसा एवं उसका प्रेम प्राप्त करनेके लिए उच्च प्रयत्न करना ही बहुतसे मनुष्योंके जीवनका ध्येय होता है।

ऐसे सुखमय स्वप्नमें एक दिन विषमता आई। डाक्टरके यहाँसे लौटते

समय अचानक रघुभाईसे उसकी भेंट हो गई। रघुभाई अनन्तानन्दसे पराजित होकर रत्नगढ़से यहाँ एक दिन पहले ही आया था। जगत और रघुभाईकी आँखें मिलीं। दोनों विचारमें पड़ गये। छः वर्ष पश्चात् दोनों मिले थे, किन्तु न मिले होते तो अच्छा हुआ होता—यह विचार दोनोंके मनमें एक साथ ही आये! उनकी समझमें नहीं आया कि एक दूसरेको बुलावें या नहीं। रघुभाई की नीति-निपुणताने इस समय भी उसकी सहायता की।

'ओ हो हो जगत किशोर! कैसे हो?'

'अच्छा हूँ' थोड़ी विरक्तिसे जगतने उत्तर दिया। रत्नगढ़ क्यों और कैसे उसे तथा उसकी प्यारी माँको छोड़ना पड़ा था; यह याद आया और उसके हृदयमें विष व्याप गया।

'भाभी कैसी हैं?'

'अच्छी हैं' कहकर रघुभाईको छोड़कर जगत चलता बना।

रघुभाईको पुरानी घटना याद आ गई। इस देश निकालेसे उसका मन पीड़ित था, सूरतमें लोग उसे तिरस्कारसे देखते होंगे, इस ख्यालसे उसे दुःख होता, उसपर इस विचारने तो आगमें घीका काम किया। गुणवंतीका रूप, गुण एवं विवेकका उसे स्मरण आया। एक बार पुनः उससे मिलनेकी इच्छा हुई किन्तु कौन सा मुँह लेकर जाय?

कुछ दिन सूरतमें रहकर बम्बई जानेका उसने विचार किया था। वहाँके अथाह जनसमूहमें उसकी ओर कोई ध्यान न देगा; वहाँके वैचित्र्यमें उसके जैसे मनुष्योंके भी मिल जानेकी पूर्ण सम्भावना थी। वहाँकी नवीन जान-पहचानमें उसके किये हुए कर्मोंके अज्ञानसे लोगोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी महत्वाकांक्षा भी परिपूर्ण होनेकी उसे भरपूर आशा थी। वहाँ जाकर जीवनका नवीन अध्याय प्रारम्भ करनेके पहले गुणवंतीसे मिलनेकी उसे इच्छा हुई। उससे भेंट करनेका बहाना वह ढूँढ़ने लगा।

रघुभाई विचारमें लीन घर पहुँचा। बरामदेमें रमा खड़ी थी। उसकी बड़ी, निर्दोष आँखें दूरपर खेलते हुए बालकोंको देख रही थीं। वह मिष्ट भाषी थी। अभी उसका शरीर अशक्त तथा इकहरा था किन्तु भविष्यमें सुन्दर और सुदृढ़

हो जायगा ऐसा अभीसे मालूम पड़ता था।

रमा रघुभाईसे बहुत डरती थी। नीति-निपुण बापके मस्तिष्कमें स्नेहके लिए अधिक स्थान नहीं था। विवश होने पर ही उसे बुलाता। उसके ठंढे, भावहीन शब्दोंमें बालकोंके निर्दोष हृदयको आकृष्ट करनेकी कोई विशेषता नहीं थी।

'रमा! तुम्हारी माँ क्या कर रही हैं?'

रमा थोड़ा हँसकर बोली—'भीतर हैं।'

कमला ऊपर सामान निकाल रही थी। उसमें कोई गुण बड़ा था तो केवल पतिमें श्रद्धा। उसके लिए रघुभाई ईश्वर थे, उसका कथन वेद प्रमाण था। रत्नगढ़से उन्हें अचानक क्यों भागना पड़ा, नायब-दीवानी क्यों छोड़नी पड़ी आदि बातोंके सम्बन्धमें कभी वह कुछ सोचती नहीं थी। एक तो रघुभाईसे बहुत डरती थी जिससे पत्थरकी मूर्त्ति एवं उसके पुजारीमें जितनी सहानुभूति हो सकती है उतनी ही इन दोनोंमें थी। यहाँ आने पर भी वह अपनी पूर्व सरलतासे कार्यमें लग गई।

'अरे ओ! गुणवंती भाभीसे मिल आई?'

'हाँ, कल हो आई' एक थाली साफ करते हुए उसने उत्तर दिया, 'मुझसे तो रहा ही नहीं गया।'

'कैसी हैं?'

'बिचारी बड़ी बीमार है, किन्तु कैसी भली है?'

'अभी तो संसारसे जानेकी आशा नहीं है न?'

'कुछ कहा नहीं जा सकता। बिलकुल ऐसी हो गई है!' कहकर कमलाने अपनी उँगली दिखाई।

रघुभाईने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके मनमें अनेक विचार उत्पन्न हो रहे थे।

———

४२

दूसरे दिन गुणवंतीकी स्थिति और भी खराब हो गई। अन्य दिनोंकी अपेक्षा आज ज्वर बढ़ गया था और आँखोंकी पलकें बड़ी कठिनतासे खुलती थीं। बच्चू और उसकी पत्नी कुन्दन पासमें बैठे थे। डाक्टरके यहाँसे जगतके लौटकर आने पर गुणवंतीने आँखें खोलीं और जरा फीकी हँसी हँसी। जगत चारपाई पर बैठा और नाड़ी देखने लगा।

'माँ, अब तबीयत कैसी है ?'

'अच्छी है' थोड़ा परिश्रमसे गुणवंतीने कहा। उसकी स्पष्ट निर्बलताने जगतके मनमें भयङ्कर विचार उत्पन्न कर दिया। उसे भय होने लगा कि माँकी साधारण बीमारी कहीं घातक न सिद्ध हो।

'कुछ बेचैनी तो नहीं है ?'

'नहीं ! बेकार क्यों घबड़ा रहे हैं, बबुआजी ?' कुंदनने कहा।

'बेटा !' अधिक प्रयास कर गुणवंती बोली, 'घबड़ाओ मत, मुझे कुछ होना नहीं है, यदि कुछ हो भी तो कुछ चिन्ता नहीं। मुझ जैसीके जिन्दा रहने से लाभ ही क्या ?'

'चाची ! यह आप कह क्या रही हैं ?' बच्चूने कहा।

'बच्चू ! जीवन सबको प्यारा है। अभी मुझे जगतको ठिकाने लगाना है, किन्तु मेरा विचार पूर्ण होता दिखाई नहीं देता।'

'माँ ! यह सब विचार कर अपनी ताकत क्यों नष्ट कर रही हैं ? जल्दी ही सब ठीक हो जायगा।'

गुणवंतीने आँखें बन्द कर लीं। अब अधिक बोलना उसके लिए असह्य था। सभी चुपचाप बैठे थे; उसकी श्वाँस तेजीसे चलने लगी। उसके गाल बैठ गये थे, हड्डियाँ बाहर निकल आई थीं जिससे चेहरा भयानक लग रहा था। जगतकी छाती धड़कने लगी।

'बच्चू भाई ! आप बैठिये, डाक्टरको एक बार फिर बुला लाऊँ।'

'जगत ! बेटा !' जगतकी बात सुनने पर गुणवंती अपनी निस्तेज आँखों को खोलकर बोली और जगतको हाथ उठाकर कहीं जानेके लिए मना किया।

'कहो माँ, क्या है ?'

'कुछ...नहीं...!' शब्द अत्यन्त धीरे-धीरे निकल रहे थे, 'जरा...बैठ !'

जगत चुपचाप बैठ गया।

'जगत ! मेरा जी उड़ा जा रहा है। घबड़ा मत। बच्चू भाई ! कुंदन ! मेरे जगतकी देखभाल करना, समझे ?'

'बहुत अच्छा चाची !' स्नेही भोले बच्चूकी आँखें भर आईं।

'जगत ! पढ़ना; बच्चूभाई ! इसका विवाह कर देना समझे ! मैं इसका विवाह देख सकती तो अच्छा होता पर न देख सकूँगी।'

'माँ, माँ, यह क्या कह रही हो ! मुझे डाक्टरको तो बुला लाने दो।'

'जरा ठहर तो सही ! अब मुझे अपना भरोसा नहीं लगता। कई बार... ऊँ...ऊँ...जगत ! जगत ! अँधेरा मालूम पड़ रहा है। रामकृष्णदासजीसे प्रणाम कहना। और...और...' मन्द पड़ता हुआ स्वर काँप उठा, 'रघुभाईसे कहना कि भगवान उन्हें क्षमा करे। जगत ! बेटा ! अपने बापका नाम रखना। कुंदन ! जाओ, अपनी माँको बुला लाओ, अभी तुमलोग बच्चे हो।' कहकर गुणवंतीने पुनः आँखें बन्द कर लीं।

'जगत भाई ! जाओ, डाक्टरको जल्दी बुला लाओ।' बच्चूने कहा।

जगतको घबड़ाहट हो रही थी, छाती मानो बैठी जा रही थी ! अब तक किसी दिन उसे यह विचार भी नहीं आया था कि उसकी माँका अन्तकाल निकट है। इस समय उसे चारो ओर शून्य दिखाई पड़ रहा था। अतिशय दुःख एवं भयने जड़ता उत्पन्न कर दी थी। वह उठा और तेजीसे निकल पड़ा। माँका कथन अक्षरशः उसके हृदयमें अंकित हो गया था। रामकृष्णदासजी— रघुभाई; एकाएक हृदयमें दूसरा विचार आया। अवश्य ही रघुभाईके पापसे ही रत्नगढ़ छोड़ना पड़ा था; अन्यथा मरणासन्न माँ यह कभी न कहतीं। माँ— उसकी प्रिय परम पूज्य माँ—को रघुभाईने क्या-क्या दुःख दिया होगा ? दुःखसे भी सहस्रगुण दुःखमय क्या-क्या अनुभव कराया होगा ? माँकी मृत्युके भयसे

जो प्रेम-सरिता बहने लगी थी वह इस प्रवाहमें बह निकली। उसे अपने पर तिरस्कार आया, उसकी माँने जो-जो सहन किया, उसका उसने क्या बदला लिया? इसी प्रकार विचार करते हुए वह डाक्टरके यहाँ पहुँचा, अभाग्यवश डाक्टर घरपर नहीं था। पता लगाकर जहाँ डाक्टर गया था वहाँ गया, वहाँ पर भी डाक्टर नहीं मिला। उसकी व्याकुलताका ओर-छोर नहीं था। कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था कि कहाँ जाय और क्या करे। शायद माँको कुछ हो जाय, यह सोचकर वह पुनः दौड़ता हुआ डाक्टरके घर पहुँचा। अभी तक वह घर नहीं आया था। कुछ देर तक बैठा रहा, दरवाजे पर इधर-उधर घूमता रहा; लाचार होकर घरकी ओर चल पड़ा।

४२

रघुभाईने दूसरे दिन सुना कि गुणवंतीकी तबीयत और भी खराब हो गई है। यह सुनकर वह अधिक व्यग्र हुआ। गुणवंतीके प्रति उसके मनमें प्रेम तथा आदर था जिससे चाहे जैसे भी हो मृत्युके पूर्व एक बार उसका दर्शन करनेके लिए रघुभाईका मन तड़प रहा था। वासना व कामके वश हो रघुभाईने जो कुछ भी किया हो फिर भी नैतिक अधोगतिकी सीमा तक नहीं पहुँचा था। उसके हिमवत् ठंढे, निष्प्राण जीवन-कालमें एक ही व्यक्तिने कुछ उष्णता उत्पन्न की थी और उसे मरणशय्यापर पड़ा हुआ सुनकर उसे बड़ी पीड़ा हुई। कृतज्ञता, पत्नी-प्रेम, सन्तान-प्रेम उसके लिए तुच्छ थे। किंतु प्रेम-रसकी एक बिंदु भूले भटके जो उसके पाप-क्षेत्रमें चू पड़ी थी उसने इस अवसरपर उसे एक कदम आगे बढ़नेके लिए प्रेरित किया। इसे उसने बुरा नहीं समझा। दूसरे कोई भाव अथवा बन्धनसे अनजान होनेसे वह समझ ही नहीं सकता था कि गुणवंतीपर मुग्ध होनेसे उसने कौनसा अपराध कर डाला? इस समय वह जो उसे देखने जा रहा था इससे हानि होनेकी संभावना है; इसका उसके मनमें ख्याल तक नहीं आया। अनंतानंद द्वारा दी गई शिक्षासे उसने कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं की कि संसारमें केवल स्वेच्छा नहीं चल सकती।

रघुभाई कपड़ा पहनकर नीचे उतरा, साफा बाँधते हुए फिर विचार आया कि जानेसे लाभ ? उसका हाथ काँप उठा। पश्चात् इच्छाशक्तिकी विजय हुई; साफा बाँधकर वह बाहर निकला। रायजीके घरके पास पहुँचने पर कुछ रुका। रायजीके घरमें नौकरकी हैसियतसे काम कर पीछे उसकी पत्नी और पुत्रको दर-दरका भिखारी बना दिया, इसके लिए उसके मनमें कभी तनिक भी पश्चात्ताप उत्पन्न नहीं हुआ। साथ ही जिस स्त्रीका स्वयं उसने अपमान किया था उसे आसन्न मृत्युके समय भी अपनी राक्षसी उपस्थितिसे दुःखी क्यों करे, यह विचार भी उसके मनमें नहीं आया। लेकिन गुणवंती शायद कुछ कहे सुने जिसे पासमें बैठे हुए लोग सुनें और जिससे उसकी प्रतिष्ठाको धक्का लगे, इस विचारने उसे व्यग्र कर दिया, किंतु यह विचार अधिक देर तक उसके हृदयमें न टिक सका।

घरमें प्रवेश करने पर चारों ओर शांति दिखाई पड़ी। घरकी दैन्य दशा देखकर बम्बईमें अपने नामसे बैंकमें जमा किये हुए रुपये स्मरण आये जिससे वह पुलकित हुआ। भीतर कमरेमें झाँककर देखने पर मालूम हुआ कि गुणवंती वहीं है और सद्भाग्यसे उस समय वहाँपर कोई उपस्थित नहीं था। जगत डाक्टरके यहाँ गया था, कुन्दन अपनी माँको बुलाने गई थी और बच्चूभाई चाचीको सोयी हुई समझकर पास ही कमरेमें झपकी ले रहा था।

गुणवंतीकी चारपाईके पास रघुभाई गया। पास ही एक छोटी सी दीवट पर दीपक जल रहा था। जिसका अस्थिर प्रकाश गुणवंतीके अर्द्ध निष्प्राण शरीर पर पड़ रहा था। उसके शरीरमें हुए परिवर्तनको देखकर रघुभाई दुःखी हुआ। गुणवंतीका तेजोमय शरीर इस दशाको पहुँच गया होगा, यह उसने स्वप्नमें भी सोचा नहीं था। क्षण दो क्षण तक वह एक टक देखता रह गया। वही आखें, वही नाक वही मस्तक किंतु कितना परिवर्त्तन ?

कुछ देर बाद गुणवंती संज्ञा-हीनताकी मूर्च्छासे जाग्रत हुई। अपनी ओर देखनेवालेको जल्दी पहचान नहीं सकी। उसका चेहरा, पगड़ी परिचित-सा लगा किंतु स्मरणशक्ति निर्बल पड़ गई थी, आखोंमें प्रकाश कम हो गया था, जिससे वह ठीक-ठीक देख नहीं सकती थी। उसी समय किसी गुफासे आ रही हो

ऐसी आवाज कानमें पहुँची 'गुणवंती' । आवाज अधिक परिचित जान पड़ी । दूरका शहर गुणवंतीको स्मरण आया । रायजीकी मृत्यु स्मृतिपटपर अङ्कित हो गई—एक घर, यह मनुष्य, रातका समय, सभी वस्तुएँ स्मरण हो आईं । तदुपरांत यह मनुष्य कुछ अत्याचार करता-सा मालूम पड़ा । मंद चलती हुई श्वाँस तेज हो गई, भयका सञ्चार हुआ । आँखोंसे ठीक-ठीक दिखाई नहीं दे रहा था, वे बड़ी-बड़ी हो गईं । नाम स्मरण आया, 'र—र—र'; किन्तु जीभने जवाब दे दिया । सब कुछ गह्वरमें बैठा जाता हुआ-सा मालूम दिया—नीचे-नीचे बिलकुल नीचे । वह मनमें बोली, राम-राम ! 'जगत ! क्या ? कौन ?' चारो ओर अँधकार छा गया ।

रघुभाईने नाम बताया तो अवश्य किंतु उसने देखाकि उसे देखकर गुणवंती भयभीत हो गई-सी लगी, उसकी आँखें फट गई थीं । एकाएक श्वाँस बढ़ गया था । अब कहाँ जाय, किसे बुलावे, यह विचार करने लगा । गुणवंती बड़ी कठिनाईसे श्वाँस ले रही थी ।

जगत दौड़ता हुआ आया और घरमें घुसा । भीतर घुसते ही एकतारा श्वाँसकी तेज आवाज सुनकर वह और तेज दौड़कर भीतर आया । उसने अपनी माँको मरते हुए देखा । सर्परूप रघुभाईको वहाँपर, विजयी होकर शत्रुताका बदला ले रहा हो, इस प्रकार, स्वस्थ खड़ा देखा । उसका माथा चकरा गया । स्वभावमें विष था वह बाहर आया । माँकी मृत्युका शोक उन्मत्ततामें बदल गया पवित्रताके अवसर अपवित्र क्रोध आया । रघुभाईकी ओर झपटा, बलपूर्वक उसे ढकेल दिया । चारपाईके पास पहुँचनेपर उसने माँको दम तोड़ते हुए देखा और बच्चूभाईको पुकारा । देखते-देखते बच्चूभाई और पड़ोसी दौड़ आये; गुणवंतीको चारपाईसे उठा लिया और चौकमें ले जाकर उसपर गंगाके शुद्ध पानीसे छींटा देने लगे । एक स्त्रीने साथिया बना दिया, जिसपर गुणवंतीको सुला दिया गया और 'श्रीराम' श्रीराम' के कोलाहलसे मरनेवाले व्यक्तिका जीवन और भी घबड़वाकर जल्दी स्वर्गमें भेजनेका प्रयास प्रारंभ हुआ । इस गड़बड़ीमें रघुभाई वहाँसे निकल भागा ।

४४

शोक दो प्रकारके होते हैं, एक मनुष्यको दबा देता है, आँसू और आवाज द्वारा बाहर निकलकर अंतरको आशा, धैर्य एवं शक्तिसे हीन बना देता है। दूसरे प्रकारका शोक रग-रगको खींचकर शरीरमें तात्कालिक शक्ति प्रदान करता है। वह रोने नहीं देता, वह विलाप द्वारा संसारके बहरे कानोंपर असर डालना निरर्थक-सा समझता है एवं भयङ्कर गांभीर्यकी आड़में विचार-शून्यता भर देता है। जगतका शोक भी द्वितीय श्रेणीका था। वह एक शब्द बोला तक नहीं, उसने एक आँसू भी गिराया नहीं। कठोरता एवं स्वच्छता-पूर्वक प्रचलित रूढ़िके अनुसार गुणवंतीको जलाकर उसने उत्तर क्रिया की। बच्चू समझ नहीं सका कि दूसरे लोगोंकी तरह बिना रोये-धोये, अधर पर अधर बैठाये हुए, नीचा सिर किये उसका भाई क्यों विचारमग्न भूत जैसा घरमें घूमा करता है। जगतका शोक भी विषपूर्ण था। जबसे उसने गुणवंतीकी मृत्युशय्याके पास रघुभाईको खड़ा देखा था तभीसे उसके सभी भावोंमें शून्यता आ गई थी केवल रघुभाईके प्रति द्वेष ही रह गया था। श्मशानमें भी उसे दूर बैठकर बुद्धिमानीसे गुणवंतीकी प्रशंसा करते हुए देखकर उसका हृदय उछल रहा था। उसके सब विचारोंका केन्द्र स्थान एक ही था—रघुभाईको भिखारी बनाना; रघुभाईने अपमानकर घरसे निकाल बाहर किया था, माँकी अंतिम घड़ीके समय भी अपनी पापमय उपस्थितिसे माँको चैनसे उसने मरने तक नहीं दिया; हाथ, पैर, मन सभी रघुभाईकी बोटी-बोटी काट डालनेके लिये, उसे मिट्टीमें मिला देनेके लिए तड़प रहे थे। रघुभाईसे बदला लेनेका उसने बहुतसा लड़कपनमे पूर्ण मंसूबा बांधा। 'क्या करूँ? रघुभाईसे कैसे प्रतिशोध लूँ?' यह वाक्य रातो-दिन वह रटा करता था। मनुष्य-हृदयमें रहनेवाली विषकी सरिता जब अचानक फूट निकलती है तब उसका जोर भयङ्कर होता है। उसके तटपर खड़े रहकर, उसमें स्नानकर अंतरकी ज्वाला शांत करनेके लिए मन तरसा करता है। जगत इस सरिता-तीरपर पहले ही पहल आया था। उसके जादूवाले प्रभावने उसे पागल बना दिया। कभी-कभी तनमन स्मरण हो आती किंतु उस रसीली मूर्तिका प्रभाव कम हो गया था। तनमन और रघुभाई दोनोंके चेहरे एक साथ ही आँखके सामने आकर खड़े हो जाते किंतु रघुभाईका

चेहरा अधिक प्रभाव डालता। सिरमें लहरें उछल रही हों ऐसा मालूम पड़ता। द्वेषके विचारमें जगत राक्षस बन जाता। प्रतिशोधके विचारने उसके मनमें भयंकर उथल-पुथल मचा दिया था।

इस प्रकार पंद्रह दिवस व्यतीत हो जानेपर उसमें कुछ स्वस्थता आई। अब क्या करे? अभी वह बालक था; एक तरफ तनमन उसकी बाट जोहती हुई बैठी होगी दूसरी ओर प्रेतलोकमें गुणवंती बैठी हुई जगतकी मनुष्यता देखनेके लिए उत्सुक होगी। साथ ही कॉलेज खुलनेका समय निकट आते जानेसे व्यावहारिक बुद्धि बंबई जानेके लिए प्रेरणा कर रही थी। एक दिन उसका जी अत्यंत व्याकुल हो उठा, रघुभाईका चेहरा-मुँह देखकर, उसपर थूकनेकी तीव्र इच्छा हुई। एकाएक वह उठ खड़ा हुआ, और रघुभाईके घर जा पहुँचा। आँगनमें रमा खड़ी थी। विस्मयसे इस क्रुद्ध बालकको देखती रही, कुछ डरी।

'रघुभाई हैं?'

'जी नहीं, वे तो बम्बई गये हैं।'

जगत दाँत पीसकर रह गया, रमाकी ओर देखे बिना वहाँसे निकला। रमाके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उसके सरल, छोटे संसारमें अमृतको छोड़ अभी तक अन्य किसी पदार्थका समावेश हुआ ही नहीं था।

जगत पहले तो अत्यधिक कुपित हुआ, पश्चात् विवेक आया। तनमनके लिए और रघुभाईको पूरी शिक्षा देनेके लिए जीवित रहना है। सर्वोत्तम मार्गपर चलकर और अभ्यास पूराकर सुचारु रूपसे बदला लेना है। अभी बालपनमें कुछ करना असंभव-सा था। यह विचार दिनों-दिन दृढ़ होता गया, जिससे कॉलेज खुलते ही वह बंबई चला। जैसे-जैसे ट्रेन बंबईके नजदीक पहुँचती गई वैसे ही वैसे उसकी अशान्ति भी बढ़ती जाती थी।

प्रत्येक मीलके पत्थरके पीछे छूटनेपर ध्यान आता कि वह रघुभाईके नजदीक पहुँचता जा रहा है। वह कॉलेजमें पहुँचा किन्तु छुट्टीके पूर्व एवं पश्चात्के जगतमें बड़ा अन्तर था। पूर्वका जगत बालक था अब प्रेम और द्वेषसे परिपूर्ण एक गम्भीर युवक हो गया था। पहले तो उसके मित्र जरा उससे खिजलाये।

जगत दो महीनेमें इतना गंभीर, चिंताशील और व्याकुल हो जायगा ऐसा किसीने सोचा तक न था।

सचमुच देखा जाय तो उसमें बहुत परिवर्त्तन हो गया था। संसारके मधुर पदार्थोंपर उसे प्रेम नहीं रह गया था, बालपन अथवा कॉलेजका स्वतंत्र आनंद उसे अब सारहीन प्रतीत होता। उसके जीवनमें तो केवल सुखमें तनमनका स्मरण और दुःखमें माँकी अकाल मृत्यु; एवं साधारण स्वभावमें उन्मत्तता अथवा गंभीरता; एवं नियममें कठोर अभ्यास इतना ही रह गया। उसने देखा कि उसका संसार उसके सहाध्यायियोंसे भिन्न हो गया है। घंटों वह समुद्रतटपर पड़ा-पड़ा विचार करता रहता और इस नवीन संसारके नवीन प्रश्नोंका उत्तर खोजता। प्रायः कोई उत्तर न मिलता जिससे बाध्य होकर पुनः पढ़ाईमें वह लग जाता था।

४५

सेठ करमदास त्रिभुवन फैशनेबुल पतलूनके जेबमें हाथ डाले हुये अपने बंगलेके बरामदेमें खड़े थे। उनके मुँहमें विलायती सिगरेट सुशोभित थी। जागरण एवं मदिरापानसे कमजोर पड़ गई हुई उनकी आँखें, नाकपर रखे हुये चश्माके भीतरसे समुद्रकी ओर देख रही थीं। इस प्रकार स्थित सेठको देख बंबईका सार तथा असार दोनों वहाँ मूर्तिमान हुये हैं, ऐसा भास किसी भी द्रष्टाको हो सकता था। बढ़ियासे बढ़िया कपड़ा तथा अच्छे से अच्छा 'कट', बंबईके कपड़े और दर्जियोंकी महत्ताका प्रदर्शन करते थे, सिगरेटकी गंधको दबाकर सेंटकी सुगंध द्रष्टाको इस बातका आश्वासन देती थी कि पेरिस दूर नहीं है। साथ ही आँखोंका पीलापन, उसकी निस्तेजता, काले पड़ गये हुये ओंठ, हाड़-पञ्जरके समान शरीर एवं चेहरेपर आच्छादित वासनाका प्राबल्य इन सभोंपर, बंबईके स्वच्छंद, उसके खान-पान और अनीति-सेवनका प्रबंध, उसके भावनाहीन वातावरण तथा अधम कृत्रिमताकी स्पष्ट छाप—दिखाई पड़ रही थी।

जन्मके समय सेठ करमदास बड़े भाग्यवान थे। इनके पिता सट्टामें करीब पंद्रह लाख रुपये कमाकर वृद्धावस्थामें संतानके लिए जब तड़प रहे थे, उसी

समय करमदास जैसे सुपुत्रको पानेमें भाग्यशाली हुए थे। यदि बंबईके अच्छेसे अच्छे ज्योतिषियोंके भविष्य-कथनके ऊपर ही मनुष्यका भविष्य बनता होता तो करमदास कभीके ही कोटाधिपति बनकर, प्रेमचंद रायचंदकी ख्यातिको परास्तकर, कार्नेगीकी भूमिकापर पहुँच गये होते। किन्तु या तो ज्योतिषीगण गणना करनेमें भूल गये अथवा प्रख्यात ज्योतिषियोंकी सत्य भविष्यवाणीको एकबार गलत ठहरानेके लिए द्वेषी देवताओंने वृहद् षड्यंत्र रचा हो, चाहे जो भी हो, पर करमदासके पधारते ही उनकी माँ और बाप दोनों इस संसारको छोड़ परमधामको सिधारे और वे स्वयं एक वृद्धा मौसी तथा एक चालाक सोलिसिटरकी देखरेखमें बढ़ने लगे। करमदास जब तीन वर्षके थे तभी उनके माता-पिताका देहांत हो गया था, अट्ठारह वर्ष बाद पैत्रिक संपत्ति उनके हाथमें आई। इस अंतरमें इनके बापकी पूंजीका अधिकांश भाग उड़ चुका था। पंद्रह लाख, शुभेच्छुकोंके हाथमेंसे करमदासके पास आते-आते सात-आठ लाख हो गया था। लोग चाहे जो भी कहें किन्तु इतना धन बचा था, इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि करमदासके वली और ट्रष्टियोंने अत्यधिक प्रामाणिकताके साथ काम किया होगा! त्रिभुवन सेठकी गद्दीका काम सँभालनेके लिए मौसीके दो जामाताओंकी सहायता लेनी पड़ी थी। वे जब आये उस समय भिखारी थे, ऐसी लोकोक्ति थी। न मालूम कैसे तीन-चार वर्षमें भिखारी जामाता-गण लखपति बनकर त्रिभुवन सेठकी गद्दीके साझीदार बन गये और जब करमदास अट्ठारह वर्षके हुए उस समय अपने बापके स्वतंत्र गद्दीमें उनका केवल चार आना भाग मात्र और गंगा मौसीके दोनों जामाताओंका छः-छः आना भाग न जाने कैसे हो गया? मि० पारखेरिया सोलिसिटर भी संपत्तिके प्रबंधमें बड़ा उत्साहपूर्ण भाग लेते थे। पंद्रह वर्षके समयमें चार-पाँच बड़े-बड़े मुकदमें करमदासके स्टेटमें खड़े हो गये थे जिनमेंसे दो तो प्रिवी कौंसिल तक गये थे। किया क्या जाय? स्टेटके रक्षणार्थं खर्च किये बिना कहीं चल सकता था? और ऐसे चतुर, कार्यदक्ष व्यक्ति संरक्षण न करें तो भला दूसरा कौन करेगा?

हाथमें संपत्ति लेनेपर करमदासने उसका इस प्रकार विसर्जन करना प्रारंभ कर दिया मानो उससे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया है। उनका स्वभाव उमरावों

जैसा था जिससे खुशामदी उन्हें बराबर घेरे रहते थे। येन-केन प्रकारेण उमरावों-को अपनी उदारता प्रदर्शित करनेका अवसर देनेका उद्योग प्रारंभ हुआ। बाप कोलाबापर सट्टा करता था, बेटा पूना जाकर 'रेसकोर्स' (घुड़दौड़) पर सट्टा करने लगा। ज्यों-ज्यों पूनामें घोड़े दौड़ते त्यों त्यों हाथमेंसे लक्ष्मी भी दौड़ती। मि० पारखेरिया किसी प्रकारकी भी बाधा डालनेवाले व्यक्तियोंमें नहीं थे। अपने मालिकके कच्ची उम्रके बालकको घुड़दौड़में घोड़ा दौड़ानेके लिए उन्होंने एकके बाद दूसरा मकान रेहन रखना प्रारंभ कर दिया। चौबीसवें वर्षमें करसदासका घर व बंगला दो-दो तीन-तीन बार रेहन रखा जा चुका था। सेठ जरा घबड़ाये, मि० पारखेरिया कुछ गंभीर दिखाई पड़े; सेठकी सेवा करते-करते मानो थक गये हों, इस प्रकार पहले जैसा भाव अब नहीं रहा। पहले सेठके यहाँ प्रतिदिन जाकर स्वास्थ्य समाचार पूछकर अपना बिल सामने रखते थे, अब सेठ करमदास उनसे मिलनेके लिए जाते तो कभी-कभी उन्हें भी बाहर बैठा देते थे। करमदास सेठको भी ऐसा दिखाई देता मानो दुनियाका रङ्ग बदल रहा है। उन्हें खबर नहीं थी कि उनके चेकबुकका पृष्ठ समाप्त हो गया है। किन्तु विचार जैसी व्यर्थ-की बस्तुके लिये सेठके छोटे मस्तिष्कमें स्थान नहीं था। सबेरे नौ बजे उठकर; चार मित्रोंके साथ चाय पीकर, दोपहरको थोड़ा आरामकर, संध्या होनेपर उनकी दिनचर्या प्रारंभ होती थी। मोटरमें बैठकर दो-चार मित्रोंको साथ लेकर क्लबमें जाते। वहाँ 'ब्रिज' खेलकर अपना जेब थोड़ा हलका करते। तत्पश्चात् प्रायः फोर्टमें 'कारनेलिया' या 'मैजिनी' में भोजन करके कोलाबामें एक मित्रके यहाँ जाते। बारह बजेके लगभग सब मित्र अपने-अपने घर जाते और तीन बजेके लगभग करमदास सेठ मोटरमें अपने बंगलेपर पहुँचते। दो-एक नौकरोंका कहना था कि सेठको उठाकर ऊपर ले जाना पड़ता था किन्तु यह बात संसार प्रसिद्ध है कि नौकर अपने मालिकके सम्बन्धमें योंही बका करते हैं।

एक दिन सेठ की आँख पर पड़ा हुआ पर्दा कुछ हटा। मिस 'मे' को हीरे की इयर-रिङ्ग देने का वचन दे आये थे किन्तु खरीदने के लिए उनके पास पैसा नहीं था। मि० पारखेरियाने भी कोई रास्ता नहीं निकाला। मिश्रीके समान मीठी नीतिसे उन्होंने सेठजी को विदा कर दिया। जाते समय उन्होंने कहा—

सेठ ! कहीं विवाह कर लो, इसके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं। समय बड़ा खराब चल रहा है।

यह रास्ता कुछ ठीक जँचा। गंगा मौसीसे पूछने पर उसने भी इस मार्ग की प्रशंसा की। उसने भी इधर-उधर देखा और तुरन्त अपने बड़े जामाताको बुलवाया।

'गुलाबदास ! तुम्हारे रिश्तेदार हरिलाल हैं न ?'

'कौन हरिलाल सूरतवाले ?'

'हाँ ! उन्हें अभी कुछ रुपया मिला है क्यों ?'

'हाँ, चार-पाँच लाख रुपया मिला है अवश्य। क्यों, क्या काम है ?'

'अरे नवनीत मुझसे कह रही थी कि उन्हें एक लड़की है। अपने करमदासके लिए वह कैसी होगी ?'

सास और जामाता की आँखें चार हुईं।

'हाँ—हाँ, यह तो आपने बहुत अच्छा सोचा। आपकी लड़कीको अभी भेजता हूँ। हरिलालकी नई पत्नी की यह 'सखी' होती है।'

'कौन, अपनी नवनीत ?'

'जी हाँ !'

'ठीक, जाओ तब उसीको भेज दो।'

× × × ×

रातमें सेठ मिस 'मे' के पास गये। नौकरने बताया कि मिस साहिबा सो गई हैं, यदि सेठ हीरेकी इयर-रिङ्ग लाये हों तभी उसे जगानेका साहस करें; ऐसी आज्ञा दे गई हैं। सेठ जरा चकित हुए, जरा डाँट कर बोलनेकी कोशिश की तो नौकरने धमकाते हुए कहा—'अधिक बकबक करोगे तो पुलिसको बुला दूँगा।' सेठजी अपना सा मुँह लेकर लौटे, दुनिया भरको गाली देने लगे। इतनेमें सामने 'बार' पर दृष्टि गई जिसमें घुस गये। उन्हें देखकर एक फ्रेञ्च युवती उनके पास आई और जो कुछ माँगा उसने लाकर उन्हें दे दिया। सेठने पैरपर पैर रखकर एकके बाद दूसरा गिलास खाली करना प्रारम्भ कर दिया। युवतीने भी सेठके खर्चेसे थोड़ा बहुत खाया-पिया। सेठको जरा हँसा-खिलाकर, जेब-घड़ी

उनके जेबसे निकालकर अपने जेबमें डाल लिया। सेठ फटे हुए गलेसे 'गौड सेव दी किङ्ग' गा रहे थे किन्तु मुँहसे क्या निकल रहा था इसका उन्हें पता नहीं था। थोड़ी देर बाद वे कुर्सी पर लम्बे हो गये, तब वह युवती सेठके मोटर ड्राइवरको बुला लाई और बारके नौकर और ड्राइवरने मिलकर सेठको मोटरमें पहुँचाया। सेठजी प्रभातके शुभ मुहूर्त्तमें घर पहुँचे।

दूसरे दिन मिस 'मे' के सौलिसिटरकी नोटिस आई जिसमें चार महीनेका बाकी वेतन रु० २०००) सात दिनके भीतर माँगा गया था। न मिलने पर तदुपरान्त दावा करनेकी धमकी थी। सेठने पत्र मि० पारखेरियाके पास भेज दिया। मि० पारखेरियाने विवाहके सम्बन्धमें पूछताछ की, और तिलमें नया तेल आता हुआ देखकर मिस 'मे' से जाकर मिला। पुनः कुछ दिन तक सब ठीक चला और तनमनसे विवाह करनेकी बातचीत होने लगी।

× × × ×

तनमनका विवाह हो गया। विवाहके चार दिन पश्चात् हरिलाल स्वधाम सिधारे। पाणि ग्रहणके समय तनमन मूर्च्छित हो गई थी। इतने दिनोंकी पीड़ा से अशक्त शरीर, तेज ज्वर और सन्निपातका शिकार हो गया। बहुत दिनों तक वह मूर्च्छित पड़ी रही। मि० पारखेरियाकी सलाहसे सब लोगोंने बम्बई आनेका निश्चय किया, नहीं तो हरिलालकी सम्पत्ति सूरतमें रहनेपर उसकी देख-रेख भला वे कैसे कर सकते थे! मि० पारखेरिया पुनः पूर्ववत् सरल एवं नम्र बन गये। लोगोंसे बम्बई जानेका कारण यह बताया गया कि तनमनकी तबीयत बम्बई जाकर अच्छे डाक्टरोंको दिखाये बिना सुधर नहीं सकती। गुलाबने पुत्री-प्रेमवश वैधव्यके दुःखको ताक पर रख दिया और सेवा करनेके लिए वह भी बम्बई आई। श्यामू मामाने सोचा कि यदि तनमन मर गई तो लोगोंमें बदनामी होगी अतः वह भी सेवाके लिए बम्बई आया। सब लोग बालकेश्वर जाकर ठहरे और हरिलालके धनका सदुपयोग होने लगा। दो अँग्रेज़ नर्स तनमनकी सेवा करने लगीं पर घरमें कोई बीमार है, यह इन दो नर्सोंको छोड़ सबलोग भूल गये।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। तीसरे मंजिलपर इस वैभवकी सच्ची माल-

किन मृत्यु-शय्यापर पड़ी थी। उस खण्डकी भयंकर शान्तिमें दो नर्स तथा दो नौकरोंके सिवा और कोई जाता नहीं था। कभी-कभी नीचे चलनेवाली बातचीत तथा हँसीकी आवाज ऊपर पहुँच जाती थी। कभी सन्निपात-ग्रस्त पीड़ासे व्याकुल तनमनकी चिल्लाहटसे वहाँकी शान्ति भङ्ग हो जाती। कभी-कभी उसके मस्तिष्कमें सुखी संयोग आ खड़े होते और विक्षिप्तावस्था में उसका पुनः अनुभव कर वह हँसती, अशक्त फटे हुए स्वरसे गाती, दया उत्पन्न करनेवाले स्वरमें 'किशोर' अथवा 'पिताजी' पुकारकर मस्तिष्कमें चक्कर लगानेवाली मूर्तियोंको सम्बोधन करती; दूसरे ही क्षण किसीसे प्रार्थना कर रही हो इस प्रकार विवशता से धीरे-धीरे बड़बड़ाती। ऐसे अवसरोंपर उसकी दयाजनक स्थिति देखकर कठोर हृदयवाली विदेशी नर्सोंकी आँखें भी डबडबा जातीं। थोड़े ही दिनोंमें अपनी पुत्रीके समान वे तनमनको प्यार करने लगीं और नीचेसे किसीके आने पर उसे तिरस्कार पूर्वक वहाँसे निकाल बाहर कर देती।

धीरे-धीरे तनमनकी अवस्था सुधरने लगी—सान्निपातिक ज्वर कम होने लगा। चारपाईपर वह बैठने लगी, तब उसने अपना कपड़ा मँगवाया।

नर्सों की स्नेहपूर्ण आना-कानीका कुछ ख्याल न कर काँपते हुए हाथसे उसने एकके बाद दूसरा जेब तलाश किया, आखिर एक जेबमें रूमाल मिला, एक हाथसे सब कपड़ोंको दूर हटा दिया; कुछ देर तक रूमालको देखती रही; आँखसे आँसू गिरने लगे, रूमालको उठाकर अधरोंसे लगा लिया।

नर्सों ने तनमनको लेट जानेके लिए कहा, यथाशक्ति नम्रतासे मीठी बात करके समझाया। पहले तो तनमन कुछ बिगड़ उठी, पश्चात् शान्त होकर टूटी-फूटी अँग्रेजीमें बोली—'मिसेज़ कारपेंटर! कृपाकर केवल यह रूमाल रहने दीजिये; फिर जो कहियेगा करूँगी, अन्यथा कुछ भी न कर सकूँगी।'

'अच्छी बात है, रखिये' कहकर नर्स चुप हो गई। नर्स बेचारी भली थी। उसे कुछ स्मरण आ गया। बहुत समय पूर्व, युवावस्थामें अनुभूत सुख, और उस सुखका दाता स्मरण आया; लण्डनके हॉस्पिटलमें मृत्यु शय्यापर पड़ी हुई पतिकी छाया आकर दृष्टिके सामने खड़ी हो गई। वक्षःस्थल पर लटकाये हुए उसके स्मृति-चिन्हको उसने देखा और आँखोंसे दो बूँद आँसू टपक पड़े। इन

आँसुओंने तनमन और मिसेज़ कारपेंटरके बीच स्नेह सम्बन्धको दृढ़ कर दिया।

ज्यों-ज्यों तनमनमें शक्ति आने लगी त्यों-त्यों वह छतपर या इधर-उधर जानेके लिए हठ करने लगी। वह समुद्रको ऐसी आतुरतासे देखती जैसे कोई पुराने अभिन्न मित्रसे भेंट हुई हो। समुद्रकी लहरोंको देखते ही उसे बचपन का गाना याद हो आता। वह सोचती कि यही मित्र उसके स्नेह-स्मरणका साक्षी है, और यही दो जीवन-वियोगियोंको बाँधनेकी रज्जु है। प्रायः वह जीवित समझकर उससे बातें करती। समुद्र भी उसी गांभीर्यसे उसकी बातें सुनकर जो उत्तर उसके उत्फुल्ल यौवनके भावोंको डुग्मसमें देता था वही उत्तर उसके नीरस एवं वियोगी बाल-वृद्धत्वको देता। जो व्यक्ति विश्वसे सुखप्रद ढाढ़सका त्याग कर अचिर मनुष्य-सम्बन्धके आश्वासनकी आशा रखता है वह पछताता है। विश्वकी गोदमें ही सुख है और वहीं दुःखका निवारण भी है।

सेठ करमदास बरामदेमें मोटरके लिए खड़े थे। उनका मन उल्लसित था क्योंकि मिस 'मे' पुनः उनपर निछावर हो गई थी और आज उन्हें विशेष रूपसे बुलाया था। पुनः तर हो गई तिजोरीको छोड़ मिस 'मे' भला कहाँ जाती! मोटर आई, सेठ बैठे और तेजीसे कोलाबाकी ओर चल पड़ी।

४६

अब तनमन चल-फिर सकती थी। धीरे-धीरे वह छतपर घूमने लगी। उसका सुन्दर शरीर बिलकुल सूख गया था किन्तु मनकी उड़ान अपनी पूर्ववत् हालतमें थी। उसमें कोई कमी नहीं आ पाई थी। अपनी चपल बुद्धिकी सहायतासे परिवर्तित परिस्थितिको वह समझ गई थी। विवाह, उसका भयङ्कर इतिहास, अपनी बीमारी, एक-दो बार देखा हुआ गुलाब चाचीका वैधव्यसूचक रूप इन सब बातों पर से कैसे विपदका पहाड़ उसपर टूट पड़ा था उसका ख्याल आया। जिस दृढ़तासे विवाहके पूर्व सब कुछ सहन कर लेनेकी चर्चा उसने हरिलालसे की थी वही दृढ़ता पुनः उसमें आ गई थी। घूमते-घूमते वह खड़ी हो गई। अपना दोनों हाथ मुँड़ेरे पर रखकर समुद्रके सतह रूपी सिनेमाके

पर्देपर अपने भूत जीवनका पूरा वृत्तान्त उसपर देखने लगी। उसने रत्नगढ़का मन्दिर देखा, फिर साधुओं द्वारा गाई जाने वाली आरती सुनी, किशोरके साथ प्रतिज्ञाकी, उसके हाथमें हाथ रखकर सोई; दूर पर समुद्रकी उछलती हुई तरङ्गों को देखा, अपने किशोरके हाथमें हाथ रखकर आनन्दका अनुभव किया; उसके साथ झगड़ा किया, रिसिआई, पुनः मेल हुआ; स्वर्गलोकके वातावरणमें उस सन्ध्याको उसने देखा, पश्चात् किशोर द्वारा किये गये अचानक आलिङ्गनके स्पर्शसे उसके रोम-रोम पुलकित हो गये; मिले, आलिङ्गन किया, विलग हुए। हरिलाल के क्रोधसे काँपकर, उनके आश्वासनसे पुनः उसमें आशाका सञ्चार हुआ, श्यामू मामाकी आवाजने पुनः उसे साहसहीन बना दिया; प्रलयकालके समान त्रास-दायक दिनोंका पुनः उसने अनुभव किया; विवाहके लिए किये गये श्यामू मामा के अत्याचारोंको स्मरण कर वह भयसे काँप उठी; उसके पश्चात् पाणि-ग्रहणका दृश्य दिखाई दिया। सिनेमाका खेल समाप्त हो गया। काँपती हुई तनमन खड़ी ही रही। बड़े परिश्रमसे इन विचारोंको उसने दूर किया। ठंडी साँस भरकर इस रमणीय भूतकाल परसे अपने ध्यानको हटाया।

हँसती कूदती, सुखी तनमन कोई दूसरी ही व्यक्ति रही हो, इस प्रकार वह अपनेको देखने लगी। स्मरणशक्ति द्वारा चित्रित इन चित्रोंके साथ उसका कोई सम्बन्ध ही न हो ऐसा सोचनेका उसने प्रयत्न किया।

तनमनकी मानसिक शक्ति विचित्र थी। भाग्यके साथ समझौता किस प्रकार किया जाता है, यह उसे ज्ञात नहीं था। जो अगाध साहस एवं निर्बन्ध सरलता बड़े वीरोंमें अथवा धर्म नेताओंमें हम देखते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं उसीका कुछ अंश उसमें था। यदि वह चाहती तो अपना निर्दोष प्रेम संसारसे छिपानेका प्रयत्न न करती; वह तो उसे अपना जीवन-धर्म समझती थी, उसे समस्त संसार पर व्यक्त करनेमें वह कभी भी लज्जाका अनुभव नहीं कर सकती थी। आज चारो तरफसे दारुण दुःख उसे घेरे हुए था फिर भी उसकी अच्छाई, बुराई, लाभ अथवा हानि आदि प्रश्नोंने उसके मनको विह्वल नहीं किया। उसने जीवन स्वच्छतापूर्वक व्यतीत किया था, अब जितने दिन जीवन रहे, वे दिन गौरवके साथ बिताकर केवल अपनी प्रेम-दीक्षा मात्र पूर्ण करनेका उसने निश्चय

किया। यह विचार उसे सरल मालूम पड़ा। सोलह वर्षमें यह निश्चलता अद्भुत मालूम पड़ सकती है, किन्तु तनमनका संस्कृत स्वभाव लड़कपनमें भी परिपक्व था।

पास ही एक कुर्सीपर वह बैठ गई। हृदयमें दबे हुए भाव पुनः उबल पड़े। उसके पीले, सूखे हुए गालों परसे अश्रुधारा बहने लगी। समुद्रपर बहने वाले शीतल पवनने उसे ढाढ़स बँधाया। उसके पीछेसे गुलाब आई।

'तनमन ! अब तबीयत कैसी है ?'

तनमन सिरसे पाँव तक यह आवाज सुनकर काँप उठी। उसके पापी स्पर्श से मानो वह दूषित हो गई हो इस प्रकार तुरन्त वह उठकर खड़ी हो गई और कुछ दूर हटकर तिरस्कारसे गुलाबको देखने लगी। गुलाबके मनमें पुनः विष व्याप्त हो गया। वह अपने मनमें समझ रही थी कि वैधव्यके शोकको ताकपर रखकर यहाँ आनेमें उसने भगीरथ आत्मत्याग किया है। ऐसे समयपर नीचे चलने वाले आनन्दोत्सवको वह स्वभावतः भूल जाया करती थी। किन्तु जिस कृतघ्नी लड़कीके लिए वह इतना सब करती थी वह लड़की जब ऐसा तिरस्कार प्रदर्शित करती तब उसके मनको कितना चोट पहुँचाती ?

'अरे वाहरे लड़की ! तेरे जैसी कृतघ्नी तो मैंने कोई देखी ही नहीं। तेरे आरामकी चिन्तामें तो हम मर रहे हैं और—'

'मेरा विवाह करनेके पहले यदि इतनी मरी होती तो आज पति और पुत्री दोकी हत्याका पाप सिरपर चढ़नेका अवसर न आया होता।' तनमनकी आँखोंमें पहलेके समान ही चमक आने लगी थी।

'हाय ! हाय ! रस्सी जल गई, ऐंठन नहीं गई। शरीर तो ऐसा हो गया है पर घमण्ड और मिजाज़ सातवें आसमान पर। देख, अब वे दिन भूल जा; अब तेरा बाप नहीं बैठा है कि तेरी सहायता करनेके लिए आवेगा। अब तो करमदास सेठकी स्त्री है, वह क्षण भरमें सीधी कर देगा।'

क्रोधसे तनमनकी आँखोंमें खून उतर आया। उसका निर्बल मस्तिष्क उबल उठा, 'मैं देखूँगी कि कौन मुझे सीधा करनेवाला पैदा हुआ है ! तुम्हारे सेठ-वेठ, किसीको मैं कुछ भी नहीं जानती।' अधिक जोरसे वह बोली।

किन्तु तनमनके उच्च स्वरने कारपेंटरका ध्यान आकर्षित किया। अपने दृढ़ चालसे वह वहाँ आ पहुँची और तनमनसे अँग्रेजीमें कहा—'बेटी! यह क्या कर रही है? शान्त रह।' पश्चात् गुलाबकी ओर देखकर हिन्दीमें आज्ञा भरे शब्दोंमें कहा—'टुम नीचे जाओ। ऊपर मट आओ। क्या मार डालनेका विचार है?'

गुलाब दाँत पीसती हुई वहाँसे चली गई।

मिसेज़ कारपेंटरने तनमनको समझाते हुए कहा—'रो मत, बेटी! अब इन लोगोंको तेरे पास आने ही नहीं दूँगी।'

थोड़ी देर बाद कुछ शान्त होने पर तनमनको स्वयं इस प्रकार क्रोध करने पर पश्चात्ताप हुआ। क्रोध करना उसे व्यर्थ प्रतीत हुआ। शान्त और दृढ़तासे ही काम लेनेका समय है अन्यथा ये सब उसे पागल बना देंगे। जो कुछ सहन किया है उससे कहीं अधिक सहन करना बाकी है। प्रेमके लिए वह मरनेके लिए तैयार थी किन्तु गौरव पूर्वक मरना वह अधिक पसन्द करती थी। इस प्रकार बहुत देर तक विचार कर कोई रास्ता खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगी।

इसके पश्चात् बहुत दिनों तक उसे किसीने नहीं छेड़ा। न मालूम क्यों नीचे रहनेवाले लोग उससे घबड़ाते थे। धीरे-धीरे उसमें नीचे उतरनेकी शक्ति आ गई। एक दिन दरयाफ्त करने पर उसे पता चला कि सब लोग बाहर घूमने गये हैं अतः मिसेज़ कारपेंटरके साथ बागमें घूमनेके लिए नीचे आई। कुछ सृष्टिके शृङ्गार रूप पुष्पोंको देखकर अपने सुखी जीवनकी स्मृति हरी हो गई; डुम्मस याद आ गया, उसके किशोरकी मूर्त्ति याद आई, वियोगकी तीव्र वेदना पुनः उसे सताने लगी। वह तुरन्त लौट पड़ी और मिसेज़ कारपेंटरके हाथका सहारा लेकर ऊपर चढ़ी। हृदय भर आया। दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर फुक्का फाड़कर वह रो पड़ी। उसे सम्पूर्ण संसार निर्जन लगा, ऐसा कोई नहीं था जिसकी गोदमें सिर रख रोकर अपना दिल हलका करती। विदेशी नर्स चाहे कितना ही स्नेह क्यों न करती हो, किन्तु उससे क्या सन्तोष हो सकता था? न था पिता और न था उसके हृदयका हार। परिस्थिति ऐसी थी जो वज्रके समान कठोर हृदयको भी विदीर्ण कर देती।

अन्तःकरण जगतको देखनेके लिए तरस रहा था। इस भयङ्कर अरण्यमें केवल वही एक आश्रय दिखाई पड़ा। क्या करे? जगतको लिखे? मान लिया जाय कि उसे सब पता लग गया तब क्या होगा? उसने एक गहरी साँस खींची। अब वह अपने किशोरकी कहाँ? अन्धे और अधम लोग झूठे, दिखावटी धर्मको अस्वाभाविक दृष्टिसे देखते हैं और उसके अनुसार उसका पति करमदास था। किशोर बेचारा क्या कर सकता था? तनमनको इस नरकसे निकालनेका वह प्रयत्न करे, यदि पवित्र प्रेमकी आज्ञा स्वीकार कर अपनी प्रियतमाको दुःखाग्निमेंसे बाहर निकालकर अपना कर्त्तव्य पालन करे तो पापी संसार इस पुण्य कार्यको पाप कहकर, किशोरके निर्दोष मस्तकपर अनेक विपदाओंका पहाड़ ढा देगा; अन्धा समाज उसे अपराधी ठहरा कर, अपनी मर्यादासे निकाल बाहर कर, जीवित रहते हुए भी उसके जीवनको श्मशान रूप बना देगा। दूसरा विचार आया 'करमदासको उसके सम्पत्तिकी आवश्यकता थी इसलिए चाहे जिस प्रकार भी हो वह उसे घरमें रखनेका प्रयत्न करेगा। तनमनको कानूनका डर लगा; शायद किशोरको वह कुचल डाले!' इस परिणामकी कल्पना कर वह घबड़ा गई। अपने ही हाथों क्या वह किशोरको दुःख देगी?

अपने प्यारे किशोर को—जिसके भविष्यकी महत्ता पर कितने ही स्वप्नोंकी रचना की गई थी उसे—समाजसे निकाल बाहर करेगी? उसके किशोरको कोई परेशान करे? नहीं, नहीं; इसकी अपेक्षा चुपचाप मर जाना कहीं अच्छा है, इसकी अपेक्षा इस नरकका कटु अनुभव करते हुए घुलघुलकर मर जाना कहीं अच्छा है। सहस्रों सावित्रीकी परम्पराके अनुसार निश्चय कर—जीवन अर्पण कर—जो भावना हिन्दू-स्त्रियोंके रग-रगमें भरी हुई है उसीके वशीभूत वह हो गई। किशोर भले ही अनजानमें आनन्दके साथ पढ़कर अपना जीवन सार्थक बनावे। वह स्वयं चुपचाप अपना जीवन अर्पण कर देगी, स्वयं दुःखी रहकर उसे दुःखी होनेसे बचावेगी।

इस निश्चयके पश्चात् उसे कुछ शान्ति मिली। आश्वासन देती हुई मिसेज़ कारपेंटरसे प्रेमपूर्ण धन्यवाद रूप बातें करने लगी। दूसरे दिन कागज और लिखनेके साधन मँगवाये। धीरे-धीरे, कभी रोते हुए, कभी आह भरते हुए

उसने एक पत्र लिखा—फाड़ा—फिर लिखा। लिखकर मोड़ दिया। जोरसे गाया—

'कबकी ऊबी मैं मग जोऊँ, निस दिन बिरहा सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे।
हरि कब दरस दिखावे !'

कमरा बिलकुल शान्त था। तनमनकी हिचकी बँध गई, निराश होकर वह अपनी अकेली चारपाई पर पड़ गई।

———

४७

कॉलेजके बोर्डिङ्गके एक कमरेमें पाँच-छः लड़के बैठे हुए चाय पी रहे थे। बोर्डिङ्गमें दिये जाने वाली एक पतली चौकी पर तीन और कुर्सी पर दो युवक बैठे थे। हनुमानजीकी चिकनाईको भी मात करनेवाला एक पुराना स्टोव, एक तपेली, मुड़ी हुई सँड़सी और छाननेके कामके लिए एक मैला कपड़ा, चौकीके पास पड़ी हुई ये वस्तुएँ बता रही थीं कि चाय कैसी बनी होगी। स्वच्छता अथवा कलाकी दृष्टिसे यह चाय भले ही अत्यधिक खराब हो पर चाय पीनेका हेतु, उत्साह, निर्मल हृदयोंका मिलाप एवं निर्दोष हास्य-विनोद हो तो ऐसी चाय दूसरे स्थल पर भाग्यसे ही मिल सकेगी। कृत्रिमताके प्रभाववश अब युवकों को यह परिश्रम भले ही विषके समान लगता हो, होटलसे आया हुआ चायका प्याला भले ही अधिक अच्छा लगता हो किन्तु अपने हाथसे प्रस्तुतकी हुई चाय का स्वाद कुछ अनोखा ही होता है।

आधी अंग्रेजी और आधी हिन्दीके मिश्रणसे दी जानेवाली आधुनिक शिक्षाके प्रभाववश कुर्सीपर बैठे हुए युवक आपसमें हिन्दी-अंग्रेजी मिश्रित भाषामें कुछ बातचीत कर रहे थे जिसे सुनकर दूसरे युवक खिलखिलाकर हँस पड़ते। केवल एक युवक इस बातचीतमें योग नहीं दे रहा था, उसके चेहरेके भावसे ही केवल पता चलता था कि उसका भी ध्यान उस ओर था। उसकी मुख-मुद्रा आयुकी अपेक्षा अधिक गम्भीर और चेहरा प्रभावोत्पादक था।

उसका शरीर अभी पूर्ण रूपसे खिला नहीं था, आगे चलकर वह ऐसा ही रह जायगा अथवा लम्बा होगा, अभी यह कुछ कहा नहीं जा सकता था पर उसके गाम्भीर्यमें, शीघ्रता पूर्वक बोलनेके स्वभावमें, नेत्रोंमें, चाल-ढालमें स्पष्टरूप से आकर्षक व्यक्तित्वकी झलक दिखाई पड़ती थी।

'बट (किंतु) गमन !' कुर्सीपर बैठे हुए एक युवकने उस युवककी ओर संकेत करते हुए, चौकीपर बैठे हुए एक युवकको संबोधितकर कहा—'हम समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। प्रोफेसर 'जगत दी ग्रेट' बड़बड़ायेगा।'

वह युवक—हमारा जगत—जरा मुस्कुराया, मुस्कुराहट कुछ रस-हीन थी।

'नहीं जी ! मेरी परवानगी है। तुम लोग तो दिशा एवं काल दोनोंसे अनवच्छिन्न हो न ?'

'किन्तु जगत ! तुम्हारे सिरपर तो कोई अजब भूत सवार है। इतना विलग कब तक रहोगे ? यदि ऐसा है तो हम तुम्हारा 'बॉयकाट' कर देंगे।'

'नहीं भाई ! यह तो अपनी 'वाइफ' का विचार कर रहे हैं।'

दूसरा बोला—'डोण्ट डिस्टर्ब हिम' (उसे परेशान मत करो)।

जगतने अनजानमें दाँत पीसा, उसकी आँखें कठोर हो गईं। फिर वह मुस्कुराया।

'आइ विश आइ वेयर' [मैं चाहता हूँ कि ऐसा मैं करता होता]

'यदि यही बात हो तब क्या वाजी लगाते हो ?'

'मि० जगतकिशोर' पुकारकर पोष्टमैनने आकर पत्र दिया। विरक्तिसे जगतने हाथ बढ़ा दिया, उसके पास आनेवाले पत्रोंमें साधारणतः कोई आकर्षण नहीं रहता था।

'अच्छा 'हियर यू आर' [अब बताओ] किसका पत्र है ?' गमनने जरा मजाकसे पूछा।

जगतने बेफिक्रीसे पत्रका सिरनामा देखा—पहले सूरतसे 'रिडिरेक्ट'—होकर आया हो ऐसा जान पड़ा। मानो बिजली गिरी हो इस प्रकार वह चौंक उठा। चेहरेपर लाली दौड़ गई, उसने अक्षर पहचाना।

'जगत ! 'कौंग्रेचुलेशन !' [बधाई] किसका है—'स्वीटी [प्रियतमा] का है क्या ?'

जगतने गर्वसे अपना सिर ऊँचा किया। गंभीर, अस्खलित पदसे चुपचाप वह वहाँसे चला गया। उसके मित्र ठट्टा मारकर हँस पड़े।

जगत अपने कमरेमें गया। धड़कते हुए हृदयको शांत करनेका व्यर्थ प्रयत्न किया। दरवाजा बंद कर दिया और लिफाफा फाड़ा। आँखोंपरसे अँधकार दूर करनेके लिए आँखें मलीं और मस्तकपर हाथ रखकर उसे पढ़ने लगा :—

'मेरे किशोर !

अपनी देवी क्या तुम्हें स्मरण आती है ? मेरा किशोर मुझे नहीं भूल सकता, किन्तु मैं तो भूल गई हूँ। तुम्हारी तनमन अब तुम्हारी नहीं रही; दूसरे की हो गई है। तुम्हें बुरा लगेगा किंतु मुझे क्षमा करना। मैं दुःखी हूँ तुम्हें भी दुःखी करनेसे क्या लाभ ? हम कौन थे और क्या हो गये, यह सोचकर मेरी छाती फटी जा रही है।

उस दिन मैंने वचन दिया था वह तुम्हें स्मरण है किशोर ! मनमें बुरा मत मानना। तुम्हें छोड़ दूसरेके साथ विवाह नहीं करूँगी यह मैंने कहा था। मेरा कहना तुम मानोगे ? मेरे शरीरमें जब तक जीवन है तब तक लोग चाहे जो कहें मैं अपना प्रण नहीं छोड़ूँगी। मैं देख रही हूँ कि मेरे दिन पूरे हो गये हैं, अधिक दिन अब इस संसारमें मुझे रहना नहीं है पर जब तक हूँ तब तक अपने किशोरकी ही रहूँगी। चाहे जो हो हम दोनों एक बने रहेंगे। इतनी विपदायें सिरपर आई हैं, संभव है आगे और भी भोगना पड़े। इस जन्ममें तो भाग्य फूटा है किन्तु दूसरे जन्ममें शायद भाग्य सुधर जाय। किशोर ! अब तुम्हें अपने वचनका पालन करना है, अपनी आशाओंको पूर्ण करना है। बड़े बनकर अपने जीवनको सार्थक करना। मैं भाग्यहीना यह देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगी लेकिन वह समय आये और कोई दूसरी स्त्री मेरा स्थान ग्रहण करे तब मेरे किशोर ! अपने हृदय का एक कोना मेरे लिए भी रख छोड़ना। रखोगे ? यहाँ तुम्हारे साथ नहीं रह सकी यदि अपने हृदयमें रखोगे तो मरते समय भी मुझे संतोष मिलेगा।

इसका उत्तर मत देना। यह पत्र अंतिम है। जहाँ मैं पड़ी हूँ वहीं पड़ी

रहने देना और कभी-कभी स्मरण कर लेना। इतने ही से मुझे सुख मिलेगा। एक बार अंतिम बार कह लूँ—मेरे नाथ! मेरे किशोर!

तुम्हारी दासी या देवी,
'तनमन'

एक साँसमें जगतने सब पढ़ डाला—कुछ समझमें नहीं आया। मस्तिष्कमें कुछ विचित्र तूफान सा लगा। नौकर जलता हुआ स्टोव भीतर रखने आया तब उसने पत्रको मोड़ लिया।

'जगत भैया! इधर रख दूँ?' नौकरने इस प्रश्नका उत्तर सिर हिलाकर हाँ में दिया। नौकरके जानेपर पत्र फिर खोला—पढ़ा। अक्षर सब नाच रहे थे। वह पत्रकी ओर आँखें फाड़कर देख रहा था किन्तु कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। उसके मस्तिष्क की विषयग्राही शक्ति नष्ट हो गई थी। बहुतेरे बड़े तूफान के समय, ठीक मध्यान्हमें जिस समय विश्वके तत्त्व ताण्डव-नृत्य करनेके लिए निकलते हैं, झञ्झावात चलता है, मूसलधार वर्षा होती है, तूफानके पराकाष्ठारूप से बादलमें घोर अन्धकार फैलता है उस समय चारो दिशाओंमें भयङ्कर कालापनके सिवा और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अतिशय आश्चर्य, शोक अथवा क्रोध के आवेश द्वारा उत्पन्न मनके तूफानके समय ऐसा ही अंधकार मस्तिष्कमें व्याप्त हो जाता है। मनुष्य घूमता-फिरता है किन्तु उसके भीतर शून्यता होती है। जगतके मनमें भी ऐसी ही शून्यता आ गई थी। एक टक वह पत्र देख रहा था। केवल एक विचारका प्रति-शब्द शून्यतामें पड़ता था--तनमन, देवीका विवाह हो गया; अब फिर नहीं मिलेगी। वह कितनी देरतक इस प्रकार बैठा रहा, इसका भान नहीं रहा। इतनेमें गमनकी आवाज सुनाई दी।

'कहो अभी भी पत्र पूरा नहीं हुआ क्या?' यह पूछनेके पश्चात् गमन की दृष्टि जगतके चेहरे पर पड़ी। उसपर अंकित महाशोकके चिन्हने उसकी जीभ बन्द कर दी। वह अपने टेबुलकी ओर चुपचाप मुड़ गया। शून्यतामें भी यह पत्र मित्रोंसे छिपानेका स्वाभाविक विचार आया। क्या कर रहा है इसका विचार किये बिना पत्र और लिफाफा स्टोवपर रख दिया। क्षणभरमें पत्र

जल कर खाक हो गया। जोरसे उसे मुट्ठीमें दबाकर, जगत उठकर तेजीसे बोर्डिङ्गके बाहर चला गया।

———

४८

बोर्डिङ्गसे निकलनेपर मनमें व्याप्त शून्यताने बहुत देर तक कुछ सोचने समझनेका अवसर नहीं दिया। होश आनेपर मुट्ठीमें जले हुये पत्रकी राख देखा, प्राणेश्वरीके अंतिम संदेशेकी अपने ही हाथोंकी गई दुर्दशा का ज्ञान हुआ और अनायास एक हाय निकल गई। दोपहरके-समय समुद्रके किनारे एकांतमें बैठा था, पूरे पत्रकी लिखावट आँखके सामने आकर उपस्थित हो गई, पुराने स्मरणोंकी मीठी दुनियाका विष उसने स्मरणकर पान किया और आँसू बहाया। अपने सुखके लिए वह रोया। दो ही तीन दिनोंमें निराशा एवं दुःखसे वह अधमुआ-सा हो गया। उसके सभी मित्र उसे शोक ग्रस्त देखकर अपने शुद्ध अन्तःकरणके स्नेहसे आश्वासन देनेका प्रयत्न करते थे।

कुछ दिनोंमें अपनी कायरतापर उसे तिरस्कार उत्पन्न हुआ। दिनभर तनमनका नाम रटनेसे अथवा रातभर आँसू बहानेसे कुछ होना जाना नहीं था। उसे स्मरण आया कि पत्रपर न तो पता लिखा था और न तारीख ही। अवश्य ही तनमन किसी कारागार जैसे घरमें पड़ी होगी, अत्याचारी पति एवं लापरवाह सास रुला-रुलाकर उसका प्राण लेते होंगे और सुकोमल, प्रसन्न, देवाङ्गनाके समान सुंदर 'देवी' सब कुछ सहन करती होगी। इस विचारसे उसका खून खौल उठा। उसने अपनेको गाली दी। जब कि 'देवी' के सिरपर अनेकानेक विपदाओंके पहाड़ टूट पड़े हों— उस समय जिसके लिए वह इतना सब सहन कर रही है वह स्वयं, पागलके समान पड़ा-पड़ा केवल आँसू बहाया करे? क्या यही उचित है? क्या उसके हाथमें ताकत नहीं है? आवेशसे वह अपनी कोठरीमें, बंद सिंहके समान, घूमने लगा। अपने ट्रङ्कमेंसे उसने दो कपड़े निकालकर बाँधे और स्टेशनका रास्ता लिया। यदि रेलगाड़ी घंटेमें सौ मीलकी रफ्तारसे जाती होती तो भी उसे धीमी ही लगती।

सूरत पहुँचते ही, घर जाकर, बच्चूभाईके प्रश्नोंका जल्दीसे उत्तर देकर, हरिलालका घर खोजनेके लिए वह निकल पड़ा। सूरत जैसे शहरके एक बड़े मुहल्लेमें किसीका घर खोज निकालना सरल बात नहीं है। दो दिन में पता लगा, घरमें ताला बन्द था। पूछने पर पता लगा कि घर बिक गया था। उसे वहाँ खबर पड़ी कि मेसर्स पारखेरिया एण्ड कम्पनी के सोलिसिटर अपना काम इतनी तत्परताके साथ पूरा करने के लिए क्यों प्रसिद्ध है? घर जाकर जगत खूब रोया, उसे नहीं सूझ पड़ रहा था कि अब वह क्या करे। तीन-चार दिन बाद फिर वहाँ गया तब किसीने बताया कि इस मकानके मूल मालिक बम्बई गये हैं। भाग्यको कोसता हुआ वह घर आया।

बच्चूने जगतमें कुछ नवीनता देखी किन्तु पूछनेका साहस नहीं हुआ। संसारकी विशालताका ज्ञान आज प्रथम बार उसे हुआ, साथ ही अपनी अल्पता का भी ज्ञान हुआ। संसारके साथ जगतका सांघातिक युद्ध प्रारम्भ हुआ और पहले युद्धमें ही अपनी पराजय उसे स्वीकार करनी पड़ी।

बम्बईमें जिस व्यक्तिको कोई खोजता हो, वह उसे मिल जाय तो पूछना ही क्या है? विद्याभ्यासको ताकपर रखकर दिन भर जगत बम्बई भ्रमण करने लगा। भूलेश्वरके जनसमूहमें, बालकेश्वरके विलासिओंके विलासभवनमें, चौपाटी, महालक्ष्मीपर जहाँ-तहाँ वह जाता; किसीका कपड़ा, चेहरा दूरसे देखकर उसका हृदय धड़क उठता, वहाँ दौड़कर जाता और निराश होने पर आँखोंके नीचे अँधेरा छा जाता, सिरमें चक्कर आ जाता। उसकी 'देवी' तो मानो अचानक अन्तर्ध्यान हो गई हो ऐसा उसे लगा।

अन्तमें शरीर थक गया, मन पराजित हो गया और विवश हो उसने पुस्तकों की शरण ली। किन्तु अब न उसमें जोश था और न लगन ही थी जिससे वह पुस्तक पढ़ सकता! दिन-रात बीतने लगे किन्तु निद्रा अथवा शान्तिका नामो-निशान नहीं था। उसे माँ याद आतीं, रघुभाई याद आते और उसका खून खौल उठता। 'देवी' सदैव मनमें बनी रहती और लोहूमें विष फैलाती। उसका दम घुटने लगता। एक ही प्रश्न उसके मनमें चक्कर लगाया करता था—'मेरी देवी कब मिलेगी?'

———

'शेठ! यह टो टुमे करना ही पड़ेगा। इस प्रकार घबड़ाटे क्यों हो?' "स्पेनियल और वुमन' की कहानी जानटे हो न? 'स्त्रीसे क्या डरटे हो?' कहकर सि० पारखेरियाने अपने घरकी पफ और पाउडर वाली बाघिनका अनुभव भूल जाकर अपनी पत्नीके पास जानेके लिए सेठ करमदास पर पानी चढ़ाया। सेठ करमदासकी छातीमें तो घंटनाद जैसी आवाज हो रही थी। कभी-कभी सफेद वस्त्रमें इधर-उधर टहलती हुई अपनी स्त्रीको उसने देखा था, इससे अधिक वह कुछ जानता नहीं था। लोक-लाजसे अथवा हरिलालकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हथियानेके लिए तनमनके सम्मति की आवश्यकता थी, इससे अब घर बसानेकी आवश्यकता सबको दिखाई दी। किन्तु सेठ तो इस विचार मात्रसे बगलें झाँकने लगते थे। चार बार जैकेट नीचे ताना, पाँच बार कॉलरका मध्य भाग खींचकर ठिकाने किया, छः बार खाँसकर नाक साफ किया पर भीतर साहस नहीं आ रहा था। वह तनमन से डरता था, पर क्यों, यह वह न समझ पाता।

'अरे यह क्या कर रहे हो सेठ?' गुलाब बोल उठी—'जाओ वह तो गरीब गायके समान सीधी है, कुछ तो साहससे काम लो।' साहस रखनेका प्रयास करते हुए, पेरकी कँप-कँपीका अनुभव करते हुए सेठ सीढ़ी चढ़ने लगे, एक-एक सीढ़ी चढ़कर पीछे देखते थे, ऊपर पहुँचने पर आँखका चश्मा उतार कर पोंछा, मनमें वापस लौट जानेका विचार आया; नाक पुनः साफ किया, पर नीचे खड़ी हुई गुलाबका हँसना सुनकर लज्जित हुए और आगे बढ़े अन्यथा अवश्य ही नीचे उतर गये होते।

धीरे-धीरे सेठ कमरेके दरवाजे पर पहुँचे; पहले तो सोचा कि वहाँ कोई है नहीं, ध्यानसे देखने पर अन्दर तनमनके साथ एक आठ-नौ वर्षकी बालिकाको पहचान गये। उन्हींके कम्पाउण्डमें एक बङ्गला था जिसमें नवागन्तुक भईतकी यह पुत्री थी। यदि करमदास सेठमें थोड़ी भी रसज्ञता अथवा सुन्दरता परखने की शक्ति होती तो एक मोमबत्तीके क्षीण प्रकाशमें जो छोटा रमणीय चलचित्र उसके सामने दिखाई पड़ रहा था उसे देखकर वह आनन्दित होता। रक्त-विहीन मूर्त्तिके समान लगती हुई तनमन एक कुर्सी पर बैठी थी। उसकी सुन्दर आँखें शरीरके सूख जानेसे बड़ी-बड़ी कुछ अस्वाभाविक लग रही थीं।

इतनी क्षीणता और साधारण वस्त्र पहने रहने पर भी, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे स्फुटित होने वाला लावण्य अभी नष्ट नहीं हुआ था। सामने छोटी बालिकाके कमनीय किन्तु सुघटित शरीरमें भी पर्याप्त आकर्षण था। बालिकाकी गम्भीर, विस्मयपूर्ण आँखें तनमनको देख रही थीं। उसके छोटेसे ललाटपर आश्चर्यकी रेखायें दिखाई पड़ रही थीं। अभी चार-पाँच दिनके सहवाससे ही इस स्नेहार्द्र बालिकाको तनमनके प्रति ममता हो गई थी। तनमनकी विचित्रता उसके छोटेसे मस्तिष्कको चक्करमें डाल देती थी।

मिसेज़ कारपेण्टरके जानेके बाद ही तनमनको इस बालिकाका साथ मिल गया था। उसके चेहरेपर दिखाई पड़ने वाली दयालुता, गम्भीरता एवं सुन्दरताके भावने उसके जलते हुए हृदयको आकृष्ट कर लिया था। उसके निर्जन जीवनमें इस बाल-सखीका साथ भी आदरणीय हो गया था। इतने छोटेसे वयमें भी यह बालिका इतनी सीधी-सादी और गम्भीर थी कि तनमनको कुछ ढाढ़स मिला। धीरे-धीरे बालिकाके निर्दोष प्रश्नोंके उत्तरमें अपनी कुछ बातें बताईं; तनमनका हृदय अपनी कहानी किसीसे कहनेके लिए व्याकुल हो रहा था। अपने किशोर, पिता एवं अपनी आशाका वर्णन किससे करे? विवश होकर इस अबोध बालिकासे सब कुछ कहकर अपना मन शान्त करती। उसे तनमनमें कोई अगम्य भेद दिखाई पड़ता। इतना अकेलापन, इतना दुःख—और वह भी इतने वैभवमें! किन्तु जब तनमन अधिक रोने लगती तब चुपचाप उसका हाथ अपने हाथमें लेकर अपना स्नेह प्रदर्शित करती, और इतनेसे ही तनमन उसका उपकार मानती।

'तनमन बहन! अब मैं जाती हूँ। पिताजी बिगड़ने लगेंगे।'

'बहन! तू भी थक गई होगी; जा!'

बालिका जाने लगी।

'किन्तु रमा!'

रमा लौट पड़ी।

'देखो किसीसे कुछ कहना मत, नहीं तो तू भी मुझसे अलग कर दी जायगी।' इतनेमें तनमनको खाँसी आ गई। कुछ दिनोंसे उसके निर्बल शरीरमें

यह नया भूत प्रवेश कर गया था। जब तक खाँसी आती रही, रमा वहीं खड़ी रही।

'अब मैं जाती हूँ' कहकर पीछेकी सीढ़ीसे रमा उतर गई। उसके गम्भीर पिताको उसकी परवाह नहीं थी, काम-काजी माँको फुरसत नहीं थी जिससे रमा का हृदय किसीका लाड़-प्यार नहीं पाता था। पहली बार तनमनका स्नेह देखकर इसे अपनी बहन अथवा माँकी तरह चाहने लग गई थी।

रमाके जाने पर तनमनने गहरी साँस ली। वह उठी। अँधेरेमें दरवाजे पर खड़े-खड़े करमदास सेठने उसके शरीरकी छटा देखी, दीपकके सामने शीशेमें प्रतिबिम्बित क्षीण किन्तु मोहक चेहरा देखकर प्रथम बार उसे ज्ञात हुआ कि मेरी पत्नी इतनी रूपवती है! उसने तनमनको शीशेके सामने जाकर अपनी चोटी खोलते हुए देखा। पासमें पड़े हुए हारमोनियमके पास जाकर तनमन बैठ गई, ज्यों-त्यों उसकी उँगलिया चलने लगीं। उसका सिर छातीपर लटक गया था। धीरे-धीरे वह गाने लगी......शब्द ठीक-ठीक निकल नहीं रहे थे।

तेरी बनने की आशा का, छूट चुका है दूर किनारा:
तूफानी भवसागरमें बस, नाम तुम्हारा एक सहारा।
ले जाने के लिए मुझे जब, आयेंगे यमदूत यहाँ पर;
जाऊँगी मैं साथ खुशीसे, रख नाम तुम्हारा अधरों पर॥
नहीं चाहती मुक्ति मिले या, स्वर्गलोक में वास करूँ मैं;
बन चरणों की दासी फिर से, चरणों केही पास मरूँ मैं।
पहुँच सफलता की चोटी पर, दासी को इस भूल न जाना;
अन्त समय तक जीवन जिसने, बिना तुम्हारे विषवत् माना॥

गला रुँध गया, स्वर काँपने लगे। हारमोनियमको बन्द कर वह उठ खड़ी हुई। आँखोंमेंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। पास ही सोफा पर पड़कर 'हाय किशोर! हा पिताजी!' चिल्ला उठी।

करमदास सेठ साहसकर खड़ा था, अपनी पत्नीपर कुछ प्रसन्न हो रहा था। उसने सोचा कि यदि नीचे जाकर एक गिलास ह्विस्की पी आये तो अधिक साहस आ जाय किन्तु नीचे उपस्थित लोगोंके हँसी उड़ानेके भयसे वह नीचे

क्या हमारा विवाह घर बसानेके लिए हुआ है ? मेरे धनकी तुम्हें आवश्यकता थी वह तुम्हें मिल गया।'

यह स्पष्ट बात सुनकर सेठकी समझमें नहीं आया कि वह क्या उत्तर दे। वह बोला—'लेकिन इसमें बाधा ही क्या है ?'

'बाधा ? बाधाकी क्या बात कर रहे हो ? तुम जानते हो कि मैं विवाह करना नहीं चाहती थी फिर भी जबरदस्ती विवाह किया गया। तुम्हारे घरमें रह रही हूँ, इससे अधिक और कर ही क्या सकती हूँ ? तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है। अब जितने दिन जीवित हूँ सूखी रोटी खाकर पड़ी रहने दो, इतनेसे ही मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगी।'

सेठने कभी भी हृदयके भावोंको समझनेका न तो प्रयत्न ही किया था और न उसका अनुभव ही। पहली बार इतनी दया-पूर्ण काँपती हुई आवाजसे कोई उससे कुछ कह रहा था, यह सुनकर भीतरसे उसे दया आई किन्तु यह नहीं सूझ पड़ा कि वह क्या जवाब दे, क्या करे।

'तुम्हारा पैर पकड़कर कहती हूँ कि जाओ, मुझे अकेली पड़ी रहने दो' तनमनने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाया। ऐसा करनेसे उसके कन्धे पर फैले हुए बालके सौन्दर्यने करमदासके मनमें वासना उत्पन्न कर दी। दयापूर्ण शब्दोंसे उत्पन्न उसका मनुष्यत्व जाता रहा।

मनमें रहनेवाली विषय-लालसाकी तृप्तिसे निर्जीव पड़ा हुआ कीड़ा नये असन्तोषसे जीवित हो उठा। तुरन्त पासमें पहुँचकर तनमनकी पीठपर उसने हाथ रख दिया। हाथ रखा ही था कि तनमन सोफापरसे उछलकर दूर जा खड़ी हुई और गर्वसे तनकर उसकी ओर देखने लगी। उसकी आँखोंसे तेजकी ज्वाला निकल रही थी, वह सेठको तिरस्कारसे देख रही थी। सेठ सोफा पर बैठ गया और डरसे तनमनकी ओर देखने लगा। यदि सम्भव होता तो वह सोफाके भी नीचे घुस जाता।

'सेठ !' तनमनकी श्वाँस कठिनतासे निकल रही थी जिससे उसकी आवाज खोखली और रुक-रुककर निकल रही थी, 'मैंने तुमसे नम्र बनकर प्रार्थनाकी इसीसे क्या ? देखो ! मेरेमें विष भरा है, छूते ही मर जाओगे।'

ऊँट जैसे बुद्धिहीनतासे देखे वैसे ही सेठ भी गर्दन लम्बी करके देख रहा था। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि इस प्रकार जरासा हाथ लगा देनेमें कौनसा पाप हो गया ? अभी तक मिस 'मे' कभी-कभी हँसीमें रूठ जाती थी जिसकी दवा हमेशा कुछ पुरस्कार देनेसे हो जाती थी किन्तु यह क्या ? फिर साहस बटोरकर बोला—'इसमें हो क्या गया ?'

'क्या हो गया ? तुम स्पष्ट सुनना चाहते हो ? मैं दूसरेकी हूँ, तुम्हारी नहीं। मेरे धनके मालिक भले ही तुम हो गये लेकिन मेरे शरीरका मालिक दूसरा है। जिस क्षण तुम ऐसा होनेका प्रयत्न करोगे उसी क्षण दोमें एक रहेगा—तुम या मैं, समझे ? इसलिए जाओ, मुझे व्यर्थ सताओ नहीं।'

तनमन बैठ गई। उसे पुनः जोरकी खाँसी आई जो तीन-चार मिनटतक रही।

'तब मैं इसे कैसे सहन करूँगा ?' सेठने जरा आवेशमें पूछा।

'सहना पड़ेगा ? अब अधिक मैं बात नहीं कर सकती, इसलिए जाइये। आये, इतनी कृपा बहुत की, बस' उसने उँगलीसे दरवाजेकी ओर संकेत करते हुए कहा। सेठ उठा नहीं। क्या जवाब दे ? इस कठिनाईको कैसे दूर करे, यह उसकी समझमें भी नहीं आया। क्रोध करे, नीचे जाय अथवा तनमनको मनाए।

तनमन बोली—'अच्छी बात है, तुम्हें यहीं बैठना है तो घर तुम्हारा है।' कहकर मोमबत्तीका 'स्टैण्ड' उसने उठाया और दूसरे कमरेमें जाकर बीचका दरवाजा बन्द कर दिया।

सेठ अन्धेरेमें घबड़ा उठा। नीचे जानेमें शरम लग रही थी फिर भी लाचार होकर जाना पड़ा। सीढ़ी पर बैठकर नीचे झुककर देखा, नीचे कोई दिखाई न देने पर वह नीचे उतर गया। किसीको पता न चले इसलिए वहीं सोफापर पड़कर रात उसने वहीं बिताई।

५०

गंगा मौसीकी नवनीत दिनों-दिन घनी होती जाती थी जिससे वृद्धा अब वर्षमें ग्यारह मास वहीं रहने लगी थी। करमदास सेठके यहाँ श्यामदास तथा गुलाब ये ही दो घरके मालिक थे। गुलाबको जानेके लिए दूसरा स्थान नहीं

था और श्यामदास सेठका 'स्टेट-मैनेज' (स्टेटका प्रबंध) करनेके लिए रह गये थे। उसके कुटुम्बीजन सब सूरतमें थे जिनके पास प्रतिमास ५०) पचास रुपये पहुँच जाया करता था जिससे उसके लिये किसीके मनमें कोई पछतावा नहीं था। थोड़े ही दिनों पश्चात् पास ही के बंगलेमें आकर रहनेवाले काठियावाड़ी (रघुभाईको लोग काठियावाड़ी समझते थे) गृहस्थके घरमें भी उसका आना-जाना हो गया था और उसकी नजरपर भी वह चढ़ गया था।

सेठको ऊपर भेजकर मि० पारखेरियाके बिदा होनेके पश्चात् श्यामूभाई एवं गुलाब कुछ देर तक बड़े कमरेमें खड़े रहे। कुछ दिनोंसे अकेले मिलने पर दोनों एक दूसरेसे बोलनेमें अजीब प्रकारका प्रतिरोध अनुभव करते।

सर्व प्रथम गुलाब बोली – 'श्यामूभाई ! सेठ तो बिलकुल ही तड़फणदास लगता है। इतनी-सी लड़कीसे कितना घबराता है ?'

'बिलकुल निर्वीर्य है जी ! इसमें घबड़ानेकी कौनसी बात है ?' कहकर श्यामूने विचित्र प्रकारसे गुलाबकी ओर देखा। दोनोंका मन साक्षी दे रहा था कि दोनोंके मनमें एक ही विचारधारा भ्रमण कर रही थी। बाधाको तोड़नेका मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था।

श्यामूने उस बाधाको अनुकूल बनानेका निश्चय किया—'गुलाब ! तू कितने वर्ष की हुई ?'

'क्यों ?' उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई, 'मुझे तो याद नहीं है . यही चौबीस-पचीस हुआ होगा।'

चुपचाप दोनों अपने सोनेके कमरेकी ओर चले। पहले खण्डमें बड़े कमरेके पास ही गुलाब सोती थी और दूर अंतिम कमरेमें श्यामू सोता था। गुलाबके कमरेके पास पहुँचकर दोनों खड़े हो गये।

'मालूम पड़ता है कि सब नौकर सो गये, अभी इतनी देर तो हुई मालूम नहीं पड़ती ?' श्यामू बोला।

'अभी देर क्या हुई है ? साढ़े नौ बजा होगा' कहकर गुलाब मुस्कराकर दरवाजेकी ड्योढ़ी पर खड़ी हो गई। दोनोंको बातके लिए कोई विषय ही नहीं मिलता था।

'तुम अभी सो जाते हो ?'

'नहीं जी' श्यामू बोला, 'मुझे तो बहुत देरमें नींद आती है।'

'आओ न तब ! मुझे भी नींद नहीं आती। जरा बैठें, बोलें, बातचीत करें। आओ, बिजली जलाऊँ ?' गुलाबकी आँखोंमें निमन्त्रण स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था।

श्यामू भीतर गया, बिजलीके 'बटन' के पास गुलाबके पहुँचनेके पूर्व ही वह श्यामूके आलिंगन-पाशमें जकड़ गई और अँधेरा ज्योंका त्यों बना रहा।

× × × ×

प्रातःकाल पाँच बजे श्यामू चोरके समान अपने कमरेमें गया।

४१

बुद्धिमती रमा तनमनके कमरेमें बैठी हुई थी। तनमनके साथ उसका स्नेह इतना बढ़ गया था कि नमक-हलाल कुत्तेकी तरह वह सदा उसके पीछे-पीछे घूमा करती थी। नौकर चाहे जितनी सफाई कर जाय फिर भी जबतक वह स्वयं अपने हाथोंसे सब चीजें यथास्थान सजाकर रख न लेती तब तक उसे चैन नहीं पड़ता था। इस ओर तनमनकी विरक्ति इतनी बढ़ गई थी कि उसका कमरा दस मिनट भी स्वच्छ नहीं रहने पाता था। इस छोटी बालिकाने थोड़े ही समयमें तनमनके जीवनके साथ अपना जीवन एक कर दिया था। इस समय भी मनमें तनमनकी गीत गुनगुना रही थी।

इतने दिनों पश्चात् तनमन प्रथम बार बाहर गई थी। मिसेज़ कारपेंटरका जन्म-दिवस था। जिसके उपलक्षमें अपने यहाँ आनेका उसने अत्यधिक आग्रह किया जिसे तनमन अस्वीकार नहीं कर सकी। वह अपोलो बन्दर पर रहती थी; वहाँ तनमनको लिवा ले गई।

नीचे रमाको कुछ हो-हल्ला सा लगा जिससे उसने समझ लिया कि तनमन आई होगी। कुछ ही देरमें तनमन नौकरका हाथ पकड़े हुए ऊपर आई किन्तु चेहरेसे वह बहुत व्याकुल लग रही थी। उसकी छाती उछल रही थी, आँखें निकल पड़ रही थीं; चेहरा तीव्र वेदनासे मुरझा गया था।

'रमा ! पानी दो—हा—हा—' कहकर कुर्सी पर लेट गई। उसकी छाती इतनी जोरसे उछल रही थी मानो वह बहुत दूरसे दौड़कर आई हो। 'रमा ! बैठ। तुम नीचे जाओ' नौकरसे उसने कहा। नौकर नीचे चला गया।

तनमनके कन्धे पर हाथ रखकर रमा चुपचाप खड़ी रही। सदाकी तरह मूक आश्वासन दे रही थी।

'रमा ! बहन ! आज मैंने देखा।'

'किसे ?'

'अपने किशोरको !' पूरे जोशसे वह बोली, 'मिसेज़ कारपेंटरके यहाँसे आते समय करमदास सेठसे भेंट हो गई। वह साथ हो गये। हम रेलगाड़ीसे आये। चर्चगेट स्टेशन पर मिले। हा...य...जी बड़ा घबड़ा रहा है। चलो, बाहर छत पर बैठें, यहाँ मेरा दम घुट रहा है।'

दोनों बाहर गये। तनमन अपने निश्चित स्थान पर बैठ गई। जेबसे 'किशोर' का रूमाल निकालकर उसने हाथमें ले लिया और दूर अस्ताचलगामी सूर्यकी किरणोंपर दृष्टि डाली।

'मेरे नाथसे फिर भेंट हो गई ! रमा ! तू जानती नहीं ? अब मैं निश्चिन्तता से मर सकूँगी।'

'तब उन्हें आपको यहाँ लाना था ?' निर्दोष रमा बोली।

'नहीं ! नहीं !' जोरसे तनमन चिड़चिड़ाकर बोली, 'तू अभी बच्ची है, तू क्या समझेगी ? यहाँ कैसे आने दूँ ? मेरी स्थिति देखकर जल मरेगा, तू मेरे किशोरको जानती नहीं। देखते ही मुझे यहाँसे ले जानेका हठ करेगा। ये चाण्डाल उन्हें नोच खायँगे। तुझे खबर है ? मेरा किशोर बड़े कोमल हृदयका है। बिचारा अकेले रहेगा ! संसारमें उनका कौन है ? उनकी 'देवी' तो यहाँ पड़ी है' श्वाँस लेनेमें रुकावट पड़ रही थी, इसकी परवाह किये बिना तनमन बोलती चली जा रही थी।

'भेंट कैसे हुई ?'

'मैं वेटिङ्गरूममें नकशा देख रही थी, इसी समय वे आ गये। बिलकुल सूखकर काँटा हो गये हैं। मेरे किशोर ! हम दो-चार शब्द ही बोल पाये थे कि

गाड़ी आ गई और सेठ मुझे लिवा ले आया। जानबूझकर मैं चली आई। रमा! नहीं तो अधिक समय बातचीत करनेका दुष्परिणाम क्या होता, कहा नहीं जा सकता? मेरा मन वशमें नहीं था, हाथ आलिङ्गनके लिए तड़प रहा था। मैं चली आई। यमराज अब भले ही पधारें। नाथका दर्शन हो गया। अब मुझे किसी बातकी परवाह नहीं है। मेरी आशायें सभी नष्ट हो चुकी हैं, इतनी इच्छा बाकी रह गई थी उसे भी भगवानने पूर्ण कर दी। रमा! रमा! ओ रमा! जरा नीचेसे किसी नौकरको बुला लो। मुझे यहाँ छातीमें पीड़ा हो रही है। बहन जा तो, जल्दी आना।'

रमा नीचे दौड़ी। वह घबड़ा गई क्योंकि कभी भी उसने इतने जोरसे तनमनको इस विचित्र ढंगसे बोलते नहीं सुना था। उसने जोर-जोरसे पुकारा किन्तु किसीने उत्तर नहीं दिया, न कोई नौकर ही दिखाई पड़ा। शीघ्रतासे वह वापस लौटी, आरामकुर्सीपर हाथ रखकर तनमन झुककर बैठी दाँत पर दाँत बैठाकर वेदनाको दबानेका प्रयत्न कर रही थी, एक हाथसे छाती दबाये हुए थी - तनमनने पूछा—'कौन? रमा!'

रमा—'हाँ, मैं ही हूँ, नौकर तो कोई है ही नहीं।'

'हाय रमा! मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। जाओ, जाओ किसीको बुला लाओ। नहीं, रुको, एक बात कहूँ— रमा! सुनो। मेरे हाथमें यह जो रूमाल है न, वह मेरे किशोरका है। देखना, यह किसीके हाथमें पड़ने न पाये। ले जाकर इसे जला डालना। किसीको छूने तक मत देना— सभी पापी हैं। मेरे किशोर! मेरे नाथ! हाय...राम' कहकर तनमन चीख उठी और कुर्सीसे नीचे गिर पड़ी।

रमा घबड़ा उठी। उसने समझा कि रमा मर गई। वह नीचे दौड़ी, उसकी चिल्लाहटसे घर गूज उठा, आखिर माली आया जो रघुभाईके यहाँ बैठी हुई गुलाबको बुला लाया। दूसरा नौकर डाक्टरको बुला लाया। सभोंने तो समझा कि तनमन मर गई। यह समझकर रमा तो छाती फाड़कर रोने लगी। डाक्टर ने आकर तनमनकी परीक्षा करके बताया कि अन्तःकरण निर्बल हो जानेसे मूर्च्छा आ गई है। आध घंटेके उपचारोपरान्त तनमन होशमें आई किन्तु उसकी

छातीमें इतनी पीड़ा हो रही थी कि उसकी चिल्लाहटसे घर गूँज उठता था।

सम्पूर्ण रात उसने इसी प्रकार व्यतीत की। रघुभाईकी स्त्री कमला एवं गुलाब दोनों वहीं सोईं क्योंकि जीवनकी आशाका डाक्टरने जवाब दे दिया था। धीरे-धीरे हृदय रुकनेकी तैयारी कर रहा था। जितनी देर तक चिल्लाती नहीं थी उतनी देर तक तनमन मूर्च्छामें अपने कन्धे पर माथा झुकाये पड़ी रहती। वेदना कुछ कम होने पर 'पिया तैं कहाँ गयौ नेहरा लगाय' गाती। प्रातःकाल हुआ, पक्षीवृंदका आह्लादमय संगीत प्रारम्भ हुआ। तनमनने खिड़कीसे बाहर समुद्र देखा, प्रकृति माताको प्रणाम किया। धीरे-धीरे उसकी मूर्च्छा बढ़ती गई और चिल्लाहट कम होती गई। एकाएक उसकी मूर्च्छा भङ्ग हुई, दो-एक बार चिल्लाई और जो नौकर उसके कन्धेपर हाथ रखे हुए बैठा था उसीके हाथमें लुढ़क गई। कमला और गुलाब दोनों दौड़ आईं।

उस अन्तिम चीखके साथ ही तनमनके हृदयका स्पन्दन बन्द हो गया। उसका प्राण-पखेरू उड़ गया और वह ऐसी सुख-भूमिमें पहुँच गई जहाँ सांसारिक दुःखकी पहुँच नहीं थी। उसकी सभी आशायें, उसका लावण्य, उसकी चतुराई लोगोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर सोलह-सत्रह वर्षमें ही समाप्त हो गई। पूर्वमें सूर्योदयका रक्ताभ आकाश उसके शव पर प्रकाश डाल रहा था, पक्षीवृंद समुद्रके किनारे उसका मृत्यु-गीत गा रहे थे। सच्चा दुःख रमाको छोड़ दूसरोंको नहीं हुआ? लोगोंको दिखानेके लिए गुलाबने सिर धुना किन्तु उस समय भी मनमें तनमनको गाली दे रही थी। हृदय कड़ाकर सबने तनमनके सुकोमल शरीरको बाँधा, श्मशान ले गये। तनमन—अपने बापकी जीवनाधार अपने किशोरके हृदयकी रानी, उसकी आशा एवं भावना द्वारा पूजित 'देवी' प्राणेश्वरी जला दी गई। उसके अनुपम रूप, अलौकिक गुण एवं उसकी अपूर्व बुद्धिके स्थान पर केवल राख रह गई।

५२

जब जगतने तनमनको चर्च-गेट स्टेशनपर देखा तब पहले तो वह चौंक उठा, उसे पहचान भी नहीं सका।

दोनों एक ही साथ बोल उठे; 'किशोर!' 'देवी!'

बहुत दिनोंसे जिस प्रसंगकी खोजमें जगत था, वह हाथ लगा, किन्तु सूझ नहीं पड़ा कि वह क्या कहे।

'मेरा पत्र क्या मिला था?' तनमनने पूछा। उसकी व्याकुलता स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

'हाँ मिला था। तुम्हारी यह क्या दशा हो गई है? यह कौन है?'

तनमनकी आँखोंमें पूर्वका तूफानी तेज चमक उठा; एक ठंढी साँस भरकर कटाक्ष करते हुए वह बोली—'मेरे स्वामिनाथ!'

जगतको कुछ सोचनेका भी अवकाश नहीं मिला। दूसरे ही क्षण करमदास आ पहुँचा; तनमनने जगतपर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालकर विदा ली। वह चली गई और गाड़ी भी चल पड़ी। जगतको तो जैसे काठ मार गया था, वह कुछ बोल ही नहीं सका। दूसरे क्षण उसकी तंद्रा भङ्ग हुई, रेलगाड़ीके अन्तिम डब्बेको प्लैटफार्म छोड़ते हुए उसने देखा, अपनेपर क्रोध हुआ। कितनी भूल हुई? साथ ही चढ़ जाता तो पता तो लग जाता। पुनः वेटिङ्ग रूममें जाकर एक कोनेमें बैठ गया और सिर पटकने लगा। कैसा सुअवसर उसने हाथसे निकल जाने दिया? दूसरी लोकल आई, उसमें वह बैठा किन्तु अब इससे होता क्या था? खीझता हुआ वह बोर्डिङ्ग पहुँचा।

पुनः वह चारो ओर ढूँढ़ता रहा किन्तु तनमन अथवा उसके 'स्वामिनाथ' का कुछ भी पता नहीं लगा। पन्द्रह दिनके कठिन परिश्रम करनेके पश्चात् पुनः पुस्तकोंकी शरण ग्रहण की। वह इस प्रकार पढ़ता, भोजन करता, घूमता मानो उसके सिरपर भूत सवार हो। सोनेकी तो उसने मानो कसम खा ली थी। दिन पर दिन बीतने लगे साथ ही उसकी बेचैनी भी बढ़ती गई। परीक्षा समाप्त होते ही पुनः खोज करने लग गया किन्तु सब निष्फल। उसे पता नहीं था कि उसकी 'देवी' स्वधाम पहुँच गई। परीक्षा-फल निकला, वह उत्तीर्ण हो गया था; उस

दिन अपनी माँ एवं देवीको याद कर वह खूब रोया। तनमनने सच कहा था, संसारमें वह एकाकी था, उसके विचार तथा उसकी महत्त्वाकांक्षाका भागीदार कोई था ही नहीं।

लाचार भारी हृदयसे वह सूरत चला। इतने दिनोंके विद्याभ्यास, जागरण एवं शोकसे उसका मन और शरीर थक गया था किन्तु उसका साहस तथा दृढ़ता पूर्ववत् ही बने हुए थे। बच्चूभाईका पत्र पाकर वह घर जा रहा था, साथ ही उसने यह भी सोचा कि सूरतमें खोज करनेसे ठीक-ठीक पता चलेगा। तीसरे दर्जेके भरे हुए छोटेसे डब्बेके एक कोनेमें बैठकर वह अनेकों प्रकारका विचार करने लगा। गुणवंतीकी मृत्यु, रघुभाईसे प्रतिशोध लेनेका संकल्प, सर्वोपरि तनमन ध्यान करती होगी और उससे कैसे भेंट होगी—इसका विचार आया। सूरतके पास पहुँचने पर डब्बेमें बैठे हुए एक व्यक्तिके शब्दोंने उसे चौंका दिया।

'निकृष्ट पैसेकी तो बात ही जाने दो। मेरे एक रिश्तेदार थे, हरिलाल। उन्हें एक निःसन्तानका धन मिला, वे स्वयं मर गये और उनकी एक मात्र लड़की भी मर गई।'

जगत पर तो वज्रपात-सा हुआ, विनयका ज्ञान जाता रहा, बीचमें ही वह बोल उठा—'कौन ?' उसका स्वर बिलकुल बदल गया था।

'कुछ नहीं मिस्टर! यह तो मैं योंही कह रहा था।'

'कौन हरिलाल ?'

'क्या तुम जानते हो ? वही हरिलाल वरजीवनदास।'

'सूरतके ?' जगतका गला भर आया, 'मर गये ?'

'हाँ' उत्तरदाताने सोचा कि यह बिचारा हरिलालका कोई आश्रित होगा।

'वह तो भाई! अपने कष्टसे छुटकारा पा गये; लकवा मार गया था। किन्तु तनमन—कैसी चतुर लड़की थी!'

'व...ह ?' जगतकी साँस रुँधने लगी।

'मर गई—'

जगत चित्रलिखित-सा उसकी ओर देखता रहा। ऐसा लगा कि श्वाँस बन्द

हो जायगी। वह दाँत पीसने लगा। वक्ताको जगत पागल-सा प्रतीत हुआ।

'भाई! लड़की तो बड़ी बुद्धिमती थी लेकिन उसके श्यामू मामा एवं उसकी विमाता दोनोंने मिलकर उसे मार डाला। क्या तुम उसे जानते हो?'

जगतने केवल 'हाँ' कहा। वह अपने विचार स्थिर करनेका प्रयत्न कर रहा था किन्तु सफल नहीं होता था। उसे अपने मस्तिष्कका यन्त्र-चक्र स्खलित होता हुआ-सा लगा। दोनों हाथोंसे उसने अपना माथा दबा लिया, भीतर कुछ पीड़ा मालूम पड़ रही थी। सूरत आनेपर गाड़ीसे उतर गया, किन्तु कैसे उतरा इसका ज्ञान उसे नहीं रहा। बच्चूभाई उसे लेनेके लिए आया था किन्तु पहले तो वह जगतको पहचान ही नहीं सका। जगतके कन्धे बैठ गये थे, सिर झुक गया था, पैर लड़खड़ा रहे थे। उन्मत्तता एवं सन्निपातसे उत्पन्न तेज उसकी आँखोंमें दीख पड़ रहा था। बच्चूने सोचा कि जगत बीमार है।

'कैसी तबीयत है?'

'अच्छी है' बहुत ही धीमी आवाजमें जगतने उत्तर दिया।

घर पहुँचकर जगत चारपाईपर पड़ गया। वह विचार-विहीन, दुःख-विहीन था। अबतक दुःख एवं वियोगसे उसका बल ज्योंका त्यों बना हुआ था, किन्तु अब वह भी जाता रहा। साहस, बल, शौर्य कुछ भी बाकी नहीं रहा। तेजस्वी युवक असहायावस्थामें कायर बन गया। पतिकी मृत्युके समय गुणवंती द्वारा अनुभूत निराश्रयता भी इस निराश्रयताकी तुलनामें तुच्छ थी। बड़े परिश्रमसे वह थोड़ा-बहुत खा लेता और घंटों दोनों हाथोंसे माथा दबाकर बैठा रहता।

दो-तीन दिनोंमें उसमें विचार करनेकी कुछ शक्ति आई। पहले तो अपनेको वह धिक्कारने लगा। अपनी 'देवी' को मर जाने दिया! अकर्मण्य बनकर कुछ किया नहीं! दोनों हाथोंसे अपना बाल पकड़कर खींचता, पीछे बड़बड़ाता, 'पापी, कुत्ता, चाण्डाल, स्वयं इधर-उधर भ्रमण करता रहा और निर्दोष, स्नेह-मूर्त्ति 'देवी' को दुःख और वियोगसे मर जाने दिया? किसलिए उसके कोमल हृदयको प्रेम करना सिखाया? और सिखाया भी तो किसलिए उसे दुनियाँकी दयापर छोड़कर विलग हो गया?' दीवालपर सिर पटककर मर जानेका

विचार उत्पन्न हुआ, वह फिर बड़बड़ाने लगा, 'अब जीनेसे लाभ ? किसके लिए ? संसारके वैभव, अत्यधिक परिश्रमसे प्राप्त सुख किस 'देवी' के पदाम्बुज में रखनेके लिए ? किसलिए खाया-पीया जाय ? कपड़ा पहनने-ओढ़नेसे लाभ ?' संसारकी दासता, उसके व्यवहार, उसके जन्जाल सब उसे व्यर्थ लगे। 'किसके लिए ? किसके लिए ?' यह नाद उसके कानमें प्रतिध्वनित होने लगा।

इस धुनसे छुटकारा मिलने पर दूसरे विचार जालमें जा फँसा। समाज, उसके बन्धन, ईश्वर, प्रकृतिके नियमादिके प्रति उसे घोर तिरस्कार उत्पन्न हो गया। समाजने उसकी 'देवी' का जाति-बन्धनकी रक्षाके हेतु बध किया था; उसके बन्धनोंने उसे रुला रुलाकर अकालके गालमें पहुँचा दिया था। ईश्वरने उसे दुःखी किया, निर्दोष तनमनको दुःखी किया। किसलिए ? किस अधिकार से ? दुःख देना था तो उत्पन्न ही क्यों किया ? क्यों मिलाया - क्यों विलग किया ? सभीको वह धिक्कारने लगा। मनुष्यके चेहरे, वैभव, सुखसे उसे विरक्ति हो गई। सृष्टि संहार करनेके पूर्व शङ्कर जैसी मनःस्थिति उसकी हो गई। उसकी इच्छा सबका—अपना, समाजका, सृष्टिका—विनाश करनेकी हुई। इस विचारको उसने किसी पर प्रकट नहीं किया बल्कि अपने मनमें ही ऐसा विचार कर अपने मस्तिष्कको अमानुषी बना डाला।

लहरी स्वभाव वाले बच्चूकी समझमें कुछ नहीं आया। पन्द्रह दिनों तक समझाकर वह थक गया। जगतको भी भाईके घरमें बेकार पड़ा रहना अच्छा नहीं लग रहा था, वह भी वहाँसे भाग जाना चाहता था। वह किसी ऐसे निर्जन स्थलमें जाना चाहता था जहाँ वह दिल खोलकर रो सके, निर्बाध विलाप कर सके। उसका बल नष्ट हो गया था। वह सुन-मुन बैठा रहता और पागलके समान एक दिशामें एक टक देखा करता था।

अन्तमें एक वर्षकी बाकी छात्र-वृत्ति लेनेका बहाना निकालकर उसने रत्नगढ़ जानेका विचार किया। बच्चूने भी स्थान परिवर्त्तनसे कुछ चैन मिलेगी यह सोचकर वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन जगत सूरतसे निकल पड़ा।

५३

बहुत दिनों बाद जगत रत्नगढ़ वापस आया। स्टेशनपर उतरते ही वह प्रसङ्ग याद आया जिससे गुणवंतीके साथ उसे वहाँसे भागना पड़ा था, किन्तु उसके सब ज्ञान-तन्तु नष्ट हो गये थे। एक मास पूर्व रघुभाईका नाम अथवा रत्नगढ़के अनुभवका स्मरण कर जिसमें सिरसे पैर तक प्रतिशोध लेनेकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठती थी, उसमें द्वेषके विचार करनेकी भी शक्ति नहीं रह गई थी। तनमनकी मृत्युके असह्य वज्राघातने उसे अभिभूत एवं कायर बना दिया था। सम्मान और गर्वका भाव जाता रहा, उसके स्वभावमें केवल मनुष्य जन्तुकी निराश्रयता एवं जड़ता मात्र रह गई थी।

रत्नगढ़में पहले जहाँ तङ्ग गन्दी गलियोंमेंसे होकर जाना पड़ता था, जहाँ पर जाते समय हमेशा यह डर बना रहता कि कहीं दो सौ वर्षके पुराने मकान गिरकर कुचल न डालें वहाँ अब चौड़े, स्वच्छ, आकर्षक राज-मार्ग बने हुए थे। ऐसा लग रहा था कि रेवाशङ्कर द्वारा एकत्र किये हुए धनका सदुपयोग किया जा रहा है। वहाँके निवासियोंकी चाल-ढालमें भी पहलेसे बड़ा अन्तर था किन्तु इन सब परिवर्त्तनोंकी ओर जगतका ध्यान नहीं था, तेजीसे राम-मन्दिरकी ओर वह चला जा रहा था। वहाँ पहुँचने पर आमूल परिवर्त्तनकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ क्योंकि पुराने मन्दिरके स्थानपर उसने एक भव्य विशाल मन्दिर एवं उसके पास ही बना हुआ एक रमणीय उपवन देखा। एक व्यक्तिसे रामकृष्णदासजीके सम्बन्धमें पूछने पर उसे मन्दिरमें जानेका उसने संकेत किया।

मन्दिर थोड़े ही दिनका बना हुआ मालूम पड़ता था। जिस कोठरीमें पहले रामचन्द्रजी एक छोटेसे घृत-दीपके प्रकाशमें विराजते थे वहाँ आज बाहरसे सूर्यका चमकता हुआ प्रकाश आ रहा था।

जगतने एक शिष्यको बुलाकर रामकृष्णदासजीके बारेमें दरयाफ्त किया। शिष्य जगतको वहीं बैठाकर रामकृष्णदासजीको बुलाने गया। जगतने पाषाणकी अचलतामें विराजमान रामचन्द्रजीकी ओर देखा और उसके निष्प्राण मस्तिष्कमें पूर्वके प्रसंगकी स्मृति जागृत हो उठी। करुणोत्पादक रीतिसे हाथ पर अपना सिर रख वह पूर्वके स्वप्न देखने लगा।

थोड़ी देरमें बाबाजी आये। दस वर्षमें भी उनमें कोई अन्तर नहीं आया था उनकी चाल पूर्ववत् हाथीके समान, उनकी आवाज पहले ही जैसी तेज एवं स्नेहपूर्ण थी। वे जगतको पहचान नहीं सके।

'कौन है ? तेरा नाम क्या है ?'

जगतने सिर उठाकर ऊपर देखा और कहा—'बाबाजी ! आप मुझे नहीं पहचानते ? मैं नीलकण्ठरायका जगत हूँ।'

'कौन मेरा जगत ?' कहकर बाबाजीने उसे उठाकर गलेसे लगा लिया। थोड़ा विरक्तिसे जगत अपनेको छुड़ाकर दूर खड़ा हो गया।

'बेटा ! तेरा पत्र आया था। गुणवंती बिचारी मर गई। जैसी रामजीकी इच्छा। तू तो अच्छा है न ?'

'हाँ' कहकर जगत सूखी हँसी हँसा, 'मेरा पत्र मिला था ?'

'हाँ, मिला था लेकिन अब तो मैं भूल जाता हूँ, बहुत बूढ़ा हो गया' कहकर वृद्ध हँसे, 'अच्छा आकर बैठ। मन्दिर अपना ही समझना।'

जगत वहीं रहने लगा किन्तु बाबाजी उससे इतना अधिक स्नेह करते थे कि वह खीझ उठता था। जगतने जीवनसे विग्रह प्रारम्भ कर दिया था, उसे सभी मनुष्य शत्रु लगते थे। ऐसे समय इतना निःस्वार्थ स्नेह उसके मनमें व्याकुलता पैदा कर देता था। बाबाजीने भी देखा कि जगतका मन अत्यधिक अस्वस्थ है। उसके खाने-पीने, सोने और बोलनेकी विरक्तिने उन्हें कुछ-कुछ जगतके मनकी सच्ची स्थितिका ज्ञान कराया। बाबाजी जगतको सचमुच चाहते थे और अपनी साधारण भावनासे उसका मनोरञ्जन करनेका प्रयत्न किया करते थे। ज्यों-ज्यों बाबाजी उसका मन बहलानेका प्रयत्न करते त्यों त्यों वह और भी बिगड़ता था। अभी भी उसकी शोक-जन्य विक्षिप्तता नष्ट नहीं हुई थी। बिछौने पर लेटा-लेटा वह सबेरे तक रोया करता एवं प्रातःकालसे संध्या समय तक शोकाग्निकी धुनसे प्रेरित विषमयतासे अनाप-शनाप बकता अथवा मूक बैठा रहता। या तो वह उन्मत्तके समान शून्य मस्तिष्कसे माथा झुकाकर बैठा रहता अथवा जङ्गलीके समान विचार करता रहता। रामकृष्णदासजीने बहुत कुछ प्रयत्न किया किन्तु उनका एक भी प्रयत्न सफल नहीं हुआ। इसके विपरीत

उनकी सरल श्रद्धा द्वारा दी हुई शिक्षासे जगत अधिक उत्तेजित हो उठता और जहाँ चोहता चला जाता। धीरे-धीरे मन्दिरका परित्याग कर पासही के उपवनमें उसने भटकना प्रारम्भ किया।

आठ-दस दिनमें उसका जी उचट गया। अब किसी नये स्थानमें जानेकी उसकी इच्छा हो रही थी। कहाँ, यह नहीं जानता था। उसने बाबाजीसे कहा, बाबाजी दृढ़ थे, तबीयतमें सुधार न होने तक कहीं जाने देना उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

जगत हँसा, 'सुधार ? बाबाजी ! अब सुधार कैसा ? अब तो सब बिगड़ना ही रह गया है।'

बाबाजी टससे मस नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि गुणवंतीकी अनुपस्थितिमें तुमपर पहला अधिकार मेरा है।

जगतने उत्तर दिया – 'मुझपर अधिकार है ? अधिकार करनेवाला तो चला गया, सब जलकर राख हो गया। मैं तो भटकनेवाला, इधर-उधर मारा-मारा फिरनेवाला, बिना मालिकका जानवर हूँ। मुझे क्यों रख रहे हैं ? आप मुझे रख भी सकेंगे ? अच्छी बात है, आपकी इच्छा है तो आज रह जाऊँगा किन्तु मेरी फिर इच्छा हुई तो चला जाऊँगा। संसारमें मेरा कौन है जिसकी मुझे परवाह हो ? परवाह रखवानेला तो मरा बिला गया।'

बाबाजीसे उसने दुःखके आवेशमें तनमनकी सभी बातें कह दी थीं किन्तु उससे इतना चित्त-भ्रम कैसे हुआ, यह बाबाजीकी समझमें नहीं आ सका था।

सन्ध्या समय बाबाजीको चैन नहीं पड़ी; उनकी सरल बुद्धि इस रोगकी परीक्षा नहीं कर सकी। जगतकी देख-रेखका भार एक शिष्य पर देकर पास ही के एक मकानमें वे चले गये।

———

५४

वह बाट जोहता हुआ खड़ा था। रमणीय चन्द्रिका अवनि पर अमृतमय वर्षा कर, दूर नाचती हुई समुद्र तरङ्गोंको चाँदीसे मढ़ रही थी। उसकी अधी-नतामें उपवनके पौधे, पुष्प एवं समुद्र तट तक फैले हुए सघन वृक्षोंके समूह,

अमृतनाथ चन्द्रकी शान्ति-पूर्वक एकाग्र चित्तसे सेवा कर रहे थे। जगत युवावस्थाके जीवनमें कृतकृत्यता द्वारा लाये हुए सन्तोषके बलमें गर्वसे खड़ा था। ज्योत्सना उसके तेजस्वी मुखपर, उसके ललाटपर, फैले हुए बालपर नाच रही थी, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे मनुष्यत्वका अनिर्वाच्य गौरव प्रकट हो रहा था। उसने एक कठघरेपर हाथ रखा। एकाएक दूरसे चन्द्रिकाने मानो मधुर गीत गाया हो इस प्रकार बाँसुरी बजी, उसके आह्लादमय संगीतने उसके प्रफुल्ल जीवनको गुञ्जारित कर दिया। अपने सामने विस्तृत रमणीय चित्रपटको अनुभवी स्वभावकी रसज्ञतासे उसने देखा, और उमड़ते हुए सुखकी श्वाँस ली।

पासमें आने वाली गाड़ीकी घड़घड़ाहट सुनाई दी, वीणा-नादसे जैसे हरिण ऊँचा मुँहकर देखे उसी प्रकार जगतने देखा। उसके हृदयमें रसमय लहरें उमड़ पड़ीं।

गाड़ी बाहर रुक गई, उसमेंसे कोई उतरा। चन्द्रिकाकी मानुषी अवतारके समान एक स्त्री उतरी जिसका नख-सिख शुभ्र चमकते हुए वस्त्रोंसे सुशोभित था। शीघ्रतासे पड़नेवाले जोशसे पूर्ण उसके प्रत्येक पदसे रस और लालित्य झर रहा था। उसके देदीप्यमान नेत्रोंने जगतको देखा, जगतने उसे देखा। थोड़े समयका वियोग युगके समान हो इस प्रकार दोनोंके हृदय एक दूसरेमें समा जानेके लिए दौड़े।

'देवी! आ गई?'

जवाबमें वह हँस पड़ी। रसकी वर्षा करनेवाला उसका हास्य चन्द्रिकाके रसपूर्ण वातावरणमें प्रतिध्वनित हो उठा—'कितना अधीर है?'

स्त्री आई। जगत सीढ़ी उतरने लगा। दोनों कुछ पग आगे बढ़े, एक दूसरेका आलिङ्गन किया। अल्प वियोगसे उत्पन्न भयङ्कर दुःख पल मात्रमें प्राणमें प्राण सम्मिलित कर नष्ट हो गया। दोनों एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए ऊपर चढ़े। मुख, रूप, रस एवं प्रेमसे तेजस्वी बन गया था। आँखोंमें अलौकिक तेज चमक रहा था। जगत उसे बरामदेमें ले गया। चन्द्रिका स्त्रीके लावण्यमय शरीरको और भी सुन्दर बना रही थी। जगत थोड़ी दूर पर खड़ा उसे सस्नेह देख रहा था।

'देवी ! किस शुभ मुहूर्तमें प्रभुने तुम्हारा निर्माण किया था ?'

'नाथ ! आपके निर्माणके पश्चात् ।' कहकर स्त्रीने जगतके कन्धेपर अपना प्यारा, रसाल मुखड़ा रख दिया...।

तुरन्त अजीब प्रकारसे सहस्त्रों मनुष्योंका समूह आस-पासमें दिखाई दिया -- मनुष्य एक दूसरेके कन्धेपर दर्शनातुर नेत्रोंसे झाँक-झाँककर देख रहे थे, एक दूसरेके कानमें कुछ प्रशंसात्मक शब्द कह रहे थे। थोड़ी दूरपर देवकी दुन्दुभी गड़गड़ा रही हो इस प्रकार वाद्ययन्त्रका विजय-नाद सुनाई दिया। जगत बाहर निकला; चारो ओर माननीय महाजन उसका अभिनन्दन कर रहे थे। जगतकी चालमें नरेशोंकी गर्वयुक्त छटा थी। उसके खिले हुए नम्र चेहरेपर देवोंको दीप्त करनेवाली तेजस्वी निश्चलता प्रकट हो रही थी। उसके नेत्र विजयमदसे मत्त अग्निके समान चमक रहे थे। उसके हाथपर हाथ रखकर चलनेवाली, प्रेमगर्वसे गर्वित, रससुन्दरीके अप्सरा जैसे मुखपर उसके नेत्र गड़ गए थे और असीमित हर्षसे हँस रहे थे। वह सुन्दरी उसके कानमें कुछ कह रही थी जिसे सुनकर जगत मुस्कुरा रहा था। जगतका सिर स्वर्गके सिंहासनको स्पर्श कर रहा हो ऐसा लगा। सम्पूर्ण जनसमूहने विजयनाद किया। जगत अपना जीवन सफल देखकर हँसा और अपनी प्यारी सहचरीकी ओर घूम पड़ा। सहचरी दूर गई... जगत पकड़नेके लिए दौड़ा, पर अब कहाँ ? उसके दोनों नेत्र अन्धकारमें चमकते हुए दिखाई पड़े। जगतने पकड़नेका प्रयत्न किया। चारो दिशायें गूञ्ज उठीं। जगत और तेजीसे सुन्दरीके पीछे दौड़ा।

शान्त निष्ठुर चन्द्रिका राम-मन्दिरके चौकमें बिखरी हुई थी। दूरपर सियार की त्रासदायक चिल्लाहट सुनाई पड़ रही थी। जगत पास ही कोठरीके बिछौने पर बैठा हुआ आँखें मल रहा था। पहले यह परिवर्त्तन उसकी समझमें कुछ नहीं आया, कहाँ पर है, इसका भी ज्ञान नहीं रहा। पश्चात् अरण्यमें एकाएक झञ्झावात आ जाय, उसी प्रकार अपनी स्थिति, अपने वियोग, दुःखका तीव्र घातक स्मरण आ गया। स्वप्न-सृष्टिमें प्राप्त 'देवी' का मुखोच्छ्वास अभी भी शरीरपर मालूम पड़ रहा था, वह बिछौनेसे उठ खड़ा हुआ और बाहर निकला। चाँदनीकी सुन्दरता देखकर वह काँप उठा। उसकी आँखें शवके समान स्थिर,

भावहीन हो गईं। उसने जेबसे तनमनके सुन्दर बालकी प्रेम-भेंट एवं पुड़ियामें रखी हुई उसके पत्रकी जली हुई राख निकालकर अधरोंसे लगाया।

'मैं आ रहा हूँ, देवी! आता हूँ' कहकर चला, फिर रुक गया। चारों ओर उसने देखा। सौन्दर्यको, सृष्टिको एवं सृष्टिके कर्त्ताको शाप दिया। वह आगे बढ़ा, थोड़ी दूरपर एक बड़ा-सा कूप था, उस ओर चला। यन्त्रवत् वह सीधा, धीमी चालसे चल रहा था। कूपके पास पहुँचा, ऊपर चन्द्रकी ओर, नीचे पानीकी ओर देखा; पीछे घूमकर राम-मन्दिरकी ओर देखते ही उसे बालपनमें ली हुई प्रतिज्ञा स्मरण आ गई; हाथके प्रेम-चिन्हका चुम्बन किया। वह कूएँकी जगतपर चढ़ा और कूएँमें कूदनेके लिए उछला—

इतने ही में किसीने उसकी गर्दन धर दबाई। रोष, निष्फलतासे उत्पन्न उन्मत्ततासे वह पीछे घूम पड़ा। एक संन्यासी उसे पकड़े हुए खड़ा था। उसकी आँखोंसे जगतके प्रति कठोर व्यंग टपक रहा था।

'कौन है? मुझे क्यों पकड़ा?' जगतने क्रोधावेशमें क्रुद्धतासे कहा, 'छोड़ो'!

'छोड़ूँगा किन्तु आत्मघात करनेके लिए नहीं। चौतरेके नीचे उतरो, तब छोड़ूँगा' शान्तिसे संन्यासीने कहा।

जगत और भी चिढ़ गया। 'छोड़ दो! मुझे जाना है। मेरी 'देवी' मेरा बाट देख रही है।' उसका गला बैठ गया था।

कूएँकी ओर सङ्केतकर अनन्तानन्दजी बोले, 'वहाँ जानेकी आज्ञा नहीं है, दूसरी जगह जानेके लिए स्वतन्त्र हो।'

अनन्तानन्दजीका मठ मन्दिरके पास ही था। अभी उन्होंने पागलके समान जगतको जाते हुए दूरसे देखा। संध्या समय रामकृष्णदासजी आकर उनसे सहायता माँग गये थे, जिससे वे तुरन्त समझ गये कि हो न हो यही वह व्यक्ति होगा और तुरन्त आकर उसे रोका।

'आज्ञा! आज्ञा!' जगत बड़बड़ाया 'मुझे आज्ञा देने वाला तू कौन है? मुझे रोकनेका तुझे क्या अधिकार है? छोड़, मुझे छोड़!' कहकर छुड़ाने का उसने निष्फल प्रयत्न किया।

'अधिकार !' स्वामीजी जरा हँसकर बोले, 'अधिकार—जीतने वालेका प्राबल्य। जो तुझे इस समय मरनेके लिए प्रेरित कर रहा है उसे मैंने जीत लिया है; इतना ही मेरा अधिकार है।' यह कहकर जगतको कूएँ परसे नीचे उतारा। जगतने स्वामीकी ओर देखा, चाँदनीमें उनकी भव्यता देखकर उसका क्रोध कुछ कम हुआ।

'मुझे जाने दीजिये, मैं आपके पैर पकड़ता हूँ। मेरा संसारमें कोई है नहीं। मेरी वहाँ सब खड़े बाट जोह रहे हैं—विलम्ब हो रहा है।'

'होने दो विलम्ब' न्यायाधीशके अचल शासनके समान वे बोले, 'यदि उन्हें तेरा काम होगा तो वे यहीं आवेंगे। जब तक तू यहाँ है तबतक तू अपना काम तो कर, पीछे उनकी सोचना।'

'अपना ? उनके बिना सब व्यर्थ है; जीवन सब विषमय है। मुझे तत्त्व-ज्ञानकी आवश्बकता नहीं है, मुझे जाने दीजिये !' जगत खिजला उठा।

'मुझे तत्त्वज्ञान बताना भी नहीं है, मुझे तो इतना ही कहना है कि मृतके पीछे मरनेसे लाभ ? कैसे जानते हो कि वह तुम्हें वहाँ मिलेगी ही ? मिलेगी तो यहीं मिलेगी। आओ, तुम्हें ऐसा सुख दिखाऊँ कि जिसे तुमने स्वप्नमें भी न देखा होगा।'

जगत स्वप्नका स्मरण कर काँप उठा।

जगतपर स्वामीके अद्भुत व्यक्तित्वका प्रभाव होने लगा। वह नम्र बनकर बोला—'स्वामी ! व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ ? वह भला कहीं मिल सकती है ! मैं बहुत दुःखी हूँ, स्वामी ! बहुत दुःखी हूँ। जीवनकी अपेक्षा मृत्यु सहस्रगुण अच्छी है।'

'अच्छी बात है तब जीवित रहते हुए मरना सीखो। चलो, इस समय तो चलो, प्रातःकाल बातें होंगी ! यदि तुम्हें रहनेकी इच्छा न होगी तब कूप तो कहीं भागा जा नहीं रहा है ! एक बार देख तो लो !'

'कहाँ ले जाइयेगा ? आप कौन हैं ?'

'मैं यहाँका स्वामी हूँ। लोग मुझे अनन्तानन्द कहते हैं।'

'स्वामीजी आप ही हैं !' जगतने अनन्तानन्दके विषयमें बहुत कुछ

सुना था, 'अच्छी बात है आता हूँ किंतु जब मेरा मन चाहेगा चला जाऊँगा।'

'मन क्या करता है ?' 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।'

इस प्रकार स्वामीजी बोले मानो अपने पुत्रको समझा रहे हों। उनका शरीर क्रोधसे भर गया। 'तुम अपनी निरर्थक शिक्षाके वशीभूत हो किसी तुच्छ धुनमें व्याप्त होकर अन्तमें इस दशाको पहुँच जाते हो; साधारण चींटीके काट लेनेपर जीवनका अन्त कर देनेके लिए तत्पर हो जाते हो। एक प्रकारके जीवनने तुम्हें इस दशाको पहुँचा दिया, दूसरे प्रकारका जीवन तुम्हें कहाँ ले जाता है, यह तो जरा देख लो। अधीरतामें ही वर्त्तमान समयकी बुद्धिमत्ता समा गई मालूम पड़ती है। चलो, यदि तुम्हें जीवन निर्थक लगेगा तो मैं तुम्हें चले जानेकी आज्ञा दे दूँगा, और कुछ ?'

जगतका हाथ पकड़कर स्वामीजी उसे अपने साथ मठमें ले गये।

५४

'सिद्धनाथ अभी तक क्यों नहीं आया ?' दरवाजेकी ओर देखते हुए अनंतानंदने पूछा। गत प्रकरणकी घटनाको व्यतीत हुए आज दस वर्ष हो गये थे किंतु अनंतानंदमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ था; वही गौरव, वही राजाओंकी भव्यता को लज्जित करनेवाला तेज, आँखोंमें भी वही अवर्णनीय चमक; केवल शरीर थोड़ा सूख गया था, और चेहरेपर सिकुड़न पड़ जानेसे वृद्ध मालूम पड़ते थे। वे खड़े-खड़े दो-तीन संन्यासियोंके साथ वार्त्तालाप कर रहे थे। थोड़ी ही दूरपर एक टेबुलपर बैठी हुई चम्पा— किसी वृद्धके आँगन में स्थित गृहिणीके समान शोभायमान हो रही थी। पूर्वाश्रमकी नायिका—अब मालूम नहीं पड़ती थी। अनंतमठके बड़े कमरेमें ३०—४० संन्यासी एकत्र होकर धीरे-धीरे कुछ बातचीत कर रहे थे। प्रातःकालीन बालसूर्य एकत्रित संन्यासियों के गेरुआ वस्त्रको एवं देदीप्यमान मुखको दीप्त कर रहा था। सभी किसीकी बाट जोहते हुए मालूम पड रहे थे।

अनंतानंदने अनंतमठमें अपने मुख्य शिष्योंको बुलवाया था। कोई-कोई तो कुछ देर ही पहले आये थे और कुछ तीन-चार दिन पूर्व। संन्यासियोंके मुखसे ऐसा तेज प्रकाशित हो रहा था कि साधारणसे साधारण व्यक्ति भी उन्हें देखकर कह सकता था कि उनमेंसे एक भी भारतके लिए शाप रूप, धर्मके नाम पर पैसा लूटनेवाला पाखण्डी संन्यासी नहीं है। सभीके बोलने-चालनेकी रीति एवं गौरव ऐसा था मानो अनंतानंदके लघु संस्करण मात्र हों। इस मण्डलको अनंतानंदका कुटुम्ब कह सकते हैं, यह उनके बीस वर्षके अथक परिश्रमका परिणाम था।

'सिद्धनाथ अभी तक क्यों नहीं आया? गाड़ी 'लेट' है क्या?'

'जी हाँ! ऐसा ही लगता है। लीजिये यह रणुभा आ गये।' एक संन्यासी ने कहा। पुनः रणुभाको ही सम्बोधित कर उसीने कहा, 'पधारिये।'

रणुभाका शरीर कुछ मोटा हो गया था, चेहरा भर गया था जिससे शांति एवं भलमनसाहत प्रकट हो रही थी। उन्होंने आते ही अनंतानंदको प्रणाम दूसरोंको नमस्कार किया। उनके पास दस-पन्द्रह संन्यासी आ गये और अनंतानंदके चारो ओर एक झुण्ड-सा एकत्रित हो गया।

'कहो रणुभा कुँवर कैसा है?'

'अच्छी तरह है, अभी जसुभाकी मृत्यु भूला नहीं है। उसका स्वभाव बड़ा कोमल है।'

'इस कोमलतामें शौर्य लाना तुम्हारा काम है। सोलङ्की सूर्यमें तेज भी चाहिए।' अनंतानंदने कहा, 'देखो तुम अभिभावक हुए तो यह लाभ हुआ। हमारा दो वर्षका परिश्रम सफल हुआ।'

'बहुत परिश्रम पड़ा, क्यों महाराज?' एक संन्यासीने पूछा। वह संन्यासी लम्बा और काला था।

'सरकारको राज्य रेसीडेण्टको सौंप देना चाहता था।'

'दयानंद! अभी बंगालकी खुमारी दूर नहीं हुई क्यों?' अनंतानंदने कटूक्ति करते हुए कहा, 'कितना परिश्रम पड़ा, यह तो हमारा मन जानता है। यदि रेसीडेण्ट नियुक्त किया गया होता तो हमारे सभी प्रयत्नोंपर पानी फिर

गया होता। तब हमारा वीरसेन फुटबाल एवं क्रिकेट और बहुत होता तो पोलो अथवा शिकार खेलनेमें अवश्य ही अद्वितीय होता। संसारको इतना नुकसान तो अवश्य हुआ।'

यह सुनकर सभी हँस पड़े।

रत्नगढ़का दस वर्षका इतिहास बहुत ही थोड़ा था।

खेल-कूदकर जी बहलाते हुए जसुभा स्वधाम पधारे, अपने पीछे एक छोटा बालक छोड़ गये थे। इस अवसरसे लाभ उठाकर बम्बईमें बैठे हुए रघुभाईने तूफान खड़ा किया और बालकके पूर्ण वय प्राप्त करने तक रेसीडेंसी राज्यका कारोबार सँभाले, ऐसी आज्ञा प्राप्त करनेका उसने प्रयत्न किया। बहुत परिश्रम के पश्चात् अनन्तानन्द विजयी हुए, रणुभा दीवान बनाये गये किन्तु इस तूफानसे पार उतरनेमें अनन्तानन्दको बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था।

रणुभाके आने पर अधिकांश संन्यासी उनके पास आ गये। केवल चार-पाँच खिड़कीमें खड़े कुछ बातचीत कर रहे थे।

'अमरानन्द! अब कौन बाकी रह गया है? दिन चढ़ रहा है और रातमें मुझे बाहर जाना है।'

'देखिये!' अमरानंदने मज़ाकमें गंभीरता धारणकर कहा। अमरानंद देखने लायक व्यक्ति थे। उनका शरीर नाटा और मजबूत था। चेहरा गोल, आँखें छोटी, हँसमुख और लम्बा सुडौल शिर शीशेके समान चमकता था। वे हमेशा हँसकर बोलते एवं लोकप्रिय बननेका प्रयत्न करते। वे अनंतानंदके मुख्य शिष्य थे; इस समय लक्ष्मणपुर स्टेटमें रहते थे। अनंतानंद उनपर पहले अत्यधिक विश्वास करते थे किंतु इस समय दोनोंमें कुछ असंतोष उत्पन्न हो गया था। उनके कथनमें गुप्त कटाक्ष दिखाई पड़ता था। अपनी छोटी आँखें स्थिरकर उन्होंने कहा—'देखिये! अभीतक आपके सिद्धनाथ कहाँ आये? सिद्धनाथ है कौन? वही जो आपका आधार एवं आपके प्रयत्नोंका प्रेरक है। उसके बिना भला काम कैसे प्रारंभ किया जा सकता है?' दो-तीन व्यक्ति हँस पड़े। एक संन्यासी इस कटाक्षपूर्ण भावासे ऊबकर दूर जा खड़ा हुआ।

कुछ ही देर पश्चात् नीचे गाड़ीके पहियाकी आवाज सुनाई दी। सभी चुप हो गये।

'सिद्धनाथ आ गया।' अनंतानंदने कहा। दृढ़ मजबूत पैरोंसे कोई सीढ़ी चढ़ रहा था। अनंतानंद थोड़ा प्रेमसे हँसकर बोले—'उसके सिवा दूसरा कोई इस प्रकार चढ़ ही नहीं सकता।'

क्षणभर बाद एक लम्बा साधु आया। उसकी छोटी दाढ़ी एवं लंबे बाल उसके चेहरेकी कांतिको बढ़ा रहे थे। उसका चेहरा सुन्दर, सहस्रों पुरुषोंके बीचमें भी ध्यान आकृष्ट करनेवाला था। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रूपकी अपेक्षा अटल दृढ़ता एवं दुर्जय सत्ता अधिक प्रकट हो रही थी। चेहरेकी रेखायें कठोरतासे दबी हुई थीं। आँखोंमें कठोरता और प्रभावका तेज था; उसे देखते ही मनुष्योंमें नम्रताका भाव पैदा हो जाता। संपूर्ण शरीरसे भी वही व्यक्तित्व प्रकट हो रहा था। पद-पदपर, प्रत्येक अभिनयमें, प्रत्येक शब्दमें सत्ताकी निश्चलता दिखाई पड़ती थी। वहाँपर उपस्थित तेजस्वी पुरुषोंमें भी उसका तेज भिन्न था। अनंतानंदकी भव्यता देवताओंका स्मरण कराती, सिद्धनाथका कठोर गौरव नेपोलियन जैसे नरवीरोंकी स्मृति ताजी करती थी। प्रसङ्ग-वशात् एक भिन्न-भिन्न रूप धारण कर सकता था जब कि दूसरा अचलताका सत्त्व बना रहता था। एक शांतिका अवतार लगता था जब कि दूसरा सत्ताका। सिद्धनाथने अपने लम्बे सुदृढ़ शरीरको अनंतानंदके सामने झुकाया, चम्पाका आशीर्वाद ग्रहण किया और बाकी सबसे दो-चार बातें कर कुशल क्षेम पूछा।

'सिद्धनाथ!' अमरानंदने आगे आकर अपने स्वाभाविक कटाक्षमय भाव से कहा, 'बहुत देर लगा दिया? स्वामीजी घबड़ा रहे थे।'

'इसका मुझे खेद है, किन्तु इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, गाड़ी लेट थी। चलिये महाराज! अब काम प्रारंभ कीजिये।' अनंतानंदकी ओर घूमकर स्वस्थ दृढ़ आवाजमें सिद्धनाथने कहा।

'अच्छा! लेकिन अभी तू मद्राससे चला आ रहा है; थोड़ा आराम तो कर ले!'

'आराम करनेका बहुत समय है।' सिद्धनाथ बोला। वह जरा हँसा किंतु उसकी हँसी नीरस थी।

सब लोग जाकर वहींपर रखे हुए एक बड़े गोल टेबुलके चारो ओर बैठ गये। यह सभा ऐसी लग रही थी मानो सतयुगके ऋषिगण सदेह आकर सभा कर रहे हों। एक किनारे अनंतानंद बैठे। सभोंमें उनका स्वरूप निराला ही था। एक तरफ रणुभा और चम्पा एवं बाईं तरफ कुछ कागज लिए हुए सिद्ध-नाथ बैठे थे। सबके बैठ जानेपर अनंतानंदजी उठकर बोलेः—

'मेरे शिष्यगण! जिस कार्यके लिए हम लोग आज यहाँ एकत्र हुए हैं उसे प्रारम्भ करना चाहिये। आप लोगोंमेंसे अनेक व्यक्ति दूर देशसे आये हैं जिनमेंसे कुछ लोग आज रातमें ही चले जायँगे। आपके जानेके पूर्व मुझे एक बहुत ही गम्भीर प्रश्न आपके सम्मुख रखना है।' अनंतानंदकी सुन्दर आवाज़ धीरे-धीरे गम्भीर होती गई।

'बीस वर्ष पूर्व मैंने अपना प्रयत्न आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप आप जैसे शिष्योंको प्राप्त करनेका गौरव मुझे मिला है। हम २०० संन्यासी एवं १२७० बाहरी मनुष्योंको अपने कार्यक्षेत्रमें ला सके हैं, जिनके कठोर परिश्रमसे आज तीन देशी राज्योंमें हमारा प्रभाव व्याप्त हो चला है। १७ विद्यार्थियोंको हम विदेश भेज सके हैं, ७ महाविद्यालय एवं २६ विद्यालय हम चला रहे हैं तथा छोटी-बड़ी ४००—४५० पाठशालाओंमें अपने भावको प्रेरित कर सके हैं। हमारे कोषमें लगभग चालीस लाख रुपये हैं ऐसा सिद्धनाथका कथन है। अब तक यह सब मैं अकेले करता आया हूँ किन्तु अब मैं वृद्ध हो चला हूँ. मुझसे सब काम होता नहीं अतः मेरा विचार है कि ये सब प्रयत्न एवं संस्थायें एक क्षण-भङ्गर देहके अस्तित्वपर न टिकी रहें, इसकी अपेक्षा उनका भार यदि एक बड़ी संस्थापर हो तो अपना कार्य अधिक सुचारु रूपसे चले। हममेंसे बहुतोंने वैराग्यको अपनाया है एवं अहं भावका विनाश भी हुआ होगा; ऐसी मुझे आशा है। अतः बिना किसी भी प्रकारके विरोधके हमें यह कार्य उठा लेना चाहिये। अतः मेरी विनती है कि हम ३७ व्यक्ति जो यहाँ उपस्थित हैं उनकी एक कार्यकारिणी समिति बना दी जाय, जिनमेंसे तीन मुख्य कार्यकर्त्ता चुन लिए जायँ, जिनके हाथमें सब सत्ता रहे और जो दूसरेके कार्योंपर दृष्टि रख सकें। तदुपरान्त आपको एक अध्यक्ष भी निर्वाचित कर लेना चाहिये ताकि अपने काममें किसी प्रकारका

स्खलन न होने पाये और जिसकी सत्ता सबसे अस्पर्श्य रहे।

'मैंने इन नियमोंके सम्बन्धमें आपमेंसे कई व्यक्तियोंसे परामर्श किया है, और उनके परामर्शके अनुसार बहुतसे नियम बनाये हैं जिन्हें आपको दयानंदजी बतावेंगे। इसके पूर्व एक मतभेद आ खड़ा हुआ है जिसे मैं दूर कर देना चाहता हूँ। मैं लोक-शासनका सेवक हूँ, सृष्टिमें उसका प्रसार करना मैं अपना धर्म समझता हूँ किन्तु लोक-शासन अपने मण्डलमें प्रविष्टकर, अपने कार्यकर्त्ता एवं अध्यक्षको स्वतंत्र सत्ता न देकर बार-बार उनसे हिसाब लेना मुझे पसंद नहीं है। हम काम-क्रोधसे मुक्त हैं, हमारी बुद्धि निर्मल है, ऐसी मेरी धारणा है। अतः हमें ऐसे ही व्यक्तिको निर्वाचित करना चाहिये जिसकी 'व्यवसात्मिका बुद्धि' शुद्ध हो, और जो विश्वके अचल नियमोंको देखते हुये अपने निर्धारित कार्यको पूर्ण कर सके। पश्चात् ऐसे व्यक्तिके प्रत्येक कार्यके सम्बन्धमें उससे खोद-विनोद करनेसे अवश्य ही अपने तंत्रके टूट जानेकी संभावना है! इस स्थितिमें कोई भी योगी कभी भी हमारी सहायता करनेके लिए तत्पर नहीं होगा। अतः यह रचना स्वीकृतकर अपना कार्य सफलीभूत करेंगे; ऐसी मुझे आशा है।'

अनंतानंदके बैठ जानेके पश्चात् दयानंदने सब नियम पढ़कर सुना दिया। उसपर विवेचन प्रारम्भ हुआ। कुछ लोगोंके संशोधनके पश्चात् अमरानंद उठे। सबको धन्यवाद देनेके उपरांत नियमोंके सम्बन्धमें वे बोलने लगे। मीठी चुटकी लेते हों इस प्रकार वे सबका खण्डन करने लगे। जो संन्यासी नहीं है उसे मण्डलमें प्रविष्ट करनेका कारण? सिद्धनाथ, चम्पा, और रणुभाकी आवश्यकता? स्त्रियाँ संन्यास नहीं ले सकतीं, ऐसी शास्त्राज्ञाका उदाहरण दिया एवं ऐसा विचित्र मण्डल बनाकर संन्यासियोंका अपमान न करनेकी अनंतानंदसे प्रार्थना की। दूसरा प्रश्न मण्डलके स्थायित्व व भलाईका था 'हम ऐसी प्रवृत्तियोंको अपनावें ही क्यों? संन्यासियोंके लिए देश क्या? उनके लिए हिन्दुओंके प्रति विशेष प्रेम क्यों हो? उनके लिए मानव-मात्र बराबर है, संसारमें इतने दुःख फैले हुए हैं उनके दूर करनेके बदले लोगोंको पढ़ाना, उनमें एक प्रकारकी भावना लानेका प्रयत्न करना यह मिथ्या नहीं है?' तीसरा प्रश्न उनका लोक-

शासन-सम्बन्धी था। 'अध्यक्षको क्यों स्वतंत्र सत्ता दी जाय ?' दो घंटेतक वे इस प्रकार खण्डन-मण्डन करते रहे। अंतमें लक्ष्मणपुरमें की हुई अपनी सेवाके सम्बन्धमें दो शब्द कहकर वे बैठ गये।

सब संन्यासी कुछ आतुरतासे देखते रहे, सब जानते थे कि अमरानंदने लक्ष्मणपुरमें बहुत अच्छा कार्य किया है फिर भी अपनी सत्ता बढ़ानेमें वे चूके नहीं थे, एवं धीरे-धीरे अनंतानंदके मुकाबलेमें खड़े होनेका उनका स्पष्ट मनोभाव दिखाई पड़ रहा था। बहुतोंकी सद्बुद्धि उन्हें तिरस्कारसे देखती। जबसे वे आये थे अनंतानंद उन्हें बहुत समझा रहे थे किन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं हुआ, यह सब लोग जानते थे। पूज्य अनंतानंदके विरोधमें इस प्रकार धृष्टतासे बोलनेपर सब लोग अमरानंदको घृणासे देखने लगे।

एक स्वामीने उठकर अमरानन्दकी आलोचनाओंका संक्षेपमें जवाब दिया। दूसरा उठे, इसके पूर्व ही अनन्तानन्दने स्वयं उत्तर देनेका निश्चय किया। पहले उन्होंने पिताकी तरह शिक्षा दी। रजोगुणकी प्रधानताके सम्बन्धमें प्रकाश डाला। धीरे-धीरे उनका स्वर तेज होने लगा, उनकी आँखोंसे अंगार-सा बरसने लगा, उनके हृष्ट-पुष्ट शरीरकी भव्यता चमक उठी। ऋषियोंकी सभामें कोई दुर्वासा गर्जना करे इसी प्रकार उन्होंने गर्जन किया, अमरानंदकी दलीलोंका चिथड़ा उड़ा दिया। उन्होंने कहा—'संन्यस्त दिलाकर भारतके समाजको पुनः शुष्क ज्ञानयोगके चक्रमें मुझे डालना नहीं है; मेरे सभी शिष्य संस्कृत स्त्रियोंके साथ विवाह कर भारतीय प्रजामें वीरता लावें, इसके विपरीत दूसरा कुछ मैं देख ही नहीं सकता। मेरे मतानुसार इस मण्डलका कर्त्तव्य आर्यावर्तके वृद्ध नसोंमें शुद्ध रक्तका सञ्चरण करनेके सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। और लोक-शासन मनुष्यके लिए है, योगीके लिए नहीं; उस नियमसे बँधकर मण्डलमें अन्धाधुन्धी प्रविष्ट करनेसे हमारा अधःपतन हुए विना नहीं रहेगा; अपूर्व योगीके बतलाये हुए सच्चे दृष्टिकोण पर चलना, सिद्धान्तकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है। यदि अभीसे राग-द्वेष करना हो, भेदाभेदकी तकरार प्रारम्भ करनी हो तो मण्डलकी आवश्यकता नहीं है; मैं स्वयं मरते दमतक काम करूँगा और मृत्युके समय किसीको अपनी शक्ति दे जाऊँगा।'

अनंतानंद सभी शिष्योंको पुत्रसे भी अधिक मानते थे, सबको उन्होंने कुछ न कुछ सिखाया था। आज उनके प्रतापसे सभी विद्वान् थे और सभीने योगकी शक्तिका अनुभव किया था। सभी अमरानंदके संयमहीन बर्तावसे परिचित थे और उनके व्यवहारसे दुःखी भी थे। अमरानंदने देखा कि सभी लोग—जिसमें कोई भी साधारण या तुच्छ नहीं है—मेरे विरुद्ध हैं तो वह दब गये और सभी नियम बहुमत से स्वीकृत हो गये।

इसके बाद कार्यकर्त्ताओंकी नियुक्तिका प्रश्न उठा। प्रत्येक व्यक्तिने एक कागज पर तीन-तीन नाम लिखा। अनंतानंदने सबका कागज लेकर मत गिनकर बताया; सिद्धनाथ ३६, दयानंद २५, चम्पा २२, निगमानंद ७, रणुभा १९, प्रणवानंद ६, अमरानंद ५। इस प्रकार पहलेके तीन व्यक्ति कार्यकर्त्ता नियुक्त हुए। इससे अमरानंद अत्यधिक अपमानित हुए। वे दाँत पीसने लगे, छोटी-छोटी आँखोंमें विष भर गया जिसे उन्होंने बड़ी कठिनाईसे दबाया।

अध्यक्षका चुनाव बड़ी सरलतासे हो गया, सबने अनंतानंदसे यह पद स्वीकार करनेके लिए कहा किन्तु उन्होंने यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि मुझे देखना है कि मेरे बिना काम कैसे चलता है! मैं कहीं जाता थोड़े ही हूँ; इसलिए किसी दूसरेको निर्वाचित करो।

पुनः मत लिया गया! नियमानुसार ३० मत मिलना चाहिये था। मतकी गणना कर अनंतानंदने खड़े होकर कहा कि सिद्धनाथ निर्वाचित हुए। सिद्धनाथ खड़े हुए, दृढ़तासे धीरे-धीरे बोले। अपने थोड़े अनुभवको बतानेके पश्चात् उन्होंने कहा, 'इसके अतिरिक्त मैं संन्यासी नहीं हूँ, बाहरी स्वरूपमें तथा अंतरमें संन्यासी होने योग्य नहीं हूँ। मेरी 'व्यवसात्मिका बुद्धि' जैसी चाहिये वैसी निर्मल नहीं है; मेरी वासनाका अभी तक नाश नहीं हुआ है। एवं ऐसे पवित्र महात्माओंका अध्यक्ष बनकर मैं उनका अपमान करना नहीं चाहता।'

यह सुनकर सभी चिंतामें पड़ गये। अनंतानंदने भी सिद्धनाथ द्वारा कही गई सत्यताको देखकर उसे स्वीकार किया। फिर मत लिया गया लेकिन किसी को ३० मत नहीं मिला। अंततः नियमानुसार कार्यवाहकोंकी सभाको अध्यक्ष का नाम उपस्थित करनेके लिए कहा गया। चम्पा, दयानंद और सिद्धनाथने

वचारकर कहा कि अभी एक वर्ष तक अनंतानंदके पास रह कर कोई काम करनेवाला चाहिये जिसके लिए रणुभाका नाम उन्होंने रखा। सभाने बहुमतसे उन्हें निर्वाचित किया और इसके पश्चात् सभाके विसर्जनका समय आया।

अध्यक्ष और कार्यवाहक दूसरे कमरेमें आगामी वर्षका कार्यक्रम निश्चित करनेके लिए गये। कार्यके बटवारेमें अमरानंदको दक्षिणमें काम करनेकी अध्यक्षने आज्ञा दी।

अमरानंद कुर्सीपर कूद पड़े। लक्ष्मणपुरमें किए सब परिश्रम, वहाँ पर प्राप्तकी हुई सब सत्तापर पानी फिर गया। जले पर नमक! अध्यक्ष नहीं, कार्यवाहक नहीं उसपर लक्ष्मणपुरके अधिकारसे भी पदच्युत! वे कहनेके लए उठ रहे थे कि अनंतानंदने उन्हें रोक दिया। अमरानंद आपेसे बाहर हो गये लेकिन इस सात्विक सभामें क्रोध दर्शानेसे स्थिति हास्यजनक हो जायगी यह सोचकर चुप रह गये। निगमानंदको लक्ष्मणपुर स्टेटमें जानेकी आज्ञा देकर सभा विसर्जित हुई।

पश्चात् सबलोग सिद्धनाथ और दयानंदके पास आये। सिद्धनाथने गत दस वर्षों में सबका मन हर लिया था। यह लोकसेवी स्वामियोंका समूह— संसारकी वासना त्यागकर उसका उद्धार करनेके लिए तत्पर योगियोंका मण्डल— सद्धनाथको अपना उदीयमान नायकके समान देखता था।

५६

सिद्धनाथ वहाँसे चम्पाके साथ निकला। उस विशाल मठके एक कोनेमें चम्पाका निवास था। वहाँ सिद्धनाथको वह ले गई। सिद्धनाथको यात्राकी थकावट मिटानेका वहीं अवसर मिला। स्नानोपरान्त उसने थोड़ा खाया और कुछ देर पश्चात् मठके पीछे उपवनमें वह चला गया। मठमें सभी उसे पहचानते थे और बहुत दिनों बाद आनेसे सभी बहुत स्नेहसे उसे सम्बोधित करते थे। वह मार्गके दोनों किनारे पर लगे हुए रमणीय वृक्षोंकी पंक्तीसे होकर नदी कीनारे गया। थोड़ी दूर पर सुलमा नदी मंद-मंद बह रही थी और पश्चिममें

जहाँ क्षितिजमें वह लीन हो जाती हुई मालूम पड़ रही थी वहाँपर अस्ताचल-गामी सूर्यका बड़ा बिम्ब लटक रहा था। सिद्धनाथ एक पत्थर पर बैठ गया और मस्तकपर हाथ फेरकर निराशापूर्ण आँखोंसे बहुत देर तक सूर्य-बिम्बको देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने एक आह ली और बड़बड़ाया—

'यतो यतो निश्चरंति मनश्चञ्चलमस्थिरम्'

'मन कब तक अस्थिर बना रहेगा?' पीछेसे स्वामीका हँसता हुआ दयापूर्ण स्वर सुनाई पड़ा।

सिद्धनाथने पीछे घूमकर अपनी ओर अमीपूर्ण आँखोंसे देखते हुए अनंतानंदजीको देखा। उनकी आँखोंमें वत्सल पिताका औत्सुक्य और प्रेम था। सिद्धनाथके सत्तादर्शक, गौरवपूर्ण चेहरेपर नम्रता और मानका भाव दिखाई पड़ा और उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

'सिद्धनाथ! बेटा! कब तक अस्थिर बना रहेगा?'

'स्वामीजी!' सिद्धनाथकी दृढ़ आवाज मनोवृतिके भारसे काँप रही थी, 'कभी-कभी तो ऐसा होता है कि स्थिरता कभी आवेगी ही नहीं। मेरे जैसे स्वभावको पूर्णता किसी दिन मिलेगी क्या? मुझे लगता है कि योग मेरे लिए अप्राप्य है।'

'अप्राप्य! यह पागल मनुष्योंका बहाना है। हमारी चारित्र्यभावना भिन्न-भिन्न मनुष्योंके लिए भिन्न नहीं है। अंतर केवल इतना ही है कि कुछ लोग सरलतासे उसका साधन कर लेते हैं और दूसरोंको कुछ कठिनता होती है। सृष्टिमें ऐसी कोई भी भावना-शिखर नहीं है जहाँ अभ्यास और वैराग्यसे न पहुँचा जा सके।'

सिद्धनाथने ऊपर देखा।

'आप मुझपर व्यंग कर रहे हैं महाराज? आज दस वर्षोंसे आपके किस कथनका पालन मैंने नहीं किया है? क्षमा कीजियेगा, अभिमान नहीं करता, किंतु आपकी मेरे सम्बन्धमें निर्धारित सभी आशायें...।'

'बहुत कुछ पूर्ण हो गई हैं। मनुष्यत्वकी रूपरेखाकी अपने विचारोंमें जो मैंने कल्पना की थी उसे सिद्ध होते हुए तुम्हारेमें देखा है। तुम्हारा वैराग्य,

तुम्हारा योग देशको दीप्त करेगा किन्तु एक डर मेरे मनमें बना रहता है कि तुम्हारी बुद्धि निर्मल नहीं है। विश्व-नियमोंमें अपने व्यक्तित्वको लय कर देना अभी तक तुमने पूर्णरूपसे नहीं सीखा है।'

'मैं जानता हूँ, स्वामीजी! जानता हूँ। अन्तरमें प्रायः ऐसा दावानल जल उठता है जब कि यह वैराग्य शुष्क, धिक्कारका पात्र मालूम पड़ता है; खोये हुए प्रेमका स्मरण, दबाये हुए वैरका पागलपन मनको व्याकुल कर देता है, आपकी दी हुई शक्तिमें राक्षसी स्फुरण स्फुरित होता है।'

'इसीसे कर्त्तव्योंको वैराग्य-बुद्धिसे देखनेके बदले अपनी विकार-पूर्ण आँखों से देखते हो।' स्वामीने समझाया।

सिद्धनाथ यह सुनकर नीचे देखने लगा।

'इस प्रकार चलोगे तो किसी भी दिन हम लोगोंका प्रयास चौपट हो जायगा। जगतके नेताकी दृष्टि सर्वग्राही, निर्मल होनी चाहिये।'

'मुझे नेता होनेकी आशा नहीं है—मुझे नेता होना भी नहीं है।' सिद्धनाथ ने कहा।

'तू होगा—तू है। नेता बनना न बनना किसीके हाथकी बात नहीं है। जितने अंशोंमें तेरेमें देश और समयके गुण खिलेंगे उतने अंशमें तेरा नेता बनना निश्चित है। जिस परिस्थितिमें तेरा जन्म हुआ उस समयके, सृष्टिकी उत्क्रान्तिकी सहायता करनेवाले, जीवित लक्षण तेरेमें प्रकट होंगे, उससे तू नेता बनेगा—उनके पूर्ण हो जाने पर तू देव बन जायगा।

'मेरेमें? शायद ही...' निराशासे सिर हिलाते हुए सिद्धनाथने कहा।

'नहीं, तेरेमें ही है। हमारा दयानन्द तुझसे अधिक बुद्धिशाली है—किन्तु वर्त्तमान समयके योग्य नहीं है। जङ्गलमें जाकर तपश्चर्या करना ही यदि मनुष्य की उत्क्रान्तिके लिए आवश्यक होता तो अवश्य ही वह नेता बनता। लेकिन उसका सच्चा स्थान ईस्वी सन्‌के पूर्वके भारतमें था; इस समय नहीं। इस समय हमें ज्वलन्त, विजयी, मनुष्यत्व—मनुष्यत्व जो आत्मापर विजय प्राप्त कर, बाहरकी सृष्टिको जीत ले—की आवश्यकता है।'

'और आप समझते हैं कि मैं—स्वार्थी, विलासी, अपने वैराग्यका अभि-

मानी—' सिद्धनाथको अपने अवगुणों पर ज्यादा ध्यान था।

'सिद्धनाथ! हाँ, तेरे दोषोंको मैं जानता हूँ—दो हैं—बहुत बड़े हैं; किंतु उनके दूर हो जाने पर तू देव बन जायगा, भारतके लिए तो विशेष रूपसे तेरेमें भारतकी कोमलता, स्नेहार्द्रता है—भूतकालकी तीक्ष्णता है, गम्भीर विचार करनेकी, ऊँची भावनाओं तक पहुँचनेकी बुद्धि है। वर्त्तमान उत्क्रान्तिके लिए आवश्यक दृढ़ता और सत्यता तूने पाई है। तूने ऐसी सच्ची कार्यदक्षता, अध्यवसाय, सर्जनशक्ति प्राप्त की है कि जिसके अभावसे ही भारत दरिद्र हो गया है। आधुनिक इतिहासकी महामंत्र रूपी स्वतंत्रता तेरेमें स्वभावसे ही विद्यमान है।'

'स्वामीजी! बहुत हुआ। आपने तो प्रशंसा कर करके मुझे बिगाड़ दिया।'

'नहीं, प्रशंसा करनेका अर्थ उत्कृष्ट बनना सिखाना है?'

'किंतु मेरे दोषोंको दूर करनेका उपाय क्या है?'

'मार्ग बताऊँ? तेरे जैसेके लिए तो सरल है।'

'क्या?'

'बिलकुल स्वाभाविक बात। विवाह कर ले।'

'विवाह!' चौंककर सिद्धनाथने पूछा।

'हाँ! तेरेमें आर्द्रता है—शुष्कता नहीं आवेग। दबाई हुई आर्द्रता ठीक नहीं।'

'कैसे?'

'सब पूर्णता अकेले प्राप्त की जा सकती है किंतु इस संबंधमें नहीं। उत्क्रान्तिकी पूर्णता बिना सहानुभूतिके नहीं मिल सकती और व्यक्तियोंका सहजीवन यह उत्क्रान्तिका आधार है। ऋषिगण सभी विवाह करते थे, ढोंगी [illegible] स्त्रीको घरसे निकालकर अपूर्णताके द्वारको खोल देते हैं।'

'आप जानते हैं कि यह विषय मुझे अधिक पसंद नहीं है।'

'पसंद-नापसंद यह भ्रमणा है। उत्क्रान्तिसे मनुष्यको आगे बढ़ाना है; एक सिद्धनाथका अनेक बनाना है।'

'तब किससे कहिये विवाह कर लूँ।' कुछ चिढ़कर कटाक्षमय आवाजमें

सिद्धनाथ बोला।

'योग्य लड़की मिलनेसे अवश्य बतलाऊँगा। सभी लड़कियाँ योग्य नहीं होतीं। उनमें कोमलता, निराधारताकी कमी होती है। वे तेरी अपूर्णता पूर्ण करने योग्य नहीं हैं; नहीं तो –'

'नहीं तो मैं विवाह कर लेता? स्वामीजी! क्षमा कीजिये, इस सम्बन्धमें मेरा विचार बिलकुल ही भिन्न है।'

'मुझे खबर है क्योंकि तू पूर्ण योगी नहीं है। अच्छा अब तेरे दूसरे दोषपर आता हूँ। दोनों दोष परस्पर सम्बन्धी हैं।'

'दूसरा कौन?'

'तेरेमें करुणा नहीं है। तू सफलतासे शिक्षा पा गया, इससे दूसरे भाग्यहीन व्यक्तियोंकी ओर दयासे नहीं देखता बल्कि तू अपनी जातिको भिन्न मानकर अधमके प्रति जैसी चाहिये वैसी समदृष्टि नहीं रख सकता।'

'स्वामीजी! करुणा नही आती, लानेका सतत प्रयत्न करता हूँ...।'

'नहीं आती क्योंकि तेरी निर्धारित योजनायें अभी तक बिलकुल नष्ट नहीं हो पाई हैं। विश्व-नियमके प्रबल प्रवाहके सामने तू तुच्छ है, इसका ज्ञान अभी तुझे नहीं हुआ है। उस प्राबल्यमें जितना तेरा बल मिल जाता है उतना ही तेरा बल है, बाकी सब निर्बलता है।'

'आपका मतलब यदि मेरे शत्रुओंसे हो तो महाराज, उन्हें मैं कैसे क्षमा कर सकता हूँ?

'तू क्षमा करनेवाला है कौन? तू प्रतिशोध लेने जायगा—कर्मफल हेतु बनेगा—तो परिणाममें तू स्वयं ही दुःखी होगा। यदि तेरे शत्रुओंने सचमुच अपराध किया होगा तो वे अवश्य उसका फल भोगेंगे। पाप और उसका प्रतिफल भिन्न है ही नहीं। दोनोंके बीचमें समय चाहे जितना व्यतीत हो जाय फिर भी वे दोनों एक ही रहेंगे।'

'कैसे?'

'देखो सिद्धनाथ! जिस मनुष्यने गुणवंतीको पीड़ित किया उसका शुष्क हृदय ही उसकी शिक्षा है, और उस दुःखसे तेरा उत्कर्ष हुआ यही

उसकी निकृष्टता है। तेरी प्रियतमाको दुःख देनेवाला जीवित नरकमें होगा; तूने उसके वियोगसे निर्मलता प्राप्त कर मनुष्यत्वका सच्चा रहस्य सीखा। प्रतिशोध लेना कहाँ रहा? पाप-पुण्यका प्रतिशोध कभी बाकी रहता ही नहीं।'

सिद्धनाथ सूखी हँसी हँसा, 'स्वामीजी! जो कुछ आपने कहा, मैंने सुन लिया किंतु मनमें उतरता नहीं। इसके विपरीत ऐसा मालूम पड़ता है कि उनसे प्रतिशोध लेना ही विश्व-नियमकी आज्ञा और मेरे कर्तव्यका प्रथम चरण है। अपराधीको क्षमा करना, निरपराधीका दलन करनेके समान है। इसीसे आपसे एक प्रार्थना है।'

'क्या?' अनंतानंदने हँसकर पूछा।

'अमरानंद अब क्रुद्ध हुए बिना रहेगा नहीं, बम्बई जाकर वह रघुभाईसे मिलेगा और दोनों मिलकर कोई तूफान खड़ा करेंगे। वहाँ जानेकी मेरी इच्छा हो रही है, इसी बहाने मैं अपनी प्रतिज्ञा भी पूर्ण कर आऊँगा।

'सिद्धनाथ! तू मूर्ख है। अच्छी बात है! बिना अनुभव तू सीखेगा नहीं। जब अनुभवका स्वाद चखेगा तभी पता चलेगा कि अपने किये हुए विचार व्यर्थ हैं।'

'महाराज! भले ही निष्फल हो जाऊँ किंतु मनमें सञ्चित अन्तिम वासना पूरी कर अपनी पूर्णताका मार्ग सरल बना लूँगा।'

'ठीक! किंतु अमरानंद वहाँ तुझे पहचान ले तब?'

'जी नहीं! बम्बईमें पैर रखते ही सिद्धनाथ साधु अन्तर्ध्यान हो जायगा और जगत पुनः प्रकट हो जायगा जिससे उसे कोई पहचान नहीं सकेगा।'

'अच्छी बात है, जा! लेकिन ध्यान रखना अमरानंद एक कुशल और चालाक व्यक्ति है, मेरे पत्रोंको सुरक्षित रखना भी सरल नहीं है।' अनंतानंदको अन्तमें सिद्धनाथके हठ पर आज्ञा देनी ही पड़ी।

'तब आज्ञा दीजिये किंतु—' जरा रुककर सिद्धनाथने कहा।

'क्या? कुछ पूछना बाकी रह गया क्या? पूछ ले!'

'क्षमा कीजियेगा?'

'क्षमा? सिद्धनाथ! तेरे लिए सब छूट है।'

'महाराज ! धृष्टता क्षमा कीजियेगा, आप मुझसे तो विवाह करनेके लिए कह रहे हैं तब आप अविवाहित ही क्यों रहे ?'

'मैं ?' और ऐसा लगा मानो स्वामीजीके चेहरेका तेज बढ़ रहा हो, 'मेरे संयोग भिन्न थे। मैं बाल्यावस्थामें ही संन्यासी हो गया था—मेरे योग्य सहचरी जीवनमें मुझे मिली ही नहीं; साथ ही मेरी भावना भी भिन्न है। किसी समय का नहीं—किसी देश या समाजका नहीं बल्कि संपूर्ण विशाल मनुष्यत्वके सब लक्षणोंको अपनाकर—अपने जीवनमेंसे एक-एक स्वर निकालकर 'निस्रगुण्य' बननेकी बड़ी आशा रखकर, बहुत कुछ मैं विजयी हुआ हूँ।'

'तब क्यों एक देशके लिए इतना परेशान हो रहे हैं ? आपने पूर्णता प्राप्त की फिर हमें क्यों अपने देशके लिए जीवन अर्पण कर देनेकी शिक्षा दे रहे हैं ?'

'सृष्टिकी अपनी प्रगतिमें किसी देशका सन्देश विशेष उपयोगी हो जाता है। इस समय वह भारतके मंत्रकी बाट देख रहा है। नवीन संस्कृति उत्पन्न करनेके पूर्व भारतकी दीनता दूर होनी चाहिये। इसे दूर करना सच्चे मनुष्यत्व का प्रथम प्रयास होगा। इतना ज्ञान होनेके लिए, वह प्रयास किस प्रकार सरल बने यह ढूँढ़ निकालनेमें मुझे कठिन परिश्रम करना पड़ा। अब मार्गका ज्ञान हो गया है किन्तु उसके अनुसार चलना मेरे लिए दुस्तर है। मैं वृद्ध हो चला हूँ। दस हजार दृढ़ सङ्कल्पवान वीर नर-नारियोंको हम अपने मंत्रसे जिस समय प्रेरित कर सकेंगे, उसी समग्र भारत-भूमि के उद्धारका प्रारम्भ हो जायगा। मेरा कर्त्तव्य दीप-गृह (Light house) में रोशनी जलाकर दिशा दिखाना था वह मैंने कर दिया। तुम्हारा कर्त्तव्य अब नौका चलाकर समुद्र पार जाना है।' कहकर गुरु और शिष्य दोनों मठमें वापस आये।

सिद्धनाथ अपने कमरेमें गया और रोशनी जलाकर एक कोनेमें पड़ी हुई एक छोटी सी पेटीमेंसे दृढ़तापूर्वक जलाये हुए कागजकी राख, कुछ मुलायम काले बाल निकाल कर मेजपर उसने रखा। कुछ देर तक इन वस्तुओंकी तरफ गौरसे देखता रहा, उसके दाँत पर दाँत बैठ गये। इन वस्तुओंको उठाकर उसने अपने वक्षःस्थलसे लगा लिया; अपना सिर गौरवसे ऊँचा किया। उसकी आँखें दो स्थिर तारोंके समान चमक रही थीं। वह बड़बड़ाया, 'जगत बालक गया,

किशोर प्रणयी भी जाता रहा; अभ्यासी शिष्य सिद्धनाथ बना। अब जगत विनाशक आवेगा। अभी कितने अवतार बाकी हैं?'

दूसरे दिन रणुभा, चम्पा, दयानन्द और सिद्धनाथ - अब जगन ही कहूँगा— एकत्र हुए। चम्पाने हिसाबका काम लिया, दयानन्दने उत्तर विभागमें जाकर वहाँके वातावरण पर देख-रेख रखनेका भार लिया क्योंकि लक्ष्मणपुरमें कुछ उपद्रव होनेकी आशंका थी। रणुभा अध्यक्ष रूपसे रत्नगढ़में ही रहे।

'किन्तु सबसे कठिन काम सिद्धनाथको लेना पड़ेगा।' दयानन्दने कहा।

निर्दोष रणुभाने पूछा, 'क्या?'

'क्या कल देखा नहीं? अमरानन्दको अपना कट्टर दुश्मन समझ लो। यह अब रघुभाईसे मिलकर हमारे किये-धरेको धूलमें मिलानेका प्रयत्न करेगा। यदि रघुभाई उसके साथ मिलकर सेक्रेटेरियटमें प्रयत्न करेगा तो रत्नगढ़ हाथसे निकला हुआ समझो, उस समय हमारा सब परिश्रम निरर्थक हो जायगा और हमें कहीं जानेके लिए स्थान भी नहीं रहेगा।' जगतने समझाया।

'फिर वही बात?' दयानन्दने पूछा।

'जी हाँ. आपको खबर नहीं है। बीचमें रघुभाईने अपना मण्डल ब्रिटिश सत्ता द्वारा तुड़वानेका प्रयत्न किया था, ऐसा पता चला था। यह तो रेसीडेण्ट एवं पोलिटिकल सेक्रेटरीसे मिलकर स्वामीजीने उनकी शंका समाधान कर दी जिससे अपने निर्दोष प्रयत्न नष्ट होनेसे बच गये।'

'तब तो यह बात भी ध्यानमें रखनेकी है, इसलिए जैसा स्वामीजी कह रहे थे, यह काम सिद्धनाथ ही कर सकेंगे' चम्पा बोली।

'अवश्य, किन्तु सिद्धनाथ! वे कागज आपके पास हैं?' रणुभाने पूछा।

'कौन?' दयानंदने पूछा।

'स्वामीजीके जन्माक्षर आदि सिद्धनाथके पास हैं, जिन्हें प्राप्त करनेके लिए रघुभाई प्रयत्न किया करता है। यदि वे उसे मिल जायँ तब तो सब कुछ चौपट ही हो जाय।'

'उन्हें तब जला क्यों नहीं डालते?'

'जी नहीं, स्वामीजीकी ऐसी आज्ञा है कि वीरसेनको बड़े होने पर उसे दे दिया जाय।'

'अच्छा ! तब सिद्धनाथ उन्हें अपने साथ ले जायगा ?'

'हाँ, यहाँ किसके पास रहेगा ?'

'कब जायँगे ?'

'कल, जितना जल्दी जाऊँ उतना अच्छा। अमरानन्द तो आज रातमें जा रहे हैं।' सिद्धनाथ बोले।

'ठीक, ऐसा ही करो' दयानंदने उठते हुए कहा। 'सिद्धनाथ ! तुम संन्यासी हो जाओ, अवश्य ही तुम स्वामीजी का नाम रखोगे।'

सिद्धनाथका चेहरा अधिक गम्भीर बन गया। जरा तिरस्कारपूर्ण आवाजमें उसने कहा—'बन तो जाऊँ ! किन्तु होता कहाँ है ? अभी तो आपका पैर धोने जितना भी वैराग्य मेरेमें नहीं आया है।'

'सिद्धनाथ ! हँसीकी बात नहीं है किन्तु यदि हमारा मण्डल विजयी हुआ तब उसका सब श्रेय स्वामीजी एवं तुम्हें होगा।'

सिद्धनाथने जरा फीकी हँसीसे कहा—'अभिमानीको अधिक अहंभावकी शिक्षा क्यों दे रहे हैं ?'

५७

प्रातःकालका रमणीय समय था। एक बाला—भारतीय गणनाके अनुसार एक स्त्री—फूल चुन-चुनकर आँचलमें रख रही थी। वाटिका छोटी किन्तु हरी-भरी और सुन्दर थी। जगह-जगहपर छोटे-बड़े वृक्षोंपर अगणित पुष्प, घटा रूपी नील आकाशमें रंग-बिरंगे तारोंके समान चमक रहे थे। समुद्रका शीतल मन्द पवन डालियोंको हिला रहा था एवं बालाके आँचलको उड़ा रहा था।

उसका चेहरा मोहक दिखाई पड़ रहा था। रूपमें कोई विचित्रता नहीं थी किंतु बड़ी-बड़ी निर्दोष आँखें, तोतेकी ठोरके समान नाक एवं मानो आकांक्षासे खुले रह जाते हों ऐसे ओंठ, ये एक प्रकारका ऐसा भाव अङ्कित कर देते थे कि फिरसे देखनेकी इच्छा होती थी। उसका शरीर लम्बा, कुछ पतला एवं सुगठित था। ऊँचे वृक्ष परसे पुष्प लेनेके लिए जब उसके सुकोमल हाथ ऊपर उठते तब 'ललिता' शब्दका प्रयोग ऐसी ही बालाके सम्बन्धमें किया जा सकता है;

ऐसा विचार सहज देखनेवालेके मनमें आये बिना नहीं रह सकता। उसका अंतर मुखसे छलक रहा था। कॉलेजमें आज छुट्टी थी जिससे पढ़नेकी आवश्यकता नहीं थी; जातिमें कन्याओंको बड़ी बड़ी उम्र तक अविवाहित रखनेका रिवाज था जिससे उसे सासका भय अथवा पतिकी धमकीका भी डर नहीं था। पिताको भी पुत्रीकी अधिक परवाह न थी जिससे यह भी डर न था कि वे उसकी बाट जोहते हुए बैठे होंगे। उसके मतसे सृष्टि सभी पुष्पपूर्ण वाटिका थी; एक बड़ा अनन्त, रसमय काव्य था।

उसका आँचल पुष्पसे भर गया था जिससे उसने बँगला लौटनेका विचार किया। एक ऊँची डालपरके एक खिले हुए पुष्पपर उसकी दृष्टि पड़ी जिसे तोड़कर ही वापस लौटना उसने तय किया। पैरके अँगूठेके बल खड़ी होकर फूल तोड़नेके लिए उसने हाथ ऊँचा किया, पत्ती पकड़कर डाल नीची करके उसने फूल तोड़ा। पकड़ी हुई डाल हाथसे छूटते ही कमानके समान ऊपर पहुँच गई। डालके नुकीले काँटोंमें बालाकी धोतीका छोर फँस गया। एक हाथमें फूलवाले अञ्चलका दूसरा छोर था, दूसरा हाथ काँटावाली डाल तक पहुँचना असम्भव था। धोतीका छोर काँटामें फँस जानेसे उसके बालोंकी सुन्दरता एवं रमणीय उत्तर शरीरकी अपूर्वता, घनघोर घटाके बिखर जानेपर कौमुदी जैसे चमक उठती है वैसे ही चमक उठी। रमणी संकोच और दुबिधामें पड़ गई, फूल जाने दे कि धोती खींचकर उसे फट जाने दे अथवा किसीको बुलाकर धोतीको काँटोंमें से छुड़वा ले? उसकी कठिनाई वास्तवमें संस्कृत कवियोंकी रसीली लेखनीको सुशोभित करनेवाली जैसी थी।

उसी समय किसीने कम्पाउण्डके दरवाजेमें प्रवेश कर उसकी किंकर्तव्य-विमूढ़ताको और भी बढ़ा दिया। यदि कोई माली होता; या वृद्ध, कुरूप पुरुष होता तब कोई चिंता नहीं थी। बीस वर्षकी नवयुवतीको जब दो दुबिधाओंके कारण सिर और कन्धेपर बिना धोतीके खड़ी रहना पड़े, और सामनेसे कोई स्वरूपवान, स्वच्छ वस्त्रोंसे सुसज्जित युवक आये उस समय उसके मनमें कैसे भाव उत्पन्न होंगे, उसकी क्या स्थिति होगी यह पाठक बिना लिखे ही समझ जायँगे। बाला घबड़ा गई, एक अन्तिम प्रयत्न डाल पकड़नेके लिए किया। पर पैर फिसल गया और फिसलते ही पैरमें एक काँटा चुभ गया। काँटा प्रणयीका

पुराण-कालसे सहायक रहा है किंतु यह तो वास्तविक काँटा था और बाला प्रणयी भी नहीं थी; इसीसे वेदनासे कराहती हुई उसने सिर झुका लिया।

आगन्तुक स्वस्थ, लम्बा और गठीले बदनका था। वह ऐसे गौरव एवं आत्मनिष्ठासे बँगलेकी ओर जा रहा था मानो सृष्टिका साम्राज्य आज ही खरीद कर जेबमें रख लिया हो। चीख सुनते ही घूमकर उसने बालाको देखा। बालाके लज्जाकी सीमा न रही, उसके मुँहपर लाली दौड़ गई, वह नीचेसे सिर उठाकर ऊपर देख तक न सकी। आगन्तुक दो कदममें उसके पास पहुँच गया और तुरन्त डाल झुकाकर उसने उसका कपड़ा छुड़ा दिया। बालाने अँग्रेज़ीमें कहा—'धन्यवाद!' आगन्तुकने उत्तर दिया—'नहीं, इसमें धन्यवाद कैसा!' उसकी आवाज सुनकर बालाने ऊपर देखा। आगन्तुकका स्वर भाव-हीन, कठोर और शांत था। कोई दूसरा व्यक्ति अपने नौकरसे भी बात करते समय शायद उससे अधिक मीठे स्वरसे बोलता होगा; उसके चेहरेपर, उसकी आँखोंमें कपड़ा काँटोंसे छुड़ानेके पश्चात् तनिक भी अन्तर नहीं आया था। बालाने सोचा कि इतनी निरपेक्षता और अरसिकतासे तो शायद डाक्टर भी रोगीका निरीक्षण न करता होगा।

'रघुभाई यहीं रहते हैं?' आगन्तुकने पूछा। बालाने अधिक बारीकीसे देखा। नवागन्तुक ३० वर्षका लगता था। उसका वस्त्र सादा किंतु शानदार था। उसकी मुखमुद्रा सदा आज्ञा देनेके लिए ही गढ़ी गई हो ऐसी स्वस्थ तथा तेजस्वी थी। उसके मुखपरकी कठोरतासे बालाको दुःख हुआ। संसारकी अनाकर्षक वस्तुएँ उसे अच्छी नहीं लगती थीं।

'जी हाँ, भीतर हैं चलिये!' बालाका कंठ-स्वर मीठा और धीमा था, 'आप कौन—क्या पहली बार आये हैं?'

आगंतुकने बालाकी ओर देखा, दृष्टिमें तिरस्कार और कर्कशता थी, 'हाँ!'

इस व्यवहारसे बालाको अपना अपमान-सा लगा। उसकी धारणा थी कि शिक्षित पुरुषोंमें स्त्रियोंके सम्मानका ज्ञान अधिक होता है; किंतु आज यह बात असत्य मालूम पड़ी।

आगंतुकने पूछा—'आप तो रघुभाईकी पुत्री हैं न?'

'जी हाँ !

'आपका नाम रमा है, क्यों ?'

'जी हाँ, लेकिन आपको कैसे मालूम हुआ !'

'जिस समय आपका नाम रमा रखा गया उस समय मैं उपस्थित था।' जरा हँसते हुए आगंतुकने कहा। हास्य सूखा 'ह—ह' से अधिक सरस नहीं था।

'ऐसा ? तब भी मैं क्यों नहीं पहचान सकी ? आपका नाम ?'

'जगत।'

'कौन ? गुणवंती चाचीके जगत किशोर ? ओहो, माँ बराबर बात किया करती थीं किंतु आपको मैंने बहुत दिनों बाद देखा।' रमाका हृदय भर आया। उसके कोमल हृदयको रिझानेके लिए माँ या कोई भाई-बहन नहीं था और पिता था रस-हीन। बाल्यावस्थासे कमलाकी वार्त्ता द्वारा सृजन किये हुए उसके मनोराज्यमें जगतका स्थान बहुत बड़ा था। आज उसे देखकर रमाका अंतःकरण हर्षित हुआ; भ्राता-विहीन बहनको भाई मिलनेके समान उसे आनंद हुआ।

पर जगतका उत्तर ठंढा—बरफ जैसा ठंढा करनेवाला—शांत कुछ कटाक्ष-मय था—'कमला चाचीको मरे हुए तो बहुत दिन हो गये ?'

रमाको पुनः दुःख हुआ, उसकी स्नेहार्द्रताको गहरा धक्का लगा। इतनी निष्ठुरता !

'ठहरिये, पिताजीको सूचना दे दूँ !' कहकर रमा भीतर चली गई।

जगत जिस उदासीनतासे रमाको देख रहा था, उसी भाँति वह वृक्षको देखने लगा।

५८

रघुभाई ४० वर्ष राजनीतिज्ञ रहे, इस समय ६० वर्षकी वयमें वृद्ध गौरवकी मूर्त्ति लगते थे। वृद्धावस्थाने बाल सफेद कर दिया था और चेहरेपर विचारकी रेखायें डाल दी थीं। यदि किसीने उसकी आँखमें चमकने वाली शठता और अधरों पर कभी-कभी दिखाई दे जाने वाली नीचता ध्यानपूर्वक न देखी हो तो भले ही उसे सज्जन एवं परोपकारी समझ ले। उसका चेहरा

प्रेक्षकके मनमें मान तथा विश्वासका अंकुर उत्पन्न करने वाला था। साधारण बाहरी आने-जाने वालोंको वह अनुकम्पाका अवतार तथा रत्नगढ़के स्वर्गीय राजाका प्रतिष्ठित दीवान-सा लगता था। रमाकी स्वतंत्रताके पक्षपाती तथा अधिक वय तक उसे कुँवारी रखनेसे सन्तुष्ट भी थे; पुराने विचारवाले सदैव प्रातःकाल उसे पूजापर बैठकर बात करते हुए और हाथ गौमुखीमें देखकर उसे पूज्य मानते, सरकारी नौकरीवाले मध्यम श्रेणीके कार्यकर्त्ता उसका आदर करते क्योंकि सभी साहबोंका उसके साथ व्यवहार बहुत अच्छा था। काँग्रेसके नेता उससे पूछकर काम करते क्योंकि प्रायः संस्थाको वह अच्छी रकम देता और कभी-कभी प्रेसीडेंसी एसोसियेशनको पार्टी देकर उसमें भी उसने अपना स्थान बना लिया था। बम्बईमें वह प्रतिष्ठाका अवतार था, उसके नामसे प्रतिष्ठाका आवरण अच्छे-अच्छे लोगों पर चढ़ जाता। वास्तविकताकी अपेक्षा टिप-टापमें ही उसकी महत्ता थी। उसका जीवन ही बाह्य आडम्बरसे परिपूर्ण था।

इस समय वह रुपहले तारसे बने हुए छोटे गद्दीदार झूलेपर बैठा था। पास ही में पानका डब्बा रखा था। कमरेमें जसुभाका एक बड़ा तैलचित्र टँगा हुआ था जिससे लोग समझें कि अवश्य ही रघुभाईने नमकहलाली की होगी। दूसरा चित्र स्वर्गीय रानाडेका था। इसका उपयोग किसी नीति-मान अभ्यागतके मनपर उचित प्रभाव डालनेके लिए होता था। सुन्दर किंतु सादे फर्नीचर यथास्थान ठीकसे सजाकर रखे हुए थे जिनपर उसके घरकी 'प्रतिष्ठा' स्पष्टाक्षर में लिखी हुई दिखाई पड़ रही थी।

'पिताजी! बाहर जगतकिशोर आये हैं।'

'कौन?' रघुभाईकी विचारमाला टूट गई। रमा समझ नहीं सकी कि उसका बुद्धिमान पिता इतना घबड़ा क्यों उठा?

'गुणवंती चाचीके जगतकिशोर बाहर खड़े हैं!'

'कहाँसे आया? क्या काम है?'

'पता नहीं।' रमाको अधिक विस्मय हुआ। स्वभावानुसार उसके मस्तक पर बल पड़ गया। 'बुलाऊँ?'

'हाँ!'

रघुभाई गरीब सम्बन्धियोंसे परेशान था। किसी एककी सिफारिश, तो

दूसरेकी नौकरीके लिए पत्र लिखते-लिखते थक गया था। इधर-उधर मारा-मारा फिरनेवाला गुणवंतीका यह लड़का कुछ माँगनेके लिए आया होगा ? दुनिया कैसी स्वार्थी है ? अपनेमें कुछ पानी नहीं और दूसरेके बल कूदनेका प्रयत्न करे ! सिफारिश करनेवाला बेचारा क्या करे ? इस प्रकार विचार करते हुए उसकी कल्पनाशक्तिने जगतको एक छोटे, गरीब लड़केके रूपमें चित्रित कर डाला।

रघुभाई आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था, दरवाजेमें जहाँगीरके सदृश शाही दृढ़तासे कदम रखते हुए, भव्यतासे देदीप्यमान पुरुषको उसने देखा। स्वस्थतासे वह आया, शान्तिपूर्वक आसपासमें उसने देखा, और लापरवाहीसे प्रणाम कर तिरस्कारपूर्ण आवाजमें रघुभाईका हाल-चाल पूछा। यह तो गुणवंती का जगत है-सोचकर रघुभाई जरा शरमिन्दा पड़ गया।

'आओ, बेटा ! आओ, बहुत दिनों बाद ?' कपटतासे हँसते हुए रघुभाईने कहा, 'तू इतने दिनोंसे कहाँ था ? बच्चूसे मैं बराबर पूछता था। तुम अब क्या करते हो ?' रघुभाईने तू से तुम कर दिया।

रघुभाईको मानो देखता ही न हो इस प्रकार जगतने कहा—'सचमुच ? मैं तो बङ्गाल गया था, इस समय तो यहीं हूँ। मैंने सुना कि आप यहीं हैं, मेरे पुराने स्नेही हैं, इससे मिलनेके लिए चला आया। आप यहाँ 'रिटायर्ड' जीवन व्यतीत कर रहे हैं, क्यों ?'

रघुभाईने सिर उठाकर देखा कि कहीं इस लड़केकी आवाजमें कटूक्ति तो नहीं है ? किंतु कुछ समझाई नहीं पड़ा; जगत उसकी ओर गम्भीरतासे कुछ अदृष्ट तिरस्कारसे देख रहा था।

'हाँ बेटा ! स्नेही क्यों नहीं हूँ ?' नीलकंठरायका मारा-मारा फिरनेवाला पूर्वके जगतके सम्बन्धमें आये हुए विचारोंको भुलाकर वर्तमान जगतके बहुमूल्य वस्त्र एवं सोनेकी चेनका अन्दाज लगाता हुआ रघुभाई बोला—'आज जो कुछ मैं हूँ उसका श्रेय तुम्हारे पिताको ही तो है !'

'जी हाँ और मैं भी जो कुछ आज हूँ उसका श्रेय भी आपको ही है। पिताजीकी मृत्युके पश्चात् मेरी एवं माँकी रक्षाका भार आपने ही लिया था।' कण्ठ-स्वर शांत, कठोर, गम्भीर था। रघुभाईको सब प्रसङ्ग याद आ गया, मनमें

काँप उठा, पर बाहरसे शांत रहा। जगतकी तीक्ष्ण आँखें उसे स्थिरतासे देख रही थीं।

'इससे क्या होता है? रमा! तू पहचानती है? जगतने तुझे बहुत खिलाया है।'

बाटिकामें घटी हुई घटनाको याद कर रमा नीचे देखती हुई बोली—'मुझे याद नहीं है।' रमाकी ओर शान्तिसे देखते हुए जगतने पूछा—'अपने पुत्रीका विवाह कहाँ किया है?' रमाने ऊपर देखा कि जगत अपमान तो नहीं कर रहा है? उसकी आवाजसे कुछ ऐसा ही बोध हो रहा था। रघुभाईने हँसकर कहा—'नहीं जी, अभी तो पढ़ती है। दो-एक जगह विवाहकी बात चल रही है किंतु वर अच्छा नहीं है। होगा, अभी कौन बहुत बड़ी हो गई है? बेटा! अब यहाँ क्या करनेका विचार है? हम बुड्ढोंके लिए तो यह बात सर्व-प्रथम है। कुछ काम या नौकरी?'

'काम करनेकी मुझे आवश्यकता ही क्या? मुझे अपना हिसाब करना है, बस।'

'हूँ, कर्ज लेकर बङ्गाल गये होगे!'

'जी नहीं, मुझे देना नहीं है। अपने सम्बन्धियोंसे मुझे बहुत कुछ लेना है; वही वसूल करनेके लिए आया हूँ।'

रघुभाईको इस आवाजमें कुछ अनोखी भनक लगी, उसका अन्तःकरण चोर था जिससे वह कुछ चिन्ताकुल हो उठा।

'अच्छा, तब आज्ञा दीजिये।' कहते हुए जगत उठ खड़ा हुआ।

'कहाँ रहते हो?'

'चौपाटी पर......बिल्डिङ्गस में।'

'फिर आना, यह घर तुम्हारा ही है।'

'जी हाँ, पहलेसे ही इस घरपर मेरा अधिकार है।' जगतने रघुभाईसे 'शेकहैण्ड' किया।

'रमा! जा, जगतभाईको पहुँचा आ।' कहकर रघुभाई पुनः झूलेपर बैठ गया। रमाके सुन्दर ललाटपर सिकुड़न पड़ गई। उसका पिता इतना घबड़ाया हुआ क्यों था? इस नवागन्तुकमें इतनी कठोरता तथा भावहीन शान्ति क्यों

है ? वह बाहर आई। 'आप ग्रैजुएट हैं ?' जरा डरते हुए रमा ने पूछा।

जगतकी कठोर आँखें उसकी ओर घूमीं—'मैं ? नहीं। मैं तो बीचमें ही अटका हुआ हूँ। अच्छा, चलता हूँ।'

रमाने हाथ उठाया, जगत उसके अभिवादनको स्वीकार कर आगे बढ़ा।

उसके अभिवादनमें जरा भी स्नेहका भाव न था, ऐसा लगा मानो उसका हृदय लोहखण्डका बना हुआ हो।

जगत चला गया। रमा उसके सुदृढ़, सुगठित शरीरकी आकृति देखती रह गई। उसमें कोई अद्भुत आकर्षण था! बङ्गलेमें लौटनेपर उसे कुछ विचित्रता का अनुभव हुआ।

इतनेमें रघुभाई बोल उठा—'इस लड़केको अपना बनाना चाहिये। वह टेलीफोन पर गया और किसीसे उसने कहा कि हिम्मतलालके साथ विवाह की बातचीत अभी बंद रखना, अभी जल्दी नहीं है।

५६

जगत कमरेमें बैठा था। उसके बलिष्ठ सुगठित शरीरके अपूर्व गठनकी प्रशंसाकी जाय अथवा चेहरेपर और आँखोंमें सुशोभित बुद्धिकी प्रशंसाकी जाय यह बात समझमें नहीं आती। उसके सोनेका कमरा छोटा था, वहाँ सोनेके लिए एक बड़ी, मोटा दरी और बैठनके लिए दो-तीन साधारण कुर्सियाँ मात्र थीं। उसका जीवन एक अनंत कार्य-चक्र था। जो इच्छायें, जो विचार और जो-जो प्रसङ्ग संसारके अन्य मनुष्योंको आकृष्ट करते हैं उनके लिए जगतके जीवनमें कोई स्थान नहीं था। अपनी विशाल बुद्धि द्वारा प्रदर्शित मार्गपर वह निर्विघ्न चलता चला जा रहा था।

उसके सामने कई पत्र पड़े हुए थे। उसमेंसे एक उसने खोला, यह अनंतानंदका था। उसमें बहुत-सी बातें लिखीं थीं, कुछ दिन पूर्व उनके कागजोंका बक्स किसीने तोड़ डाला था, जिससे स्वामीजीने जगतको सावधान रहनेके लिए सूचित किया था। जगतने सोचा कि रघुभाईके अतिरिक्त इन कागजोंके सम्बन्ध में कोई जानता नहीं जिसके प्राप्त करनेके लिए यह उसका तीसरा या चौथा प्रयत्न था। जब तक रघुभाईको पता नहीं चलता कि मैं अनंतानंदका शिष्य

हूँ तब तक मैं बिलकुल सुरक्षित हूँ।

दूसरा समाचार गम्भीर था। स्वामीजी पत्र दूसरे पतेसे लिखते थे जहाँसे वह जगतके पास आया करता था। यह पता एक संन्यासीको मालूम हो गया था। स्वामीजीने जगतको अमरानन्दकी खोजमें रहनेके लिए लिखा था। जगतने उसका पता तो लगा लिया था कि लक्ष्मणपुर स्टेटके एजेण्टके यहाँ वह छद्मवेशमें रहता है किंतु वह अभी तक कुछ कर नहीं सका था।

जगतने दूसरा पत्र खोला। यह रघुभाईका भोजनके लिए निमन्त्रण था। जगत मुस्कुराया! रघुभाई उसके हाथमें फँसता जा रहा था, फिर विचार आया, दस वर्ष अनन्तानंदके पास रहकर शिक्षा ग्रहण की, काम, क्रोध सबका नाश किया, बुद्धिको विश्व-नियममें लय कर दिया, उनकी दिखाई हुई दिशामें ही कर्त्तव्य करते हुए बढ़नेका स्वभाव पड़ गया; अब प्रतिशोध लेना क्या यह अधःपतन नहीं है? स्वामीजीके शब्द याद आ गये, तुरन्त गुणवंती भी स्मरण आई, रघुभाईकी करनी याद आई। नहीं नहीं, यह भी विश्व-नियम ही है। ऐसे मनुष्य-पिशाचोंका संहार करनेमें ही बुद्धिकी सार्थकता है, ऐसा उसे प्रतीत हुआ।

संध्याके छः बजे वह रघुभाईके यहाँ गया। रघुभाईने स्नेहपूर्वक उसका स्वागत किया। उसके सत्कारमें—रघुभाईके प्रत्येक शब्दमें—रमाके प्रति उसका प्रेम छलछला रहा था। ऐसे पिताको इतना प्रेमका अनुभव करते हुए देखकर उसे आश्चर्य हुआ। किंतु उसे कहाँ पता था कि उसकी उपस्थितिमें ही रघुभाई ऐसा भाव प्रदर्शित करता था कि रमा मानो उसकी श्वाँस एवं प्राण हो। रमाको बैठाकर वह पूजा करनेके लिए चला गया।

इधर-उधरकी बातें कर रमा उसका सत्कार करने लगी, इस समय उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। अतिथि जो ग्रैजुएट भी नहीं था, प्रत्येक विषयका अभ्यासी निकला। उसके विचार विशाल एवं तत्कालीन थे; जिन्हें वह आकर्षक भाषामें प्रदर्शित करता था। रमा अच्छी पढ़ी-लिखी थी जिससे 'प्लुटार्क' के समान जगत—यद्यपि उसकी कठोरता निन्द्य थी तो भी—उसे मोहक लगा और ध्यान देकर वह उसका कथन सुनने लगी। थोड़ी देर बाद दूसरे अतिथि

आये प्रो० गांधी। मोटा चश्मा, हाथीके समान चौड़ा ललाट और नाटा शरीर वाला, 'लाजिक एवं मॉरल फिलासफी' की प्रत्यक्ष मूर्त्तिके समान आ पहुँचे। उसने छाता रखकर, हाथ मानो गन्दा हो गया हो इस तरह रूमालसे उसे पोंछा और रमासे शेक-हैण्ड किया; जगतसे परिचय हुआ। जगतने उसकी ख्याति सुनी थी जिससे वह उससे तत्वज्ञानकी बातें करने लगा। बिचारा, किताबी कीड़ा, प्रोफेसर, जीवित तत्वज्ञानकी मूर्त्तिके समान अनंतानंदके शिष्यकी बातें सुनकर स्तब्ध रह गया।

'आप तो 'फिलासफर' हैं। सॉरी (दुःख है)! आप बी० ए० नहीं हैं, नहीं तो प्रोफेसर होनेके लिए 'जस्ट फिटेड' (बिलकुल योग्य) हैं। आइये और हमारे कॉलेजकी फिलोसॉफिकल सोसायटी (तत्वज्ञान-मण्डल) में आकर लेक्चर दीजिये। हाँ अवश्य......'

'अभी मेरे लिए भाषणका समय नहीं आया है, आपसे मेरी भला कहाँ बराबरी हो सकती है? आप तो शब्दके राजा हैं—वाचाल, दुर्बोध, संभ्रमपद, भयङ्कर शब्दोंमें संतुष्टि प्राप्त करते हैं, उसीमें आपकी 'फिलासफी' समाप्त हो जाती है। आपके 'कैंट' एवं 'स्पेंसर' महान् तत्ववेत्ता अवश्य थे किंतु उनके अभ्यासियोंसे कहिये कि पहले जिन नियमोंका पालन करना आवश्यक है उनका पालन करें, अपना आचरण ज्ञानमय बनावें; तदुपरान्त पवित्र महात्माओंके वचनामृतको मुँहसे निकालनेका साहस करें। आज २००० वर्षोंका आपके यूरोप और एशियाका तत्वज्ञान क्या है? केवल खोखले व्यर्थके शब्दोंका जाल! अनेकानेक संसारकी भलाईकी चिंतामें स्वार्थी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपके वेदान्ती 'ब्रह्मास्मि' का झूठा, गम्भीर निर्घोष कर पल मात्रके लिए भी ब्रह्म-आचरण पालन करनेका प्रयत्न नहीं करते। केवल श्रवणेन्द्रिय द्वारा सबके मनका रञ्जन करते हैं, स्वयं ठगे जाते हैं और दुनियाको ठगते हैं, आपके ये तत्वज्ञानी या तो मूर्ख होते हैं या पाखण्डी।'

ये शब्द सुनकर प्रोफेसर दिग्मूढ़ हो गया, रमा आँखें फाड़कर देखती रही। जगतके बोलनेकी छटा अनोखी थी, उसका चेहरा, उसकी आँखें चमक उठतीं और श्रोता स्तब्ध हो जाते।

इतनेमें कुछ और अतिथि आ गये। आठ-दस व्यक्ति हुए, लोग विभक्त होकर आपसमें बातें करने लगे। दीपक जल गया और रमा तैयारी करनेके लिए चली गई। जगत एक वकीलके साथ बात कर रहा था; पास ही एक मण्डलमें परिहास चल रहा था। एक शब्दकी भनक जगतके कानमें पड़ी; एकाएक उसका शरीर काँप उठा और वह उस मण्डलके समीप जाकर खड़ा हो गया।

एक गृहस्थको लोग चिढ़ा रहे थे। उसका शरीर सूखा हुआ, विषयी आनंदभोगसे काला, बदसूरत दिखाई पड़ रहा था। उसके नेत्र पीले, ओंठ बराबर सिगरेट पीनेसे काजलके समान काले पड़ गये थे। सिरपर थोड़े बहुत सफेद बाल बच रहे थे। उससे सीधे खड़े भी नहीं रहा जाता था; जब वह बोलता था तब चारो ओर सड़े हुए महुआकी दुर्गन्ध फैल जाती थी। उसके कपड़े मालूम होते थे कि दो वर्षसे उसके शरीरसे अलग नहीं हुए। अपनी बहादुरीपर हँसता हो ऐसा क्षुद्र, अमानुषी हास्य उसके चेहरेसे प्रकट हो रहा था। पहले यह एक धनी सेठ था और रघुभाईका मित्र था। संसारमें भिखारी हो गये मित्रोंको भी रघुभाई स्मरण करते हैं, यह उदाहरण दिखानेके लिए ऐसे ही अवसरोंपर वे उसे बुलाते थे। लोगोंको अरुचिकर लगता फिर भी रघुभाईकी भलमनसाहतके सम्बन्धमें लोगोंमें उच्च भाव उत्पन्न होता।

'मेरी तनमनकी बात!' लचकके साथ वह आदमी बोला।

इन्हीं शब्दोंने जगतका ध्यान खींचा था।

'हाँ! हाँ! करमदास सेठ! वह किस्सा जरा बताओ तो सही!'

'अरे वह बात तो अब बहुत पुरानी हो गई।' करमदास सेठने उत्तर दिया।

'नहींजी सेठ! यह क्या कह रहे हो?' वकील बोले। 'मैंने नहीं सुना है, बताओ तो बात क्या है? वह थी कौन?'

सेठने विषयान्धता और निर्धनतामें स्वमान, गौरव, गृहस्थपन सब कुछ खो दिया था, 'अरे वह तो मेरी घर-वाली थी!'

इस वाक्यपर सब हँस पड़े। सबके लिए सेठ खिलौना था। दूसरोंकी नुक्ताचीनी कर अपना समय व्यतीत करना, इसीको शहरके अच्छे से अच्छे

व्यक्ति अपनी योग्यताका चिन्ह समझते हैं। जितनी बात निर्लज्ज, वीभत्स होती उतना ही उसमें रस आता है। इसे देखते हुए कौन कह सकता है कि हम भारतके प्रथमतम शहरके निवासी होने योग्य हैं?

'नहीं, ऐसा नहीं, क-ख-ग से शुरू करो' प्रोफेसर गांधीने फिलासफी भूलकर कहा।

'मेरी एक स्त्री थी!' जरा हँसकर करमदास बोला।

'हाँ, फिर?'

'तुम्हारी सुधरी हुई, पढ़ी-लिखी, कटी-छँटी, चुनी-चुनाई स्त्री थी; तब...'

करमदासने चारो ओर देखा, रमा कहीं दिखाई नहीं पड़ी जिससे धीरेसे कहनेका साहस किया— 'हमारे श्याम भाई हैं न; उसीने मेरा ब्याह कराया था। हमें तो उसके बापका पैसा चाहता था सो मिल गया।'

'मिस 'मे' के लिए क्यों?' एकने कहा। सेठ सबसे अपनी चर्चा करता फिरता था इससे उसका इतिहास सभी जानते थे।

'ऐइ यू! सब बताये देते हो?' सेठने हास्यजनक रोषसे उत्तर दिया।

सब फिर हँस पड़े।

'मैं क्या कह रहा था? ऐं—हाँ—हम सब पैसा हजम कर गये, पर स्त्री साली भ्रष्टा निकली। उसका मिजाज देखो तो तीसमारखाँ जैसा था; न तो बोलती थी और न चालती। हमने उसे छोड़ दिया।'

'पर बात क्या थी यह तो बताओ!'

'अरे किसीसे साँठ-गाँठ थी और क्या? आजकलकी शिक्षाका फल यही तो है।' सेठने फिर इधर-उधर देखा और रमा तथा रघुभाईको अनुपस्थित देख आगे बढ़ा।

'सेठ! पर वह तुमसे क्यों नहीं फँसी?' वकीलने पूछा।

'ऐसा भाग्य भला कहाँसे लाऊँ?'

'बिलकुल ठीक!' फिर सबने ठहाका लगाया।

'फिर क्या हुआ?'

'अरे, मीराबाई हो गई; बराबर रोया करती थी और आखिर रोते-रोते

मर गई।

'चलो पाप टला।' वकीलने कहा।

'आज-कलकी हवा ही खराब है। वह लड़की ऐसे ही कुल्टा...' प्रोफेसर ने कहा।

'बिलकुल ठीक' एक गम्भीर, दृढ़, काँपती हुई किन्तु शान्त आवाज गरजना कर उठी। सब घूम पड़े; जगत लम्बा था ही, इस समय वह और भी लम्बा दीख रहा था। उसकी आँखोंमें अनिर्वचनीय तिरस्कार झलक रहा था। उसकी भँवों पर रुद्रका भयङ्कर भ्रूभङ्ग विराज रहा था। 'सेठके कथनानुसार वह स्त्री कैसी निर्लज्ज रही होगी। उसे प्रेम करनेका हक ही क्या था? प्रेम और हिन्दूसे सम्बन्ध? हम तो निष्प्रेम, रूढ़िसे चले आये विवाहके पक्षपाती हैं! और प्रेम किया भी तो उससे लिपटी क्यों रही? सब भूल जाना चाहिये था; करमदासको स्वीकार कर खा-पीकर मौज करना था। यदि ऐसा नहीं कर सकती थी तो करमदासकी स्त्री रूपमें संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करना था। जिससे नाजायज सम्बन्ध होता उससे यदा-कदा, मन्दिरमें दर्शन करने जानेके बहानेसे, बुलाना था और बाहर भक्त बनकर फिरना था। कोई मना करता? इसके विपरीत उसे लोग पवित्र, सती साध्वी समझते—करमदास प्रसन्न रहते—और वह स्वयं मरनेके बदले इस समय आनन्द-भोग करती हुई लोगोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त करती! आजकलके लोगोंको यह सच्ची रीति आती नहीं, इसीसे तो हम जैसोंको इस समय ऐसी बातें करनी पड़ती हैं।'

शब्द कठोर थे, उनका उच्चारण भयङ्कर था। सब चुपचाप, लज्जित होकर इस भव्य महातेजस्वी व्यक्तिको देख रहे थे। बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। सबपर धिक्कारकी एक दृष्टि डालकर जगत वहाँसे चला गया। भाग्यवश रघुभाई तुरन्त आकर सबको भोजनके लिए लिवा ले गये।

सब मूकवत् भोजनके लिए बैठे। ऐसा मालूम होता था कि सबपर डाँट पड़ी हो। केवल रघुभाई और जगत बातचीत कर रहे थे। जगतके कथनमें भाव अथवा आडम्बर नहीं था, फिर भी श्रोताको उसकी बातचीत अच्छी लगती थी; रघुभाईने उसे प्रसन्न करनेके लिए ही यह भोज दिया था फिर उसकी मिठासका पूछना ही क्या था।

भोजनोपरान्त सभी अतिथिगण धीरे-धीरे चले गये। जगतको रघुभाईने बातमें लगा लिया। सबके जानेके पश्चात् कोई बहाना निकालकर रमाको भी वहाँसे हटा दिया।

'जगत भाई! अब तुम्हें बङ्गाल तो नहीं जाना है न?' रघुभाईने पान चबाते हुए पूछा।

'जी नहीं, अभी तो यहीं रहूँगा।'

'तब क्या विचार किया?'

'किस बातका?'

'क्यों, इस प्रकार कब तक रहोगे? तुम तो मेरे घरके हो इससे चिन्ता होती है। कुछ विवाह-उवाह करोगे कि नहीं?'

जगतके मनमें, शरीरमें तिरस्कारका कँपन-सा हो गया। इसीके लिए इतनी खुशामद हो रही थी! उसकी आँखें कुछ अधिक कठोर हो गईं। कर्कश स्वरमें उसने उत्तर दिया—'मैं! विवाहमें मुझे तो श्रद्धा ही नहीं है।' यह वाक्य उसने ऐसी अस्पृहाके साथ कहा मानो वह बहुत ही साधारण-सी बात हो।

'श्रद्धा!' रघुभाईने संभ्रमसे कहा, 'इसमें श्रद्धा कैसी? विवाह बिना कहीं चलता है? हमारे रायजीका नाम कौन रखेगा?'

'यह मेरी समझमें नहीं आता कि नाम रखनेमें कौन-सी खूबी है। यदि इस प्रकार मुझसे रायजीका नाम नहीं रखा जायगा तो क्या किसी कोने अतरेकी जैसी-तैसी लड़की, उसके माँ-बापकी दलालीसे प्राप्त कर, जिस प्रकार दो जानवर रहते हैं उसी प्रकार रहते हुए, अशिक्षित; बुद्धिहीन लड़कोंके झुण्डसे अवनिका भार बढ़ानेसे रहेगा? ये सब सुख एवं आनन्द दूसरे युवकोंके लिए रहने दूँगा, मैं इस योग्य नहीं हूँ।'

रघुभाईके मुँह पर तो ताला लग गया। इस लड़केके बोलनेका ढब तो कुछ विचित्र था। जगत शान्त बैठा था, दस वर्षके अभ्याससे उसने बहुत कुछ स्वस्थता प्राप्त कर ली थी।

'किन्तु अपनी जातिमें अच्छी कन्याओंकी कमी तो है नहीं ? मेरी रमा को ही ले लो। अच्छीसे अच्छी शिक्षा मैंने उसे दी है। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तैयार हूँ। देखो हम दोनों कुटुम्बोंका सम्बन्ध और भी प्रगाढ़ हो जायगा।'

'अभी जो कुछ है उससे अधिक और क्या होना है ?' जरा तिरस्कार और शान्तिसे जगत बोला, 'जातिमें वरका भी कहीं टोटा है ?'

'किन्तु तुम्हें आपत्ति क्या है ?'

'मुझे ? आपत्ति ?' जगत सूखी, कठोर हँसी हँसा, 'मेरे जीवनमें स्त्रीके लिए स्थान है ही नहीं।'

'यह भी कहीं सम्भव है ? स्त्रीके बिना किसीका चला है कि तुम्हारा ही चलेगा ?'

'क्यों नहीं ? जब आवश्यकता होगी तब देख लूँगा। अभी तो सब स्त्रियोंके विषयमें मेरी धारणा कुछ दूसरी ही है।'

'यदि धारणा बदल जाय तब ?'

'तब देखा जायगा; अच्छा अब रात्रि अधिक हुई, आज्ञा दीजिये।'

रघुभाईने समझ लिया कि यह व्यक्ति गुरुघंटाल है। फिर भी बड़बड़ाया, 'ठीक है अभी तो सोचनेको बहुत समय है।'

जगतको तो रघुभाईको नाराज किये बिना बात टालनी थी। रमा आई और जगत वहाँसे चल पड़ा।

जगतके जाते ही रघुभाईने रमाको बुलाया।

'रमा ! तेरा विवाह इसके साथ कर दूँ ?'

रमा लजाकर नीचे देखने लगी। उसका हृदय उछल पड़ा, 'यह आप जानें, मुझसे क्या पूछते हैं ?'

'हाँ, तू अब बड़ी हुई, जगतसे 'हाँ' कहलाना तेरा काम है।'

'मेरा ?' वह बिचारी तो घबड़ा उठी, 'पिताजी ! यह आप कह क्या रहे हैं ?'

'हाँ, आज-कलके लड़के इसीसे प्रसन्न होते हैं।'

रमा लजा गई, नीचे देखते हुए चली गई; मनमें कुछ हो रहा था। जगतका बलिष्ठ, सुन्दर शरीर उसकी आँखोंके सामने नाच रहा था।

———

६१

जगत स्वस्थतापूर्वक बाहर निकला। आज बहुत वर्षोंके बाद स्वर्गस्थ प्रियतमाके सम्बन्धीसे उसकी भेंट हुई; उसके जीवनकी दुःखप्रद स्मृति धूलमें मिलती हुई उसने देखा। रघुभाईकी वार्त्ताने भी वैरको पुनः हरा कर दिया।

उसके हृदयमें अधिक अशान्ति नहीं थी। स्वामी अनंतानंदसे उसने सीखा था कि मनुष्यके दुःख एवं अपूर्णता अशान्तिसे ही उत्पन्न होते हैं; और अशांतिको विनष्ट करनेके लिए अन्य बातोंकी ओर ध्यान देकर, 'आत्मन्येव आत्मना तिष्ठ' रहना; यह अत्यधिक आवश्यक है। अनंतानंद जन्मसे ही संस्कारी थे और इस स्वाश्रयी चारित्र्यका उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें बड़ी सरलतासे समावेश किया था। जगतके वासनापूर्ण, प्रेमसे पीड़ित, अभिमानी स्वभावको यह स्वस्थता प्राप्त करनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ा था एवं घोर श्रम कर वह विजयी हुआ था। किंतु इस घोर विग्रहकी निशानी अभी भी उसमें वर्त्तमान थी। उसका स्वभाव कठोर हो गया था जब कि स्वामीजीका कोमल था। उस पर जीवनमें विजयीके सत्ताकी स्पष्ट छाप पड़ी थी, स्वामीमें तो शांति ही विराजती थी।

अनंतानंदके शिक्षणके दूसरे लक्षण भी जगतमें कुछ परिवर्त्तनोंके साथ आ गये थे। बुद्धि और हृदयको शांत रख, अचल रीतिसे विश्व नियमके अनुसार चलकर, जिस प्रसङ्गमें जैसे चारित्र्य-भावकी आवश्यकता पड़े, वैसा प्रकट करनेमें ही अनंतानंदके चारित्र्यभावनाकी विशेषता थी। निर्धनके प्रति ईसा-मसीहकी आर्द्रता, अभिमानी एवं अत्याचारीके प्रति कोरियोलेमसका प्रभावशाली

गर्व, निराधारके प्रति कर्णका औदार्य, प्रेमीके प्रति रसिक कविका रस, राजनीतिमें चाणक्यकी गूढ़-नीतिज्ञता एवं ज्ञानमें भगवान बुद्धकी विशालता—इन विचित्रताओंका एकीकरण अनन्तानन्दने अधिकांशमें अपनेमें किया था—अपने शिष्यों को सिखाया था। जगत ऐसा करता किन्तु स्वामीजीकी सरलतासे नहीं; प्रत्येक अवसरपर उसके आन्तरिक विग्रहका भयङ्कर स्मरण उसके व्यवहारपर जरा कठोर छाप डाल देता था। इस चारित्र्य-भावनासे बनाये हुए कृत्रिम स्तर दृढ़ थे फिर भी आज पुरानी अस्थिरता उमड़ पड़ी, पर मन स्वस्थ था।

इस समय रघुभाईसे किस प्रकार प्रतिशोध ले, इसीका विचार कर रहा था। रघुभाईने चतुराईसे अपनी आर्थिक एवं व्यावहारिक स्थितिको असाधारण बना लिया था, इस मार्गसे उसपर आक्रमण नहीं किया जा सकता था।

करमदासको उसने देखा, ऐसे धिक्कारपात्र कीड़ेको मारनेसे लाभ? श्याम दास कौन है और कहाँ है, इस ओर ध्यान देनेका जगतने निश्चय किया।

उसे रमाका ख्याल आया। स्त्री-जातिके प्रति जगतके मनमें एक विचित्र प्रकारकी विरक्ति उत्पन्न हो गई थी; बहुत सी रमणियाँ उसने देखीं किन्तु स्वर्गीया और अविस्मृत प्राणेश्वरीकी जोड़ी संसारमें मिलनी कठिन थी। उसे रमा एक खिलौना लग रही थी।

इस प्रकार विचार करता हुआ वह बहुत देर तक समुद्रकी ओर देखता रहा। आखिर वह घूमनेके लिए चल पड़ा। चौपाटीपर अभी शौकीन युवकों एवं सौन्दर्य शोभा दिखानेके लिए निकली हुई स्त्रियोंकी रेल-पेल नहीं थी। इतनेमें सामने एक व्यक्ति तेजीसे जाता हुआ दीख पड़ा, जिसका शरीर एक मोटे कोटसे ढँका हुआ था। जगतको सन्देह हुआ, ऐसा शरीर दो व्यक्तियोंका होना असम्भव-सा था। कुछ दूर निकल जाने पर जगतने उसका पीछा किया। वह व्यक्ति रघुभाईके बँगलेमें प्रवेश कर सीधे रघुभाईके कमरेमें चला गया। जगतने अपनी आँखोंको शाबाशी दी और बागमें घुसकर छिपते हुए वह भी उस बैठककी खिड़कीके पास जा पहुँचा। खिड़की जरा ऊँची थी, जिससे खड़े-खड़े वह उनका वार्त्तालाप सुन सकता था।

'कहो, अमरानन्द ! अब क्या करना है ?' रघुभाईका कण्ठ-स्वर सुनाई दिया।

जगतका अनुमान ठीक निकला।

'जो कुछ आप कहें, मैंने तो अपनी तैयारी कर लिया है और अनन्तानंद के मनुष्यके वासस्थानका भी पता लगा लिया है।'

जगतने ओंठ काटा।

'अब आपके सेक्रेटेरियटके तैयार होने भरकी देर है।'

'स्वामी ! हाथपर दही नहीं जम सकती। वे कागज मुझे अभी तक मिले नहीं, मिल जायँ तो कल ही युद्ध प्रारम्भ कर दूँ।'

'किन्तु वह कब मिलेगा ? आप यहाँ हैं और वह वहाँ है ?'

'मैं चुपचाप थोड़े ही बैठा हूँ किन्तु न जाने क्यों उन कागजोंका पता वहाँ चल नहीं रहा है।'

'अच्छा ! किन्तु उसमें है क्या ?'

'यह मैं कागज मिलनेपर ही बताऊँगा। अनंतानंद कब हमारी बाजी उलट देगा, कहा नहीं जा सकता।'

'अरे वाहजी मेरे रघुभाई !' अमरानंद हँसा, 'किन्तु सेक्रेटेरियटका क्या हाल-चाल है ?'

'उस ओरसे निश्चिन्त रहिये किन्तु उस समय जब अनन्तानन्द स्वयं आये थे तभी अपना इतना अधिक प्रभाव डाल गये हैं कि कुछ कहनेकी बात नहीं। सभी कहते हैं कि षड्यन्त्र या दुरव्यवस्थाका प्रमाण लाओ तब कुछ हो।'

'दुरव्यवस्थाका प्रमाण तब क्यों नहीं देते ?'

'घबड़ाइये नहीं, यह भी होगा। श्यामदासको कल ही रत्नगढ़ भेजता हूँ, वह सब पता लगा लायेगा।'

जगत अधिक ध्यान देकर सुनने लगा।

'श्यामदास ! श्यामदास विश्वासी है ?'

'अविश्वास करके जायगा कहाँ ? अभी चाहूँ तो उसे घर-घरका भिखारी बना दूँ।

'जी हाँ, आपकी शक्तिका तो मुझे पूरा भरोसा है। वह लौटेगा कब तक?'

'महीने-दो महीने में।'

'तब इस समय क्या करना होगा?'

'अभी तो जरा ठहरना पड़ेगा, पर यह तो बताइये कि अनंतानंदका आदमी है कौन?' रघुभाईने पूछा।

जगतने सोचा कि अब सब भेद खुल जायगा किन्तु अमरानंद रघुभाईसे भी बढ़कर धूर्त्त था।

'अभी नाम-गामका पता नहीं है, केवल घर जानता हूँ।'

'कहाँ रहता है?'

'यह याद नहीं है, चौपाटी पर कहीं रहता है।' अमरानंदने बात उड़ाते हुए कहा।

तदुपरान्त आध घंटे तक बातें होती रहीं जिसमें अनंतानंद और उनके शिष्य सिद्धनाथको गालियाँ भी दी गईं। जगत मनमें बहुत हँसा। रघुभाईको क्या पता कि इतनी सुन्दर भाषामें जिस सिद्धनाथको गाली दी जा रही थी उसीको दो घंटे पूर्व अपनी कन्या अर्पण करनेके लिए वह स्वयं तैयार था!

इतनेमें कोई तीसरा आदमी आया। जगतने समझ लिया कि यह श्याम-दास ही होगा। कुछ देर बाद अमरानंद चला गया और रघुभाईने श्यामदास को प्रातःकालकी गाड़ीसे चले जानेके लिए कहा। जगतने श्यामदासको, चाहे जैसे भी हो, देखनेका निश्चय कर लिया। क्या दोनों श्यामदास—रघुभाईका शिष्य और तनमनका मामा—एक ही है? उसका गला घोंट देनेकी जगतकी इच्छा हुई। तुरन्त बँगलेसे बाहर निकल कर वह कुछ दूरपर खड़ा हो गया। थोड़ी देरमें श्यामदास पहले ही जैसा हृष्ट-पुष्ट एवं आँखें निकाले हुए आया। तनमन पर अधिकार साबित करनेवाले मामा साहबकी आँखसे तो एक बूँद आँसू भी नहीं टपका था, जरा भी दुबलाए न थे; सांसारिक अधिकार-विहीन सच्चे अधिकारी प्रणयीको ही सब कुछ सहन करना पड़ा था।

जगतने उसे दूरसे देखा और वह आगबबूला हो उठा। स्वामीजीने भविष्य वाणी की थी कि शान्त रहकर भी प्रतिशोध लेने जायगा तो रजोगुणी बनकर

अशान्ति प्राप्त करेगा। हुआ भी वैसा ही। उसकी स्वस्थता जाती रही—तुरन्त सँभल गया। श्यामदासको ठीकसे देखनेका प्रयत्न किया, अपना 'वाटर-प्रूफ' पहन लिया, टोपी नीची कर ली और जैसे ही श्यामदास लैम्पके पास आया कि उससे टकरा गया और कुछ साहबोंकी चालका अवलम्बन कर उलटे श्यामदासको ही डाँटने लगा—'कौन हय-यू नीगर ?'

श्यामदास दूसरी बातोंमें शूरवीर था किन्तु साहबकी टोपी देखकर वह काँप उठा। उसने सोचा कि अवश्य ही यह कोई पुलिसका आदमी होगा। उसकी जबानसे एक शब्द भी नहीं निकल सका।

'गेट अवे !' जगतने गरजकर कहा।

श्यामदास सिरपर पगड़ी ठीक करता हुआ कुछ बड़बड़ाता चला गया—'जङ्गली ! जैसे इसके बापका ही राज है !'

जगतने अच्छी तरह देख लिया। वह हँसा और घरकी ओर चल पड़ा किन्तु अभी उस दिनका उसका अनुभव समाप्त नहीं हुआ था। रातमें ग्यारह बज गया था जिससे चौपाटी पर दो-चार गँडेरीवाले और दो-चार आदमियोंके सिवा वहाँ और कोई नहीं था। रेलवे-क्रॉसिङ्ग पारकर ज्यों ही वह शहरकी ओर बढ़ा था कि सामनेसे एक मोटर आई। या तो चलानेवाला नया था या किसी बड़े आदमीकी मोटर होनेसे उसे पुलिसका डर नहीं था, जो भी कारण हो, गाड़ी बड़ी तेजीसे जा रही थी। मोटर-ड्राइवरको पथिकोंको कुचल डालने की सदर परवानगी है, यह तो जगतप्रसिद्ध है। एकाएक मोटर जरा मुड़ी—जगतने रोशनीमें जाते हुए देखा ही था कि रात्रिकी गम्भीर शान्तिको चीरती हुई एक भयानक चीख सुनाई दी। मोटरने चीखके पश्चात् हार्न दिया और आँधीके समान विनाश करती हुई आगे बढ़ गई। चीख कोमल दयाजनक थी। जगत वहाँ दौड़ गया, एक छोटा बालक मोटरके झपाटेमें आ गया था और कुछ दूर पर बेहोश जा पड़ा था। धनके मदमें चूर आनन्दमें मस्त पूर्ण वेगसे जाते हुए धन कुबेरको यह भी भान नहीं हुआ कि पीछे एक निराधार प्राणीको मृत्युके चंगुलमें फँसा हुआ वे छोड़े जा रहे हैं।

जगत तुरन्त नीचे बैठ गया। एक छोटा सात वर्षका बालक मूर्च्छित पड़ा

था, मोटरने उसका एक पैर कुचल दिया था। जगतने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई लेकिन 'पुलिसमैन' कहीं दिखाई नहीं पड़ा। बड़ी ही ममताके साथ उस बेहोश लड़केको अपने दृढ़ हाथोंमें उठाकर तेजीसे दौड़ता हुआ एक डाक्टरके यहाँ ले गया।

———

६२

शौकीनोंके शौकका भाग रूप यह छोटा बालक कुचल गया, इसके दो-तीन घंटे पूर्व भूलेश्वरके एक बहुत बड़े मकानकी एक छोटी कोठरीमें गुलाब,—तनमनकी विमाता बैठी थी। इतने वर्षमें पाप, निर्धनता और परवशतासे उसका शरीर एवं सौन्दर्य बहुत कुछ नष्ट हो गया था। उसका शरीर सूख गया था, केवल हड्डियाँ रह गईं थीं, चमड़ा पीला पड़ गया था, आँखें निकल आई थीं। मि० पारखेरियाकी कृपासे हरिलालके धनमेंसे मासिक मिलता था जिससे वह जी रही थी। पहले तो श्यामदास उसका कुछ आदर करता था किन्तु शरीर अर्पण कर, स्त्रीका सबसे बड़ा धन खोनेवाली अधम गुलाबके लिए उसका आदर अथवा प्रेम अधिक समय तक टिक नहीं सका। उसका स्वतन्त्र अत्याचारी स्वभाव यह बला सहन नहीं कर सका; जिससे क्रमशः वह समाजकी सीढ़ीसे उतरती गई। अब चार रुपये मासिककी कोठरीमें मुँह छिपाकर रहती थी और कभी-कभी श्यामदास उससे मिलनेके लिए आ जाया करता था।

पापाचारके सम्बन्धमें विरक्ति आने पर वह विषाक्त हुए बिना नहीं रहता। गुलाब सोचती कि श्यामदासके लिए उसने इतना अधिक त्याग किया और अब वह उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, श्यामदासको तो दो घंटेके आनंदके लिए विवश होकर आना पड़ता था। इसपर गुलाबको पुत्र हुआ। श्यामदासने तो साधारण नियमानुसार जन्म लेनेसे पूर्व ही उसे स्वर्ग भेज देनेका, उसे संसारकी हवा भी न लगने देनेका विचार किया था। किन्तु गुलाबमें एक भाव पवित्र अभी भी बचा था। उसे पुत्रकी बड़ी लालसा थी। वह श्याम-दाससे लड़ी, झगड़ी एवं अन्तमें दूर— यात्रा-स्थान कहे जाने वाले पुण्यधाममें

उसे अपने पापका फल प्राप्त हुआ किन्तु उसे लेकर वापस आना उसके लिए असम्भव था। अतः जब उसने श्यामदासका अपमान करनेका डर दिखाया तब कहीं अन्यत्र बालकके पालन-पोषणका प्रबंध कर देनेका उसने प्रबंध कर दिया। बालक अपनी इच्छानुसार बड़ा हो रहा था। और श्यामदास कभी-कभी उसे अभागी माँकी गोद भरनेके लिए यहाँ ले आता था।

गुलाब आज अत्यधिक चिन्तामें बैठी थी; पागलके समान कुछ बड़बड़ा रही थी; इतनेमें श्यामदास आ गया।

'इतनी देर ? बाट देखते-देखते थक गई।' इतनेमें श्यामदासको अकेला देखकर उसकी आँखें लाल हो गईं। 'क्यों ? मेरा भीखा कहाँ है ?'

'जरा धीरे बोल, पड़ोसी सुनेंगे तो इज्जत पर आ बनेगी।' कुछ घबड़ाकर श्यामदास बोला, 'भीखा तो...'

'क्यों, क्या हुआ ?'

'आज कहीं मिला ही नहीं ! दो घंटे तक उसके यहाँ बैठा था, वह दोपहरसे ही कहीं भागा है।'

'कहाँ गया ? हाय हाय ! मेरा भीखा ! जरूर तुमने उसे मार डाला है, वह गया कहाँ ?' जोरसे चिल्लाकर आवेशसे काँपती हुई गुलाब बोली।

'चुप रह ! लोग जमा हो जायँगे !'

'चूल्हेमें गया तू और सब लोग। मेरा लड़का ले आ। भीखा गया कहाँ ?' श्यामदासने देखा कि गुलाबका मस्तिष्क कुछ पागल-सा हो रहा है।

'अरे, मुझे क्या पता कि कहाँ है।'

'ले आ, बस जा; ले आ। जा पुलिसको खबर कर, चाहे जो कर लुच्चा ! तूने ही कुछ किया है। बाप बना है !' कहकर गुलाब उठी, उठते ही काँप उठी और आँखके नीचे अँधेरा छा गया।

'तू जरा शान्त रह, मैं मदनको खोज करनेके लिए पैसा दे आया हूँ और सुन मैं कल बाहर जा रहा हूँ।'

'कहाँ जायगा ? मेरा लड़का ले आ !' कहकर श्यामदाससे गुलाब लिपट

गई। कमजोर शरीर, अशक्त मस्तिष्क, हिस्टीरियाका रोग इन तीनोंके मिल जानेसे ऐसी विक्षप्ति प्रायः हो जाया करती थी।

श्यामदासको भी क्रोध आ गया, उसका हृदय बड़ा कठोर था। झकझोर कर उसने अपना हाथ छुड़ा लिया। गुलाब कटे वृक्षके समान जमीनपर गिर पड़ी; श्यामदास उसे वैसे ही छोड़कर चला गया। उसे रघुभाईके यहाँ जाना था।

६३

जगत दो-तीन दिन तो कुछ कर ही नहीं सका। घरमें वह छोटा बालक पड़ा हुआ था जिससे सब घर फिरसे बसाना पड़ा। रसोइया रखना पड़ा और बालककी देख-रेखमें रहना पड़ा। बालक सुन्दर एकहरे बदनका और दुर्बल था। उसके सिरका बाल लम्बा, चेहरा लड़की जैसा और छोटा था जिसपर इस अवस्थामें ही अत्यधिक दुःख चिन्ह अङ्कित थे। बालकका एक पैर पीस गया था, दूसरा थोड़ा ही बचा था, डाक्टरने दूसरे पैरकी कुछ आशा दिलाई थी।

जगत उस बालकके बिछौनेके पास ही सोता। दूसरी रात्रिमें उसकी निद्रा खुली तो अपनी दरीपर बालकको पड़ा हुआ देखा। स्नेहशील, कोमल हृदय का बालक अकेला न सो सकनेसे जगतके पैरपर हाथ रखकर सोया था। जगतने सोचा, बिचारेकी कैसी स्थिति है! पुलिसमें सूचना दिये आज तीन दिन हो गये किन्तु इस निराधार बालकको लेनेके लिए कोई आया तक नहीं। जगत एक प्रकारसे प्रसन्न ही हुआ। इस बालकका पालन-पोषण कर, अनन्तानन्द द्वारा बहुतों पर किये गये उपकारका बदला किसीका उपकार करके चुकानेका उसने संकल्प किया। दीपकका थोड़ा प्रकाश बालकके मुँहपर पड़ रहा था। जगतने जरा आँखें मलीं। इन आँखोंकी सुन्दरता! हाँ – तुरन्त ही डुम्मस स्मरण हो आया—जिन आँखों पर स्नेहाञ्जलि अर्पित की थी, जिनकी सुन्दरता हृदयमें उत्कीर्ण कर लिया था वह स्मरण हो आया। तत्क्षण वह सावधान हो गया; बड़बड़ाया; अरे वाह! 'चंचल हि मनः कृष्ण' कहाँसे कहाँ पहुँच जायगा?

जैसा स्वामीजी कहते हैं, अभी बहुत रोग बाकी रह गया है। थोड़ी देरमें मन शान्त कर वह सो गया।

दो-तीन दिनों तक बालक चुपचाप पड़ा रहा। एक दिन प्रातःकाल कोई आवाज सुनकर जगत उठा। बालक बिछौनेपर बैठा हुआ कह रहा था—'धूएँकी गाड़ी फक-फक, धूएँकी गाड़ी...'

जगतको हँसी आ गई। बालकका कष्ट कम हो गया था जिससे बहुत दिनों बाद वह खेलमें रत हुआ था।

'सो जा, बेटा ! नहीं तो फिर बुखार आ जायगा।'

'नहीं, मैं तो आग-गाड़ीमें जा रहा हूँ।'

जगतने उसके खेलमें बाधा नहीं डाली। कुछ देर बाद उससे पूछा—'तुम किसके लड़के हो ?'

बालक हँसा, किन्तु उसने कोई जवाब नहीं दिया। बहुत परिश्रम के पश्चात् जगत इतना ही मालूम कर सका कि एक चाचा था और एक मौसी; कभी-कभी उनसे मिलता। बालक लँगड़ाता हुआ जगतके पास आया और उसने अपना सिर उसकी गोदमें रख दिया। बालक अब सुखी दिखाई पड़ रहा था।

'तुम्हें यहाँ अच्छा लगता है ?'

बालकने अविश्वाससे देखते हुए पूछा—'आप निकाल बाहर तो नहीं करियेगा ?'

'निकालूँगा नहीं, लेकिन तुम्हारा चाचा ले जाय तब ?'

'चाचा तो मारते हैं और मदन चाचा तो खानेके लिए भी नहीं देते !'

'मदन चाचा कौन ?'

'एक हैं, लेकिन आपकी बहू मारेगी तब ? मदन चाचाकी बहू रोज मारती थी।' बालकने घबड़ाकर इधर-उधर देखा।

रूक्षतासे हँसकर जगत बोला, 'मेरे बहू नहीं है।'

'बहू नहीं है ? तब तो बड़ा मजा है !' कहकर बालक हँस पड़ा। मदन चाचाके बहूका उसका अनुभव बहुत कड़ुआ था। उसके बालपर हाथ फेरते

हुए जगतको हँसी आ गई। उसे 'बहू' नहीं थी—इसकी कदर करनेवाला तो एक मिला।

बालक बीमार था; पर अकेले आनंद मनानेकी उसकी शक्ति अद्भुत थी। वह अकेले हँसता, गाना गाता; उसकी कल्पनाशक्ति सचमुच हास्यजनक थी। कुछ न मिलने पर पैरकी उँगलियोंमें डोरी बाँधकर उसे घोड़ेकी लगाम मान हमेशा गाड़ी हाँका करता। ऐसा मालूम पड़ता था कि इसके पूर्व उसका सहवास निम्न श्रेणीके साथ था जिससे जगत उसे सुधारनेका प्रयत्न करने लगा। बालक मूर्ख था किन्तु कृतज्ञता समझता था और नमकहलाल कुत्तेके समान जगतके पीछे लगा रहता था। बाहर जाने पर खिड़कीमें बैठा हुआ, चाहे जितनी अधिक रात्रि चली जाय, जगतकी बाट देखा करता। उसका पहलेका नाम 'भीखा' था; जिसे बदल कर जगतने अरुण रखा।

कुछ ठीक हो जाने पर एक बार अरुणको नौकर द्वारा रमाके पास लिवा ले गया। गाड़ी, घोड़ा, मनुष्य और रमा जैसी स्त्रीको देखकर अरुण तो पागल हो गया और दो-तीन दिन तक उसीका गायन गाता रहा।

दूसरी ओर भी जगतका परिश्रम सफल हुआ था, सेक्रेटेरियटमें अनन्तानन्द जो प्रभाव डाल गये थे उसे उसने पुनः अङ्कित किया और धीरे-धीरे अधिकारी-वर्ग भी जगतकी शक्तिके सामने झुककर उसके कथनानुसार काम करने लगे। इस कामको पूर्ण करनेके पश्चात् अपने निजी कामकी ओर उसने ध्यान दिया। तनमनकी मृत्युके लिए कौन कितना अपराधी है इसका उसे पूर्ण रूपसे पता नहीं था। अतः पहले इसे ही निश्चय कर लेनेका उसने विचार किया। उसने सोचा कि करमदासको पकड़नेसे बहुत कुछ पता चल जायगा वह इतना प्रभावशाली था कि करमदास जैसे तुच्छ व्यक्तिको मारना उसके लिए पागलपन-सा था। करमदाससे मिलनेसे जगतका हेतु कुछ दूसरा ही था।

करमदास गंगा मौसीके जामाताकी दयाके आधारसे जीवन व्यतीत कर रहा था। गुलाबदास कृतघ्नी नहीं था, सेठका धन लूटकर स्वयं धनाढ्य बना था अतः उसे प्रतिमास सौ रुपये देता था। किन्तु इस सौमेंसे अस्सी मदिरा और वेश्यामें चला जाता था; और करमदास प्रायः अपने पुराने मित्रोंके यहाँ अतिथि

बनकर दिन बिताता था। कुछ तो उसे निकाल दिये होते किन्तु गुलाबदास सेठ का सम्बन्धी समझकर गुलाबदासके पुराने सेठको रहने देते थे।

एक दिन करमदास काँप उठा। किसीने जोरसे उसका दरवाजा ठोंका। उसे महाजनोंका बड़ा डर बना रहता था पर सद्भाग्यसे यह तो रघुभाईका अतिथि निकला। पुराने स्वभावके अनुसार करमदास कोट पतलूनमें था, केवल पतलून तम्बूराका गलेफ, कमीज काजलके समान काली और टाईके स्थान पर रेशमी चिथड़ा था।

'आइये, आइये' करमदासने तुच्छ, मानहीन हास्यसे स्वागत करते हुए कहा। शरम कुछ बाकी रह गयी थी जिससे ऐसे गृहस्थको देखकर अपनी स्थितिका ख्याल हो आया। किन्तु दूसरे ही क्षण वह जाती रही।

दीवालके सहारे रखी हुई एक तीन पायेकी कुर्सी पर जगत बैठ गया। जगतकी तेजस्वी आँखोंके तेजसे करमदास जरा घबड़ाया। उसने पूछा—'कहिये महाशय! यहाँ कैसे?'

'उस दिन आप बात कर रहे थे उसी लिए आया हूँ।'

'क्या?'

'आपने कहा था न कि किसीको अच्छे व्याज पर रुपया देना हो तो एक समृद्ध असामी है?'

करमदासने माथा खुजलाया। इस प्रकारकी बात दूसरोंके सामने करता अवश्य था किन्तु जगतसे कब कहा, यह स्मरण नहीं आया।

'हाँ!'

'क्या उस असामीको रुपया चाहिये?'

करमदासकी पीली आँखें चमक उठीं, कल्पनामें दो-चार ग्लास ब्राण्डी पी गया। उधार रुपया लेने जैसा सुख उसके जीवनमें दूसरा था ही नहीं। 'हाँ!'

'तब रुपया तैयार है।'

'कितना है?'

'अभी तो दो सौ रुपये हैं।'

'बस?'

तब जरूरत नहीं है क्यों ?' कहकर जगत उठने लगा।

'नहीं-नहीं ! बैठिये, ऐसा क्या ? कब मिलेगा ?'

'अभी साथमें लाया हूँ किन्तु देने वाले महाजनकी एक शर्त्त है।'

'क्या ?'

'अपने विवाहकी सच्ची बात मुझसे कहो और फिर दूसरेसे न कहनेकी प्रतिज्ञा करो और देखो यह रुपया रखा है।'

'हाँ, हाँ; एक नहीं दो बार।' कहकर सेठने दस-ग्यारह वर्ष पहले की, प्रेम-विह्वला तनमनके आत्मभोग की कथा टूटी-फूटी भाषामें कह सुनाई। आँखके आँसू रोकनेके लिए जगतको अत्यधिक संयम की आवश्यकता पड़ी। उसके भव्य चेहरेपर निश्चयकी दृढ़ रेखा अङ्कित हो गई, उसकी आँखोंमें तीक्ष्ण तलवारका घातक तेज चमक उठा। अंतरमें लबालब प्रेमकी विषमता व्याप रही थी; योगी जगत नष्ट होकर मनुष्य बन गया। अनंतानंदने जैसी भविष्यवाणी की थी वैसा ही हुआ, वह बिलकुल रजोगुणी हो गया।

'लो, यह रुपया' कहकर जगतने जल्दीसे रुपया गिनकर दे दिया। इस कङ्गालके सामने वह अधिक समय बैठना भी नहीं चाहता था। करमदास की लोभी आँखें रुपया देखते ही चमक उठीं। उसके मनमें कुछ दूसरे विचार भी आये। रुपये लेकर उसने आलेपर रख दिया।

'देखो करमदास ! अब आजसे तुम यह बात किसी दूसरेसे मत कहना, समझे।'

करमदास हँसा।

'बोलता क्यों नहीं ? सुना या नहीं ?'

करमदासकी आँखें नीचता और शठतासे चमक रही थीं, वह पुनः हँसा।

'सुना या नहीं ? यदि फिर तुमने कहा तब तुम जानना !'

'आप प्रतिमास कितना देंगे ? दो सौ रुपये देंगे ? तब कुछ नहीं कहूँगा।' करमदासमें लुचापन था किंतु व्यसनके कारण उसके उपयोग करने की परिपक्वता नष्ट हो गई थी।

जगतने अब समझा। उसने इस मूर्खमें इतने लुचापनकी आशा नहीं की थी।

'क्यों, दो सौ किस बात का ?'

'क्योंकि मैं आपको पहचान गया जिससे अब.......'

'क्या अब ?' दाँत पीसते हुए जगतने पूछा।

'अब आपके नामके साथ सबसे कहूँगा, नहीं तो मुँह बंद रखनेके लिए रुपये दीजिये।' अपनी बुद्धिमत्तापर पुलकित होता हुआ करमदास बोला।

'मेरे नामके साथ ?'

'और नहीं तो क्या, मुझे निरा बालक समझ रखा है क्या ? कोई व्यर्थ दो सौ रुपये क्यों देने लगा ?' हर्षसे उल्लसित होकर करमदास बोला।

'यानी ?'

'यानी क्या ? मेरी पत्नीका रंगीला युवक पकड़ गया। अब रुपया नहीं दीजियेगा तो आपका गुणगान करूँगा।'

जगत समझ गया। नीचके साथ उसका पाला पड़ा था। 'तब तुम सबसे कहोगे क्यों ?' जगतका सशक्त कंठ-स्वर धीमा था लेकिन उसमें ताण्डव-नृत्यका भयङ्कर घोष प्रतिध्वनित हो रहा था। जगतकी आँखोंसे चिनगारी निकल रही थी 'हाँ तुम्हारी बात सच है। मेरे लिए तनमन घुल-घुलकर मर गई। मैं क्यों आया हूँ इसका क्या तुम्हें पता है ?'

करमदास घबड़ाया। जगतका परिवर्तित स्वरूप देखकर उसकी स्वाभाविक कायरता काँप उठी, 'नहीं।'

'मैं प्रतिशोध लेने आया हूँ और यदि किसीसे तूने कहा तो ..!'

'तो क्या कर लोगे ?' करमदास साहस बटोरकर बोला।

'क्या ?' जगत गरज उठा, उसकी भौंहें तन गईं।

'आ···हा !'

'तुम मेरा कहना नहीं मानोगे ?' शान्तिसे दृढ़तापूर्वक जगत बोला और उसका गला उसने धर दबाया।

'अ रे...कोई...आ...ओ, पुलि ....'

'चुप !' कहकर जगतने उसे झकझोर दिया, 'फिर अब तनमनका नाम लेगा ?' करमदास कपासके समान सफेद पड़ गया था। जगतके सबल पञ्जेमें वह बकरेके समान था।

'नहीं, छोड़िये।'

'याद रखो जिस दिन यह शब्द मुँहसे निकाला उसी दिन तुम्हारा काल आ जायगा।' जगतको इस अधम जीवपर अत्यधिक तिरस्कार उत्पन्न हुआ। इस मूर्खका क्या करें? किन्तु कुछ यादगारी रखनेके लिए करमदासको एक छोटे बालकके समान अपने सुदृढ़ बाहुओंसे उठाकर पास ही की एक मेजपर उसने पटक दिया। जगतके पटकनेसे पुरानी मेज टूट गई। उसीमें करमदासको रखकर वह बोला—'कहना अब साहस हो तो' और वह वहाँसे चला गया।

६४

युवावस्थामें जब रक्त गरम रहता है तब सभी विघ्न-बाधायें आपसे आप दूर भाग जाती हैं। रमाने एक मित्रके यहाँ जानेका वचन दिया था। कॉलेज के तूफानी मित्रोंके साथ रहनेमें उसका सादा और कोमल स्वभाव डरता था। लड़कोंके साथ उधम मचाना, विनयकी सीमा त्याग कर हँसी मजाक करना, आदि अनेक बुरे रिवाजोंसे रमा और उसकी शिरीन बची हुई थी जिससे इन दोनोंमें बहुत पटती थी। आज आकाशमें कुछ बादल छाये हुए थे फिर भी रमा शिरीनके यहाँ गई और लौटते समय शिरीन उसके साथ आई। दोनों अँग्रेजीमें वार्त्तालाप कर रही थीं।

'किंतु रमा! तुमने अपना विचार क्यों बदल दिया? पहले तो तुम भी मेरे ही समान पुरुष जातिसे घृणा करती थी।'

'जब तक अनुभव नहीं होता तबतक मन अनेक कल्पनायें किया करता है।'

'और पीछे तोड़ दिये जाते हैं।'

'अवश्य!' गम्भीर विचारमें लीन हो इस प्रकार ललाटमें त्रिबली डालकर रमाने उत्तर दिया, 'हमारा अनुभव ही कितना है? पहले मुझे पुरुषोंमें कायरता दिखाई देती और मैं उनसे घृणा करती थी, मेरी कॉरेलीके 'Coward Adam' (कायर पुरुष) जैसे ही सब मालूम पड़ते थे।'

'वह सब अब बदल गये ? अपना स्वत्व क्या हमें मिल गया ? इतने वर्षों से अत्याचार कर पुरुषोंने स्त्रियोंको अधम बना डाला, यह भूल गई ?'

'नहीं।'

'तब तुम्हारा विचार कैसे बदल गया ? देखो रमा ! तुम धूर्त हो। हमने क्या सौगंध लिया है ? जहाँ तक हो सके एक दूसरेसे कोई बात गुप्त न रखना।'

रमा जरा घबड़ाई, 'नहीं, नहीं, गुप्त कुछ भी नहीं है, बात केवल इतनी ही है कि नये मनुष्यके संसर्गमें आनेपर पता चलता है...।'

'क्या ?'

'कि हमें मनुष्य जो कायर या तुच्छ लगते हैं उसका कारण इतना ही है कि हमने सच्चे मनुष्य देखे ही नहीं।'

'तो क्या तुमने देख लिया ?'

'यह मैं कहाँ कहती हूँ।' आगे बात बढ़ाना रमाको ठीक नहीं जँचा।

'अरे यह तो बूँदा-बाँदी शुरू हो गई !'

'मार डाला इसने तो' शिरीन बोली, 'कोई गाड़ी भी नहीं दिखाई देती।'

'चलो शिरीन ! उस पोर्टिकोमें खड़ी हो जायँ, अभी ही यह बंद हो जायगी।' दोनों भीग गई थीं। दोनोंको बड़ा मजा आ रहा था। इतनेमें एक बाल-स्वर सुनाई दिया—'चलो, रामा ! जल्दी।'

दोनोंने देखा कि एक नौकरके कंधेपर एक छोटा बालक बैठा हुआ कूद रहा था और वर्षा देखकर हँस रहा था। उसके हाथमें एक छोटी चाबुक थी जिससे लगातार आवाज करनेका वह प्रयत्न कर रहा था।

'आओ जी पानी...अरे ! यह कौन ? रमा बहन !'

रमाने अरुणको पहचाना और उसके चेहरेपर लाली दौड़ गई। 'अरुण, तू यहाँ कहाँसे ?'

'क्यों ? हमारा घर है, आप कैसे आईं ? आज तो भगवान नहा रहे हैं जिससे पानी बरस रहा है।'

अरुणका मत था कि जब थोड़ी वर्षा हो तब ईश्वर मुँह धोते हैं और जब मूसलाधार वर्षा हो तब नहाते हैं।

'अभीसे ही यह तो 'फिलॉसफर' लगता है, यह है कौन?' शिरीन ने पूछा।

'मेरे पिताजीके एक मित्र हैं उन्होंने इस बालकको मोटरके नीचे दबनेसे बचाकर अपने यहाँ रख लिया है।'

'तुम्हारे भैया यहीं रहते हैं?' रमाके मुँहसे जगतका नाम नहीं निकल सका।

'तब कहाँ रहते हैं?' अरुण बोला। नौकरने उसे बेंचपर बैठा दिया था, 'भैया बाहर गये हैं, आप ऊपर चलें।'

'नहीं मुझे जाना है?'

'यह नहीं हो सकता। हम आपके यहाँ आते हैं और आप नहीं आइयेगा? नौन्सेंस।' अरुणने इतने ही दिनोंमें जगतकी चाल-ढाल, बातचीतकी नकल उतारना सीख लिया था। 'भैयाका क्या काम है चलिये। ऐ यू, रामा घोड़ा! इनको बैठा।'

'चलोगी? यह वर्षा तो अभी रुकती नहीं' शिरीनने कहा, 'मिस्टर कुछ आपत्ति तो नहीं करेंगे?'

'नहीं जी, और उनके आनेके पहले ही हम चल चलेंगी।' जगतसे मिलनेका भय रमामें बढ़ता ही जा रहा था।

'इस लड़केके पैरमें क्या हुआ है?'

'कुछ नहीं यह तो जरा लंगड़-धींगड़ हो गया हूँ, एक पैरसे ही चल लेता हूँ तब दो पैरोंका क्या काम?'

दोनों हँस पड़ीं। जगत बिलकुल ऊपरके खण्डमें रहता था। उसकी बैठकमें प्रवेश करते ही दोनोंको आश्चर्य हुआ। वहाँ कला और बुद्धिका असाधारण उपयोग दिखाई पड़ा।

'इन मिस्टरका नाम क्या है?'

'जगतराय!'

'घरमें और कोई नहीं है क्या ?' शिरीनने पूछा।

'नहीं, अभी तक अविवाहित हैं।' जरा शरमाती हुई रमा बोली।

शिरीन न होती तो रमाको चैन पड़ता। अंतरमें उठते हुए प्रेम-तरंग यदि प्रकट हो गये तब ! इसीका उसे डर लग रहा था।

'रमा बहन ! आप क्या सोच रही हैं ? उस दिन अपने घरपर किताब खोलकर बैठी थीं, हमारे यहाँकी भी पुस्तकें देखी हैं या नहीं ?' अरुणसे चुप न रहा गया।

'लड़का बड़ा बातूनी व तेज लगता है।' शिरीन बीचमें बोल उठी।

'नहीं, मैं तो प्रथम बार यहाँ आ रही हूँ।'

'तब इधर आइये, इधर।'

अरुणके लिए पहियावाली एक कुर्सी जगतने बनवा दिया था जिसपर वह घर भरमें घूमा करता। रामा नौकर उसे पास ही के कमरेमें ले गया; रमा और शिरीन उसके पीछे-पीछे गईं। बैठका जितना ही सुसज्जित था उतना ही वह कमरा बिलकुल सादा था। सादे फ्रेममें संसारके महापुरुषोंके चित्रोंसे दीवाल सुशोभित हो रही थी। रमा कुछ घबड़ाई। दूसरेके घरमें इस प्रकार जाना उसे ठीक नहीं जँचा। शिरीनको इसका कुछ भी ख्याल नहीं हुआ, क्योंकि उसमें पारसियोंकी स्वतंत्रता थी। हजार पुरुषोंमें भी वह शरमानेवाली नहीं थी और उसमें फिर 'एलिफस्टोनियन।' तब पूछना क्या था ? उत्सुकता पूर्वक वह मेजके पास गई। कुछ पुस्तकें और अर्द्ध लिखित कागज उसपर पड़े थे, उन्हें देखकर वह बोल उठी, 'अरे, देखो तो रमा ! ये तो कोई बड़े हिस्टोरियन (इतिहासकार) मालूम पड़ते हैं।'

'क्यों ?'

'भारतका इतिहास मालूम पड़ता है, कोई अच्छा अभ्यासी है ?'

'हाँ, तुम देखोगी तब समझोगी।' पुनः कुछ शरमाते हुए रमाने कहा।

'तुमने इन्हें देखकर ही तो पुरुष जातिके सम्बन्ध में अपना अभिप्राय नहीं बदला है ?' खिलखिलाकर हँसते हुए शिरीन बोली। उसकी हँसी कुछ आकर्षक थी।

'यदि तुम्हारा अनुमान ठीक ही हो तो ?'

'कुछ नहीं, कुछ देरमें मालूम हो जायगा कि ऊपरसे सब मोहक लगते हैं किंतु भीतरसे तो 'Coward Adam' ही होते हैं।'

'खामोश हो जाओ, भैया आ गये।' जरा घबड़ाकर अरुण बोला।

जगतकी अनुपस्थितिमें तो वह राजा था किन्तु उसके रहने पर उनसे बहुत डरता था। रमा और शिरीन दोनों विचारमें पड़ गईं। शिरीनने तुरन्त पारसी 'स्टाइल' से साड़ी ठीक कर लिया। उस जातिकी स्त्रियोंका रूप एवं कपड़ा पहननेकी मनोरञ्जक छटा उसमें थी और उसकी कुछ भरी हुई तथा ऊँची शरीराकृति उस वस्त्रसे दमक उठती थी। रमाका तो होश-हवास ही गुम हो गया था; तब वह सुसज्ज कहाँसे होती।

बाहर ताल-बद्ध, दृढ़ पद संचारण सुनाई दिया और जगतने स्नेह-पूर्वक पुकारा, 'अरुण !'

रमाने सोचा कि उसके घरपर जो कठोर, नीरस आवाज सुनाई देती थी इतनी स्नेह-पूर्ण कहाँसे हो गई ?

जगत करमदासके यहाँसे चला आ रहा था। मनमें प्रतिशोधका घंटनाद हो रहा था।

'ओ भैया !—रमा बहन' कहकर अरुणने उत्तर दिया। जगत भीतर आया, दो रमणियोंको देखकर शायद ही कभी उपयोगमें आनेवाली मिठाससे स्वागत करते हुए वह बोल उठा—'ओ हो ! बड़ी खुशी हुई !'

'क्षमा कीजियेगा मि० जगतराय ! मूसलाधार वर्षा हो रही थी जिससे हम यहाँ आईं, यह आपका छोटा मित्र हमें ऊपर ले आया।'

'बहुत अच्छा हुआ। आप···!'

रमा बीचमें बोल उठी—बिना बोले छुटकारा भी तो नहीं था—'ये मिस शिरीनबाई हैं; मेरी कॉलेज-फ्रेण्ड।'

शिरीन तो जगतको देखती ही रह गई। 'हम आपकी पुस्तकें देख रही थीं, आप क्या लिख रहे हैं ?'

'भारतका इतिहास, इसका मुझे अत्यधिक शौक है। 'भारतका इतिहास :

आदर्शवादी दृष्टिसे'। आपको इतिहासका शौक है ?' सबके बैठ जानेपर जगतने पूछा। रमाने जगतको इस समय नये स्वरूपमें देखा। उसमें दृढ़ता थी किन्तु कठोरताका कहीं नामोनिशान भी न था। किन्तु जो शांति एवं आत्मनिष्ठा उसमें दिखाई पड़ती थी वह यथावत् थी। कुछ इधर-उधरकी बातें करनेके पश्चात् शिरीन उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी।

'मि० जगतराय! क्षमा कीजिये किंतु आप दूसरे 'बनियों' से बिलकुल ही भिन्न लगते हैं।'

'कैसे ? जिसे आप 'बनिया' कहकर तुच्छ समझती हैं वह क्या इतना गया गुजरा हो गया है कि उसमें प्रशंसा करने योग्य कुछ बचा ही नहीं है ?'

'जी नहीं ! किन्तु आप जैसा मैंने कोई देखा ही नहीं।'

'मैं ऐसा नहीं समझता; न जाने क्यों लोगोंमें ऐसी धारणा बँध गई है कि हिन्दु-जातिमें मनुष्यता मानो रही नहीं गई। यह उनकी बहुत बड़ी भूल है, इसे जितना शीघ्र सुधार लें उतना ही अच्छा; अन्यथा कोई दिन हिन्दू उसका पूरा बदला ले लेंगे।'

'लिया है, लिया है। आप जैसा कोई कोने अतरेमें कहीं पड़ा होगा, बाकी तो—'

'बाकी सब आपके मतसे तुच्छ हैं।' जरा हँसकर जगतने कहा, 'स्मरण रखिये जितना हिन्दूमें है उतना किसीमें नहीं है। किन्तु यह बात जाने दीजिये। चाय पीजियेगा ? देखिये, पानी अभी बंद हो जायगा। रमा बहन ! आप कुछ बोल नहीं रही हैं ?'

रमा तो यही विचारमें तल्लीन थी कि जो कठोर नादिरशाह जैसा जगत उसके यहाँ आता था उसके बदलेमें यह क्या ? 'क्या बोलूँ ? बात करनेकी अपेक्षा मुझे सुनना अधिक अच्छा लगता है। आपने बैठकेकी सजावटकी तुलनामें अपने 'लाइब्रेरी' के साथ अन्याय किया है, या नहीं ? इसे तो बिलकुल ही सादा बना डाला है।'

'जी नहीं, मेरे मतानुसार तो बैठकके साथ घोर अन्याय किया गया है।'

'वह कैसे ?' शिरीनने पूछा।

'क्योंकि बंबईके शौकीनोंके उचित स्वागतके विचारसे कमरेको व्यर्थ और मूल्यवान खिलौनोंसे सजाना पड़ा है।'

शिरीन चीख उठी। यह सुनकर वह ठट्ठा मारकर हँस पड़ी। जगत कैसा सादा जीवन व्यतीत करता है, इसका उसे क्या पता था? 'क्या कह रहे हैं? आप जैसा सुशिक्षित इस प्रकार कहे तो—'

'तब दूसरा कौन कहेगा? अशिक्षित तो अवश्य ही दिखावेके लिए सजावट रखेगा। मेरे विचार तो बिलकुल भिन्न हैं उसमें पारसी स्त्रीको तो पागलपन ही लगेगा।'

'नहीं नहीं, कुछ कहिये न। आप हमारे यहाँ इतना आते हैं किन्तु अपने सम्बन्धमें तो कुछ कहते ही नहीं।'

'अपने सम्बन्धमें क्या कहूँ? कुछ कहने लायक हो भी? आपके सुधारोंने मेरे मनमें प्रवेश नहीं किया है। मेरा तो ख्याल है कि सन्तुष्ट करनेके लिए वस्तुएँ रखनेकी अपेक्षा उन वस्तुओंके बिना मन मारनेमें अधिक बड़प्पन है किन्तु बंबईकी युवतियोंको यह रुचिकर नहीं होगा।'

———

६५

'आप मानो वृद्ध हैं!' शिरीनने कहा।

'जी नहीं, मैं वृद्ध नहीं हूँ किन्तु आयुसे बढ़कर दुःख, चिन्ता एवं विचारके वेगने मुझे अधिक बूढ़ा बना दिया है। मुझे पता है कि हम सब प्रमोदोल्लासमें लीन होकर अपनी चारित्र्य-भावना खो बैठते हैं और यदि ऐसा ही चलता रहा तो हम सब कुछ खो बैठेंगे।'

'तब आप पुराने लकीरके फकीर हैं, क्यों?' रमाने पूछा।

'तब आपको हम लोगोंका अध्ययन-अध्यापन भी अच्छा न लगता होगा। शेम! मि० जगतराय!' शिरीन उबल पड़ी।

'जी नहीं, आपकी अपेक्षा मैं उदार विचार वाला हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप पढ़ें, जो कुछ हम करते हैं सब आप करें, सब रीति-रिवाजोंको तोड़ डालें;

जो जो वस्तुएँ आपकी प्रगतिमें बाधक रूप आवें सबको दूर कर दें। किन्तु एक बात न भूलें, हमारे हिन्दुओंकी रगोंमें विशिष्ट रक्त है, हमें आमोद-प्रमोद और विषयोल्लासमें पाश्चात्यकी नकल नहीं करनी चाहिए। हमें तो त्यागवृत्ति एवं वैराग्यमें ही मनुष्यता मिलती है, इसके बिना हम मनुष्य ही नहीं हैं।'

'तब आप इस प्रकार क्यों घूमते हैं? पहन लीजिये न गेरुआ वस्त्र!' वादाविवाद करते हुए शिरीनने कहा।

'किसलिए? यदि वेशसे मेरा विनोद बढ़े, मेरे निग्रहमें खलल पड़े तो तत्क्षण उसे त्याग दूँ। आज इन्हीं विचारोंने हमारा सत्यानाश कर दिया है। यदि सच्चा वैराग्य हो तो इच्छित वस्त्र धारण करनेसे हानि? इस संसारके प्रत्येक क्षेत्रमेंसे आसक्ति वालोंको क्या हटाया नहीं जा सकता?'

'यह किसलिए? वैराग्य आने पर किस काम का?'

'आपकी मनुष्यता दिखानेके लिए और आपके समाज एवं देशको विश्व-नियमोंके मार्गपर अग्रसर करनेके लिए। जहाँ विजय है वहीं विश्व-नियम है और वह विजय—लम्बे समयके लिए, निडर विजय—प्राप्त करनेके लिए जो भी प्रयत्न करना पड़े उन सबको करना वैराग्यका प्रथम चरण है। यदि किसी का खून करनेसे विश्व-नियमकी रक्षा होती हो तो वैसा करनेमें विरागीका मन पुण्य-पापका ख्याल नहीं करता।' जगतकी आवाज गूँज उठी। उसमें एक अलौकिक प्रतिभा चमक रही थी। दोनों बालाएँ स्तब्ध होकर देखती रहीं।

चाय आई और सब पुनः संसारमें उतर आये; हँसे बोले और पानी बन्द हो जानेसे दोनों युवतियाँ उठ खड़ी हुईं।

'मि० जगतराय! बड़ी खुशी हुई, अवश्य आइयेगा। मेरे पिताजी बहुत खुश होंगे। हम मरीन लाइन्समें रहते हैं।' कहकर शिरीनने 'शेक-हैण्ड' किया।

रमाने जाते समय हाथ बढ़ाया, जगतने उसे लिया और रमापर उसकी दृष्टि पड़ी। उसके चेहरेपर लाली छाई हुई थी उसकी आँखोंमेंसे अन्य युवतियों की भाँति ही एक प्रकारकी भावना झलक रही थी। उस दृष्टि-पथसे रमाका हृदय जगतके चरणोंपर अर्पित हो गया।

अरुणको सलाम कर दोनों निकलीं।

'रमा ! ऐसे पुरुष यदि सभी हों तो (Coward Adam) वाला मत बदलना पड़ जाय ।' शिरीन अपने विचारको न रोक सकी ।

'मैंने क्या कहा था ?' रमा कह तो गई किन्तु मनमें जगत और शिरीन का मिलन अच्छा नहीं लगा । शिरीनके प्रमाणिक निष्कपट चेहरेपर प्रशंसाका भाव अङ्कित था ।

× × × ×

जगतने इतने विनयपूर्वक वार्तालाप किया था फिर भी उसकी स्त्री जातिके प्रति विरक्ति पहले जैसी ही बनी रही, जगतने रमाके चेहरेपर अङ्कित भावको लक्ष किया था जिससे उसके मनमें एक विचार उठा, विचार विषम, घृणित लगा, फिर उसने सोचा—समीक्षा की । रघुभाईसे प्रतिशोध लेनेका विचार मन्द पड़ गया था । रघुभाईने रुपया बम्बई बैंकमें और इज्जत अपने सुगठित आडम्बर वाले चारित्र्यमें रख छोड़ा था जिससे इनके द्वारा उसपर आक्रमण नहीं किया जा सकता था । ज्यों-ज्यों प्रतिशोध लेनेमें देर लग रही थी त्यों-त्यों वह खीजता था और उसे ऐसा लगता था मानों वह अपनी माताके प्रेमका अपमान कर रहा हो । उसे यह तो विश्वास था कि इस पापीसे प्रतिशोध लेना विश्व-नियमको रुचिकर होगा । इस प्रकार विचार करते हुए उसे एक नया मार्ग सूझ गया । रघुभाईको चाहे जिस प्रकार भी यदि दुःखी करना ही ध्येय हो तो यह मार्ग क्या बुरा है ? रमा अपने पिताकी एकमात्र रत्न थी । उसका दुःख, वही उसके बापका दुःख होगा । यह विचार कर वह खिड़कीके बाहर कठोरतासे देखने लगा ।

चारित्र्य दो प्रकारका बननेका प्रयत्न करता है । यदि मनुष्यको शान्तिकी आवश्यकता हो, सुख प्राप्त करना हो तो अवश्य ही काम-क्रोधके रजोगुणी भावोंका त्याग कर चुपचाप रहना और निवृत्ति-पंथमें विचरण करना । यदि रजोगुण स्वीकार किया तो फिर शान्ति एवं सुखको त्याग देना चाहिये । इसके उपरान्त तीसरा रास्ता भी है जिसे अनन्तानन्दने स्वीकार किया था । पहले बाहरकी वस्तुओं पर आधार रखे बिना सुख मिले, ऐसा स्वभाव बनाना, उसमें यथाशक्ति अभ्यास कर, अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर शान्त स्वभावसे जो विश्व-नियम हों उनका स्थिर रूपसे निरीक्षण करे और विश्व-नियमोंका शान्तिपूर्वक निरीक्षण

कर उनका जीवनमें पालन करनेका प्रयत्न करना। इस प्रयत्नमें प्रसंगवशात् यदि रजोगुण स्वीकार करना पड़े तो उसे एक नाटकके वेशके समान स्वीकार करना। साथ ही अन्तरकी 'व्यवसायत्मिका बुद्धि' जरा भी हटने नहीं देना। इस आदर्शका अनन्तानन्दने अपने जीवनमें समावेश किया था और जगतको उसकी शिक्षा दी थी। जब तक वह अनन्तानन्दके पास था तब तक उनके दिखाये हुए विश्व-नियमके अनुसार शरीरको मनसा और कर्म द्वारा पूर्ण किया किन्तु अभी उसकी वासना नष्ट नहीं हुई थी, वह प्रेम और द्वेष रूपमें विद्यमान थी। अपना निजी द्वेष निकालनेसे विश्व-नियमकी रत्ता होगी, ऐसा उसने सोचा। द्वेषका विचार किया करता था जिससे उसकी निर्मल बुद्धि नष्ट हो गई और करमदासके साथ बात करते समय क्रोध उत्पन्न हुआ, अस्वस्थता बढ़ी; बुद्धि, शुद्ध विश्व-नियमोंको देखना भुलाकर अशुद्ध अमानुषी व्यवहार देखने लगी। येन-केन प्रकारेण प्रतिशोध लेनेका उसने निश्चय किया—और उसके लिए रमाको कारणभूत बना डाला।

श्यामदासके सम्बन्धमें थोड़ा बहुत करमदाससे सुना था, अब गुलाबका पता लगानेका उसने निश्चय किया। जगतके लिए निश्चय और कार्य-तत्परता एक समान था।

जगतने मेसर्स पारखेरिया एण्ड सन्स, सालिसिटरसे भेंट की। मि० पारखेरिया अब कामसे अलग हो गये थे और उसके पुत्र पिताका काम चला रहे थे। उनसे हरिलालकी विधवाका पता लगानेमें कठिनता नहीं हुई क्योंकि गुलाबके पास मासिक यहींसे भेजा जाता था।

जगत वहाँ गया, कोठरीमें ताला बन्द था। पड़ोसियोंसे पता चला कि दो-तीन दिन हुए गुलाब ताला बन्द करके गई, तबसे आई नहीं। कोई काठियावाड़ी पगड़ी वाला आकर उसे लिवा ले गया था! रघुभाई क्या? किसलिए रघुभाई गुलाबको लिवा ले गया होगा? आडम्बरके ऐसे भक्तके लिए गुलाब जैसी पतिताको ले जानेमें अवश्य ही कोई सबल कारण होना चाहिये।

जगत रघुभाईके यहाँ गया। अपनी निर्धारित राक्षसी योजनाको सफल बनानेके लिए वह रघुभाईके यहाँ प्रायः जानेसे चूकता नहीं था। रघुभाईने

देखा कि कठोर, भावहीन, जगतमें कुछ कोमलता आ गई है; जिसका कारण रमा है, यह निश्चय कर वह अधिक स्नेहपूर्वक जगतकी आवभगत करने लगा। जगतकी उपस्थितिमें रघुभाई रमाके प्रति अत्यधिक स्नेह प्रदर्शित करता था और दोनोंको अकेला छोड़ कोई बहाना निकाल कर वहाँसे हट जाता था। जगत भी यह चाहता था। कठोरताके अदृष्ट रहने पर उसका आकर्षण भयानक होता, उसका हास्य जरा खेदयुक्त पर मोहक था, उसकी बातें कभी-कभी कटाक्षमय पर रसपूर्ण होतीं।

रमाको तो मुँह माँगी मुराद मिल गई। रघुभाईने जिस दिन जगतके साथ विवाह कर देनेकी बात कही थी उसी दिनसे उसके मनमें जगत बैठ गया था। हिन्दू-बालाकी सरल श्रद्धासे उसने जगतको अपना पति समझ लिया था; और वह भी इतना प्रभावशाली फिर पूछना ही क्या? वह जगतके शब्द-लालित्य पर नाचने लगी; उसका इस प्रकार बाट जोहती मानो जगतके शब्द अथवा दृष्टिपर ही उसका जीवन अवलम्बित हो। पढ़ाईसे विरक्ति हो गई, कवियोंके रसमय काव्योंमें नवीन जादू दिखाई दिया। रमाका स्वभाव सादेपन एवं भलाई की नींवपर बँधा था; वैर, द्वेष, खटपट ये सब विचार उसके मनमें कभी आते भी नहीं थे। उसके लिए तो सुखका सूर्य उदय हुआ; हृदयमें आने वाली स्त्रीत्वकी नवीन, मनको अच्छी लगनेवाली, मीठी उमङ्गोंको उल्लासके साथ उसने स्वीकार किया। कुछ-कुछ मीठे सुख-स्वप्न देखने लगी किंतु ये सब मनमें ही लीन हो जाते। इन सबका मनमें ही अनुभव करना उसे अच्छा लगता था। बाहर निकालनेसे शायद सब भ्रष्ट हो जायगा, ऐसा लगता। प्रायः वह जगतको स्वप्नमें, विचारमें देखती; भव्य, तेजस्वी, अतिथिके रूपमें नहीं बल्कि स्नेहमय, प्रिय पतिके रूपमें। रमा बहुत कोमल थी; परिस्थितिका स्वतन्त्र विचार करना उसे आता नहीं था। जो कुछ सानुकूल होता उसका मूक आनन्द लेती, प्रतिकूल होता तो चुपचाप सहन करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय न था। फिलहाल तो जगतके बिछाये हुए जालमें वह फँसती जा रही थी।

रमाकी बुद्धि अत्यधिक सुसंस्कृत थी, मनुष्य चारित्र्यकी विशेषतामें देखने के लिए वह सदैव तत्पर रहती थी। जगतके जीवनमें उसने कुछ न्यारी भावना

देखी। अब तक जिन पुरुषोंके संसर्गमें वह आई थी वे सभी लोभ एवं महत्त्वाकांक्षाके पीछे स्वार्थबुद्धिसे बिना विचारे दौड़ पड़ते थे, किन्तु किसी व्यवस्थित घड़ीके गतिकी तरह या बुद्धिमान सायंटिस्ट (विज्ञान-शास्त्री) की देख-रेखमें परिचालित यन्त्रके समान जगतके सभी कार्योंमें, शब्दोंमें, नियम, दृढ़ता तथा स्थिरता दिखाई देती थी। रमाको ये सब नवीन दिखाई देते। यह संसारके दूसरे व्यक्तियोंसे बिलकुल भिन्न था। इस नई भावनाने उसके मनको वशमें कर लिया। जगतसे पूछनेका साहस उसमें नहीं था किन्तु वह उसके प्रति शब्द पर ध्यान देकर उसके जीवनकी छवि अपने मनमें चित्रित करनेका प्रयत्न करती।

जब जगत वहाँ गया तब रमा खिड़कीमें खड़ी थी, दूरसे ही उसे देखकर जरा हँसा, रमाने शरमाते हुए मुस्कराकर सिर हिलाकर उसका स्वागत किया। जगतको प्रतिशोध लेना अब कठिन नहीं जान पड़ा। उसकी प्रबल इच्छाशक्ति इस कार्यमें लग गई थी और बिना किसी दया, बिना किसीके डरके यह विनाशवृत्ति, जिस प्रकार इञ्जिन विचार बिना सब कुछ कुचलती हुई आगे बढ़ती है उसी प्रकार अग्रसर हुई। बदमाश तो बदमाशी करता है किन्तु सन्त जब बिगड़ जाता है तब उसकी अपेक्षा बदमाश भी भला। साधारण अपराधीके दोष, उसकी बदमाशीको अपूर्ण रख लोगोंकी उससे रक्षा करता है किंतु संतके परिवर्त्तित सद्‌गुणोंमें अपूर्णता नहीं होती जिससे कोई बच नहीं सकता।

जगत भीतर गया। रघुभाई घरमें नहीं था जिससे रमा और जगत वार्त्तालाप करने लगे। शिरीनका एक दिन पूर्व पत्र आया था। पुत्रीसे जगतके सम्बन्धमें सब बातें सुनकर उसके पिता जगतसे मिलना चाहते हैं। 'क्या मि० जगतराय मेरे यहाँ आवेंगे ?' शिरीनने पूछा था, 'तीसरे दिन प्रातःकाल रमाके साथ आवें तो मुझे अत्यन्त आनन्द होगा।' जगतने जाना स्वीकार किया और वह उठ खड़ा हुआ। जगतसे 'शेक-हैण्ड' करना रमाके लिए सातवें आसमानमें विहार करनेके समान था, जगतने भी अपना हाथ रमाके हाथमें थोड़ी देर रहने दिया।

जगत जब रघुभाईके घरसे निकलता तब उसकी भृकुटी-भौंहें चढ़ी रहतीं। इस प्रकारकी मनोदशा बदल न जाय इसलिए गुणवंतीका स्मरण कर वह दृढ़ता प्राप्त करता।

———

६६

जगत, रघुभाई और रमा केकोबाद वकीलके यहाँ गये। केकोबाद वकील दस वर्ष पहले व्यापारमें अच्छा धन पैदाकर इस समय वानप्रस्थाश्रम भोग रहे थे। वे पुराने विचारके पारसी थे, अभी भी उन्होंने पुराना सादापन रख छोड़ा था—और अपनी जातिको अर्द्ध अँग्रेज समझ हिन्दुओंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना सीखा नहीं था। अनेकानेक हिन्दुओंके साथ उनका प्रगाढ़ सम्बन्ध था जिनमें रघुभाई भी एक थे। मि० वकील बराबर अध्ययनमें लिप्त रहते हुए भी अपने पुत्रोंके व्यापारपर भी ध्यान रखते थे।

शिरीन दरवाजेपर खड़ी थी, उसका मुख आनन्दसे दीप्त हो रहा था। रमा जितनी लज्जावती थी उतनी ही शिरीन बोल-चालमें स्वतंत्र थी।

'कम इन (भीतर चलिये) मि० जगतराय! रघुभाई! सकुशल तो हैं? रमा डियर! चलो। पिताजी सामने गार्डनमें आपका ही इन्तजार कर रहे हैं।'

बँगलाके पीछे बेलसे ढँका हुई एक झाड़ी थी; वहींपर मि० वकील अपनी पत्नी एवं एक पौत्रके साथ बैठे थे। अतिथियोंका स्वागत करनेके पश्चात् सब लोग बैठ गये और थोड़े ही समयमें मि० वकील भी जगतकी बातें सुनकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। बारह वर्षमें अनंतानंद जैसे ज्ञानीकी संगतिसे जगतने इतना अधिक विकास कर लिया था कि दूसरे सबका ज्ञान एवं वाक्य-चातुर्य उसके सामने बालक जैसा लगता। कुछ देर तक केवल जगत ही बोलता रहा और सब सुनते रहे। रघुभाईका बर्त्ताव तो ऐसा था मानो जगत उसका जामाता ही हो; इससे वह भी सब विस्मरण कर, घमण्डसे उत्तेजित हो उठा। दो घंटे तक सब वहाँ बैठे रहे और मि० वकीलने जगतके यहाँ आनेका वचन दिया।

× × ×

शिरीन, उसके पिता और कभी-कभी रमा तीनों अक्सर ही जगतके यहाँ जाते। विद्या-विलासी स्वभावके वकील तो जगतपर आनंदातिरेकसे पागल-से हो गये और घंटों बैठे हुए जगतके विशाल, गम्भीर विचार सुना करते थे। शिरीन भी धीरे-धीरे जगतकी ओर आकृष्ट होती गई; पर जगतके अनेक व्यवहार उसे अत्यधिक विचित्र प्रतीत हुए।

'आप जमीनपर सोते हैं ?' एकाएक चीत्कारकर शिरीनने पूछा ।

'जी हाँ !'

'ऐसा नीरस जीवन आपको कैसे अच्छा लगता है ?'

'क्यों, इसमें क्या हुआ ? यह प्रश्न आपने कई बार पूछा है ।'

'शिरीन, यह तेरी समझमें नहीं आयेगा ।' मि० वकीलने कहा ।

'नहीं पिताजी ! इनका कथन मैं समझ रही हूँ; लेकिन ईश्वरने जब विलास एवं आकांक्षा बनाया है तब उसका उपभोग क्यों न किया जाय? नियमित आनंद का अनुभव क्यों न लिया जाय ? मन दबानेमें ही मनुष्यत्व है, यह मेरी समझ में नहीं आता ।'

'आपको समझनेमें देर लगेगी । आप हिन्दू नहीं हैं; कुटुम्बके साथ रहना आपने सीखा नहीं है; आपने कभी दुःख भी नहीं झेला । इसके विपरीत आपके विलासके शास्त्रने मनुष्यको पशु बना दिया है, यदि आप स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव करें तब आपको हमारा सिद्धान्त समझमें आयेगा ।'

'यदि ऐसा है तब आप कविता क्यों पढ़ते हैं ? रसिकताका पोषण क्यों करते हैं ?'

'आपके मस्तिष्कमें यह भेद अभी स्पष्ट नहीं हुआ है । मेरा मन मेरे साम्राज्यसे अधम हो, मेरेमें एक भी उमङ्ग न उठती हो तब तो मैं एकांतवासी या जङ्गली ही बन जाऊँगा ! जो कुछ मैं करूँ वह नियमबद्ध, कलायुक्त हो; अपूर्ण न रहे इसके लिए रसिकताका अभ्यास आवश्यक है; यदि मैं क्रोध करूँ तो वह बिलकुल अश्वत्थामा जैसा होना चाहिये और भाव प्रदर्शन करूँ तो वह शेली (एक अँग्रेज कविका नाम) जैसा हो ।'

'किन्तु यह क्या दोनों बातें गलत नहीं हैं ?' मि० वकीलने पूछा ।

'आपके मतसे; मेरे मतसे तो शान्ति ही सच्ची है; इससे भिन्न सब मिथ्या है । यदि मेरी बुद्धिको अमुक प्रसङ्गपर रोष करना वास्तविक प्रतीत हो तो क्यों न सृष्टिके प्रभावशाली रोष जैसा हो मैं उसे प्रकट करूँ ? यदि भाव प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो उसे क्यों न अपूर्व रूपसे प्रदर्शित किया जाय ? अपूर्णतामें मैं विश्वास नहीं करता ।'

× × × ×

एक दिन शिरीन जगतके यहाँसे लौटी, उसे चैन नहीं था। वह बागमें जाकर झूलेपर बैठ गई। उसका सिर कुछ दुःख रहा था, उसे चारों ओर उदासी मालूम पड़ रही थी। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि हृदय क्यों इतना धँसा जा रहा है। अपनी मनोदशाके सम्बन्धमें विचार करने लगी। 'अब तक वह पुरुष मात्रसे घृणा करती थी, वह दृष्टि-बिन्दु कहाँ गया? रमा क्यों उसे वक्र-दृष्टिसे देखा करती है और उससे मिलना भी उसने क्यों बन्द कर दिया? जगत रमाके प्रति आकृष्ट हुआ है या नहीं? मेरी भाषा जगतके समान हृदयको अपील करने वाली क्यों नहीं होती? मेरे विचार उसके जैसे सर्वग्राही क्यों नहीं बनते? मेरा चारित्र्य नियमित एवं व्यवस्थित क्यों नहीं होता? कब मैं जगत जितना पढ़ सकूँगी! उसके सदृश लिख सकूँगी? जगतके साथ वादाविवाद करनेके लिए उसने नये विषय चुपचाप पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था एवं 'चारित्र्यकी भावनायें के नामसे एक निबन्ध भी लिख रही थी। क्या जगतको यह पसन्द आयेगा?'

होमी सेठने आकर शिरीनको नमस्कार किया। मि० सेठ उन्नतिशील घरके सम्पन्न एक युवक बेरिस्टर थे। वे शिरीनके लिए उम्मीदवार थे। शिरीनने मि० सेठके लम्बे शरीर, अप-टु-डेट (Up-to-date) वस्त्र और काकुल काढ़े हुए चमकीले बालोंको देखा और वह कुछ विरक्त हुई। बराबर वह इसी प्रकारके मनुष्योंको देखा करती थी! नामके मनुष्य, मिट्टीके पुतले, स्वार्थ एवं सामान्यताके अवतार जो साइनबोर्डपर चित्रित नमूनेके समान संसाररूपी पटपर चेतना-विहीन पड़े रहते हैं। शिरीन इन नीरस व्यक्तियोंको पहले व्यथित दृष्टिसे देखती थी किन्तु जबसे जगतकी प्रभावशाली, भावनापूर्ण, मानवता उसने देखी तबसे ऐसे मनुष्योंको सचमुच घृणासे देखने लगी थी।

'क्यों शिरीन? अकेली क्यों बैठी हो?'

'यों ही, कुछ सोच रही थी।'

'तू बहुत सोच-विचार किया करती है, यह ठीक नहीं। यदि मैं सफ्रेजेटके मतका न होता तो क्रुद्ध हो जाता।'

'क्यों विचार करना अपराध है क्या ?' शिरीनके उत्तरमें कटाक्ष था।

'नहीं, पिनलकोडमें अभी ऐसा तो नहीं है किन्तु स्त्रियोंके लिए उसमें एक धारा बढ़ा दी जाय तो अच्छा हो' कहकर होमी झूलेपर बैठ गया। आज वेदर (Weather) कुछ ठंडा है।'

शिरीन मनमें जरा हँसी। वही नपे-तुले शब्द !

'मुझे तो गरमी लग रही है।'

'ऐसा ?'

'जी हाँ, इसका आधार तो मन होता है।'

'तू फिलासफर कबसे हो गई ?'

'तुमने उसे छोड़कर कानून लिया तभीसे। अच्छा होमी ! तुमने बी० ए० में फिलासफी लिया था न ?'

'क्यों, परीक्षा लेनी है क्या ?'

'कुछ काम है। मैं बेन्जामिनकीडका 'सोशल इवोल्यूशन' पढ़ रही हूँ, उसमें एक स्थल समझमें नहीं आया।'

'तोबा अल्ला ! शिरीन, यह भूत किसने तुझे लगा दिया ?'

'एक फ्रेण्ड (मित्र) हैं।'

'कौन है वह ?'

'एक हिन्दू-मित्र हैं, किताब लाऊँ उसे समझा सकोगे ?'

'देखो, मैं सब भूल गया हूँ। यदि तुम कहो तो कानूनकी बातें समझा दूँ।'

शिरीन बड़े परिश्रमसे मनको संयत रख सकी। वह बोली—'होमी, तब चलो भीतर चलें।'

'नहीं, मुझे कुछ बातें करनी है। तू फिलासफीका विचार दूर कर तब बातचीत हो।'

'तुम्हारी बातसे फिलासफीका बैर है क्या ?'

'कुछ-कुछ, शिरीन ! ध्यान देकर सुनो, कृपाकर बात उड़ाओ मत। तीसरी बार तुमसे कहने आया हूँ। अब कब तक हमलोग इस प्रकार अलग रहेंगे ?'

शिरीन स्पष्ट-वक्ता एवं खुले दिल वाली युवती थी। वह बोली –'होमी डियर ! तुम मुझे प्यार करते हो ?'

'सच्चे दिल से !'

'तुम मुझे दुःखी बनाना चाहते हो ?'

'नहीं, सुखी करना !'

'तब यह प्रसंग कृपाकर जाने दो। मुझे स्वार्थी, मूर्ख जो समझना हो, समझो किंतु मैं दुःखी होनेके लिए विवाह नहीं करूँगी। तुम्हारे साथ विवाह करनेमें मुझे सुख दिखाई पड़ेगा तब तुरन्त तुमसे कहूँगी।'

'इस प्रकार बात उड़ाओ मत, शिरीन ! मेरा प्रेम सच्चा है, इसे तो तुम मानोगी ही।'

'मैंने इसे अस्वीकार कब किया किन्तु हम दोनोंके विचारोंमें इतनी भिन्नता है कि विवाहोपरान्त हम दो दिन भी सुखी नहीं रह सकेंगे।'

'ऐसा क्यों कह रही हो ? हमारे विचार भिन्न कैसे हैं ?'

'देखो, होमी ! मुझे दूसरी स्त्रियोंके समान झूठा-सच्चा बोलने आता नहीं। तुम मुझे प्यार करते हो क्योंकि मेरी प्रमाणिकतापर तुम्हें विश्वास है। तुम जरा शौकीन, लहरी हो, पर मैं तो पुरानी लकीरकी फकीर हूँ। तुम्हें संसारका और मुझे बुद्धिका आनन्द लेना अच्छा लगता है। इससे हमारे विवाहका फल कैसे अच्छा हो सकता है ?'

'अरे, यह भी कोई कारण है; शिरीन !'

'मैं अत्यधिक दुःखी हूँ किंतु हमारी उम्रके स्त्री-पुरुष ऐसा विचित्र जीवन व्यतीत करते हैं कि मुझे किसीकी प्रशंसा करनेकी इच्छा नहीं होती और प्रशंसा अथवा मान-विहीन विवाह किस कामका ?'

'शिरीन ! मेरे प्रेम-प्रस्तावका यह उत्तर ?'

'गलत मत समझो होमी ! तुम्हारे लिए मेरे मनमें पर्याप्त आदर है लेकिन दूसरे प्रकारका। मेरा हृदय प्रेम-विहीन विवाह-सम्बन्ध करना अस्वीकार करता है और प्यार बिना विवाह-सम्बन्ध करनेसे बढ़कर दूसरा नीच कार्य कौन-सा हो सकता है ? चलो भीतर चलें।'

'शिरीन ! पीछे पछताओगी ।'

'पछताऊँगी तो भूल स्वीकार कर लूँगी; नहीं पछताऊँगी तो मृत्युके साथ अपने विचार लिए जाऊँगी ।'

६७

'देखिये, पिताजी ! यह बात मि० जगतरायसे मत कहियेगा ।'

'क्यों ? तुम्हारा एसे (Essay निबंध) तो बहुत अच्छा है ।'

'नहीं, नहीं, मुझे लज्जा मालूम पड़ती है ।'

'बस रहने दे । रामा ! मि० जगतराय हैं क्या ?'

'जी, आते ही होंगे । आठ बजे आनेके लिए कह गये हैं ।'

'अब तो आठ बजनेमें कुछ ही मिनट बाकी हैं ।'

'और यह मि० जगतराय नीचे गाड़ीसे उतर रहे हैं ।' शिरीनने खिड़कीके बाहर देखते हुए कहा, 'वे तो कैंटके समान घड़ीकी तरह चलते हैं ।'

जगतको बाँदरामें एक बङ्गला किरायेपर लेना पड़ा था क्योंकि बम्बईका मकान बहुतोंको मालूम हो गया था और रत्नगढ़के अथवा अनन्त-मंडलके कामके लिए कोई आता तो उसे वहीं ठहराना ठीक जँचता था ।

'मि० वकील ! मिस शिरीन बाई ! ओहो हो, आपको अधिक समय बैठना पड़ा, क्यों ?'

'जी नहीं, हम अभी ही आये हैं ।'

सब लोग लाइब्रेरीमें गये ।

'मि० जगतराय ! सॉक्रेटीज़के समान आपको भी लबादा पहरना चाहिये ।'

'इतनी कृपाका कारण ?'

'क्योंकि आप लड़कोंको बिगाड़ते हैं ।

शिरीनने पिताकी ओर आँखें तरेरकर देखा किन्तु मि० वकील माननेवाले नहीं थे ।

'सचमुच ! अरुणने कुछ बदमाशीकी क्या ?'

'जी नहीं, वह तो अभी रमाके यहाँसे आया ही नहीं किन्तु इस मेरी शिरीनको लिखना...'

'नहीं पिताजी !' शिरीनने अपने पिताके मुँहपर हाथ रखा ।

'कोई गुप्त बात है क्या ?' जगतने जरा हँसकर पूछा । उसकी हँसती हुई आँखें हृदय-भेदक थीं ।

'कुछ नहीं, मैंने बैठे-बैठे अंट-संट कुछ लिख डाला है, उसे ही पिताजी व्यर्थमें आपको दिखलानेके लिए आग्रह कर रहे हैं ।'

'न दिखाना तो अन्याय करना होगा कि नहीं ?'

'देख, मैंने क्या कहा था ?' कहकर मि० वकीलने निबन्ध निकाला ।

'मि० वकील ! आप पढ़िये, मैं सुन रहा हूँ; विषय क्या है ?' जगतने प्रोत्साहन दिया ।

'चारित्र्यकी भावनायें !'

'ओहो, शिरीन बाई ! आप तो बहुत आगे बढ़ी हुई हैं !'

शिरीनके कपोल लज्जासे रक्तवर्ण हो गये । वह अपने बुद्धि प्रधान, पौरुषेय स्वभाववश ऐसी लज्जासे आज तक अनभिज्ञ थी ।

मि० वकील पढ़ने लगे; उसके कन्धे परसे शिरीन लेख देखने लगी और कोई सुन्दर वाक्य-प्रयोग आ जानेपर दृष्टि डाल लेती । जगत हथेलीपर सिर रखे हुए मेजपर बैठा था । एक घंटेमें निबन्ध समाप्त हुआ ।

'वेल (अच्छा) मि० जगतराय ! निबन्ध कैसा है ?' मि० वकीलने पूछा ।

'सच कहूँ ?' जगतने कहा, 'शिरीन बाईको दृष्टिमें रखकर लेख बहुत अच्छा है किन्तु अभी विचार परिपक्व नहीं हुए हैं ।'

'कैसे ?'

'अच्छे-अच्छे लेखोंमेंसे वाक्य लिये हैं अवश्य, किन्तु प्रत्येक लेखकका दृष्टि-बिन्दु क्या है, यह समझनेका प्रयत्न नहीं किया गया है ।'

'यानी ?' शिरीनने पूछा ।

'प्रत्येक देशमें चारित्र्यकी भावनायें भिन्न हैं जिससे भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न भावना सामने रखते हैं, इनकी तुलना नहीं की गई है।'

'ठीक ! यह तो मैं भूल ही गई।'

'वह किस प्रकार ?' मि० वकील ने पूछा।

'सबके दृष्टि-विन्दु भिन्न होते हैं। एरिस्टॉटिलकी भावना उदार पुरुषकी है—सभी विदित सद्‌गुणोंका भण्डार, प्लुटार्ककी भावना विजयी नराधमकी है, कारलाइलकी साहसी नरनायकोंकी है, बायबिलकी सहनशीलता एक कङ्गाल की है। यह सब एक देशीय है, कोई भी सर्वदेशीय भावनाकी शिक्षा नहीं देता।'

'तब ?'

'हमारा हिन्दू-नीतिशास्त्र यह सिखाता है।'

'क्या आपका वेदान्त ?'

'जी नहीं, यही भूल है। हमारे ज्ञानियोंके ज्ञान भी उच्च हैं, उनके विचार पूज्य हैं, किन्तु हमारे नीतिशास्त्रकी महत्ताके सामने ये विचार नगण्य हैं। सम्पूर्ण संसार दुःखमय है। उस दुःखके दूर होने पर आने वाली पूर्णता, और उस पूर्णताको प्राप्त करनेका सरल मार्ग, ये जो विचार हैं उनके सामने अन्य सभी विचार छोटे बालकके समान हैं।'

'लेकिन इसी भावनासे ही तो आपका पतन हुआ ?'

'किसने कहा ? यह भावना ही नष्ट हो गई। संन्यासी लफङ्गे वैरागी बन गये; तितिक्षाको लोग भुला बैठे; कर्मके स्थानपर नाक पकड़ना रह गया, तब हमारी भावना नष्ट हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? हमारी दरिद्रता, कापुरुषता इस बड़े पापकी शिक्षा है। जिस दिन हम इस योगसे पतित हुए उसी दिनसे हम इस शिक्षाके पात्र बन गये।'

इस प्रकार बातचीतमें बहुत समय बीत गया। जगत जो कुछ कहता उसका शब्द प्रति-शब्द शिरीन हृदयमें धारण करती।

ग्यारह बजे सब लोग उठे।

'चलो, बहुत देर हुई।' मि० वकीलने कहा।

'जो भी हो, मिस शिरीनबाई ! मेरा अभिनन्दन है। एक दर्जन ऐसे

निबन्ध लिख लें तो आपकी बुद्धि अवश्य विकसित हो जायगी।'

मि० वकील बाहरके कमरेमें आये। शिरीनने अपना वाटर-प्रूफ पहनते हुए पूछा—'तब दूसरा लिखूँ।'

'अवश्य ! क्या परसों ले आइयेगा ?'

'हाँ...नहीं, क्या यह लेख ठीक लिखा गया है ?'

'नहीं तो क्या मेरा अभिनंदन व्यर्थका है ?'

'लिखूँगा तो उसका सब श्रेय आपको होगा।' जरा हँसकर शिरीनने कहा। उसकी आँखोंमें एक अभ्यासीकी चमक नहीं बल्कि दूसरी ही ज्योति थी।

'The devil does not deserve his due !' (शैतान अपना अधिकार पानेके योग्य नहीं होता।)

'जी नहीं, My devil does deserve (मेरा शैतान अवश्य योग्य है)' कहकर हँसती हुई शिरीन अपने पिताके साथ चली गई।

———

६८

रमाका जीवन प्रफुल्लित हो उठा था। उसका कोमल स्नेहशील स्वभाव वासन्ती लताके समान झूम रहा था। दूसरे-तीसरे जगतको देखना, उसके मीठे शब्द श्रवण करना और बाकी समय उसकी तेजस्वी मूर्त्तिके सामने रखनेमें ही उसके दिन-रात व्यतीत हो जाते थे। लज्जावश वह स्वतन्त्रतापूर्वक जगतसे अधिक बोल नहीं पाती थी; हिन्दू-मर्यादासे उसके साथ अधिक न तो बैठ सकती थी और न घूमने-फिरने जा सकती थी फिर भी जगत उसे अपना लगता था। इतने वर्षों तक मानो उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। जबकि आकाशमें गहरे बादल घिर आते और तृषार्त्त धरा आशा लगाये बैठी रहती उस समय उसके हृदयकी उमंगें समुद्रकी तरङ्गोंसे भी अधिक ऊँची उछलतीं। उस समय जगतके मुखकी कल्पना कर उसकी हृदयमें ही आरती उतारती। पढ़ाई सब ताकपर रख छोड़ा था; प्रथम वर्ष होनेसे विशेष हानिकी सम्भावना भी नहीं

थी। बाप भी विचित्र रूपसे भाव प्रदर्शित कर रहा था। इससे अधिक सुख क्या चाहिये ?

शिरीन और उसके बीचमें थोड़ा अन्तर पड़ गया था। शिरीन दिन भर पढ़ती और जगतसे मिलती, यह उसे पसन्द नहीं आया। कारण, वह बता सकनेमें असमर्थ थी। तत्त्वज्ञान एवं अन्य विविध विषयोंमें शिरीनके समान वह स्वयं भाग ले नहीं सकती थी। इससे भी मन संक्षुब्ध हो उठता। किन्तु जब जगत उसके यहाँ आता और काव्य एवं रसिकताके सम्बन्धमें बातचीत करता तब वह सब कुछ भूल जाती। इस सुखमें केवल एक ही रुकावट थी, जगत पहले तो सभ्य एवं स्नेहपूर्ण प्रतीत हुआ किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे एवं अधिकाधिक प्रेम-सरितामें वह उतरती गई त्यों-त्यों जगतकी नियमित, निश्चल सभ्यता, व्यर्थ-सी लगी। उसके हृदयका भाव जाननेका वह सतत प्रयत्न करती किन्तु जगतके स्वस्थ व्यक्तित्वके सामने उसे पराजित हो जाना पड़ता और उसके सब अरमान मन ही में रह जाते। इस व्यवहारसे वह थक गई। पर करे क्या ? जगतका स्नेहपूर्ण बर्त्ताव पूर्ववत् चल रहा था। कभी-कभी अपनेको वह मूर्ख कहती किंतु दिनों-दिन उसे जगतकी अधिक आवश्यकता प्रतीत होने लगी; कभी-कभी अरुणको अपने पास रखकर उसके 'भैया' की बातें करती; कभी किसी कविके रसीले पदमें जगतका चित्रण समक्ष, उसका मनन करती। मनको कोई आबद्ध कर सका है ? वह समझती कि वह स्वयं जगतकी मालकिन है। सुकोमल अवयव कठोर धरतीपर पड़ा होगा ? बिचारेको कितना दुःख है। क्या उसका रसोइया खराब भोजन बनाता है ? उसके हाथमें होता तो...' पुनः एकाएक चौंक पड़ती और अपने मनको ऐसे कल्पना-जगतमें विचरनेसे रोकती।

दूरसे जगत आता हुआ जान पड़ा। वह सदैव बाहर ही बाहर बैठकमें जाता, रघुभाईसे भेंट करता और रमासे भी वहीं मिलता। उन्हें अकेले छोड़ रघुभाई प्रायः वहाँसे चला जाता अन्यथा जगत कभी भी रमाके साथ एकान्तमें न रहता।

'क्यों रमा बहन ! अरुण कहाँ है ?'

'यहाँ हूँ भैया ! रमा बहनके लिए एक अच्छी-सी माला बना रहा हूँ ।' अरुण मालामें फूल पिरोते हुए बोल उठा ।

'मेरे लिए ?' रमा जरा लजाकर बोली ।

'तुम विवाह करोगी न, उसीके लिए ।'

रमाको लगा जैसे वह जमीन धँस जायगी । वह नीचेसे सिर उठाकर ऊपर देख भी न सकी ।

'अरुण बड़ोंसे मजाक करना ठीक नहीं ।' जगतने जरा कठोर आवाजमें कहा । रमा निराश हो गई । उसने दूसरा ही कुछ सोचा था । लँगड़ाता हुआ अरुण आ रहा था, वह कुछ अप्रतिभ हो गया । थोड़ी देर बाद वह नौकरके साथ घर चला गया ।

'रमा बहन !' 'बहन' पर अदृष्ट जोर था । आवाज बिलकुल ही भावहीन थी । 'रघुभाई कहाँ हैं ?'

'भीतर होंगे, चलिये !' हृदयको दबाते हुए रमा बोली ।

'आइये जगत भाई !' रघुभाईने अपनी स्वाभाविक नीति निपुणतापूर्ण मुस्कराहट धारणकर कहा ।

'अच्छा ! आपको खबर है कि मि० वकीलके विवाहकी 'गोल्डेन-जुबली' (पचासवीं संवत्सरी) है ।'

'हाँ, अभी तो कई दिन हैं, शिरीन कह गई है ।'

'जी हाँ ! कल कॉलेजमें भी यही बात चल रही थी । बड़ी धूमधामसे मनाई जाने वाली है ।' रमाने कहा ।

'अरे हाँ !' कहकर रघुभाईने दरवाजेकी ओर देखा और चौंक उठे, 'आप यहीं बैठें मैं अभी आया ।

'कौन है पिताजी ?'

'श्यामदास है ।'

'श्यामदास कौन है ?' जगतने अनजान बनकर पूछा ।

'एक मेरे परिचित हैं ।'

श्यामदास अभी स्टेशनसे चला आ रहा हो, ऐसा जान पड़ रहा था । जगत

भी इस प्रकार चलनेके लिए उद्यत हो गया मानो उसे रमासे कोई सरोकार ही न हो। वह बोला, 'मैं भी अब जाऊँगा।'

'ठहरो, अभी मैं आता हूँ तब जाना।' कहकर रघुभाई चला गया।

'रमा बहन! पहले चित्रकारी करती थीं न? आप उस दिन कह रही थीं।'

'जी हाँ, मैं 'प्रीवियस' में थी तब शौक था, पीछे छोड़ दिया।'

'क्यों?'

'उसमें मुझे सफलता नहीं मिली। चित्र परके चेहरेका भाव नहीं आता था, बिगड़ जाता था जिससे छोड़ दिया चिढ़कर।'

'यदि वे भाव अपने अन्दर विकसित करनेका अभ्यास करें तो अवश्य आ सकता है।'

'यदि आपको पसंद हो तो पुनः प्रारम्भ करूँ।' रमाके मुँहसे निकल पड़ा।

'नहीं जी, थैंक्स (धन्यवाद)! मेरे लिए पसंद और नापसंद क्या?'

रमाके मुँहसे आह निकल गई, क्या इन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसने साहसकर पूछा—'क्या इस नीरस जीवनसे आपमें अरुचि नहीं उत्पन्न होती?'

शिरीनने भी यही प्रश्न किया था किंतु उत्तर कुछ और मिला था।

'मेरेमें? इसके विपरीत मुझे अच्छा लगता है। मैं सबको अपना-पराया के भ्रमजालमें भ्रमण करते हुए देखकर हँसता हूँ।'

'मैं तो आपको ऐसा हृदयहीन नहीं समझती।'

'तब आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं पत्थर हूँ पत्थर! नहीं पत्थर भी पिघल जाता है।'

'यदि ऐसा है तो इतनी रसिकतासे बातें कैसे करते हैं?'

'आपको खुश करनेके लिए।'

जगतका हास्य कितना मधुर है, रमाने सोचा—'मुझे?'

'हाँ! अच्छा, अब मैं जाऊँगा।'

'बैठिये, पिताजी आते ही होंगे।'

'नहीं! जरा मिल लूँ।' कहकर रघुभाईकी बैठकमें तुरंत दरवाजा खोलकर वह घुस गया। रघुभाई और श्यामदास धीरे-धीरे कुछ बातचीत कर रहे थे।

'कौन, यही मिस्टर श्यामदास हैं? जिनके सम्बन्धमें आप कह रहे थे वह यही हैं?'

रघुभाईको स्वीकार करना पड़ा।

'अच्छी तरहसे हैं? देशसे आ रहे हैं?'

'जी नहीं, रत्न...हाँ देशसे।'

'कहाँ रहते हैं? यहीं?'

'गिरगाँवमें।

'आइ सी! (समझ गया) अच्छा! मुझे कुछ काम है, अब आज्ञा दीजिये।'

श्यामदासके आगमनसे जगतके मनमें अनेक विचार उत्पन्न हुए। अब तक वातावरण ठंडा था क्योंकि श्यामदास और अमरानंद बम्बईसे अनुपस्थित मालूम पड़ते थे जिससे रघुभाई पंगु-सा हो रहा था। वह इतनी चौकसीसे उनकी खोजमें रहता था कि बिना उसे मालूम हुए बम्बईमें कुछ कर सकना उनके लिए असम्भव-सा था।

घर पहुँचते ही जगतको एक तार अनंतानंदका भेजा हुआ मिला जिसमें केवल इतना ही लिखा था कि 'आ रहा हूँ।' अनंतानंद बम्बईमें! कोई गम्भीर कारण बिना स्वामीजी रत्नगढ़ छोड़ नहीं सकते। जगत संध्या समय बाँदरा गया; उसी समय अनंतानंद और दयानंद आ पहुँचे। दयानंद नकली वेशमें थे। दूर एकान्तमें जगतने एक बङ्गला ले रखा था। वहीं सबलोग ठहरे।

'जगत! हमलोग एक अति गम्भीर समाचार लाये हैं।'

'जी हाँ, इसका अनुमान तो आपके बम्बई पधारनेसे ही मैंने लगा लिया। बात क्या है?'

'तुम निगमानंदको तो जानते ही हो?'

'जी हाँ, लक्ष्मणपुर स्टेटमें थे; वही न?'

'हाँ, उसने बड़ा घोटाला कर डाला है। मुझे ज्ञात होता है कि अमरानंदके षडयंत्रमें फँसकर उसने अनजानमें कई एक मूर्खतापूर्ण पत्र लिखे हैं। पहले अमरानंदने किसीको राज-गद्दी पर बैठानेका प्रपञ्च रचा होगा। उसे अब निगमानंदके सिर मढ़ दिया है।'

'ऐसा ? तब तो यह स्टेट......'

'इस स्टेटकी तो अधिक परवाह नहीं है किन्तु...'

'क्या ?'

अमरानंदने इसके लिए किसीका खून कराया होगा जिसका सब प्रमाण उसके पास है। अब अमरानंदने 'चीफ' एवं 'रेसीडेण्ट' को भरा है कि हमारा मण्डल इस खूनके लिए उत्तरदायी है।'

'इसका प्रमाण ?'

'निगमानंदके पत्र !'

किन्तु वे तो...'

'उन सबको अमरानंद चुरा ले गया है। वे सब कागज-पत्र एवं लक्ष्मणपुर स्टेटकी वस्तु-स्थितिका हाल सेक्रेटेरियटमें पहुँचने पर सरकार हमारे मण्डलको तितर-बितर किये बिना चैन नहीं लेगी।'

तीनों एक-दूसरेका मुँह ताकने लगे।

जगतने पूछा, 'अमरानंद कहाँ है ?'

'यहीं आया होगा, या दो-एक दिनमें आवेगा।'

'अच्छी बात है, आप आ गये यह भी ठीक ही हुआ।'

'दूसरा मार्ग ही नहीं था। हमें शीघ्र ही कुछ करना चाहिये, इसीसे मैं चला आया।'

'महाराज ! आप दयानंदके साथ यहीं ठहरें। बम्बईमें इस समय तीनों कूटनीतिज्ञोंका द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है। रघुभाईका, अमरानंदका एवं आपका। आपके आनेकी सूचना मिलते ही सब किये-धरेपर पानी फिर जायगा।'

'तब ?' दयानंदने पूछा।

'आप यहीं रहें, थोड़े ही दिनोंमें सब काम मैं सफलतापूर्वक निर्विघ्न समाप्त कर दूँगा।'

'अच्छी बात है, सिद्धनाथ !' दयानन्दने कहा।

'किन्तु हमें सूचना देते रहना।'

'अवश्य ! अब मैं जाता हूँ। महाराज ! आपका आशीर्वाद चाहिये।'

अनन्तानन्दने मुस्कराते हुए उसके सिरपर हाथ रखा ! उन्हें जगतपर पूर्ण श्रद्धा थी।

६९

'श्यामदास ! तुम मन लगाकर काम नहीं कर रहे हो !' रघुभाई संक्षुब्ध होकर बोला।

'भाई साहब ! इससे अधिक और क्या कर सकता हूँ ?' श्यामदासने आँखें चढ़ाकर कहा, 'आज कितने वर्ष हो गये जरा सा भी दम तक नहीं लिया।'

'फिर भी तुम्हें सफलता तो अभी तक मिली नहीं !'

'अब तो केवल जान भर देना बाकी रह गया है। भाई साहब ! आपको तो यहाँ बैठे-बैठे जीभ हिलाना है, खुद जाइये तो पता चले।' श्यामदासने समझ रखा था कि मेरे सिवा रघुभाईको कोई दूसरा व्यक्ति तो मिल नहीं सकता जिससे जो कुछ मुँहमें आता बक दिया करता था और रघुभाईको अपनी गरजसे सब सहना पड़ता था।

'तब कागज गया कहाँ ?'

'कौन जाने ? मठमें तीन बार अपनी जानपर खेलकर मैंने पता लगाया। दो बार दयानन्दके यहाँ खोज किया। मुझे लगता है कि...।'

'क्या ?'

'सिद्धनाथके पास ये कागज हैं।'

'यह कमबख्त सिद्धनाथ कोई नया पैदा हुआ। तुम तो कह रहे हो कि वह यहीं है।'

'जी हाँ, किन्तु मिलता नहीं तो होनेसे क्या ? अमरानन्द जानते हैं।'

'वह भला कुछ बतावेगा !' रघुभाईने सिर हिलाकर कहा।

'तब तो भगवान ही पार लगावें।'

'श्यामदास ! जैसे भी हो पता लगा। और आवश्यकता पड़ने पर मारपीट, लूट, खून कर भी कागज लाना है।'

'मुझे तो समझ नहीं पड़ रहा है कि मैं क्या करूँ ?' श्यामदासने निराशा से कहा।

'यह कह देनेसे काम नहीं चलेगा।' कुछ आवेशसे रघुभाई झुँझला उठा।

'चले या न चले, मैं क्या करूँ। उन बाबा लोगोंने तो मेरी जान ले लिया।' श्यामदासने भी कुछ चिढ़कर टका-सा उत्तर दिया।

'श्यामदास ! तू सोचता है कि मेरे हाथसे तू यह उत्तर देकर निकल जायगा ?'

'हाँ, हाँ।' खिजलाकर श्यामदास बोला।

अपनी क्रूर आँखें श्यामदासपर गड़ाकर रघुभाई बोला, 'गुलाब स्मरण है ?'

श्यामदास उछल पड़ा, उसका सब जोश यह नाम सुनते ही ठंढा पड़ गया।

'नमकहराम होनेमें लाभ नहीं है।' रघुभाईने हाथ रखा।

'हाँ, हाँ, आपका दास हूँ, किन्तु गुलाब गई कहाँ ?'

'मुझे क्या पता ? किन्तु समयपर तुझे मिल जायगी, घबड़ा मत !'

रघुभाईको वह अब धिक्कारकी दृष्टिसे देखने लगा। रघुभाईका अत्याचार अब असह्य हो रहा था। उसका वश चलता तो उसे कुचल डालता। पर करे क्या ? रघुभाईको छोड़ दूसरा कोई ठिकाना भी नहीं था जिससे चुपचाप वह वहाँ से उठकर चला गया।

रघुभाई अब कुछ चिन्तित हो उठा था। अमरानन्दने प्रातःकाल कहा था कि 'मेरे पास लक्ष्मणपुरसे कुछ कागज आ गये हैं जिससे अनंतानंदका सब षड्यंत्र पकड़ जायगा।' वे कागज क्या हैं, रघुभाईको पता नहीं ता किन्तु उसने सोचा कि यदि अनंतानंदके जन्मके कागज मेरे हाथमें न आये तो अमरानन्द स्वयं अकेला ही बाजी मार ले जायगा और मेरी जीवन-अभिलाषाओं पर पानी

फिर जायगा। इन कागजोंको प्राप्त करने पर ही अमरानंदके साथ अथवा अकेले वह कुछ कर सकता है। उसने अमरानंदको बहुत कुछ समझाया किंतु वह भी घुटा हुआ था। उसने रघुभाईकी बातको उड़ा दिया और रघुभाईको अपना कागज प्राप्त कर लेने पर ही लक्ष्मणपुरके कागज-पत्रके सम्बन्धमें कुछ कहनेका अपना निश्चय प्रकट किया। रघुभाईने अन्तिम प्रयत्न करनेका निश्चय किया। सोचता हुआ वह खिड़कीके पास आया। नीचे वाटिकामें जगत और रमा दिखाई पड़े।

'मैं कहाँ-कहाँ जाऊँ और क्या-क्या करूँ ?' वह बड़बड़ाया और जगतकी ओर उसने देखा, 'यह जामाता हो जाय तो इसकी सहायता लूँ फिर श्याम-दासकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँ। ठीक, आज ही पूछता हूँ।'

जगत अभी चला आ रहा था। अब रमा अपने कोमल स्वभावके कारण अधिक धैर्य नहीं रख पाती थी। जगतका पदचाप सुनकर वह काँप उठी और कानमें भायँ-भायँकी आवाज होने लगी। जगतका स्वरूप उसे देवताके समान तेज किरणें फेंकता हुआ-सा लगा। उसका मुँह शुष्क हो गया।

'तब आपने चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिया। अच्छा हुआ। क्या बना रही हैं ?' जगतने आते ही पूछा।

'अभी हाथ सेट नहीं है।'

'हाथ सेट हो जायगा, मुझे दिखाओ, हो सका तो मैं कुछ बता दूँगा।'

'किन्तु आपको भी कहाँ आता है ?'

'हाँ, लेकिन मैंने बहुतसे पेंटिंग्स देखे हैं।'

'पर…'

'पर क्या ? इस प्रकार शरमानेसे भला कुछ सीखा-जा सकता है, रमा बहन !'

रमा 'रमा बहन' से तो अब काँप उठती।

'नहीं, आपके देखने योग्य नहीं है।'

'वाह ! ऐसी भी कोई बात है ?' चलिये, भीतर चलिये।

जब जगत कुछ कहता तो उसे 'नहीं' कहना बड़ा कठिन हो जाता। रमा उठी।

'देखिये, पीछे हँसी मत उड़ाइयेगा!' कहकर भयभीत नयनोंसे रमाने देखा।

'नहीं जी, रघुभाई कहाँ हैं?'

'ऊपर हैं!'

वे भीतर गये।

'यह आपका अध्ययन-गृह है? जगतकी आँखोंमें उत्सुकता थी।'

'जी हाँ, आप प्रथम बार आ रहे हैं क्या?'

'शिरीनसे बहुत अच्छा है। उसका कमरा तो ऐसा लगता है जैसे पुरानी पुस्तक-विक्रेताकी दूकान।'

रमाको कुढ़न हुई, यहाँ भी शिरीन!

'कौन, रघुभाई?' आइये। रमा बहनने कुछ चित्र बनाया है वही देखने आया हूँ।'

'जी हाँ, आपने ही उसे उत्तेजन दिया है, यह मुझसे कह रही थी।' रघुभाई बोला। जगतके सामने वह ऐसा व्यवहार करता मानो रमा उसकी जीवन सर्वस्व हो।

'अरे! चार-पाँच बनाये हैं क्या?'

रमाने एक चित्र दिखाया, वह रघुभाईका था। जगतने सिर हिलाया। दूसरा चित्र कमलाका था।

'देखो, यहाँ प्रकाश कुछ कम है; और एक बड़ी भूल बताऊँ? कमला चाचीके मुँहपर जो भाव चाहिये वह नहीं है। चेहरे परका भाव ही अच्छे चित्रका लक्षण है। यदि मेरा स्मरण ठीक है तो कमला चाची भली, भोली, सीधी-सादी महिला थीं।' जगतने आँखें बन्दकर स्मरण करते हुए कहा, 'कभी-कभी मेरे साथ खेलने भी लगती थीं, ये सब भाव चित्रमें व्यक्त होने चाहिये।'

माँका स्मरण आते ही रमाका हृदय भर आया।

'जगत भाई! मैं एक पत्र लिखने जा रहा हूँ। यहाँ से खाली होने पर आइयेगा।' कहकर रघुभाई चले गये। तीसरा चित्र किसका था, यह वह

जानता था। रमाके दिखानेके समय वहाँ रहना उसे उचित प्रतीत नहीं हुआ। लड़कोंको कुछ छूट देना आवश्यक था।

'यह तीसरा चित्र किसका है ?'

रमा कुछ उत्तर न दे सकी। उसका चेहरा झेंपसे लाल हो उठा। ऐसा मालूम पड़ा मानो ओंठ ही सिल गए हों। जगत शान्त खड़ा कमलाका चित्र इस प्रकार देख रहा था मानो कोई चतुर चित्रकार उसकी परीक्षा कर रहा हो। उसके मनमें रघुभाईके यहाँ गुणवंती जब रह रही थी उसका विचार आ रहा था।

'इसे दिखाओ न !'

रमाने किसी प्रकार उसपर पड़ा हुआ आवरण हटाया। जगतका दृढ़, प्रभावशाली, शानदार चेहरा उसपर चित्रित था। चित्रकी प्रत्येक रेखा-रेखा जगत जैसी थी। उसे देखकर कोई भी जगतका सम्पूर्ण जीवनको बता सकता था। जगतका अभिप्राय जाननेके लिए रमा स्तम्भित-सी खड़ी थी।

शान्तिपूर्वक, साधारण प्रेक्षककी तटस्थतासे, चेहरेपर अथवा आँखोंमें कोई भी परिवर्त्तन लाये बिना, भावहीन आवाजमें जगत बोला, 'यह अच्छा है ? देखिये, इस चित्रपर भाव है। इन तीनोंमें अन्तरकी ओर ध्यान दीजिये।'

संसारका बड़ा से बड़ा दुःख भी रमाके हृदयको इतना क्षुब्ध नहीं कर सकता था जितना इन शब्दोंने किया। उसकी आँखोंके नीचे अँधेरा छा गया और ऐसा लगा कि वह गिर जायगी।

'मैं तो समझता हूँ कि मैं इतना सुन्दर नहीं हूँ। अच्छा बाकी पीछे देखूँगा, जरा रघुभाईसे कुछ काम है।' कहकर जगत वहाँसे चला गया। रमाको मालूम पड़ रहा था मानो हृदय अपना कार्य बन्द कर देगा। एक शब्द उच्चारण करनेका भी साहस उसमें नहीं था।

चौथा चित्र जगतने नहीं देखा; देखा होता तो कदाचित् इसके पीछेके प्रकरण भिन्न रूपसे लिखे गये होते। जगतके जानेके पश्चात् रमा कुछ देर तक निश्चल खड़ी रही। उसके हाथमें जगतका चित्र था। 'हे प्रभो! कितने

स्वस्थ हैं ?' कुछ समय तक वह चित्रको ध्यानसे देखती रही। तद्पश्चात् एकाएक चित्रको अधरोंसे लगाकर रख दिया।

'तनमन बहन क्यों इतनी दु:खी थीं, यह अब मैंने समझा। मैं भी इनके बिना मर जाऊँगी।' वह बैठ गई। सामने पड़ा हुआ शेली काव्य उसने उठा लिया—अकस्मात् जो पृष्ठ खुला उसमें लिखा था।

'मैं तेरी नहीं हूँ बल्कि तेरा एक अंश हूँ।'

'सचमुच ! उनका मैं एक अंश ही तो हूँ। शेलीने कितना ठीक लिखा है ? प्रेमके किस सूक्ष्म भावका उसने अनुभव नहीं किया है ? सब तो लिखा है ? ऐसे ही समय ज्ञान होता है; किन्तु ये तो विरागी हैं।' वह जरा हँसी—किन्तु विरागीको रागी तो नहीं बना पाऊँगी पर—नहीं जी-सिखाऊँगी। ऋषिगण रागी बन गये तो इनकी क्या ! नहीं तो मैं भी विरागी बन जाऊँगी। दो विरागियों का कैसा राग होता होगा ? मैं भी वैराग्यकी साधना करूँगी और उन्हींकी भावनाके अनुसार चलूँगी। इनके साथ सभी सरल, सुन्दर लगेगा। विवाहो-परान्त कैसे रहेंगे ? नहीं जी ! अरुण जैसे एक साधारण बालकपर जो इतनी दया रखता है वह मेरेपर नहीं रखेगा ? मुझे इनके प्रेमकी आवश्यकता ही क्या है ! मैं इस योग्य ही कहाँ हूँ ? मैं तो इनके शब्द, इनका हास्य, इनकी आँखोंका तेज ही देखते रहना चाहती हूँ। विवाहके बाद मैं क्या पुकारूँगी ? हाय हाय—'जगत भाई !' कहकर जीभ काट ली।

'अरे कोई दूसरा अच्छा-सा नाम सोचकर निकालूँगी।'

इसी प्रकार विचार-मग्न वह बैठी थी कि पास ही में बैठे हुए रघुभाईके उच्च स्वरसे वह चौंककर 'क्या ?' कह उठी। खिड़कीसे सिर बाहर निकाल कर बगलके कमरेमें जो बातचीत हो रही थी उसे सुननेका वह प्रयत्न करने लगी। जो कुछ उसने सुना उससे उसका चेहरा फक हो गया, आँखें बाहर निकल आईं, पन्द्रह मिनट तक वह इसी प्रकार पत्थरकी मूर्त्ति-सी खड़ी रही, आँखें स्थिर थीं, जगतका जाना उसने देखा नहीं। विक्षिप्तके समान वह घूमी, आँख पर उसने हाथ फेरा, दीवालका सहारा लेना चाहा पर चक्कर आनेसे धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ी।

———

जो वार्त्तालाप सुनकर रमा मूर्च्छित हो गई वह जानने लायक है ।

रमासे बिदा लेकर जब जगत रघुभाईके पास पहुँचा, उस समय वह कुछ लिख रहा था । तुरन्त उसने सिर ऊँचा करके देखा और कहा, 'आइये जगत भाई ! मुझे आपके साथ कुछ बातें करनी है ।

'मैं हाजिर हूँ' स्वस्थता-पूर्वक जगत बोला । जगत समझ गया था कि रघुभाई क्या बात करनेवाले हैं, जिससे यथाशक्ति उसे न्यूनतम उत्तेजन मिले ऐसा स्वरूप उसने धारण कर लिया था ।

'अब तो आप बम्बई-वासी हो गये लगते हैं ?'

'जी नहीं, मेरा कोई ठिकाना नहीं है, आप जानते ही हैं कि मैं निराधार—निराकार हूँ ।' कहकर वह कुछ रूक्षतासे हँसा ।

'तब आधार और आकार कब लाओगे ?'

जगत इस प्रकार गम्भीर बनकर देखने लगा मानो इस प्रश्नका उसने अर्थ ही न समझा हो ।

'इतने दिन हो गये कुछ स्थिर होनेका विचार कर रहे हो ?' रघुभाईने जगतसे उत्तर न मिलने पर पुनः पूछा ।

'जिसे आप स्थिरता कहते हैं वह मेरे लिए शायद ही आकर्षक हो ।'

रघुभाई चकरा गये । येन-केन-प्रकारेण जगतके मुँहसे रमाकी बात निकलवाना चाहते थे । उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि जगत रमाको प्यार करता है किन्तु विवाहकी बात क्यों नहीं चलाता ? रघुभाई अपनेसे कम बुद्धिवालेके साथ बातचीत बड़ी ही होशियारीके साथ करते थे—पर कठिन अनुभवने बता दिया था कि जब किसी सबल व्यक्तिसे सामना पड़ जाता था तब उसकी चतुराई सब भूल जाया करती थी ।

'अच्छा ! एक बात मुझे पूछनी है ।'

'खुशीसे पूछिये ।'

'रमा अब बड़ी हुई, उसका कुछ ठौर-ठिकाना लगाना चाहिये ।'

'अवश्य !' शान्तिसे जगतने कहा ।

'मि० गमनलाल गोरखिया कैसे होंगे ?'

'मैं उन्हें नहीं जानता।'

'बहुत अच्छे आदमी हैं; उनकी बातचीत आ रही है।'

'यह गमनलाल करते क्या हैं?' बिलकुल ही अनपेक्षासे जगतने पूछा।

रघुभाईकी छातीपर तो साँप लोट गया।

'शेयरकी दलाली करते हैं।'

'क्या उम्र होगी?'

'यही लगभग पैंतीस वर्ष।'

'पढ़ा-लिखा तो होगा नहीं?'

'पढ़ा-लिखा वर जातिमें है कहाँ?'

'यही तो अपने जातिकी विशेषता है। सुशिक्षिता कन्याको वर न मिले और शिक्षित वरको कन्या न मिले! तब भी लोग अच्छे सन्तानकी आशा करते हैं?'

'ठीक है किन्तु किया क्या जाय? अपना कोई वश है?'

'बिलकुल ठीक।' तिरस्कारमय कटाक्षसे जगतने उत्तर दिया।'

रघुभाईको आश्चर्य हुआ। यह व्यक्ति अपने विवाहकी बात तो करता ही नहीं। रघुभाईके मनमें जो विश्वास था कि जगत रमाके साथ विवाह करना चाहता है उसमें सन्देह होने लगा।

'गमनलाल तो बातचीत पक्की करनेके लिए उधार खाए बैठा है। उसे क्या उत्तर देना चाहिए।'

'इसके बारेमें भला मैं क्या बताऊँ?'

'हाँ, यह तो ठीक है। पर आपकी गमनलालके साथ रमाकी शादी करनेमें क्या राय है?'

'मेरी? यदि रमा बहनका किसी प्रकार भी विवाह कर देना ही ध्येय हो तो अवसर खराब नहीं है।' बिलकुल ही भावहीन स्वरमें जगतने उत्तर दिया।

रघुभाईकी तो बुद्धि ही कुछ काम नहीं कर रही थी। क्या जगत मजाक कर रहा था? इतने दिनों तक साथ रहा, जामाताके समान उसने उसका आदर किया और यह उत्तर?

'तब गमनलालके साथ ही विवाह-सम्बन्ध निश्चय कर दूँ?' रघुभाईने अन्तिम प्रश्न किया।

इसी समय रमाका ध्यान इधर आकृष्ट हुआ और उन दोनोंकी बातचीत वह ध्यानसे सुनने लगी।

'अवश्य, मुझे भी सूचित करियेगा। रमा बहनके लिए कोई भेंट तो अवश्य ही लाऊँगा।' परिहासपूर्ण कटाक्षसे जगतने कहा।

'तब आपका विचार तो नहीं है न?' रघुभाईने लाचार होकर पूछा।

'क्या?' बिलकुल निर्दोष भाव प्रकट करते हुए जगतने रघुभाईकी ओर देखा।

'रमाके साथ विवाह करनेका?'

'रमा बहनके साथ मेरा विवाह? मैंने तो पहले ही अपना अस्वीकारात्मक उत्तर दे दिया था।'

'आपका इस प्रकार आवागमन देखकर मैंने सोचा कि विचार होगा' जरा रुखाईसे रघुभाईने कहा। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि जगतने उसे मूर्ख बनाया अथवा वह स्वयं ही मूर्ख बना।

'मैंने स्वप्नमें भी ख्याल नहीं किया था कि मेरे साधारण आचरणका आप यह अर्थ लेंगे; आप जैसा चतुर व्यक्ति ऐसी धारणा कर सका, यह अत्यधिक आश्चर्यप्रद है। मेरा विचार तो बिलकुल है ही नहीं। अच्छा, अब आज्ञा दीजिये, विवाहकी सूचना अवश्य दीजियेगा।' अन्तिम प्राणभेदक वाग्बाण मारकर वह उठ खड़ा हुआ। रघुभाईने भी देखा कि इसकी कुशलता व चतुरताके सामने मिजाज बिगाड़ना व्यर्थ है। वह मनमें बड़बड़ाया—'बच्चा! तुझसे भी समझ लूँगा।'

जगत शान्तिपूर्वक बाहर आया, ऊपर खिड़कीमें उसने रमाको उदास खड़ी देखा और उसने समझ लिया कि रमाने अवश्य ही सब कुछ सुन लिया है।

'बहुत अच्छा हुआ, मेरे वैरका विष अब प्रभाव करना प्रारम्भ करेगा।' कहकर वह घमण्डसे हँसा।

गुरुत्वाकर्षणके नियमके अनुसार जब कोई वस्तु गिरने लगती है तब ज्यों-

ज्यों वह ऊपरसे नीचे आती है, त्यों-त्यों प्रतिक्षण उसका वेग बढ़ता जाता है। जबसे प्रतिशोध लेनेका जगतने निश्चय किया तभीसे जगत गिरने लगा; उसकी बुद्धि सर्वग्राहीके स्थान पर एकदेशीय बन गई; धीरे-धीरे कठोर परिश्रमसे वशीभूत किया हुआ मन स्वतन्त्र रूपसे वासना-सेवन करनेमें लग गया। वैरमें, दुःखमें, विजयमें मन तल्लीन हो गया -- वह विश्व-नियमका मात्र क्षणिक स्वरूप ही है, इसे वह भूल गया। इस समय 'बुद्धि-नाश' हो गया था। एक निर्दोष बालाको निरर्थक सताकर उसके बापको सताना, यह अपनी माँके दुःख का बदला है, ऐसा उसने सोच लिया। अपनी तीक्ष्ण 'बुद्धिसे उसने देख लिया कि रमाका कोमल-हृदय उसके पीछे पागल हो रहा है और उसके विरहसे वह टुकड़े-टुकड़े हो जायगा, और रमाका ऐसा कोमल शरीर ? ठीक ! अब तो केवल तमाशा देखना भर रह गया है।

जगत घर पहुँचा तब अरुण ताशका महल बना रहा था। जगतके स्वभाव में कोमलता आ गई। इस बालिकाके समान निर्दोष, हँसमुख बालकपर उसके हृदयमें दया और प्रेम था। जगतको देखकर उसकी चञ्चल आँखें खिल उठीं।

'भैयाजी ! आपका बङ्गला तैयार हो गया है।' सिर परके लम्बे बालोंको हिलाते हुए अरुण बोला, 'तैयार !' और वह उठकर जगतके पैरसे लिपट गया।

'आज जी कैसा है ?'

'भैया ! मैं तो आज बाबाजीके पास जाऊँगा।'

अरुण अनन्तानन्दसे मिला था और दूसरोंके समान ही उसपर भी बाबाजीका पागलपन सवार हो गया था।

जगत हँसा, 'चलो, मैं भी वहीं जा रहा हूँ।'

जगतका मन आज निर्धारित कार्य करनेसे प्रसन्न था। उसे जड़ भरतकी हिरन स्मरण आ गई, स्वयं वह भी उन्हींके समान मायामें लिपट गया था।

बाँदरा पहुँचा, तब अनन्तानन्द कुछ पढ़ रहे थे। अब तकके प्रकृतिमय जीवनसे उन्होंने विराम ले लिया था और उनके बुद्धिमान शिष्य क्या करते हैं केवल इसीपर ध्यान रखते थे। पूरे मण्डल-यन्त्रमेंसे वे निकल गये हों, ऐसा व्यवहार करते थे और अपनी प्रकृति बिना भी मण्डलको पूर्ववत् चलता हुआ देखकर

आनन्द प्राप्त करते थे। यह सब अपने प्रिय शिष्य सिद्धनाथकी बुद्धिमत्तासे होता हुआ देखकर उन्हें अधिकाधिक आनन्द होता था।

'अरे अरुण! तू कहाँ से?'

'आपको दण्डवत् करनेके लिए!'

अनन्तानन्दने उसका माथा थपथपाते हुए पूछा—'तेरा भैया कहाँ है?'

'आ रहे हैं। नीचे दूसरे बाबा हैं न, उन्हींके साथ बात कर रहे हैं।'

जगत आया।

'कहो, सिद्धनाथ! कैसा चल रहा है?' संदिग्ध स्वरमें स्वामीजीने पूछा। उनकी तेजस्वी आँखें जगतपर गड़ी हुई थीं। जगतको इन आँखोंके तेजके सामने झुकना अच्छा लगता था; यहाँ पर बालक ही बने रहनेकी उसकी इच्छा होती।

'सब ठीक है महाराज! बहुत थोड़े समयमें ही आपको सब कागज-पत्र प्राप्त हो जायेंगे, ऐसा मेरा अनुमान है।'

'यह तो मैं जानता हूँ। तेरी कार्यकुशलतामें मुझे श्रद्धा है। इन थोड़े महीनोंसे यहाँ बैठे-बैठे संपूर्ण मण्डलका यन्त्र तू चला रहा है यह देख मेरा हर्ष समाता नहीं। यदि तूने किसी पाश्चात्य देशमें जन्म लिया होता...'

'बहुत प्रशंसा कर बिगाड़िये नहीं!' प्रशंसासे लज्जित होकर जगत बोला, 'मुझमें अभी अनेक दोष हैं।'

'आज यह मण्डल तो तेरे ही सञ्चालनमें चल रहा है। इस समय यहाँ यदि अमरानन्द होता तो वह यही समझता कि महत्त्वाकांक्षा और लोभसे ही तू ऐसी लगनसे काम कर रहा है।'

'मेरी अपूर्णता आपसे कहाँ छिपी है? मेरी अधिक प्रशंसा न करें।'

'जानता हूँ!' आँखोंमें कठोर स्थिरता लाकर स्वामीजी जगतको देखने लगे, 'और मुझे मालूम पड़ता है कि वह अपूर्णता बढ़ती ही जा रही है।'

जगतका हृदय खिन्न हो गया। अविज्ञाप्य रूपसे अपने व्यवहारके लिए उसे असन्तोष हुआ। उसका आचरण निर्मल, विश्व नियमानुसार है या नहीं, इस सम्बन्धमें कभी-कभी उसके मनमें विचार उठा करता था। उसी विचारोंको

इस प्रकार स्वामीजीने कहा यह समझ कर जगत सिर नीचा किये हुए खड़ा रहा। संसारके दूसरे मनुष्योंपर अपना व्यक्तित्व अंकित करनेवाला जगत लज्जित हुआ।

'तूने पूर्णरूपसे योग-पद प्राप्त नहीं किया है; पाश्चात्य भावनासे देखनेपर तू भले ही सबपर विजय प्राप्त करने लायक बन गया हो किन्तु हमारे दृष्टि-बिन्दुसे जब तक तू उसे प्राप्त नहीं कर लेता तब तक तू अपूर्ण है और हमारी अपूर्णताका अर्थ अधमता है, समझे !' स्वामीजीके शब्दोंमें हलकी-सी फटकार थी।

'मैं जानता हूँ, स्वामीजी ! पर करूँ क्या ? इसमें मेरा क्या दोष है ? शायद पूर्णता प्राप्त करनेके लिए मेरा जन्म ही न हुआ हो।'

'मूर्खतापूर्ण बातें मत कर। पूर्णता सबके लिए है। यह कह कि तेरेमें वासना नष्ट कर डालनेका साहस नहीं है। मैंने तुझसे 'देवी' का स्मरण-चिन्ह जला देनेके लिए कहा था, याद है ? देख, अभी भी वह तेरे वक्ष-स्थल पर विराजमान है। तूने अपने भूतकालको छोड़ा नहीं है, छोड़ेगा नहीं तो परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा। पर्वतपरसे फिसलनेपर मनुष्यके हड्डी पसलीका भी पता नहीं चलता। तू साधारण मनुष्यके सरल मार्गपर नहीं है कि गिरनेसे केवल घुटने छिल जायँगे।'

जगत अपना सिर ऊपर नहीं उठा सका।

'यह बात बहुत दिनों बाद सत्य प्रमाणित होगी। अनुभव तुझे बतावेगा तो भी पुनः एक बार मैं तुझसे कहता हूँ; सिद्धनाथ ! दो बातोंसे सावधान रहना ! वैराग्यका अभिमान और उससे उत्पन्न कठोरता। इसने बड़े-बड़े महात्माओंकी महत्ताको नष्ट कर डाला है। यह कठोरता-शुष्कता-की अपेक्षा थोड़ा-बहुत राग भी अच्छा। मैं तुझसे कह चुका हूँ कि सिद्धनाथ जिस दिन तू संसाराश्रममें प्रवेश करेगा उसी दिन मण्डलका सच्चा नायक बनेगा, याद है ?'

'महाराज ! आप किसलिए मुझे रागी बननेके लिए कह रहे हैं ? अरुचि-कर वस्तुकी शिक्षा देकर क्यों मुझे संन्यासी होनेसे रोक रहे हैं ?'

'क्योंकि तू संन्यासी बननेकी आशासे नहीं बल्कि अपनी 'देवी' की स्मृति सुरक्षित रखनेके लिए विवाह करनेसे अस्वीकार करता है। अर्थात् वैराग्यके लिए तू रागसे दूर रहना चाहता है, यह बात नहीं है, बल्कि अपने स्वार्थ-साधनके लिए तू ऐसा कर रहा है।'

स्वामीजी पुनः समझाने लगे, जगत पुनः लज्जित हुआ, 'लक्ष्य पूर्ण होगा, अभी भी समय है। किन्तु अपने मण्डलका काम एकान्तवासी जैन साधुओंके समान शिक्षा देकर दूर रहनेका नहीं है बल्कि जीवनकी चेतन और सजीव भावना, गृहस्थ वैरागीकी—कर्मयोगीकी—उच्च भावना समाजमें भरना है। स्त्री-पुरुषोंको सुन्दर, सुशिक्षित होनेके साथ ही साथ कर्मयोगी होना चाहिये; मेरे मण्डलसे ऐसी ही आदर्श प्रतिमायें निकलें, ऐसी मेरी आन्तरिक इच्छा है। बहुत ठीक! इतने जोरसे सिर हिलानेकी आवश्यकता नहीं है। तू भी मेरे इन वाक्योंका अर्थ किसी दिन समझेगा! भारतके इतिहास कालमें संन्यासियोंने अनेकों बार उद्धार किया है किन्तु थोड़े समयके लिए ही! अब गृहस्थ संन्यासियोंका प्रयोग करना है। स्त्रियोंका सहयोग मिले बिना उद्धार अस्वाभाविक है। मैं स्वयं प्राक्कालीन जीवन व्यतीत कर रहा हूँ पर 'डार्विन' पढ़नेका लाभ मुझे मिला है। जन-समाजकी शारीरिक प्रगति विश्व-नियमका प्रथम पाठ है।'

७१

जगत कालबा देवीसे होकर जा रहा था, एकाएक सामने उसे श्यामदास मिल गया।

'ओहो, श्यामदास! अच्छी तरहसे तो हो?' जगतने पूछा। शब्दोंमें भाव था पर उसके स्वर एवं चेहरेसे तिरस्कार पूर्णस्वरूपसे प्रकट हो रहा था।

'अच्छी तरहसे हूँ! आप...?'

'भूल गये? रघुभाईके यहाँ मिले थे।'

'हाँ, याद आ गया!' श्यामदास जगतकी तेजस्वी आँखोंके तिरस्कारके

SUCESS

सामने जरा काँपता हुआ बोला।

'बाँदरामें एक व्यक्ति मिले थे जो तुम्हारे बारेमें पूछ रहे थे।' मानो कोई साधारण बात कह रहा हो, इस प्रकार जगतने थोड़ी बातचीतके पश्चात् कहा।

'मेरे बारेमें ? कौन ? जी नहीं, आप भूलते होंगे।'

'हाँ ! सिद्धनाथ नामका एक बाबा है; वही पूछ रहा था।'

यह नाम सुनकर श्यामदास ऐसा चौंक उठा जैसे बिजली गिरी हो। जगतके चेहरेसे किसी प्रकारका भाव व्यक्त नहीं हो रहा था।

'अच्छा हाँ !' थोड़ी देरमें श्यामदास बोला, 'पहले हम साथी थे, कहाँ मिला था ?'

'बाँदरामें !'

'वहीं रहता है क्या ?'

'हाँ, बिलकुल अन्तमें 'Ghost House' नामक समुद्रके किनारे एक बँगला है, उसीमें रहता है।'

'अच्छा !' श्यामदासके हर्षका ठिकाना न रहा, उसे किसी प्रकार छिपानेके लिए वह तुरन्त आज्ञा लेकर चल पड़ा। 'अच्छा, प्रणाम !'

'नमस्कार !' प्रत्युत्तरमें कहकर जगत भी चल पड़ा, केवल 'साथी' शब्द उसके मुँहसे निकला। आखिर सिद्धनाथके निवास-स्थानका पता चल गया। श्यामदासकी इच्छा सड़कपर नाचनेकी हुई। पगड़ी उतारकर उछालनेका मन हुआ। अब रघुभाई प्रसन्न हो जायगा और दासतासे छुटकारा मिलेगा। यदि सिद्धनाथके पास कागज हुआ तो बाँदरा जाने भरकी देर है। आज वर्षोंसे जिसके लिए जी-जानसे परिश्रम कर रहा है, वह अचानक मिल गया। कूदता हुआ वह घर पहुँचा।

घरपर अमरानन्द उसकी बाट जोहता हुआ बैठा था। सदैवके समान हँसकर दो-चार बातें करनेके पश्चात् अमरानंद बोला, 'श्यामदास दोस्त ! तुम्हारे लिए एक काम आ पड़ा है।'

'सेवक तैयार है।'

'मजाक छोड़ !'

'काम है क्या ?'

'देखो, षड्यन्त्रकारियोंके हृदय आपसमें शुद्ध और एक होने चाहिये, इति श्रीमान् अमरानन्द सरस्वती !' जरा हँसते हुए अमरानन्दने कहा, 'रघुभाईका वेद भिन्न है। सुनो थोड़ेमें कहता हूँ, अनंतानंदके कुछ कागजोंकी रघुभाईको आवश्यकता है जिसके लिए तुम्हें इधर-उधर मारा-मारा फिरना पड़ रहा है।'

'जी हाँ !'

'मैं बताऊँ वे कहाँ हैं ?'

'जी हाँ बताइये।'

'सिद्धनाथके पास हैं।'

'ऐसा ?'

Failures are Pillors of ✗.

'हाँ ! देखो श्यामदास ! वे कागज मुझे चाहिये। लाकर मुझे दो और मुँह माँगा पुरस्कार मैं तुम्हें दूँगा।' गम्भीरतासे स्वामीने कहा।

श्यामदासको पता नहीं था कि उन कागजोंमें क्या है लेकिन अमरानंदका उद्देश्य स्वयं अनन्त मण्डलका नेता बनकर सब कुछ हथियाना था एवं कुछ भी करनेके पूर्व सब भेद जान लेनेका उसका संकल्प था; ऐसा उसे मालूम पड़ा।

'किन्तु आप और रघुभाई तो एक ही हैं न ?'

'यह तुमसे किसने कहा ? लड़कों जैसी बातें मत करो। पागल हो क्या ? बोलो, क्या बिचार है ? हाँ या ना ?'

श्यामदासने सोचा कि दो उस्तादोंके बीचमें फँसना ठीक नहीं।

'किन्तु सिद्धनाथ है कहाँ ? उसीकी खोजमें तो घूम रहा हूँ।'

'मुझे पता है।'

'तब आप ही क्यों नहीं ले आते ?'

'अरे ओ मेहरवान ! जरा मेरे घुटे हुए सिरकी ओर तो नजर कर। मुझसे ऐसा हो सकता है ?' अमरानन्द चिड़चिड़ाया।

'तब मेरा सहयोग लेने आये हैं ?' जरा उपेक्षा दिखाते हुए श्यामदासने कहा।

'देखो ! संसारमें कुछ लोग उपयोग करनेके लिए जन्म लेते हैं और कुछ

अपना उपयोग दूसरों द्वारा करानेके लिए। तू देखता नहीं कि तू दूसरी श्रेणीका है ? संशय हो तो जाकर रघुभाईसे पूछ ले।'

'यदि स्वीकार कर लूँ तो क्या दीजियेगा ?'

'अभी पाँच सौ, कागज मिलने पर दस हजार तथा उसका उपयोग करने के पश्चात् और दस हजार।'

'श्यामदास आश्चर्यचकित हुआ। रघुभाईकी दासतासे यह क्या बुरा है ? किन्तु सौदा पटानेके लिए वह उपेक्षा ही दिखाता रहा, 'नहीं महाराज ! क्षमा कीजिये, मेरे लिए तो रघुभाई ही अच्छे।'

'श्यामदास ! अपनी सफाई रहने दो। रघुभाई तुम्हें पाँच सौ दमड़ी भी देने वाला नहीं है। साथ ही तुम्हें मेरे स्थितिका भी ज्ञान नहीं है।'

'जी नहीं !'

'इन कागजों बिना भी मेरा काम चल सकता है। मेरे पास जो कागज हैं उनके अलावा और मिल जायँ तो अच्छा ही है अन्यथा जो कुछ प्रमाण मेरे पास हैं उनका उपयोग करना प्रारम्भ करूँगा। तब तुम्हारी और तुम्हारे रघुभाई की सब योजनायें धूलमें मिल जायँगी। बोलो क्या विचार है ?' इस प्रकार अमरानन्द बोला मानो उठनेकी तैयारी कर रहा हो।

'अच्छा ! हजार कर दीजिये।'

'चल, चल, कुँजड़ोंकी सट्टी है क्या जो भाव-ताव कर रहा है!' सूरती चाल मे हाव भाव दिखला कर अमरानन्द बोला, 'यह शर्त स्वीकार हो तो ठीक अन्यथा एक साधुके पाससे कागज चुरा मँगवानेके लिए क्या बम्बईमें मुझे आदमीकी कमी है ?' अमरानन्द लुच्चापनमें भी पटु था। स्वामीजीके शिक्षण ने उसकी आँखें तो अवश्य ही खोल दी थीं लेकिन अपनी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण करनेके लिए वह सभी उपायोंका अवलम्बन करनेके लिए तैयार हो जाता था। श्यामदास वशीभूत हो गया।

'अच्छा स्वामीजी ऐसा कीजिये कि मेरा परिश्रम देखकर बढ़ाइयेगा।'

'अच्छा, देखूँगा ! किंतु याद रखना यदि जरा भी धोखेबाजी की तो मृत ही समझ लेना। मैं रघुभाई नहीं हूँ—अनंतानंदका शिष्य हूँ।'

'और उन्हींका सर्वनाश करनेके लिए तुले हुए बैठे हैं ?' हँसीमें श्यामदास बोला।

'यह और कुछ नहीं सिर्फ भीष्म बनकर परशुरामका घमण्ड चूर करना चाहता हूँ। जब गुरु गुड़ और चेला चीनी बने तब तो तारीफ। लो यह रुपया!' कहकर अमरानन्दने पाँच सौके नोट निकाल कर उसके हाथमें रख दिया। 'लेकिन तुम्हारा शरीर, मन एवं आत्मा सब खरीद रहा हूँ, समझे ?' जरा हास्यजनक अभिनय करता हुआ वह बोला। वह मुस्कराया, दो-चार हँसी-मजाक किया, सिद्धनाथका बाँदराका पता बताया और वहाँ से चलता बना।

श्यामदास इस दाँता-किटकिटसे थक गया था। रघुभाईकी कृपाके आधार पर जीवन व्यतीत करना, उसके आदेशानुसार जहाँ-तहाँ दौड़ना, यह सब उसे दुःखद मालूम पड़ता था। ऊपरसे इन दो उस्तादोंके खेलमें उसके छोटेसे, तूफानी हठी जीवको कुछ समझ नहीं पड़ता था। यदि खुले मैदानमें खड़े होकर अनंतानंदको गाली देना होता तब तो उसके सामने कोई खड़ा नहीं हो सकता था। पर दूसरेकी पकड़में आये बिना, चुपचाप, शांति पूर्वक, अगम्य द्यूतक्रीड़ाका पासा बन जाना उसे थका डालता था। कभी-कभी सूरतके स्वतंत्र दिवस स्मरण आ जाते; पुनः म्यूनिसिपैलिटीके चेयरमैन तथा मेम्बरोंके बापकी तेरहवींका प्रबंधकर 'प्रोमोशन' प्राप्त करनेकी इच्छा होती। लेकिन बुढ़ापा आ गया था और रघुभाईने उसे ऐसे सिकञ्जोंमें जकड़ रखा था कि उससे छुटकारा पानेका उपाय उसे सूझ नहीं पड़ रहा था। कभी गुलाब स्मरण आ जाती किन्तु उसके लिए उसे किसी प्रकारका शोक या दुःख नहीं था। वह स्वयं एक बलासे छुटकारा पा गया था; स्वप्नमें दो-एक बार एक कोमल, सुन्दर बालकका मुख दिखाई पड़ जाता था लेकिन उसके राक्षसी स्वभावमें पुत्र-प्रेमके लिए कोई स्थान नहीं था।

थोड़ी देर पश्चात् अपने कोठरीकी ओर आता हुआ किसीका पद-चाप सुनाई दिया। उससे मिलनेवालोंकी संख्या इतनी कम थी कि उसे अचम्भा हुआ। दूसरे ही क्षण दरवाजेमें रघुभाई खड़े दिखाई दिये; उसे देखकर श्यामदास तो घबड़ा गया। नीति निपुण, इज्जदार रघुभाई यहाँ!

'ओहो हो ! रघुभाई साहब !' हँसकर श्यामदासने उसका स्वागत किया; दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आया कि बिना कोई आवश्यक कार्यके रघुभाई आनेवाला नहीं है। 'मेरे घर आप ?'

'क्यों, न आऊँ ?' मुस्कुराहटके साथ रघुभाई बोला। अपनी गरजके समय इसके जैसा बिनयी बन जाना दूसरोंके लिए बिलकुल असम्भव है।

'एक आवश्यक काम है।'

'क्या है ?' कटुता पूर्ण स्वरमें श्यामदासने पूछा।

'देखो श्यामदास ! हम लोगोंके सब परिश्रमपर पानी फिरना चाहता है।' अब केवल एक अंतिम प्रयत्न बाकी रह गया है, इसे कर डालो तभी हमारी पौ बारह होगी।'

'हम लोगोंकी नहीं, केवल आपकी !'

'हम क्या दो हैं ? देखो, अब सिद्धनाथका पचड़ा जाने दो।'

'क्यों ? हार मान बैठे क्या ?'

रघुभाई इन शब्दोंसे कुछ उत्तेजित हो उठा किन्तु करे क्या ? गरजवश, कहावत है कि, किसे क्या-नहीं सहना पड़ता ! 'नहीं, पर वह न जाने कहाँ है?'

'तब क्या करना है ?'

'एक दूसरा उपाय है। अमरानंदके पास कुछ कागज-पत्र हैं। उन्हें झटक ले आ, बस हमारा काम बन जाय।'

'रघुभाई ! मैंने आपसे कहा नहीं था कि मैं आपकी गधा-पचीसीसे आजिज़ आ गया हूँ।'

'देखो श्यामदास ! मेरा निर्धारित काम होने दो, पीछे समझ लेना।'

'कौन जाने कब होगा ?' निराशाका अभिनय करते हुए श्यामदास बोला।

'कल प्रातः तू काममें हाथ तो लगा। देखो, मेरा स्वभाव जरा उग्र है जिससे मुँहसे कुछ निकल जाता है। लो तुम्हें आवश्यकता हो तो कुछ दूँ।' कहकर उसने सौ रुपयेका नोट निकाला। रघुभाईके स्वभावसे परिचित होनेसे यह उदारता अद्भुत लगी। यदि अमरानंदसे पाँच सौ रुपया पंद्रह मिनट पहले न मिला होता तो यह देख श्यामदास तो पागल हो गया होता। वह अस्वीकार

करने जा रहा था कि एकाएक एक विचार आ गया; ये दो पक्के धूर्त उसके परिश्रमसे बड़े होना चाहते हैं तो वह स्वयं इन दोनोंको क्यों न उट्ठी बुलावे ? यह विचार आते ही उसने भाव बदलकर हर्षित हो बोला—'अरे ! आप यह क्या कह रहे हैं रघुभाई ? आप मुझे प्रति मास पचास रुपये देते हैं फिर यह क्या ? आपका ही दिया हुआ तो खाता हूँ ! बताइये कागज कैसा है ?'

रघुभाई बाग-बाग हो गया; बिना पैसे श्यामदास काम करनेके लिए तत्पर हो तो रुपया देनेसे लाभ ?

'लो अपने इस महीनेके पचास रुपये तो लो।' कहकर रघुभाईने बाकी रुपया जेबमें रख लिया। तत्पश्चात् कागजके सम्बन्धमें थोड़ा-बहुत बताया।

थोड़ी देर बाद रघुभाईके चले जानेपर श्यामदास बड़बड़ाया, 'कमबख्त ! सौ रुपया भी जीसे नहीं निकला ! बच्चा श्यामदास ! अब रङ्ग जमा है। दोनों कागज हाथमें आ जाने दो तब देखूँगा कि कौन अधिक देता है ? नहीं तो कागजसे ही यदि रतगढ़ मिलता हो तो स्वयं मैं ही क्यों न उसे ले लूँ ? साली अँग्रेजीमें कच्चा रह गया नहीं तो —'

'नहीं तो वह क्या कर डालता' यह पेटमें ही रह गया। श्यामदासने बीड़ी जलाकर, सिनेमाका एक बीभत्स गाना गाया, खाँसकर गला साफ किया और घूमनेके लिए वह बाहर निकल पड़ा।

७२

जगतकी नियमित काम करनेकी नित्य-प्रवृत्ति एवं दक्षता ऐसी अच्छी थी कि संपूर्ण मण्डलका भार बहुत कुछ सिरपर आ पड़ने पर भी थोड़ा समय इधर-उधरके साधारण कामोंमें भी वह व्यतीत कर सकता था। शिरीन तथा उसके पिता प्रायः आया करते थे जिनके साथ अनेक विषयोंपर चर्चा होती। शिरीनका स्वभाव बुद्धि प्रधान था। साधारण स्त्रीके अंतर्वेग तथा उनके विचारोंसे वह अपरिचित थी एवं पारसी संसारके स्वातंत्र्यसे उसका दृष्टि-बिन्दु पुरुषवर्गसे अधिक भिन्न नहीं था। जगतके प्रति उसका मन एवं स्नेह बढ़ता जा रहा था

किंतु उसका भाव शिष्य और गुरु सदृश था। कभी-कभी शिरीन हृदयकी बेचैनी अनुभव करती पर इसका कारण जानने का प्रयत्न उसका दृढ़ मन कभी न करता।

केकोबाद वकीलके विवाहकी 'गोल्डेन जुबिली' (स्वर्ण-जयंती) मनानेका प्रसंग आया। इस अवसर पर एक बृहत् सम्मेलन करनेका विचार निश्चित हुआ था। और मि० वकीलने अपने उदार हाथको हमेशाकी अपेक्षा और अधिक स्वतंत्रता दे दी थी, उनका सुंदर विशाल उपवन रङ्ग-विरङ्गी बिजलीके बल्ब एवं पताकाओंसे सजाया गया था। संध्या होतेही अतिथिगण आने लगे, एक प्रसिद्ध 'स्ट्रिङ्ग बैंड' ने संगीतके मृदु स्वरसे वातावरणमें रसका सञ्चार करना प्रारम्भ कर दिया। मि० वकीलने निमंत्रण बहुत लोगोंको दिया था जिससे थोड़े ही समयमें अत्यधिक अभ्यागत एकत्र हो गये और जगह-जगह पर ग्रूप बनाकर हँस बोलकर स्त्री-पुरुष इस प्रसङ्गका समुचित लाभ उठाने लगे।

इन सबमें शिरीनका कार्यभार अत्यधिक था। स्त्रियोंके साथ उसकी अधिक बनती नहीं थी। पाउडरका पुट तथा मोरपंख जैसी रङ्ग-बिरङ्गी साड़ियोंके प्रति उसकी अनहद उपेक्षाको उसकी परिचित सभी स्त्रियाँ जानती थीं और बुद्धिमें उनसे वह इतनी बढ़ चढ़कर थी कि उनसे यदि उसकी न पटे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर पुरुषोंमें वह अत्यधिक लोकप्रिय थी। कितने ही मण्डलोंमें वह 'सफ्रेजेट' के नामसे प्रख्यात थी और दुष्टमति, उपहासक अथवा बुद्धिहीन घमण्डी मास्टरको छोड़ सभी उसके साथ स्नेह-पूर्वक बर्त्ताव करते थे। वह चारो ओर घूमती हुई किसीसे हाथ मिलाती, किसीसे कुशल समाचार पूछती और किसीके साथ वाद-विवादमें भाग लेती। केवल थोड़ी-थोड़ी देरपर उसकी दृष्टि अज्ञानतः दरवाजेकी ओर चली जाया करती थी।

थोड़ी देर पश्चात् रघुभाईके साथ रमा आई। मि० वकील हिन्दू-मित्रोंको भी भूले नहीं थे। शिरीन उनका स्वागत करनेके लिए दौड़ पड़ी। इस कार्यमें व्यस्त होनेसे कुछ दिनोंसे वह रमासे मिल नहीं सकी थी। रमाको देखकर शिरीनको अपना अपराध याद आया, आज कितनेही दिनोंसे अपनी प्रिय सखीसे मिलनेकी आवश्यकता भी उसने नहीं समझी थी और रमा!...। शिरीन उसे

पहचान भी ...ा । ...। नहीं सकी । उसके चेहरेकी कांति जाती रही थी । आँखें बड़ी बड़ी और दी... के ...सि लगती थीं, ललाट सुन्दर आकर्षक बाल बे-तरतीबसे लटकते रहते, उसकी ...हो चालमें जरा संकोच दिखाई पड़ता था । शिरीनने दोनों हाथ पकड़ कर कहा ...—'रमा डियर ! यह क्या ? बीमार हो क्या ?'

...रघुभाई रमाको वहीं छोड़ और उसकी ओर कुछ भी ध्यान न दे मि० वकीलके पास चले गये । जगतके जवाब देनेके पश्चात् पिता-पुत्रीमें इस विषयमें कुछ भी बातचीत नहीं हुई किन्तु रघुभाई समझ गये कि रमाने जगतका उत्तर सुन लिया है । इस ओर विशेष ध्यान देना उसने आवश्यक नहीं समझा । 'लड़कीका भाग्य' कहकर उसने संतोष कर लिया ।

'नहीं मुझे क्या हुआ है ? कुछ भी नहीं ।' खाँसकर रमाने उत्तर दिया । आवाज धीमी एवं हृदय-विदारक थी ।

'कुछ नहीं ? झूठी ! ठीक है, कल तुझसे समझूँगी । किंतु रमा ! तेरा रूप देखने लायक है । हमारी पारसिनोंमें तो दौड़ा-दौड़ शुरू हो जायगी । मैं यदि पुरुष होती तो—'

'क्या करती ?'

'तो पत्नी ढूँढ़ निकालना कठिन न पड़ता ।'

इस निर्दोष हँसीने रमाके कांतिहीन गालपर लाली ला दी; आँखोंमें अश्रु-बिन्दु चमक उठे ।

इतनेमें दूसरे अतिथिका सत्कार करनेके लिए रमाको छोड़ शिरीन चली गई । उसी समय मि० वकील मिले; उन्होंने पूछा—'शिरीन ! तुम्हारे मास्टर साहब कहाँ हैं ?'

शिरीन जरा रसपूर्वक हँसकर बोली—'अभी राजाबाई टावरमें नौ न बजा होगा ।'

शिरीनका कथन सच था । उसके हॉलकी घड़ीमें नौका टन-टन होते ही जगत आ पहुँचा । बहुतसे लोग उसे देखनेके लिए घूम पड़े । उसके सुन्दर चेहरेका प्रभाव, आँखोंमें चमकता हुआ सर्वग्राही तीक्ष्ण तेज, सुगठित सशक्त शरीरपर सुशोभित सादे, फैशनेबुल कपड़ेका प्रभाव कहीं भी लोगोंका ध्यान

न हृदयकी
अपनी ओर आकृष्ट कर सकता था। तिसपर दिनको भी लज्जित करनेवा मन कभी
का प्रकाश जगतके स्वाभाविक आकर्षणको द्विगुणित कर रहा था। इतने
शानदार जन-समूहमें भी अपने व्यक्तित्वके कारण वह सबसे विशिष्ट, उच्च नेका
का दिखाई पड़ रहा था; स्वस्थ, सत्ताका अवतार जैसा मालूम पड़ रहा ा
लोग उसे देखते एवं बिना पूछे उसका स्वामित्व स्वीकार करते।

वह आया और सबकी दृष्टि उसी ओर उठ गई। दौड़ती हुई आकर शिरीनने कहा, 'मास्टर साहब! आप आ गये!'

जगत हँसा; अंधकारमें सूर्य-रश्मि पड़नेके समान उसका हास्य दीप्त हो उठा—'क्यों? मेरे आनेकी आशा छोड़ दी थी क्या?'

'आशा छोड़ देती? आप न आते तो मैं स्वयं अभी आनेका विचार कर रही थी।'

'थैंक्स (उपकार)' जरा निःस्नेहपूर्ण आवाजमें जगतने कहा।

'मि० वकीलसे 'शेकहैण्ड' कर, रघुभाईसे बड़े ही आदरके साथ मिला, पश्चात् रमाके पास चला गया। रमा एक पारसी स्त्रीके साथ बात कर रही थी। जगतको अपनी ओर आते हुए देखकर वह घबड़ा उठी—बैठ जानेकी इच्छा हुई। उस दिनके पश्चात् जगत रमासे आज ही मिल रहा था। उसका दीनता-पूर्ण मुँह देखकर उसे दया आ गई; तुरन्त शैतान अपना स्वार्थ साधन करनेके लिए शास्त्र पढ़े, उसी प्रकार वह मनमें बोला, 'वीत-राग-भय-क्रोधः' मुझे राग कैसा? भय क्या?'

'कहो रमा बहन! अच्छी तरहसे तो हो?'

'जी हाँ!' रमाने नीचे देखते हुए कहा।

'ऐसी उदास क्यों हो?' बड़े ही आर्द्र स्वरमें जगतने पूछा। प्रत्येक शब्द रमाके कोमल हृदयका टुकड़ा-टुकड़ा किये डाल रहा था; जगतका तात्पर्य भी यही था, 'मैं समझता हूँ आपको कुछ ज्वर आ रहा है। इस खुली जगहमें अधिक न घूमें-फिरें, नहीं तो सर्दी लग जायगी।'

रमा कुछ बोली नहीं किन्तु उसकी दीन, बड़ी-बड़ी आँखोंमें कटाक्षपूर्ण, प्रेम का अमोघ प्राबल्यपूर्ण तेज प्रकट हुआ; मरणासन्न भक्तका यह अन्तिम

अर्घ्य था। जब चाण्डालकी सेवा करते समय हरिश्चन्द्रने अपनी अर्धाङ्गनाको मारनेके लिए खड्ग उठाया था उस समय तारामतिने शायद इसी प्रकार देखा होगा।

जगत लौटा। रमा पास ही में पड़ी हुई एक कुर्सीपर बैठ गई—सिर नीचे झुक गया; मन्द पवनमें गुलदावदी जिस प्रकार झुकती है उसी प्रकार उसने अपना छोटा, सुन्दर सिर अपने हाथपर झुका लिया; बड़े परिश्रमसे चित्तको शान्तकर सिर ऊपर उठाया। दूरपर जगतको बात करते हुए देखकर वह बड़बड़ाई, 'कहाँ ये और कहाँ मैं? मैं ही मूर्ख हूँ। हे भगवान!'

जगत अपने मित्रोंसे बातचीत करता हुआ इधर-उधर घूम रहा था। मि० वकीलके बहुतसे मित्र उसे पहचानते थे किन्तु उसका कोई प्रगाढ़ मित्र नहीं बना था। मनुष्य एक बार मित्रता करनेके पश्चात् उस सम्बन्धको प्रगाढ़तर बनाना चाहता है किन्तु जगतके सम्बन्धमें यह बात चरितार्थ नहीं होती थी। यदि कोई मित्र साधारण सम्बन्ध उपरान्त व्यवहार रखनेके लिए अग्रसर होता तो जगत दृढ़तासे उसे दूर कर देता और अपमानित मित्र क्षुब्ध होकर दूर हट जाता; फिर भी अपना मित्र समझने वालोंकी संख्या कम न थी। इन सबसे मिलकर जगत दूर जाकर बैंडका संगीत सुनने लगा। संगीत रसदायक था; ध्वनिमें अनुभवका साक्षात्कार करानेकी शक्ति थी; मनमें पवनका सीत्कार हुआ—वहाँ से स्वरोंने उछलकर समुद्र तरंगोंको गगन-विहारका बोध कराया। अचानक मानो प्रलयकाल शान्त पड़ गया हो, ठीक उसी प्रकार स्वर दबे—नीचे पड़े—विषादका वातावरण फैल गया—दुःखमें—निर्जनतामें रो उठे—हिचकी बँध गई—और संगीत रुक गया। जगत इन स्वरोंके सुन्दर लयमें तल्लीन हो गया था. उसकी तन्मयता भंग हुई। अभी-अभी उसे अपने प्राचीन स्वभावकी रसिकताका पुनर्दर्शन हो रहा था। अनजानमें विचारने भूतकालके रमणीय प्रदेशमें विचरण किया। मनमें प्रियतमाकी दैवी मूर्ति खड़ी हो गई। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई; इतने जनसमूहमें एक चेहरा भी ऐसा न था, एक शरीर-रेखा भी ऐसी न थी जो उसके 'देवी' की रम्य मनोहर मूर्तिकी तुलना कर सकती! शिरीन कुछ दूरपर खड़ी थी; उसका साधारण, चञ्चल, गौरवपूर्ण

चेहरा; सुदृढ़, सुन्दर शरीर एवं सीधा पौरुषेय व्यवहार आकर्षक था। बिलकुल दरवाजेके पास रमा दिखाई दी; उसके कोमल मुखपर लावण्य, माधुर्य, पुष्पों की कान्ति सुशोभित थी; उसकी शरीर-लता हंसगतिसे हिलती, पर तनमनका उज्ज्वल दीप्त सौन्दर्य एवं श्रेष्ठ अपूर्वताका अंश किसीमें नहीं था। जगतने एक दीर्घ श्वाँस खींचा। तुरन्त ज्ञान हुआ, मनको वशमें किया। अब 'देवी' कहाँ? मृतको—मन मार लेनेवालोंको इसका विचार ही क्यों? सदैव भूतकालका भूत क्या लगा ही रहेगा?

'कहिए मास्टरजी! किस गम्भीर विचारमें लीन हैं?' शिरीनका कंठस्वर सुनाई दिया।

'कुछ नहीं, मैं तो 'बैंड' सुन रहा था।'

'अच्छा, आपने कुछ लिया?' शिरीनने पूछा।

'नहीं, मुझे आवश्यकता नहीं है।'

'बड़े दुःखकी बात है जगतराय! इसीके लिए एकान्तमें घूम रहे थे क्या? मेरे यहाँ भी आप ऐसा सोचते हैं? क्या चाहिये?'

'जो आप चाहें! पाव-रोटी पर्याप्त होगी।'

'नानबाईके यहाँकी सूखी रोटी! शेम ऑन योर टेस्ट (आपको स्वाद-वृत्तिके लिए धिक्कार) बॉय, आइसक्रीम!'

'शिरीन बाई! आपको यह 'बैंड' अच्छा नहीं लगता? अभी-अभी जो गायन इन्होंने गाया वह सुनने लायक था।' कहकर बॉयको आइसक्रीम ही ले आनेको कहा।

'मैं तो 'स्टुपिड' हूँ। अच्छे संगीतके समय मेरा कान काम ही नहीं करता।'

'मैं अबोधगम्यको अच्छा नहीं कहता। संगीत काव्यका जो कुछ हो वह अच्छा, हमारे हृदय-सागरको केवल उत्तेजित और शान्त करनेकी शक्ति उसमें होनी चाहिये। वीणा जिस प्रकार सर्पको नचाती है वैसे ही हमारे हृदयको जो उद्वेलित करे वही सच्चा संगीत है।'

'मास्टरजी!' साहसपूर्वक शिरीन बोली, 'अच्छा बताइये गत 'ट्यून' के

समय आप क्या सोच रहे थे ? सच-सच बताइयेगा !'

अचिंत्य रेखायें जगतके उच्च ललाटपर पड़ गईं, 'शिरीन ! कितने ही विचार ऐसे हैं जो व्यक्त नहीं किये जा सकते ।'

जगतने प्रथम बार उसके नामके पूर्व 'बाई' अथवा 'मिस' लगाये बिना सम्बोधन किया ।

'आप क्या सोच रहे थे मैं बताऊँ ?'

'हाँ-हाँ बताइये !'

'आप सोच रहे थे कि यह वैराग्यका पुछल्ला न पकड़ा होता तो अधिक अच्छा हुआ होता, बताइये ठीक है या नहीं ?'

जगतने मुस्कराकर कहा, 'आधा ठीक और आधा गलत । बहुधा पर्दा हटानेमें कुछ लाभ नहीं रहता । शिरीन ! आपका काम अभी अपूर्ण रह गया है, देखिये मि० वकील बुला रहे हैं ।

शिरीनने उसकी ओर मार्मिक दृष्टि से देखा । जगत उसे हटाना चाहता था किन्तु जगतके अन्तिम दो-एक वाक्योंने उसके हृदयपर पड़े हुए पटको चीरकर उसे सच्चे स्त्री-स्वरूपमें ला पटका था । उसे अपने शरीरके चारो ओर दाहक वातावरण-सा लगा — उसकी विशाल उज्ज्वल आँखोंने जगतके चेहरेको ईश्वरीय रूप धारण करते हुए देखा । दृष्टि उसके वक्षःस्थल पर, शरीर पर पड़ी —कल्पना ने जगतके वस्त्रोंको चीरकर उसका वक्षःस्थल, उसके सबल बाहुओंको अपनी आँखोंके सामने नाचते हुए देखा । वह अधिक विचार नहीं कर सकी किंतु उछलते हुए हृदयके साथ मि० वकीलके पास गई ।

किसीने इसमें कोई असाधारणता नहीं देखा लेकिन प्रेम-पीड़ासे चञ्चल बनी हुई रमाके चक्षु इन दोनोंको ही देख रहे थे, उसने शिरीनके चेहरे पर आच्छादित प्रेमको परख लिया, जगतको धीरेसे कुछ कहते देखा । वह समझ गई, बाकी कल्पनाने पूरा कर दिया । उसकी आँखोंके नीचे अन्धेरा छा गया, सिरपर हाथ रख वह बैठ गई । मि० वकीलने उसे देखा और तुरन्त शिरीन को पुकारा ।

'शिरीन ! देखो रमाकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?'

'क्या है रमा ? क्या है ?' शिरीन इस समय सुखी थी, वह सोच ही नहीं सकती थी कि कोई दुःखी भी हो सकता है।

'कुछ नहीं, आँखोंके नीचे कुछ अँधेरा दिखाई पड़ रहा है।'

'क्या है ?' पूछते हुए रघुभाई भी आये।

'पिताजी ! घर चलिये, मेरी तबीयत ठीक नहीं मालूम पड़ती।'

'हाँ चलो; गाड़ी आ गई होगी।'

रमाके जानेके थोड़ी देर बाद जगतने भी बिदा ली। शिरीनका मन वशमें नहीं था। फिर यह सब होते हुए भी उसे रोक रखनेकी इच्छा हुई; पर उपाय क्या था ?

———

७३

'अच्छा ब्रह्मानन्द ! मैं रातमें आऊँगा।' एक साधारण नौकर जैसा दिखाई पड़नेवाले व्यक्ति से जगतने कहा, 'स्वामीजीने और कुछ सन्देशा भेजा है ?... लेकिन वह बङ्गलेमें आया कैसे ?'

'बङ्गला वालेका पत्र लेकर आया था कि भाड़े पर देना है। अतः मालीने जाकर पूरा बङ्गला दिखा दिया।'

'तुम थे ?'

'जी हाँ, किंतु मैं क्या कर सकता था ? मैंने स्वामीजीको तुरंत सूचना दी और उन्होंने आपके पास भेजा है।'

'कोई बात नहीं है ब्रह्मानन्द !' बक्स खोलकर एक पिस्तौल और कटार निकालते हुए उसने कहा— 'यह दोनों वस्तुएँ लेते जाओ, यदि मेरी अनुपस्थिति में वह व्यक्ति किसी मार्गसे घुसनेका प्रयत्न करे तो उसे पकड़ना और न पकड़ा सके तो...' उसे पिस्तौल दिखाकर संकेत किया।

'बहुत अच्छा !' कहकर ब्रह्मानंद चला गया।

जगत संतोषपूर्वक बैठ गया। रमाने मृत्युके मार्गपर चलना प्रारम्भ कर दिया था जिससे रघुभाईका गिरना निश्चित था। श्यामदास स्वयं सिंहके मुँहमें

घुसता चला जा रहा था। दोनों तरफसे उसका प्रतिशोध एवं मण्डलका कार्य पूरा हो रहा था। जगतका हृदय कचोटता : 'क्या यह पंथ योगियोंका है?' किन्तु उसका उत्तर प्रतिशोधका उत्साह दबा देता था। धीरे-धीरे अत्यधिक अभ्याससे प्राप्त स्वस्थता एवं 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' अदृष्ट हो रही थी लेकिन इसका विचार करनेकी उसे कहाँ चिन्ता? वह उच्च पदसे गिर रहा था, योगी मिटकर मनुष्य बना और अब राक्षस बन रहा था।

इतनेमें शिरीन और मि० परशुराम दीक्षित आये। शिरीनको रात्रिमें निद्रा नहीं आई थी फिर भी प्रातःकाल उठनेपर उसे गत रात्रिकी थकावट नहीं मालूम पड़ रही थी। परशुराम दीक्षितको बुलाकर एक अँग्रेजी मासिक निकालने की योजना बना डाली। उसका मस्तिष्क व्योम-बिहार कर रहा था लेकिन अकेले नहीं, साथमें सदैव मन जगतकी कल्पना करता। जगत उसे दूर रखता है, इस बन्धनको नष्ट करनेका आज वह निश्चय कर आई थी।

परशुराम दीक्षित पेशवा प्रेसका मालिक और मि० वकीलका घनिष्ठ मित्र था। वह भारतके प्राचीन खान-पान, एवं वस्त्रका पक्षपाती था। वह एक दक्षिणी ब्राह्मण था साथ ही देशभक्त भी था। उसका मत था कि यदि लोग दक्षिणी पहनावा पहनें एवं प्राचीन रीति-रिवाज स्वीकार करें तो देशका उद्धार बहुत शीघ्र हो जाय। उसने गत रात्रिमें जगतको कोट पतलूनमें देखा था जिससे उसके सम्बन्धमें दीक्षितने उपेक्षणीय भाव बना लिया था पर आज जब उसे साधारण धोती, कमीज पहनकर बैठा हुआ देखा और अपनेसे अधिक संस्कृतपर आधिपत्य देखा तब तो उसे अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी और जगतके सम्पादकत्वमें मासिक निकालना उसने स्वीकार कर लिया। जगतने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि न जाने कब उसे बम्बईसे चला जाना पड़े। शिरीनको भी उसने मना किया कि जब तक वह बी० ए० न कर ले तब तक ऐसी प्रवृत्तियोंमें पड़ना उसके लिए ठीक नहीं। अन्तमें मि० दीक्षितने अपने नामसे ही मासिक निकालना निश्चित किया, यह भी निश्चय हुआ कि शिरीन और जगत अपने लेखादिसे बराबर सहायता किया करेंगे। शिरीनके हर्षका ठिकाना नहीं रहा, जगतकी अधीनतामें काम करना, उसके विचारोंको संसार

पर प्रकट करना, इससे बढ़कर दूसरी बात और क्या हो सकती है ? आगामी जनवरीसे मासिक निकालनेका निश्चयकर मि० दीक्षित गये।

मि० दीक्षितको पहुँचाकर आनेके पश्चात् शिरीनने बैठते हुए कहा—'मुझे कितनी प्रसन्नता हुई जगतराय ! अब देखना, हम ऐसा काम करेंगे कि...!'

'आप कर सकती हैं, पर मेरा निश्चय नहीं है।'

'क्यों ? यह भी भला कहीं हो सकता है ? जहाँ मैं वहाँ आप ?'

'यह तो बहुत बड़ी बात है।' जगतकी तीव्र दृष्टिमें शिरीनकी स्थिति कुछ विचित्र मालूम पड़ी। वह बातचीत शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर देना चाहता था किन्तु शिरीनने इतना स्वाच्छंद ले रखा था कि अन्य मित्रोंके समान उसे निकाल बाहर करना कठिन था। शिरीनकी आँखें चमक रही थीं, वह मुस्करा रही थी किन्तु आजकी मुस्कराहट कुछ भिन्न प्रकारकी थी।

'मास्टर साहब ! यदि आपको निरुत्साहपूर्ण बुद्धिमत्ता खर्च करनी हो तो मैं जाऊँ; मुझे आपसे बहुत कुछ पूछना था।'

'मुझसे ? जो कुछ मालूम होगा बता दूँगा।'

'आप जैसी पंडिता मैं नहीं हूँ। मुझे शब्द-जालमें न फँसावें। मुझे तो स्पष्ट उत्तर चाहिये। कब तक छिपा रखियेगा ?'

'मैं क्या छिपा रहा हूँ ?' शिरीनके स्पष्ट और प्रामाणिक दृष्टिपात एवं प्रश्नसे भ्रांत-चित्त होकर जगतने पूछा।

'क्या छिपा रहे हैं ? मास्टरजी, सब कुछ ! मुझे आँखें हैं, मैं अंधी नहीं हूँ। आप यहाँ क्यों रहते हैं ? गुप्तरूपसे आप क्या काम करते हैं ? प्रायः आप किसीको क्या लिखते हैं ? यह जिज्ञासा जानकर आप क्रुद्ध होंगे—बिगड़ेंगे। आप पहले थोड़ा स्नेह प्रदर्शित करते हैं, पश्चात् दरवाजा बंदकर दूर ढकेल देते हैं। मैं यह सहन नहीं कर सकती। मैं आपको पहचानना चाहती हूँ - आपके सभी कार्योंमें रस लेना चाहती हूँ। इन चार-पाँच महीनोंमें आपने मुझे पागल बना डाला है। आप मुझे नहीं बताइयेगा कि आप सचमुच क्या करते हैं ?' कहकर शिरीनने अपना हाथ जगतके हाथपर रख दिया—उसके शरीरमें बिजली दौड़ गई।

जगतको इस ढङ्गकी बातचीतका स्वप्नमें भी विचार नहीं आया था। क्या करे ? शिरीनकी बुद्धि, और उसके स्नेहके लिए उसके मनमें गर्व था।

'शिरीनबाई !...' उसने बड़ीही सिष्टता-पूर्वक बोलना प्रारम्भ किया।

'जहन्नुममें गई शिरीनबाई ! शिरीन नहीं कह सकते ? आप तो पत्थर हैं!'

'अच्छा, लो शिरीन पुकारता हूँ।' जरा हँसकर जगतने कहा, 'देखो मैं दूसरेका दास हूँ, कुछ ऐसी बातें हैं जो व्यक्त नहीं की जा सकतीं।'

'क्यों ? मुझसे कहना पड़ेगा। आप कह रहे थे कि आपपर भरोसा नहीं किया जा सकता, यह भी आपको पता नहीं कि कब तक आप बम्बईमें रहेंगे। क्यों ? कहाँ जानेवाले हैं ?'

'शिरीन ! तुम व्यर्थ व्याकुल हो रही हो। ऐसे प्रश्न दूसरोंसे पूछना एक विदुषीके लिए सभ्यतापूर्ण नहीं कहा जा सकता।' विरक्तिसे जगतने कहा।

'यहाँ आनेके पूर्व सभ्यताको ताकपर रख आई हूँ। मुझपर इन शब्द-जालों का कोई असर न होगा। मैं अपने हृदयका कहना मानूँगी—जैसा वह कहेगा वैसा ही करूँगी -'

'अरे, कुछ संयमसे काम लो। ऐसा व्यवहार तुम्हें...!'

'शोभा दे अथवा न दे। इस समय मैं आपसे उत्तर चाहती हूँ; आपको देना होगा।'

'किस अधिकारसे ?' जरा गौरवसे सिर ऊँचा करते हुए जगतने तिरस्कारसे पूछा। वह संक्षुब्ध हो उठा। इन सात अक्षरोंने शिरीनके सुप्त प्रेमको भड़का दिया। उसके स्फटिकके समान स्वच्छ हृदयका पट खुल गया।

'अधिकार ! मास्टरजी ! मास्टरजी ! आप अन्धे हैं ? देख नहीं रहे हैं ? क्या मैं दुष्चरित्रा हूँ कि इस प्रकार भाषण करूँ ? आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। आपके जीवनमें, आपके विचारोंमें मैं एकाकार हो जाना चाहती हूँ— आपको अपना बनाना चाहती हूँ। अपनी सूखी हँसी मत हँसियेगा; मैं सच कह रही हूँ।' कहकर शिरीन खड़ी हो गई।

'ऐसा ?' मुस्कराते हुए, कुछ भी उद्वेलित हुए बिना स्वाभाविक भाव-हीनता से वह बोला।

'जी हाँ, ऐसा ! जगतराय—जगत ! क्या आप हमेशा ऐसे ही बरफके समान शीतल—विरागी बने रहेंगे ? जब प्रथम बार आपसे भेंट हुई उस समय मैं बालिका थी इतने दिनोंके सम्बन्ध-मात्रसे मैं स्त्री बन गई हूँ और मेरे हृदयको अपना स्वामी चाहिये ।'

'मैं अत्यधिक दुःखी हूँ ।'

'मुझे आपके दुःखका तनिक भी काम नहीं है; बोलिये—बोलते क्यों नहीं ? आपकी सचाई कहाँ गई ? चलिये, हम एक साथ संसार विजय करनेके लिए निकल पड़ें ।'

'तुम्हारे पिताजी यह सुनकर क्या कहेंगे ?'

जगतके खेदका ठिकाना नहीं रहा । वह शिरीनको दूसरे ही भावसे चाहता था । उसकी यह स्थिति देखकर उसका हृदय फटा जा रहा था; पर रास्ता क्या था ? बारह वर्षोंके पश्चात् यह विचित्र प्रश्न आया था । वह अपनी स्वस्थता बनाये रखनेका प्रयत्न कर रहा था ।

शिरीन हँसकर बोली—'हाँ और कुछ ? कहिये न कि मैं हिन्दू नहीं हूँ । ऑल राइट ! (बहुत ठीक) यह कारण बाधक है—और आप जैसे बुद्धि-शालीको ? अच्छा मैं सब कुछ त्याग दूँ, तब ? जैसे कहें वैसे मैं नाचनेको तैयार हूँ ।'

जगत मूक बैठा रहा । इस हृदयोर्मिके तूफानको किस प्रकार शांत करे ?

'किन्तु शिरीन !....'

'किन्तु ! किन्तु ! किन्तु ! हमेशा किन्तु !' पैर पटककर शिरीन बोली—'बताइये, मुझे अपनाइयेगा ? स्वीकार हो तो कहिये और मैं आपकी आज्ञाधीन हूँ । मुझमें जो पसंद न हो उसे भी बताइये । जो आपको संतोषदायक होगा वही आपकी शिरीनका कर्त्तव्य होगा ।'

'क्या कारण बताऊँ ? यह भी कभी सम्भव है ? कहाँ आप और कहाँ मैं ? कहाँ आप सुकोमल, सुशिक्षिता रमणी और कहाँ जीवित शवके समान, पाषाण हृदयका एक क्षुद्र मैं ?' धीरे-धीरे प्रत्येक शब्द अलग-अलग करता हुआ जगत बोला, 'मुझे क्या खबर थी कि ऐसा होगा अन्यथा आपसे मैं मिलता ही नहीं ।'

'यह उत्तर ? जगत ! आप भले ही न माने किन्तु मेरी आत्मा तो बाट

देखा करती थी—अपने मालिक की ! वह आया और मैं तैयार हूँ लेकिन कुछ सच-सच भी बताइयेगा ?'

'सच सच मैं क्या बताऊँ ? शिरीन ! मैं कौन हूँ इसका भी तुम्हें पता नहीं है !'

'मुझे इससे कोई मतलब नहीं ! मैं आपको अधिक अच्छी तरह पहचानती हूँ—हाँ या नहीं—कहिये—बस !'

जगतने खेद पूर्वक गम्भीर चेहरा बनाये हुए सिर हिला दिया।

'नहीं क्यों ?'

'मेरी भावनायें आपको स्वीकार न कर सकेंगी।'

'क्यों नहीं ? सच्चा कारण कहिये न ?' झल्लाकर शिरीन बोली।

'मैं नहीं कह सकता, यही मेरा अंतिम उत्तर है।' कहकर जगत उठ खड़ा हुआ। उसे अपने हृदयपरसे अंकुश खिसकता हुआ सा लगा, 'आप जो देनेके लिए कह रही हैं—'

'तब आप इस प्रकार मुझे तिरस्कृत कर निकाल बाहर कर दीजियेगा ?' शिरीनने पूछा। प्रेम-तेजसे उद्दीप्त मुखपर रोषके अंकुर फूट निकले। 'बिना कारण, कुछ बिना कहे, ऐसा उत्तर देकर आप मुझे निकाल बाहर कीजियेगा ? आपकी भावना ! क्या आपकी भावना इतनी क्रूर एवं आचरण पत्थर जैसा घातक, राक्षसी है ?'

जगतने 'हाँ' कहकर और सिर हिलाकर आक्षेप स्वीकार किया।

'हाँ ! बैठे रहिये तब ठंडे पेटसे। लोग आवेंगे, आपकी प्रशंसा करेंगे और पीछे समझ जायँगे कि आपकी छातीमें हृदयका स्पंदन नहीं—पत्थर है। जीवन भर रोयेंगे कि घर आई गंगाको ठुकरा दिया।' कहकर गर्वमे शिरीन वहाँसे हटी, जिस कमरेमें विद्या-विलासमें कितने दिन और कितनी रातें व्यतीत किये थे उसे एक बार पुनः देखा, छाता उठाया और चल पड़ी।

वह दरवाजेके पास पहुँची थी कि जगतने अपना सिर ऊँचा किया; उसके भव्य चेहरेपर दुःखके चिह्न दिखाई पड़ रहे थे। आसन्न मृत्यु सिंहके समान सिर हिलाकर उसने बाल हटाया।

'शिरीन !' उसने गद्गद् कंठसे पुकारा। उस कंठ-स्वरका आकर्षण शिरीनके लिए भयङ्कर था; उसने पीछे देखा। 'यहाँ आओ !' जगत ने बुलाया ?

शिरीन जहाँ की तहाँ खड़ी रही।

'शिरीन ! यहाँ आओ, बैठो।' उसकी सत्ता सदैवके समान शिरीनपर अचल थी।

'यहाँ बैठो।' कहकर उसने उसे अपने पास बैठाया।

जगतकी आँखसे एक अश्रु-बिन्दु छलककर जमीनपर टपक पड़ा। शिरीनका सब रोष जाता रहा। इस प्रभावशाली, सशक्त मनुष्यको रोता हुआ देखकर दैत्य भी पिघल जाता। छाता फेंककर वह जगतके गलेसे लिपट गई।

७४

'नाथ ! मैं जानती थी कि आपका हृदय सोनेका है !'

जगतकी स्वस्थता नष्ट हो गई थी; उसका पहलेका आवेशपूर्ण, प्रेमी स्वभाव अभ्याससे बाँधे हुए बाँधको तोड़कर पूर्ववत् स्नेहार्द्र हो गया था किन्तु शिरीनके प्रति उसका प्रेम-भाव नहीं था। व्यथित होकर भाव-बिना उसने शिरीनको छातीसे लगा लिया; उसके ललाटका धीरेसे, गम्भीर विचारके पश्चात् एक चुम्बन लिया। जब उसमें भाव नहीं था तब अन्तर्वेग कहाँसे होता ? कुछ व्यक्ति पत्थरका भी इससे अधिक प्यारसे आलिङ्गन और चुम्बन करते हैं।

'शिरीन ! उसका स्वर काँप रहा था, यदि मेरा हृदय इस समय प्रेमका अनुभव करनेमें सशक्त होता, तो मैं तुम्हें अवश्य स्वीकार कर लेता। अरे ! तुम्हारे कहनेके पहले तुमसे पूछता ! तुम्हारी सुसंस्कृत बुद्धिको क्या मैं नहीं पहचान सकता ? यदि बुद्धिकी सहानुभूतिमें ही प्रेम रहता तो तुम्हारे स्वभाव जैसा दूसरा मुझे कहाँ मिल सकता है ? किन्तु शिरीन ! मैं मृत हूँ—जीवित नहीं।'

शिरीन ऊपर सिर उठाये देख रही थी। जगतको अपना हृदय-बंधन टूटता-सा जान पड़ा। एक-एक शब्द बोलते समय प्राण निकलनेकी-सी वेदना होती थी।

'जिसे तू अपना प्रेम अर्पण कर रही है—जिसे तू प्रशंसाकी धुनमें ईश्वर तुल्य समझती है वह मनुष्य नहीं है—अधम से अधम जन्तु है।'

शिरीनने सिर हिलाकर 'नहीं' कहा। पर जगत उस ओर ध्यान न देकर आगे कहने लगा! उसकी आवाज मन्द, काँपती हुई, अश्रुपूर्ण थी।

'सुनो, वर्षों पूर्व जब 'हृदयपर्ण' हरे थे उस समय जीवन मार्गमें एक सखी मिली। शिरीन! उसके सौन्दर्यके सामने तुम सब मिट्टीकी पुतली हो। वह तो स्वर्गसे सदेह अवतरित हुई थी।' एक अस्पष्ट हिचकी जगतको आई, 'तेरा मास्टर जिसपर तू इस समय आसक्त होकर अपना सर्वस्व अर्पण करनेके लिए प्रस्तुत है—उस शैतानने उसे रिझाकर, उसकी देवी आत्माको अपनी पापी आत्माके साथ प्रेममें आबद्ध कर दिया; तदनन्तर उस कृतघ्नी चाण्डालने बालपनके अज्ञानमें, अविचारमें उसे पद-दलित कर, पीस डाला। जब तेरे पापी मास्टरको ज्ञान हुआ तब उसके हाथमें राखका ढेर मात्र रह गया था। 'देवी' जीवन त्यागकर चली गई थी।' जगत आँखें फाड़कर जमीनकी ओर देख रहा था। शिरीन एकाग्र चित्तसे सुन रही थी। जगत इस प्रकार बोलता गया मानो शिरीन वहाँ पर थी ही नहीं।

'उसने आत्महत्याका विचार किया; दुःखमें, वियोगमें घुल-घुलकर उसने जीवनका स्रोत विषमय बना डाला। मृत्यु ही शान्ति प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय था। अन्तमें जब वह मरनेको हो था कि उसे गुरु प्राप्त हुआ।' जगत की आँखोंमें थोड़ी कोमलता आई; उसने शिरीनकी ओर देखा।

'तू मुझे बहुत बड़ा विद्वान्, बड़ा सभ्य समझती है किंतु तूने उन्हें देखा नहीं है। शिरीन! यदि कोई देवता सचमुच सदेह पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ है तो वे ही हैं। किसी जर्मन प्रोफेसरकी विद्वत्ता, अँग्रेज राजनीतिज्ञकी कार्य-दक्षता, किसी कविराजका आर्द्र हृदय एवं इटलीके किसी महाकलाकारकी सूक्ष्म, सौन्दर्यसेवी दृष्टि; आर्य ऋषियोंका वैराग्य, उनकी निर्मल बुद्धि एवं शान्ति सभी उस महात्मामें विद्यमान हैं। उन्होंने मुझे वैराग्य सिखाया, पर मन शान्त नहीं हुआ; बारह वर्ष तक स्वामीजीके समीप रहा किंतु तुम्हें व्याकुल देखकर मेरा मस्तिष्क व्यग्र हो उठा। 'देवी' का स्मरण आते ही आँखोंमें आँसू आ गया।

'वे महात्मा करते क्या हैं ?' शिरीनने पूछा।

'तू पूछ रही थी कि मैं क्या करता हूँ। उस महात्माका मैं दासानुदास हूँ। सम्पूर्ण भारतका वातावरण पवित्र, जीवित करनेके लिए, सच्चे जीवनकी उच्च भावना फैलानेके लिए उन्होंने एक मण्डलकी स्थापना की है। सर्वत्र हम जाते हैं और शुद्ध मार्गसे लोगोंको सुशिक्षित बनानेका प्रयत्न करते हैं। गत वर्षकी रिपोर्ट मैं तुम्हें दूँगा। संसार जानता नहीं कि उसके बिना जाने दूसरे क्या कर रहे हैं। अच्छा इस बातको जाने दो। शिरीन! तू मुझसे विवाह करना चाहती है किंतु मैं करूँ क्या? मेरा हृदय सूख गया है। चार दिनमें तू ऊब जायगी। मेरा जीवन मेरा नहीं है; आगामी रविवारको मैं जीवित रहूँगा या नहीं, यह भी कहा नहीं जा सकता। इस समय मण्डलके अस्तित्वके विपक्षमें एक भयङ्कर षड्यंत्र चल रहा है और मैंने अकेले उसे नष्ट कर डालनेका भार अपने सिर पर ले रखा है, बता मैं क्या करूँ?'

'जगत! आपने स्वयं अपनेको अनेक गालियाँ दीं किंतु आपके प्रत्येक शब्दसे मेरा प्रेम बढ़ा। आपके महात्मा चाहे जैसे हों लेकिन मेरे लिए सच्चे महात्मा तो आप ही हैं। क्या मैं आपके साथ नहीं रह सकती?

'शिरीन! विवाहके लिए मुझे दो ही कारण उचित मालूम पड़ते हैं, विश्व-नियमानुसार दो ही हो सकते हैं, जहाँ प्रेम होता है वहाँ सब विश्व-नियम हत-तेज हो जाते हैं, वहाँ विवाह न करना पाप है। सब प्रकारका बन्धन तोड़कर जो ऐसा न करे वह रूढ़िका दास है। यदि ऐसा न हो तो किसी महान् धर्मके लिए अथवा किसी ऐसे कर्त्तव्यवश जिसके सामने मनके उत्साहका कोई हिसाब ही न होना चाहिये।'

'अर्थात् आपको न तो प्रेम है और न कोई ऐसा कर्त्तव्य ही दिखाई देता है।' दुःख और निराशासे शिरीनने कहा।

'शिरीन! कृपाकर इस प्रकार बातें न करो। बारह वर्ष तक मैं मौन रहा हूँ, तुमने आज मेरा मुँह खोल दिया है। मुझपर दया करो। प्रेम अर्पण करनेमें मैं असमर्थ हूँ। अनुमान करो कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और मैं मर जाऊँ—तुम्हारे लिए बिलख-बिलख कर प्राण दे दूँ—तो क्या तुम दूसरेसे प्रेमकर

सकोगी ?' जगतने सिरके पसीनेको पोंछते हुए पूछा ।

'और कर्त्तव्य ?'

'कर्त्तव्य ! तुम इसका अनुचित अर्थ मत लगाओ । शिरीन ! मैं एक महान् धर्मके लिए जीवित हूँ । हिन्दू-संस्कृतिकी भावनाका भारतवासियोंके मस्तिष्कमें प्रचार करना और उस भावनाके आधारपर एक बड़े, विशाल, प्रभावशाली राष्ट्रकी रचना; उस राष्ट्रकी संस्कृति सृष्टिमें फैलाकर जन-समाजका उद्धार करना ही मेरे स्वामीजीका, हमारे मण्डलका एवं मेरा जीवन-लक्ष्य है । तुम्हारी परिष्कृत बुद्धि, यह भावना समझेगी । शिरीन ! मैं मनुष्य नहीं हूँ बल्कि यह भावना परिपूर्ण करनेका एक अल्प चक्र हूँ और ऐसे ही अनेक चक्र उत्पन्न कर उसे चलानेका काम मेरा है । इस कार्यमें जो वस्तु सहायता करे वही मेरा धर्म है जो न करे वह अधर्म है । इस धर्मके अतिरिक्त संसारमें मेरा दूसरा संबंध नहीं है; तुम्हारे साथ विवाह करनेसे इस धर्मका समर्थन क्या हो सकेगा ? हो सके तो मैं प्रस्तुत हूँ । मेरे स्वामीजी तो बराबर कह रहे हैं कि विवाह बिना मेरा उद्धार असम्भव है पर विवाह धर्मके लिए होना चाहिये इसके विपरीत किसी भावनावश ऐसा करनेसे क्या कार्यमें विश्रृंखला न आ जायगी ?' शिरीन जगतके सुन्दर, भावनापूर्ण, दीप्त चेहरेकी ओर देख रही थी, उसके तेजने उसपर प्रभाव डाला । उसका महत्त्वाकांक्षी स्वभाव—यह भावना परम्परा सुनकर सचेत हो गया । सुख-विवाह—सब क्षण भरके लिए भूलकर वह जगतके विचारोंमें तल्लीन हो गई । 'शिरीन ! ऐसा महत्कार्य क्या छोड़ा जा सकता है ? यदि तुम्हारे साथ विवाह करनेसे इसमें बाधा न पड़ती हो तो मैं तैयार हूँ । पर—'

'पर ?'

'बाधायें उत्पन्न होंगी । तुम हिन्दू नहीं हो । आज जो सहस्रों मनुष्य अनंत मण्डल द्वारा सरल की गई चारित्र्य भावना स्वीकार करते हैं वे जब अपने नेताको एक पारसी रमणीके साथ विवाह करते हुए देखेंगे तब क्या कहेंगे ? कहेंगे कि 'पारसिनके रूपपर विरागी, बुद्धिमान् सिद्धनाथ मुग्ध हो गया' कहेंगे, 'वह भ्रष्ट हो गया' और अनंत मण्डलको ऐसा गहरा धक्का लगेगा कि संपूर्ण जीवन अर्पण कर स्वामीजीकी आरम्भ की हुई प्रवृत्तियोंका सत्यानाश हो जायगा । लोग मूर्ख हैं लेकिन मूर्खोंको समझाना है । मेरी कठिनता...'

'जगत डियर ! आपकी कठिनताओंको मैं समझती हूँ; मैंने आपके साथ कैसा अन्याय किया ? पर दूसरा रास्ता नहीं है ? मुझे क्या करना चाहिये ? प्रेमको किसी अनुज्ञाकी आवश्यकता है ।'

'यह मैं समझ रहा हूँ । हाँ, एक अधमताका मार्ग है । मण्डल छोड़ दूँ तो हो सकता है । किंतु अपने स्वामीजी—अपने पिता—अपने जीवनके आदेश—भावनायें—इन सबको प्रेम-विहीन विवाहके लिए तिलाञ्जलि दे दूँ ? दूसरे ही दिन तुम मुझसे तिरस्कार करोगी; मैं अपनी जातिको धिक्कारूँगा एवं आत्महत्याकी अधोगतिके सिवा दूसरा रास्ता नहीं रह जायगा ।'

'नहीं ! यह तो हो ही नहीं सकता । मैं आपसे विवाह करूँ और आप अपनी भावनाएँ खो बैठें ! इसकी अपेक्षा मेरा अकेले मरना क्या बुरा है ?'

'शिरीन ! यह तू क्या कहती है ? यदि तू कहती हो तो मैं तैयार हूँ । नहीं तो '

'नहीं तो ?'

'यदि तू कहे तो स्वामीजीसे पूछ लूँ ।'

'जगत ! प्यारे ! इसमें मुझे कोई बाधा नहीं है ।' शिरीनने डबडबायी आँखोंसे कहा । किंतु यदि आप प्रेम अर्पण नहीं कर सके तब मेरा क्या होगा ? मुझे सुखी बनानेके लिए विवाह करें, इतनेके लिए आपका जीवन नष्ट करना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता ।'

'तब ?' अनिश्चिततासे जगतने पूछा ।

'तब क्या ? मेरा भाग्य फूट गया, मनकी मनमें ही रह जायगी । खैर !' हाथमें सिर लेकर अवरुद्ध कंठसे शिरीनने कहा । जगतने उसके सिरपर हाथ फेरा—उसे ऊँचा किया ।

'शिरीन ! तू क्या करना चाहती है ? मेरी ओर अब नहीं देखेगी ?'

'इसके बिना भी कहीं चल सकता है ? मास्टर ! दूरसे ही देखकर मुझे संतोष करना पड़ेगा ।' और पुनः वह रोने लगी ।

'रोओ मत शिरीन ? क्या विवाह सभी करते हैं ? मेरा टूटा-फूटा हृदय जो कुछ भाव रख सकता है वह तेरे ही लिए है । विवाह करनेसे क्या इसमें वृद्धि हो जायगी ? यदि हो सकती हो...'

'जाने दीजिये, आपकी भावनायें नष्टकर दो घड़ीका आनन्द मुझे नहीं चाहिये, किन्तु जगत ! आजकी बातसे अपने मनमें किसी प्रकारका भेद-भाव न आने दीजियेगा। जैसे हैं वैसेही बने रहियेगा।'

'भेद-भाव कैसा ? शिरीन ! बारह वर्ष पूर्व स्वामीजीके सम्मुख हृदय खोला था वही आज तुम्हारे सामने—'

'अच्छा अब बहुत देर हुई ! निराश होकर जाती हूँ ! मेरी सब आशाओं पर पानी फिर गया !' आँखोंका आँसू पोछते हुए खड़ी होकर शिरीन बोली—'किन्तु मास्टर साहब ! अब जीवन आपके ही आधारपर है !'

'ऐसा मत कहो। जलेपर नमक छिड़ककर मेरे दुःखी हृदयको अधिक दुःखित मत करो।'

'मास्टर जानेसे पहले....' वाक्यको पूरा करनेमें शिरीनको लज्जाने रुकावट डाल दी। उसकी आँखों व भाव-भंगियोंने उसके वाक्यका आशय पूर्ण कर दिया; जगतने इसके हाथको हाथमें ले लिया। शिरीनने रोते-रोते एक बार आलिङ्गन किया—और छोड़कर, कुछ देर वह जगतका हाथ दोनों हाथोंसे पकड़े हुए खड़ी रही; तद्पश्चात् सहसा उसे झटककर अपनी छतरी उसने उठा ली।

जगत उसे नीचे दरवाजे तक पहुँचाने गया।

'अपने स्वामीजीसे कब भेंट कराइयेगा ?'

'जब तुम कहो।'

'बम्बईमें हैं क्या ?'

'बाँदरामें हैं !' धीरेसे जगतने कहा।

'कल प्रातःकाल क्या भेंट हो सकेगी ? यदि हो तो मैं अपनी मौसीके यहाँ आ जाऊँ और सबेरे चौपाटीपर मिलूँ ?'

'हाँ, मैं भी अभी वहीं जानेवाला हूँ।'

'अच्छा हो सका तो साथ ही चलूँगी, देखिये न ! आपका आकर्षण कितना दुःखद है, अच्छा प्रणाम !' उसे जाते हुए देखकर जगतने निःश्वास लिया ! 'कितने हृदयोंको तोड़नेके लिये मेरा जन्म हुआ है !'

जगतकी धारणाके अनुसार ही श्यामदासने कार्य किया। 'Ghost House' (भुतहा मकान) की खोजकर वहाँ गया; दो-तीन दिन निरीक्षण करनेपर उसे दो-तीन बाबा उसमें जाते-आते हुए दिखाई पड़े। मकान-मालिककी तलाश कर उसके पाससे 'मकान किरायेपर लेनेके लिए देखना है' कहकर पत्र ले आया। जैसा ब्रह्मानंदने जगतको बताया वह पूरा बँगला देख गया; जगतने ऐसा प्रबंध कर रखा था कि देखनेवाला तुरन्त समझ जाय कि गुप्त कागज पत्र कहाँपर रखे हुए हैं। श्यामदास जब गया तो एक तिजोरी खुली हुई थी जिसमें कुछ पुराने कागज लपेटकर रखे हुए दिखाई पड़ रहे थे। इन कागजोंको ले लेना बिलकुल सरल समझ श्यामदास वापस लौट आया, उसने छद्मवेश धारण किया, जेबमें टार्च रखा और अँधेरी रातका लाभ उठाकर बङ्गलेमें चुपचाप पहुँच गया; ऊपर एक रोशनी जल रही थी। दरवाजा खुला हुआ था जिससे कम्पाउण्डमें प्रवेशकर वृक्षोंमें छिपता हुआ जिस कमरेमें तिजोरी थी उसकी खिड़कीके नीचे पहुँच गया। और बड़बड़ाया—साला बाबा अभागा है खिड़की भी खुली रख छोड़ी है।

उसने ऊपर देखा, दूरपर बारहका घंटा सुनाई दिया, साथ ही ऊपरकी रोशनी भी बुझ गई। वह दस मिनट रुका रहा, पश्चात् उछलकर पेड़की एक डाल पकड़कर उसीके सहारे खिड़कीपर पहुँच गया। भीतर पूर्ण शान्ति विराज रही थी किन्तु अँधेरा इतना था कि हाथ फैलाये हाथ नहीं सूझ पड़ रहा था। खिड़कीपरसे जमीनपर उतरकर उसने टार्च निकालकर प्रकाश किया और उसे इधर-उधर घुमाया। उसका हृदय नाच उठा। बाबाने कुञ्जी भी तिजोरीमें लगी रहने दिया था। उसने अपने आपको शाबाशी दी और बड़बड़ाया—'अब रघुभाई और अमरानंद धूल फाकें।'

धीरेसे कुञ्जी घुमाकर उसने तिजोरीका दरवाजा खोला। भीतर बहुतसे कागज रखे हुए थे जिन्हें उसने एक निगाहसे देख डाला। रघुभाईने पूरा-पूरा विवरण बता दिया था, पुराने कागज एवं संवत् १९१० और १२ के दो जन्माक्षर। थोड़ी खोज करनेपर ही उसकी दृष्टि जन्माक्षरपर पड़ी; कौएकी चपलतासे उसने उन कागजोंको हथियाया; अब यमराज भी उससे उन कागजोंको ले नहीं सकता था। उसने धीरेसे तिजोरी बंदकर कुञ्जी घुमायी; उठकर वह खिड़कीके

पास गया; वह काँप उठा— खिड़कीके पास एक काला स्वरूप दिखाई पड़ा। उसके चीखनेसे पहले ही बिजलीके प्रकाशसे कमरा जगमगा उठा। श्यामदास का सब साहस जाता रहा। सामने एक दीर्घ देह, भीमकाय, लम्बी दाढ़ीवाला बाबा खड़ा था उसकी आँखें श्यामदासपर गड़ी हुई थीं।

'वहाँ पर बैठ !' शांत, अनिर्वाच्य, तिरस्कारपूर्ण आवाजमें बाबाने कहा। श्यामदासके पैर थर-थर काँप रहे थे। निर्दिष्ट कुर्सीपर वह बैठ गया।

बाबा बहुत देर तक श्यामदासको घूरकर देखता रहा। उसे ऐसा लग रहा था कि उसकी हृदयगति बन्द हो जायगी।

'कागज उस मेजपर रख दे !' यन्त्रवत् श्यामदासने आज्ञाका पालन किया।

'बता पुलिसको बुलाऊँ या काम पूरा कर दूँ ?' कहकर बाबाने एक पिस्तौल निकालकर सामने रख दी। श्यामदासकी तो जीभ ही ऐंठ गई थी।

'बता पुलिस बुलाऊँ ?' कहकर बाबा खिड़कीकी ओर घूमा।

श्यामदास डरपोक था—'अरे नहीं बाबाजी –भाई—साहब !'

बाबाने पीछे फिरकर पूछा—'जो मैं पूछूँ उसका ठीक-ठीक उत्तर देगा ?'

'जी हाँ, लेकिन मुझे जाने दीजिये।'

'सच-सच उत्तर देगा तो छोड़ दूँगा, तुझे किसने भेजा ?'

'अपने आप ही मैं आया।'

बाबाने पिस्तौल उठाकर कहा—'सच बोल।'

'रघुभाई और अमरानंदने।'

'तू रघुभाईके कहनेसे रत्नगढ़ गया था ?'

श्यामदास जरा जवाब देनेमें अटका। बाबाकी एक दृष्टि मात्रने उससे 'हाँ' कहला दिया।

'क्या अमरानन्द जानते हैं कि इन कागजोंमें क्या है ?'

'जी नहीं, उन्हें ठीक-ठीक पता नहीं है।'

'रघुभाईने दूसरा कौन-सा काम सौंपा है ?'

श्यामदास पुनः रुका। दूरपर पुलिसमैन 'राउण्ड' भर रहा था। उसकी आवाज आई। 'बुलाऊँ ?'

'नहीं, पीछे यदि आप न छोड़ें तब ?'

'तेरा भाग्य, मेरे वचनमें श्रद्धा हो तो बता अन्यथा जेल तो है ही। बता, रघुभाईका कार्य कौन-सा है ?'

'दूसरा कोई नहीं है।' इधर-उधर भागनेके लिए मार्ग देखता हुआ श्यामदास बोला।

'ऐसा ? श्याम ! सूरतके दिन याद हैं क्या ?'

'उससे आपका क्या सम्बन्ध है ?'

'जो कुछ है मेरा ही है; यहाँसे छूटकर सूरत जाकर मजा करना है क्या ? करना है तो मेरा कहना कर।'

श्यामदासने सोचा कि जिस प्रकार अमरानन्दको फुसलाया उसी प्रकार इस बाबाको भी फुसलाऊँ। ज़रा मोलभाव करनेकी गरजसे स्वस्थ होकर वह बोला— 'मैं तो कुछ भी करनेवाला नहीं हूँ।'

'श्यामदास ! तू अस्वीकार करता है ? तू सिद्धनाथको पहचानता है ? कभी भी छोड़ूँगा नहीं, समझ रख। यह अपराध तो है ही, पुलिसको बुलाने भरकी देर है। दूसरी बातें भी बहुत सी हैं।' कहकर जगतने अपनी तेज आँखें श्यामदासपर डालीं, वह काँप रहा था।

'देख सूरतकी मास्टरीकी बात तो जाने दे !'

श्यामदासने जगतकी ओर देखा।

'गुलाब—बहनोईकी पत्नी—के साथ दोस्तीका विचार भी अभी नहीं करेगा। करमदासको लूटकर घर भरा उसे भी जाने दे फिर भी—'

जगत इतनी धीरता एवं गम्भीरतापूर्वक बोल रहा था कि भयसे श्यामदास कुछ विचार करनेमें भी समर्थ नहीं था। उसे यह जादू लगा और अज्ञानीको वहमके डरके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसका गला सूख गया, सिरमें चक्कर जैसा आने लगा। उसे अरुणका ख्याल आया और इस अपहृत बालकको खड़ाकर कब कौन अवमानना कर बैठे इसका भय उसे सबसे अधिक था। अतः वह पूछ बैठा, 'फिर भी क्या ?'

श्यामदासने बाबाकी आँखोंमेंसे अग्नि-ज्वाला सी निकलती हुई देखा।

'तुझे याद है ? एक स्नेहमयी माता तुझे एक बालक सौंप गई थी।' जगतकी आवाज काँप रही थी। जगत तनमनके सम्बन्धमें कह रहा था—श्यामदास अरुणके सम्बन्धमें समझ रहा था। 'उसकी तूने तनिक भी परवाह नहीं की, उसे हाथसे मसल डाला, उसकी पवित्र आत्माको शान्तिपूर्वक विश्राम भी नहीं लेने दिया। कमबख्त ! जो मैं कहता हूँ कर नहीं तो—नहीं तो उसके खूनका जवाब देना पड़ेगा।' जगत रुद्ररूपमें दिखाई पड़ रहा था। 'बोल, क्या कहता है ?'

'ओह बाबाजी ! बहुत हुआ, भाई साहब ! जो कहिये मैं करनेके लिए तैयार हूँ।'

'रघुभाईने और क्या कहा है ?'

'अमरानन्दके यहाँसे दूसरे कागज चुरा लानेके लिए कहा है।'

'अच्छा ! उनकी मुझे आवश्यकता है।'

'किन्तु लाऊँ कहाँसे ?'

'चाहे जहाँ से, चौथे दिन सबेरे ये कागज मेरे पास पहुँच जाने चाहिये।'

'लेकिन—'

'चुप, नहीं तो दूसरे ही क्षण अपने को मृत समझना। उठा कलम।'

'कलम किसलिए !'

'लिखनेके लिए ! लिख, मैं आज ता०...को रात्रिमें रघुभाई तथा अमरानन्दके कहनेसे—' जगतने लिखाया श्यामदासने ऊपर देखा। 'लिख !' वह पुनः लिखने लगा—बाबाकी आज्ञाका अनादर करना असम्भव था—'रातमें बारह बजे बाँदराके "घोस्ट-हाउस" में कागज चुरानेके लिए घुसा था। मैं कागज चुराकर—' पुनः उसने ऊपर देखा, और जगतने लिखनेका संकेत किया, 'भाग रहा था कि पकड़ा गया। द: श्यामदास स्मरणदास।'

'बहुत ठीक, ला, कागज दे। देख, चौथे दिन अर्थात् गुरुवारको यदि तू कागज नहीं ले आया तो इस पत्रका उपयोग किया जायगा, समझा ? जा !' कहकर जगतने दरवाजा खोल दिया। श्यामदास भागा। जगतने नकली दाढ़ी उतार डाली और दाँत पीसकर वह बोला, 'यदि मण्डलका काम न होता तो इसे—'

'क्रोधाद्भवति संमोहः !' मानो अङ्ग पर ठंढा जल उड़ेल रहे हों इस प्रकार अनंतानंदने पीछेसे आते हुए कहा। जगतने लज्जित होकर सिर नीचा कर लिया।

———

७६

'जगत ! आपके महात्मा जैसा आप कह रहे हैं ठीक वैसे ही हों तब तो मुझे डर लगेगा।' शिरीनने कहा।

'ठहर ! ठहर ! शिष्यकी अपूर्णता देखकर गुरुकी योग्यताका विचार मत करो' जगतने सीढ़ी चढ़ते हुए कहा, 'ऊपर हैं, यहीं बैठो, मैं बुलाये लाता हूँ।'

थोड़ी देर बाद जगतने कहा—'चलो, ऊपर ही बुला रहे हैं।'

शिरीन जगतके पीछे-पीछे ऊपर जाकर दरवाजे पर खड़ी हो गई। अनंतानंद एक पुस्तक खोल कर बैठे थे। 'कौन ? शिरीन बाई ! आइये !' कहकर स्वामीजीने सिर हिलाया। इतनी स्नेहपूर्ण आवाजमें तो मि० वकील भी न बुलाते होंगे।

'बैठिये। सिद्धनाथ—आपके जगतने—मुझे आपका परिचय दिया है।'

शिरीनने लजाकर सिर नीचे कर लिया। अनंतानंदने जरा हँसकर कहा—'घबड़ाइये नहीं, आपके प्रेमके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सृष्टिमें सर्व-प्रथम विश्व-नियम प्रेम ही है !'

शिरीनको आश्चर्य हुआ, अदृष्ट आशासे मन हर्षित हुआ—आप संन्यासी होकर—

'हाँ, संन्यासी होते हुए भी समझता हूँ कि प्रेम सच्चे मनुष्यत्वका आरम्भ है।'

'स्वामीजी !' शिरीन जरा साहस कर बोली और उसने जगतकी ओर देखा; 'आपके शिष्यका अभिप्राय भिन्न है। ये तो कहते हैं कि इनके लिए विवाह व्यर्थ है !'

'नहीं, मनुष्यकी तरह प्रेम प्राप्त कर, अर्पण कर इसने मनुष्यत्व प्राप्त

किया है। आपको यह स्वीकार नहीं करता क्योंकि यह आपको प्रेम अर्पण करनेमें असमर्थ है।'

'नहीं तो ये भी योगी—'

'हाँ! यह भूल है। सच्चा योगी तो वही है जो विश्वके नियमोंका अनुसरण करे; विश्व के बड़े से बड़े नियमका विरोध न करे। विवाह यह प्रकृतिका साफल्य है।'

शिरीनको इस बातमें—बात करने वालेमें—रस मालूम पड़ा; थोड़ी देरके लिए वह अपना दुःख भुलाकर यह नया विचार समझनेके लिए तत्पर हो गई।

'पर जगत तो सबका त्याग करते हैं।'

'जो कुछ खराब हो उसका त्याग कर देना चाहिये। जिस दिन भारत एवं संसारके दुर्भाग्यने योगियोंसे संसारका त्याग कराया उसी दिनसे संसारके पुनर्जीवनके बीजका सत्यानाश प्रारम्भ हो गया।'

'तब ?' शिरीनने पूछा।

'स्वामीजी! जगत बीचमें बोल उठा, 'यदि आप इस प्रकार कहेंगे तो शिरीन मेरे साथ अन्याय करेगी।'

'बेटा! नहीं करेगी। मेरा दृष्टि-बिन्दु प्रत्येक योगी, जो सद्बुद्धिवाला होगा, समझेगा। शिरीन बाई! आपको दुःखी होनेका कोई कारण नहीं है; आपका पीड़ित हृदय अमृतकी वर्षा करेगा, जो लाभ विवाहसे कभी भी नहीं हो सकता था। साधारणतः प्रेम-विहीन विवाह घोरतम पाप है। प्रकृति माता सहृदयको ही दिव्य बन्धनमें बाँधती है।'

'यह तो मैं जानती हूँ, पर इसके सिवा—'

'हाँ, इसके सिवा भी विवाह नीतिपूर्ण होता है जिसे सहधर्माचार कहते हैं। अतः शिरीनबाई! योगी चाहे जितनी पूर्णता प्राप्त कर ले, चाहे जितना विश्वमय हो जाय, फिर भी जहाँ प्रकृतिने उसे अपूर्ण रहनेके लिए आज्ञा दी है वहाँ रहना ही चाहिये। मेरे जैसे एकाकिनूसे सृष्टिका सच्चा उद्धार सम्भव नहीं है। बुद्ध एवं उनके संघ अविवाहित मर गये लेकिन पृथ्वी परसे पापका लोप नहीं हुआ। जिस समय योगीगण पागलपन स्वीकार कर तप-भङ्गसे डरकर

पर्वतोंमें छिपते फिरते थे उस समय इस स्थितिका पालन करना भले ही सम्भव रहा हो।' स्वामीजीने जगतकी ओर देखा, 'किन्तु तुम्हें घर-घर फिरना है, गाँव-गाँव को सचेतन बनाना है, एवं बादमें सशक्त, उच्चाभिलाषी वीरोंका समूह उत्पन्न कर भारतके पुत्रोंको अवनिके उद्धारके लिए देश-देशमें विजयध्वज लेकर भेजना है।'

शिरीन और जगत देखते रहे। अनंतानंद जिस समय ऐसे शब्दोंका उच्चारण करते, उस समय उनके मुखपर तेजस्विता चमक उठती एवं श्रोताका संशय नष्ट होकर उसमें दृढ़ता एवं उत्साह प्रेरित होता; तुरन्त उनका कण्ठ-स्वर स्नेहपूर्ण एवं मन्द हो गया।

'शिरीन बाई! मैंने भी आपके जगतको इस सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा है और यदि सब बातें सानुकूल होतीं तो दोनोंका सम्बन्ध हो जाता और मेरे सिद्धनाथकी अपूर्णता जाती रहती।'

'क्या मेरेसे यह नहीं हो सकता?'

'आप इसे पहचानती नहीं। इसका हृदय विशाल है, स्नेहार्द्र है, अभ्याससे निर्मल बन गया है, पर करुणासे नम्र नहीं बना है। क्या आपने इसे अरुणको खेलाते हुए देखा है? कोई विनीत, कोमल, संलग्नशील लता इससे निराधारता से जब लिपट जायगी तभी इसकी कठोरता एवं कर्कशता दूर होगी।'

इस वर्णनसे शिरीनको रमा स्मरण आ गई। जगत मूक बैठा था, वह जरा कठोरतापूर्वक बातें सुन रहा था।

'स्वामीजी! ऐसी कोई रास्तेमें नहीं पड़ी है जो आपकी इच्छा पूर्ण करे।' जरा तीव्रतासे जगतने कहा।

'मिलेगी, पर शिरीनबाई! आपको दुःखी होनेका कोई कारण नहीं है। आपसे जगतकी अपूर्णता न पूर्ण की जा सकेगी। आप बुद्धिशाली हैं, सिद्धनाथके कथनानुसार, स्वाश्रयी, वीर लगती हैं। सिद्धनाथ अधूरा है किंतु इसकी अपूर्णता पूर्ण करनेके लिए विधिने आपको नहीं सृजा है। आप भी इसीके समान अपूर्ण हैं।'

शिरीनने ठंढी साँस ली।

'निराश क्यों होती हैं ? इसकी पत्नी होनेके समान ही क्षेत्र आपके लिए भी खुला हुआ है। इसके भावनाकी सहचरी।'

'सहचरी ! बिना विवाहके ?—'

'बिना विवाह सहचरी क्या नहीं हुआ जा सकता ? एक साथ रहकर, गृहस्थी न होनेसे क्या मानसिक सहजीवन नहीं बन सकता ? शिरीन बाई ! विवाहके भावनाकी जो व्याख्या मैंने की उसे लोग कब समझेंगे ? प्रेम अथवा अपूर्णताके उपचार इन दो कारणोंको छोड़ तीसरे कारणवश विवाह करना पाप है। स्नेहके लिए, आरामके लिये, शोभाके लिए, विवाहका पाप लोग क्यों करते हैं ? इसीसे संसारमें दुःख, पाप निर्भयता बढ़ी हुई है। ये उच्च आशय न हों तो क्या दूसरा सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता ? संसारमें अनेक प्रकारके संबंध हैं। मित्रता, भाव, स्नेह—इनमें एकको क्यों न स्वीकार किया जाय ? इससे किसी को हानि नहीं पहुँच सकती और मानसिक सहानुभूति मिल सकती है; साथ ही विलग होते समय अधिक पीड़ा भी न होगी। शिरीन बाई ! हमारे संसारकी सभी रूढ़ियाँ नष्ट हो गई हैं। दुनियाको नये परिधानकी आवश्यकता है।'

शिरीन तो दिग्मूढ़ हो गई। उसने बहुतसे साधु देखे थे किन्तु उनमें कोई 'प्लेटोनिक लव' की बात कर सके ऐसा आज ही देखा।

'यह तो 'प्लेटोनिक' भावना—!'

'नहीं, जब तक आपको वैराग्यका अनुभव नहीं है तब तक ऐसा लगता है। वैराग्यसे अपनापन नष्ट हो जाता है जिससे केवल भावना-मार्ग द्वारा सह-सञ्चार ही रह जाता है, वही स्नेह-भाव अथवा 'प्लेटोनिक' प्रेम है। यह इस प्रकार समझमें नहीं आवेगा। सिद्धनाथके साथ अधिक समय तक रहिये। पत्नी बननेका क्या काम है ? सहचरी बनिये, छः मासमें देवी बन जाइयेगा।'

शिरीन मुसकराई। उसे महान् प्रयत्न करनेकी उत्कट इच्छा हुई। उसे ये शब्द बराबर श्रवण करते रहनेका मन हुआ। दुःखी मन निर्मल, शान्त हो गया। तद्पश्चात् कुछ इधर-उधरकी बातें कर अनन्तानन्दने शिरीनको बिदा किया।

'मास्टर ! आपके गुरुका स्वप्न तो विचित्र ही है।'

'स्वप्न ! तू उन्हें पहचानती नहीं। उनके विशाल विचारमें सम्पूर्ण सृष्टिको परिवर्त्तित कर देनेकी शक्ति है।'

'किन्तु आप नहीं बदलते।'

'मैं ? शिरीन ! मैं तो इनके चरणकी रज हूँ। ये सब बातें क्या अकेले तुम्हारे लिये कह रहे थे ? इसमेंसे आधा तो मेरे लिए था।'

'वह कैसे ?' शिरीनने पूछा। क्रमशः उसने अपने बुद्धि-बलसे पीड़ित हृदयको अधिक वशमें कर लिया था।

'स्वामीजी समझते हैं कि यदि मुझे अच्छी पत्नी मिल जाय तो मेरा उद्धार हो जाय - इसीलिये वे इस दृष्टि बिन्दु द्वारा मुझे समझाया करते हैं।'

'लेकिन आपको तो समझना ही नहीं है—?' शिरीनने कुछ कटूक्ति करते हुए कहा।

'शिरीन ! तू ऐसा कहेगी। तेरे पाससे आकर स्वामीजीसे मैंने सब कुछ कह दिया। अपना संशय भी बता दिया कि तुम्हारे साथ विवाह करनेसे वर्त्तमान कार्यमें बाधा पड़ेगी।'

'जो भी हो पर प्रेमासक्त स्त्रीको आश्वासन देना तो आपको खूब आता है।'

'ऐसा कहोगी ?' कुछ दुःखसे सामने देखते हुए जगतने कहा।

'नहीं जी, मैं तो हँसी कर रही थी। जगत डियर ! मैं स्त्री हूँ पर मूर्ख नहीं। मैं स्वयं समझ रही हूँ कि जैसा स्वामीजी कह रहे थे आपके अपूर्ण स्वभावको पूर्ण करनेकी शक्ति मेरेमें नहीं है। मैं तो विचार-यन्त्रके समान हूँ।'

'अन्तमें—'

'लेकिन एक मेरी दृष्टिमें है; आपके स्वामीजी भी खुश हो जायँगे।'

जगत समझ गया। वह बात आगे नहीं बढ़ाना चाहता था अतः उसे उड़ाते हुए वह बोला—'नहीं, मुझे एक या दो कोई नहीं चाहिये। शिरीन मित्र है, इतना ही बहुत है अन्यथा सूरत जाकर कोई सात-आठ वर्षकी पकड़ लाऊँगा।'

'मास्टर ! किन्तु आपके स्वामीजी—'

'मेरे लिए तो वे परमेश्वर हैं।'

'लेकिन याद रखना, आप मेरे परमेश्वर हैं !' कहकर शिरीन वहाँसे चली

गई। वह अपने विचारोंमें तल्लीन हो गई। इसी समय एकाएक उसे स्मरण आ गया—'अरर! मैं कितनी मूर्ख हूँ! रमा डियर तो बिचारी बीमार पड़ी हुई है। परसों तो वह बिलकुल मरणासन्न हो गई थी।' कहकर वह अपनी मौसीके यहाँ चली गई।

× × × ×

पार्टीमेंसे आनेके पश्चात् रात्रिमें रमाको तेज ज्वर चढ़ा, और दूसरे दिन भी वह बिछौनेपर पड़ी तड़पती रही। उसका सुकुमार शरीर तनिकमें ही मुर्झा गया एवं सूखे शरीरमें हड्डियाँ निकलनेमें देर नहीं लगी। मुँहसे एक शब्द भी उसने नहीं निकाला, उसका अन्तःकरण जल रहा था; धीरे-धीरे हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था किन्तु बाहर इसे कोई समझ नहीं सकता था। किसीके सामने विलाप करना, आक्रन्द करना, यह उसके स्वभावके विपरीत था। अग्नि मन्द पड़नेके साथ ही उसकी शक्ति, उसके जीवन-तत्त्व भी मन्द पड़ने लग गये। तीसरे दिन उसका ज्वर उतरा। रघुभाई आकर व्यर्थ नाम करनेके लिए खबर पूछ गये; रुग्णा पुत्री उसके लिए एक विपद् लगी। रमाको लड़कपनसे पिताके प्यारकी भूख न थी। उसने बिछौनेके पास कुछ पुस्तकें रख लीं और उनमेंसे चुनकर वह पढ़ने लगी।

चार बजे शिरीनको आते हुए देखा और वह काँप उठी—'यह क्यों आई? विजयी शिरीन अपनी विषमय उपस्थितिसे इस अशान्त मस्तिष्कको अधिक उत्तेजनामय बनानेके लिए क्यों आई? किन्तु उपाय क्या था?' दीर्घ निःश्वास लेकर दाँत पर दाँत बैठाकर, अपने ही हाथसे सिरपर कोलनवाटर डालकर बिछौनेपर पड़ गई।

शिरीन दौड़ती हुई आई और दो ही दिनोंमें रमाकी यह दशा देखकर वह तो सन्न हो गई। 'रमा! बहन! यह क्या? तू इतनी बीमार है और मुझे कहलाया तक नहीं?' कहती हुई वह दौड़कर चारपाई पर बैठ गई और उसके शरीरपर हाथ रखा। रमा विरक्तिसे काँप उठी।

'नहीं, कुछ नहीं है, यह तो फिर थोड़ा ज्वर आ गया था।'

'तू यहाँ अकेली मर रही है, मुझे बुलाया क्यों नहीं? ठहरो, माथेपर

पट्टी रख दूँ। मैं तो ऐसी फँस गई थी !—' गत दिवसकी घटना स्मरण आते ही शिरीनके गालों पर लाली दौड़ गई।

रमाने आँखें मूँदकर स्वस्थ होनेका प्रयत्न किया! शिरीनकी उपस्थिति, उसका स्पर्श उसे असह्य लग रहा था। 'शिरीन! क्यों व्यर्थ कष्ट कर रही हो?'

'भाड़ में जानेके लिए! बीमार पड़ी यह अपराध कम किया; ऊपरसे कष्टकी बात कर रही है।' करुण हँसी हँसकर शिरीनने कहा। उसका हृदय भी रो रहा था फिर भी वह अपने मुखपर हँसी बनाये हुए थी। 'एइ यू सिली गूज़!' कहकर खिलवाड़से रमाको तमाचा लगाया।

रमा काँप उठी और उसे शिरीनने देखा। उसने समझ लिया कि रमाका मन बेचैन है। लेकिन सच्चे कारणका ज्ञान उसे नहीं था।

'बहन! मि० जगतरायने तेरे निबन्धके सम्बन्धमें क्या टीका लिखी है तुझे पता है?'

शिरीनकी देखा-देखी रमाने भी कुछ लिखना प्रारम्भ किया था। बिचारी रमाके बचे हुए साहसको नष्ट करनेके लिए शिरीनका इतना कहना ही पर्याप्त था। उसका गला भर आया। शिरीनके मनमें तो जगत रम रहा था।

'आई सी!' (मैं समझ गई) किन्तु इतना बोलनेमें तो रमाकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

'अरे यह क्या? रमा! डियर! क्या बात है?'

कुछ नहीं!' रुँधे गलेसे रमा बोली।

'मेरा सिर! तुझे हो क्या रहा है? बोल न क्या कष्ट है?'

'कुछ नहीं, शिरीन!' बिचारी रमासे कहे बिना न रहा गया, 'कृपाकर तू यहाँसे चली जा, नहीं तो मैं मूर्छित हो जाऊँगी।'

शिरीनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा; वह आँखें फाड़-फाड़ कर रमाको देखने लगी, 'रमा! यह क्या? मेरा आना भी तुझे पसन्द नहीं।'

'मुझे क्षमा कर।'

'पर बात क्या है? पिछले साल बिना भोजन-पानीके मेरी चारपाईपर बैठी रहती थी, याद है?'

'हाँ, किन्तु वह समय दूसरा था। शिरीन! बहन! मैं पैर पड़ती हूँ, जाओ, बाई साहिबा।'

'रमा मुझे बताओ, कुछ है अवश्य। नहीं बताओगी? चाहे सूर्य पश्चिम में उगता तब भी तू मुझे निकालने वाली नहीं थी। सो आज क्यों निकाल रही है?'

'क्यों पूछ रही हो? मुझे चुपचाप पड़ी-पड़ी मरने दो।'

'नहीं, बताओ है क्या? देखो, मेरा मिजाज बिगड़ा तो नोंच डालूँगी; ठीक वैसे ही जैसे उस दिन किया था।'

'क्या बताऊँ? किस मुँहसे तू पूछ रही है? लेकिन तेरा दोष ही क्या है!'

'पगली! कुछ साफ़-साफ बतायेगी या पहेलीमें ही बात करेगी। मेरा दोष क्या और बात क्या है?'

'तेरा कोई दोष नहीं। तू तो भाग्यवान है।'

'अरे वाह रे भाग्यवान!' कलका प्रसङ्ग स्मरण आते ही कुछ मर्मसे शिरीन बोली, 'पर है क्या?'

'देखो, हम दोनोंके हृदयने एक लक्ष्य देखा; तू विजयी हुई और मैं पराजित।'

'कौन लक्ष्य?'

'जगतराय!' तकियामें सिर छिपाकर रमा बोली। अब शिरीन कुछ समझी। वह चिल्ला उठी—'तू उनसे विवाह करना चाहती थी?'

'पिताजीने पूछा था पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया।' रमा पुनः रो पड़ी।

शिरीनने कुछ और समझ पाया।

'और तू समझ रही है कि मेरे साथ विवाह करना उन्होंने स्वीकार कर लिया, क्यों?'

रमाने कुछ उत्तर नहीं दिया। शिरीनको इस दुःखके समय भी हँसी आ गई।

उसने उत्सुकतासे पूछा—'कैसे समझ लिया कि मैं विवाह करना चाहती थी?'

'शिरीन! झूठ मत बोल, मैं अन्धी हूँ? तू उन्हें चाहती थी...और...वे'

'उन्होंने मुझपर अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया। शाबाश! इसीसे तू मुझे निकाल रही थी! बहन! तू यदि स्वस्थ होती तो मैं भी रो पड़ती।'

'क्यों? तुझे भी अस्वीकार कर दिया।'

'हाँ! हाँ! मुझे—जिसे तू उनकी पत्नी समझ निकाल बाहर कर रही है। मैं उनके पैर पड़ी—क्रुद्ध हुई—हाथ-पैर पटका, पर सब व्यर्थ। वे टससे मस नहीं हुए। मेरी रमा! हम दोनों इसमें भी समभागी हैं।' कहकर रमासे लिपट गई। बहुत देर तक दोनों मूक रहीं। दोनोंकी आँखोंसे बहनेवाली अश्रु-सरिताओं का सङ्गम हो गया।

'रमा! बहन! हमने इन्हें समझा ही नहीं। इनका जीवन, इनकी भावना हम जैसोंके लिए है ही नहीं। अन्यके साथ हृदय सुखी बने इसकी अपेक्षा इनके लिए तड़प-तड़प कर मरना भी गौरव है।'

'किन्तु—' बोलते-बोलते रमाके कण्ठको आँसुओंने पुनः अवरुद्ध कर दिया।

पता नहीं कब तक दोनों सखियाँ एक दूसरेके गलेमें हाथ डाले बैठी रहीं। इसके पश्चात् शिरीन प्रायः वहीं रहने लगी।

७७

रघुभाई और श्यामदास बैठे बातें कर रहे थे।

'श्यामदास! अब जो कुछ करना है जल्दी कर!'

'अरे देखो! यह अमरानन्द आ रहे हैं। स्वामीने कुछ किया क्या?'

रघुभाईने देखा कि अमरानन्द लुड़कते-पुड़कते हाँफते हुए दौड़कर चले आ रहे हैं।

'रघुभाई। ओ रघुभाई! अरे श्यामदास! सत्यानाश हो गया। मेरा सब कागज कोई चुरा ले गया।'

दो मिनट तक तीनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे।

'कह क्या रहे हैं? लक्ष्मणपुर वाले?'

अमरानन्द अपना सिर पकड़कर बैठ गये, 'मेरे सब परिश्रमपर पानी फिर गया। श्यामदास! रघुभाई! चाहे जो करो किन्तु मेरा कागज वापस लानेका प्रयत्न करो।'

'अररर! यह तो बड़ा बुरा हुआ। किन्तु गया कैसे?' रघुभाईने पूछा।

'कल रातको बाहरसे मैं कुछ देरमें आया और सो गया; प्रातःकाल उठने पर देखा कि दरवाजा खुला है और कोठरीमें जो छोटी ट्रङ्क रखी हुई थी वह गायब है। हाय! हाय! क्या हो गया? ओफ! मैंने उसकी रक्षाका उपाय तक नहीं किया।'

'कोई घबड़ानेकी बात नहीं है अमरानन्द! अभी मेरे कागज तो हैं न; बाजी हाथसे गई नहीं है।'

'रघुभाई! आप भाग्यवान हैं।'

'अच्छा, श्यामदास तुम जाओ।'

'हाँ, मुझे भी कुछ काम है।' कहकर श्यामदास उठा और बङ्गलेके बाहर चला गया।

एक स्त्री रघुभाईसे मिलनेके लिए आई थी, वह बगलकी कोठरीमें बैठी थी। प्रथम बार वह यहाँ आई थी और उसकी विक्षिप्त-सी आँखें दीवालपर टँगे हुए चित्रोंको देख रही थीं। उस स्त्रीने श्यामदासको जाते हुए देखा और चौंक पड़ी; तुरन्त वह भी बाहर निकलकर उसके पीछे जाने लगी।

श्यामदास तेजीसे चलकर ग्रांट रोड पहुँचा। बाँदराका टिकट लिया। थोड़ी देरमें उस स्त्रीने भी श्यामदासको बाँदराका टिकट माँगते सुनकर वहींका टिकट लिया। श्यामदास इतनी जल्दीमें था कि कोई उसका पीछा कर रहा है यह भी देखनेका उसे अवकाश नहीं था।

स्टेशनपर एक व्यक्ति श्यामदासकी बाट देख रहा था। 'रामचरण! आ गये?'

'जी हाँ, तैयार हूँ!' रामचरण नया, उत्साही, 'क्रिमिनल इन्वेस्टिगेशन डिपार्टमेंट' (गुप्तचर विभाग) का उदीयमान तारा था। इन दोनोंमें बहुत दिनोंसे मित्रता थी क्योंकि पुलिसमें कोई मित्र होनेसे साहस दूना हो जाता है।

'देखो, रामचरण! यदि मुझसे कोई छेड़-छाड़ न करे तो कुछ बोलना मत, यदि कुछ हुआ तो मैं तुम्हें बुलाऊँगा।'

बाँदरा आया। दोनों व्यक्ति आगे चले और वह स्त्री उनके पीछे। स्त्रीका स्वरूप पागल जैसा था पर मनुष्योंकी भीड़में किसीने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। 'घोस्ट-हाऊस' पहुँचकर रामचरणको श्यामदासने दूरपर खड़ा कर दिया।

'देखिये, कृपानिधान! उस खिड़कीसे मैं बुलाऊँ तब आप आइयेगा, नहीं तो कोई आवश्यकता नहीं। काम तो सब ठीक हो जानेकी आशा है और आपका काम शायद ही पड़े। लेकिन शायद बाबा साला मार बैठे।'

'हाँ, हाँ, तुम निश्चिन्त रहो, डरो मत।

श्यामदास भीतर गया, पीछे-पीछे वह स्त्री भी गई।

'ऐ मिस्टर! जरा सिद्धनाथको बुला दो।'

ब्रह्मानन्द ऊपर बुलाने गये। बङ्गलेमें चारो ओर शान्ति थी और वह स्थान इतने एकान्तमें था कि शायद ही कोई उधरसे आता-जाता हो। श्यामदास कमरेमें जाकर सोचने लगा कि पासा इस समय सीधा पड़ जाय तो बम्बई छोड़ चुपचाप सूरत चला जाऊँ; अब वृद्ध भी हो चला हूँ। दीवालपर एक कटार टँगी हुई थी; उस परका काम वह देख रहा था। कैसा अच्छा काम लोग बनाते हैं। वह घूमा, सिरसे पैर तक काँप उठा और चिल्ला उठा—'कौन? गुलाब!'

उस स्त्रीने राक्षसीके समान अट्टहास किया—'हाँ मूआ, कलमुँहा, गुलाब! इतने दिनोंसे कहाँ था?'

'तू कहाँसे आई? बाबा सब—'

'अरे कमीने! तेरे पीछे-पीछे ग्रांट रोडसे आई। अब कहाँ जायगा? मुझे छोड़कर भाग गया नीच! मेरा लड़का कहाँ रख छोड़ा है?'

गुलाबकी आँखोंमें पागलपनका, विषका तेज चमक रहा था, उसका अङ्ग-अङ्ग काँप रहा था। श्यामदास तो स्तब्ध-सा हो गया। उसमें मूलतः अधिक साहस नहीं था, इसपर गुलाब आ गई जिससे वह अर्द्ध मृत हो गया।

'मैं क्या जानूँ? तू जा यहाँसे।'

'अब मैं जाऊँगी? तेरा कोट पकड़कर खड़ी रहूँगी। मुझे खराबकर मेरे

लड़केको मार डाला, और अब जाने दूँगी ! अब तो मैं तुझे कभी छोड़ने वाली नहीं ।'

श्यामदास खूँखार बन गया, उसकी आँखें चढ़ गईं । 'कमजात ! जाती है या नहीं ?' कहकर उसने एक तमाचा जड़ दिया । तमाचा इतना जबरदस्त था कि गुलाबके आँखोंमें पानी आ गया किन्तु वह वहाँसे हटी नहीं ।

'मुझे मारता है ? ले मार, मार; मैं भी आज तुझसे समझूँगी ।' कहकर वह श्यामदाससे भिड़ गई । श्यामदासने उसे मारनेके लिये हाथ उठाया, उसका खून खौल रहा था । उसका वश चलता तो गुलाबको मार डाले होता । श्यामदासका हाथ गिरनेके पहले ही सिद्धनाथने उसे पकड़ लिया ।

गेरुआ वस्त्र धारणकर और दाढ़ी लगाकर जगत आया और इन दोनोंको अलग करनेका प्रयत्न करने लगा । गुलाब पूरी ताकतसे भिड़ी हुई थी, उसे अलग करना बड़ा कठिन था और श्यामदासका क्रोध भी समा नहीं रहा था ।

दोनों लड़ रहे थे और जगत उन्हें छुड़ा रहा था । दो-तीन घूँसा खानेके बाद गुलाबको अलग कर सका । 'मामला क्या है ?'

'गुलाब ! कुब्जा—' हाँफता हुआ श्यामदास बोला—और गुलाबकी ओर बढ़ा ।

गुलाबका नाम सुनकर जगतका रोम-रोम खड़ा हो गया । श्यामदासको उसकी ओर बढ़नेसे रोका । आध मिनट तक जगत और श्यामदासमें हाथापाई हुई, जगतने गुलाबको नजदीक आते हुए देखा, तुरन्त श्यामदास चीख उठा और जमीनपर गिरकर लम्बा हो गया । उसके सफेद कोटपर रुधिरकी धारा बह रही थी । गुलाब कटार फेंककर हँसती हुई भीतरकी कोठरीसे होती हुई ऊपर दौड़ गई । श्यामदासकी चीख सम्पूर्ण बङ्गलेमें गूँज उठी । जगतने देखा कि गुलाबने श्यामदासका खून कर डाला है ।

उसकी समझमें नहीं आया कि वह क्या करे । तुरन्त उसे मण्डलका ख्याल आया । पुलिसको बुलाकर गुलाबको दे देना चाहिये अन्यथा मण्डलका सब काम चौपट हो जायगा । ब्रिटिश भारतमें मण्डल द्वारा खून ! रखुभाई विजयी

हो जायगा किन्तु साधुका वेश कामका नहीं। ऊपर जाकर साधारण कपड़ा पहन आनेके लिए कमरेका दरवाजा बन्दकर वह ऊपर गया।

× × × ×

अनन्तानन्द उपवनमें बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे। कमरेमें धमाचौकड़ीकी आवाज सुनकर उस ओर उनका ध्यान गया, इसी समय गेरुआ वस्त्रमें जगत एवं सफेद कोटधारी श्यामदासके बीच हाथापाई होती हो ऐसा उन्हें लगा। कुछ नहीं, जगत विजयी होगा—उसका शरीर बलिष्ठ है। इतनेमें स्वामीजीने चीख सुनी, उठकर दौड़े। उसी समय जगतने दरवाजा बन्द कर दिया था। वहाँसे वे खिड़कीके पास गये और जिस प्रकार चार दिवस पूर्व श्यामदास गया था उसी प्रकार वे भी भीतर गये।

उन्होंने श्यामदासको दम तोड़ते हुए देखा, उसकी छातीसे रुधिर बह रहा था।

'अरे सिद्धनाथ! यह तूने क्या कर डाला? तेरी निजी शत्रुताने यह क्या कराया?'

इतने ही शब्द स्वामीजी बोले और उन्होंने श्यामदासकी ओर देखा। हृदयसे अधिक लोहू निकलनेके कारण उसके प्राणपखेरू उड़ गये थे। बिना घबराये नीचे झुककर श्यामदासकी जेबमें दिखाई पड़नेवाला कागज स्वामीजीने निकाल लिया और स्वाभाविक स्वस्थतासे तिजोरीके पास जाकर अपने जन्मान्तरके कागज निकालकर सबमें दियासलाई रगड़कर लगा दिया। थोड़ी ही देरमें सब कागज जो मण्डलके लिए भयरूप थे, जलकर राख हो गये।

रामचरणने भी दूरसे गेरुआ वस्त्र एवं सफेद कोटके बीच होनेवाली हाथापाई देखी थी, चीख सुनी थी। वह मनमें हर्षित हुआ—'प्रोमोशन' पास आता हुआ दिखाई पड़ा, वह पासमें आकर खड़ा हो गया।

७८

जगत गुलाबके पीछे गया। वह दौड़ती हुई कमरेके भीतर चली गई। उसे अपने कृत कर्मका कुछ ज्ञान हो रहा था। जगत आकर दाढ़ी और गेरुआ वस्त्र उतारने लगा। गुलाबको उसने देखा। वर्त्तमान गम्भीर समय, भूतकाल

का अनुभव, गुलाब, श्यामदास, तनमन, सब उसके मस्तिष्कमें भर गये।

'कौन ? गुलाब ! हरिलाल चाचाकी पत्नी !'

'आप कौन हैं ?' गुलाबने पूछा।

'मैं ?' दाँत पीसकर जगत बोला; गुलाबको देखकर प्रतिशोधकी भावना उत्तेजित हो उठी—मनमें 'देवी' की मूर्त्ति खड़ी हो गई—उसकी अकाल मृत्यु स्मरण आ गई। सिद्धनाथ मिट गया—किशोर कालान्तरका यमराज बनकर खड़ा हो गया।

'मैं ? भाग्यहीना गुलाब ! मैं जगत हूँ ! तनमन याद है ? उसीका 'किशोर'। आखिर मेरे हाथमें पड़ ही गई। याद है कि मेरी 'देवी' को तूने मार डाला। विषयी, क्रूर, पापिणी गुलाब ! देख, अब तेरी भी मृत्यु आ गई। श्यामदास कुमौत मरा—और तू भी मरेगी !'

'ओ मौसी ! जगतकी प्रचण्ड आवाजके बाद एक कोमल, मधुर, दयापूर्ण आवाज सुनाई दी। चारपाईपर अरुण सोया हुआ था, वह आँखें मलता हुआ उठा और गुलाबको देखकर चिल्ला उठा। भयभीत, काँपती हुई गुलाबने अपने खोये हुए पुत्रको देखा और चीख उठी, झुककर अरुणको उसने उठा लिया, 'मेरा बेटा ! मेरा भीखा ! मेरा लाल !' कहकर बार-बार उसका चुम्बन किया।

जगत तो पागल-सा हो गया। उसका बैर, क्रोध, उसका माथा फटा जा रहा था, उसपर यह मौसी !....

'यह तेरा लड़का है ! तेरे और श्यामदासके पापका फल ?' जगत गरज उठा। उसकी आँखें अग्निके समान लाल हो गईं। उसकी शान्त नसोंमें ज्वाला दौड़ रही थी; मण्डल, शान्ति, योग—स्वामीजी—सब भूल गया; उसको नाकमेंसे फूत्कार निकल रही थी।

'मेरा भीखा !' कहकर गुलाबने झुककर एक चुम्बन लिया। अरुण गलेसे लिपट गया। वह अपनी माँकी गोदमें जाकर ऐसा चिपट गया मानो वह सुखकी सीमाको पहुँच गया हो।

'तेरा भीखा !' कह जगतने अपने सुदृढ़ हाथोंसे गुलाबको दूर हटा दिया।

'मौसी ! मौसी ! मौसीको मारना मत !' कहकर अरुण उससे लिपट

गया। जगत खूनका प्यासा हो रहा था। उसने बलपूर्वक अरुणको बाल पकड़कर ऊपर तान दिया। कोमल, छोटा बालक डर गया, जगतके डरावने चेहरेकी ओर देखने लगा।

'यह तेरा भीखा है! मेरे 'देवी' का भाई!' जगत कठोर प्राणघातक रूप से हँसा। उसने बाल पकड़कर अरुणको झकझोरा!

'भैया!' अरुण करुण स्वरमें बोल उठा, 'भैया! जगत भैया! आप क्यों ऐसा बोल रहें हैं यह तो मेरी मौसी हैं।'

गुलाबने जाकर जगतका हाथ पकड़ लिया। उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे।

'जगत, किशोर! मेरे भीखाको छोड़ दो—मुझे मारो, लो। तुम्हारा तनमनको मैंने दुःखी किया—किन्तु इसे—' कहकर गुलाब जगतके मुँहकी ओर देखने लगी।

जगत—विकराल—जगत माँ-बेटेको देख रहा था। दोनों रो रहे थे। दृष्टिके सामने स्वामीजी खड़े हो गये। तुरन्त गुलाब और अरुणको एक बार झकझोर कर उसने अपने पाससे दूर कर दिया—ढकेल दिया।

'चाण्डालों! जाओ—अपना पाप पूरा करो। जगतका जीवन अधिक उच्च कामके लिए है।' कहकर वह वहाँ से हट गया।

नीचे किसीने दरवाजा ठोंका—उसकी आवाज शान्त बङ्गलेमें गूंज उठी। तुरन्त नीचे पड़ा हुआ श्यामदास उसे स्मरण हो आया।

'अरे, पर मेरा मण्डल, मेरे स्वामी! दूसरा मार्ग नहीं है। मेरे प्रतिशोध का यह फल! स्वामीजी सच कह रहे थे—अब पूर्णरूपसे प्रायश्चित करूँगा। गुलाब! चाण्डालिन! ले यह कुंजी! उस सन्दूकमें दो-एक हजार रुपये होंगे उसे लेकर भाग जा, अरुणको ठीकसे रखना। कोई पूछे तो कह देना कि श्यामदासका खून मैंने किया है।' कहकर जगत चला गया। उसने छातीपर हाथ रखा, भीतरके प्रेम-चिन्हको दबाया और पुलिस बुलाकर समर्पण कर देनेके लिए नीचे उतरा।

'खून किसने किया?' रामचरण पूछ रहा था।

'मैंने !' अनंतानंदकी शान्त, स्वस्थ आवाज सुनाई दी।

रामचरणने तुरन्त स्वामीजीके हाथमें हथकड़ी पहना दी। जगतने आकर स्वामीजीको देखा और उसकी आँखोंके नीचे अँधेरा छा गया, वह समझ गया। स्वामीजीने सोचा कि मैंने खून किया है, और मुझे बचानेके लिए स्वामीजीने आत्मसमर्पण किया। 'स्वामीजी !' पुकार कर जगत चीख उठा।

अनंतानंद लौट पड़े, उनके मुख-मण्डल पर दिव्य तेज चमक रहा था और अपनी स्वाभाविक भव्यताको अलौकिक बनाते हुए वे शुद्ध हृदयसे मुस्कराये, 'बेटा ! मेरा समय पूरा हो गया है। 'देखा ? इसका नाम 'बुद्धि-नाशात्प्रणश्यति !' इससे शिक्षा ग्रहण कर।'

'किन्तु आप ?—'

'सुन, तेरी अपूर्णता खरीदनेके लिए किसीको मूल्य देना चाहिये।' अनिर्वाच्य गौरवसे स्वामीजीने कहा। इतनेमें दयानन्द बाहरसे आ गये—यह देखकर वे चकित हो गये।

'दयानंद ! सिद्धनाथ सब बतावेंगे, इसमें घबड़ानेका काम नहीं है। मेरी सूचनायें वहाँ रखी हैं।' कहकर तिजोरीकी ओर संकेत किया। 'और मेरा उत्तराधिकारी एवं मण्डलका प्रमुख यह खड़ा है !' जगतकी ओर संकेत करते हुए कहा, 'आज इसकी सब अपूर्णता अपने साथ लिये जा रहा हूँ। चलो, पुलिसमैन !'

जगत चिल्ला उठा 'अरे पर स्वामीजी ! आप बिना...पुलिसमैन ! मैंने...'

स्वामीजी तनकर खड़े हो गये—जगतकी ओर उन्होंने आग्नेय नेत्रसे देखा—कठोर, सत्तापूर्ण आवाज़में कहा—'वत्स ! धर्म-रक्षा करनेका अभी बहुत समय है—खामोश रह; मेरा वचन ही तेरे लिए विधि-लेख है !'

गौरवसे, दृढ़तासे स्वामीजी रामचरणके साथ चले गये।

———

७६

स्वामीजीके जानेके पश्चात् दयानंदने जगतकी ओर देखा। जगतने डबडबायी हुई आँखोंसे सब बातें सुनाईं और वह फूट-फूटकर रोने लगा।

'दयानन्दजी ! हाय स्वामीजीकी हत्या—मेरे पिताकी—प्रभुकी हत्या स्वयं

मेरे हाथों हो रही है। उनका कहना नहीं माना, निजो शत्रुताको विपरीत बुद्धिसे ऊँचा समझा। इस समय यदि मण्डलका विनाश होगा तो उसका कारण मैं ही हूँगा। मुझे बचानेके लिए स्वामीजीने यह किया! उनकी धारणा है कि हम दोनोंमें मण्डलके लिए मैं अधिक लाभ-प्रद हूँ। हाय मेरे स्वामीजी! मेरी पूर्णता! अधम अभिमानो जगतकी पूर्णताके लिए यह मूल्य! बारह वर्षका समय व्यतीत हो गया; फिर भी मैं प्रतिशोध भूल नहीं सका; अन्तमें यह मूल्य! दयानंद! यह मेरा अधूरा योग—और उसकी यह शिक्षा!' जगतका बल क्षीण हो गया था।

'सिद्धनाथ!' शांत अचल स्वभाववाले, विचारवान दयानंद बोले, 'प्रतिशोध की व्यर्थता तुमने देख ली जिससे अधूरा योग पूरा हो गया। अब उठो, देखा जाय कि स्वामीजी क्या रख गये हैं।'

दोनों शिष्योंने अश्रुपूर्ण नयनोंसे स्वामीजीकी सूचना पढ़ी। उसमें मृत्युके पश्चात् क्या क्या करना, सबका विस्तार पूर्ण विवरण दिया हुआ था। स्वामीजीने कहींपर भी भूल नहीं की थी। स्वामीजीको यथाशक्ति बचानेका एवं मण्डलको किसी प्रकारका धक्का न पहुँचने देनेका नियम रख, दोनोंने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अनन्त मण्डलके सभी अग्रगणोंको तार द्वारा बम्बई बुलाया।

काग़ज़ोंके जल जानेसे अब कोई भय नहीं रह गया था, किंतु सेक्रेटेरियटमें किसी प्रकारका संदेह न फैले यह सम्भालनेका कठिन काम जगतके सिर आ पड़ा। जगत मि० वकीलको लेकर होमी सेठसे मिला और उसकी सलाहके अनुसार कार्य करना उसने प्रारम्भ कर दिया। तीन-चार दिन तो रात-दिन लगातार जगतको व्यस्त रहना पड़ा, उसे जरा भी विचार करनेका समय भी नहीं मिला।

चौथे दिन बंबईमें जगतके मकानपर रात्रिके समय मध्यस्थ-मण्डलके २४ सभासदोंकी बैठक हुई। चम्पा और रणुभा आँसू बहाते हुए आ पहुँचे। जगतने हृदयपर पत्थर रख कर उन सुसंस्कृत सभ्योंके समक्ष सब बातें रख दीं एवं स्वामीजीकी सूचना पढ़कर सुनाई। प्रत्येक सभासदने उसीके अनुसार चलनेकी सौगंध ली; अमरानंदको मण्डलसे निकाल बाहर करनेकी आज्ञा प्रचारित हुई,

रणुभाने मण्डलके अध्यक्ष पदसे त्यागपत्र दे दिया। स्वामीजीके आदेशानुसार वह पद जगतको दिया गया; सभासदोंको भी उसपर पूर्ण विश्वास था। सबके विचारानुसार एवं सदैवके लिए भय दूर कर देनेके विचारसे यह निश्चय हुआ कि जगत रत्नगढ़का दीवान निर्वाचित किये जानेका प्रयत्न करे एवं रणुभा केवल राजाके वली बने रहें।

ऐसे विपदके समय सब कार्य ठीक-ठीक चल सके, इसके लिए सब लोगोंके स्वामीजीसे मिलनेका प्रबन्ध बड़ी कठिनतासे महान परिश्रमके पश्चात् हो सका। दुःखार्त्त हृदयसे सब लोग गये; स्वामीजी अचल गौरवसे बैठे हुए थे, सब लोगोंने दण्डवत प्रणाम किया। दयानंदने सब व्यवस्था कह सुनाई, खून किसने किया था यह भी बताया। मण्डलपर आई हुई विपत्ति बहुत कुछ दूर हो गई थी। अमरानंद नीचा देख चुके थे, एवं सेक्रेटेरियट पर जगतका ऐसा प्रबल प्रभाव जम गया था कि मण्डलका निर्धारित कार्य वहाँके कार्यकर्त्ताओंने करना स्वीकार कर लिया था।

'मेरे शिष्यगण! मेरी दृष्टि तब सच्ची थी। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया और यदि मैंने ऐसा न किया होता तो आज हम अपने सच्चे वीरसे हाथ धो बैठे होते। हम ऐसी स्थितिपर पहुँच गये हैं जहाँ मेरे जैसे स्वामीकी आवश्यकता नहीं है, आपका प्रभावशाली अध्यक्ष आपको विजयी बनावेगा। इसमें जो कमी थी वह पूर्ण हो गई है; इसका योग पूरा हो गया है।' तत्पश्चात् स्वामीजीने सबसे यथायोग कहकर सबको बिदा कर दिया। केवल जगत, चम्पा, रणुभा एवं दयानंद रह गये।

'स्वामीजी!' जगत बोला। 'अब हम...' उसकी आँखें डबडबा आईं।

'तुम विजयी होगे, बेटा! आर्य देशका भाग्य मेरे जैसेके अल्प प्रयासपर टिका नहीं है; उसके भविष्यका प्रकाशमय पृष्ठ लिखा जा चुका है। जहाँ योगकी भावना कृष्णके समान पूर्ण हो—जहाँ उत्साहवान, प्रभावशाली अर्जुन हों 'तत्र श्रीविर्जयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम' सृष्टि बाट जोह रही है। निराश होनेका कोई कारण नहीं है।'

'हाँ! पर आपके जानेसे मेरा मन...' चम्पाने कहा।

'चम्पा ! योगीसे स्त्री क्यों बन रही है ? तब मण्डलका हिसाब कौन रखेगा ?' हँसते हुए स्वामीजी बोले। चम्पा रो पड़ी।

'जाओ ! इतनेसे ही सब लोग घबड़ा उठे ! कल मण्डलपर अधिक विपत्ति आ पड़े तब क्या करोगे ! जाओ ! बहुत हुआ।' कहकर सबको विदा किया।

जगत अकेला रह गया—पैर पकड़कर रोने लगा। 'मेरे प्रभु — पिता —'

'सिद्धनाथ ! यह कायरता तुझे शोभा देती है ? देख, मेरे बचावके लिए कोई प्रयत्न मत करना।'

'मैंने तो बैरिस्टर--!'

'नहीं- मुझे आवश्यकता नहीं है, मैंने स्वयं मृत्यु बुला ली है और मेरे प्राण भी मेरी स्वेच्छासे ही जायँगे, दूसरोंकी इच्छा से नहीं।'

'स्वामीजी ! दूसरेके पापके प्रायश्चितके लिए आपका शरीर....'

'इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ? यह बात छोड़ सिद्धनाथ ! तेरे 'देवी' का प्रतिशोध अन्तमें तुझे शुभ मार्ग दिखावेगा। आखिर उसकी माँको बचानेके लिए तू स्वयं मरनेके लिए तैयार हो गया, यह आत्मत्याग, यह भावना भविष्यमें तेरे हृदयको निर्मल रखेगी।'

'प्रभो ! आपके मार्गपर विचरण कर कृतार्थ होनेकी आशा रखूँगा।'

'नहीं, तेरी बुद्धि ही तुझे मार्ग प्रदर्शित करेगी, वह शुद्ध होती जा रही है। देखो, अब संन्यास मत लेना, समझा।'

'जी नहीं, मेरा विचार...'

'लेनेका नहीं है। मेरे मण्डलका अध्यक्ष संन्यासी नहीं—गृहस्थाश्रमी होना चाहिये। इसीसे मैं सफल नहीं हुआ। सभी आर्य-तनुजोंको हमें अपना सहचर बनाना है--यदि सभी संन्यासी बन जायँगे तब भला क्या होना है ? ब्रह्माका स्त्री बिना चल सकता है, किन्तु तुझे अब विष्णु रूपसे रहना है, लक्ष्मी बिना क्षी-सागर शून्य रहता है—खबर है ? तेरे हृदयकी पीड़ा मैं जानता हूँ। कुछ नहीं ! भविष्यके जीवनमें कोई सुशिक्षित रमणी तेरा साथ देगी। यदि मण्डल का अध्यक्ष तुझे बनाना न चाहता होता तो शिरीनसे विवाह कर लेनेकी कभी आज्ञा दे दिये होता। कोई जल्दी नहीं है। अब जा बेटा ! निराशीतिर्ममा-

भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः !' कहकर स्वामीजीने जगतका आलिङ्गन किया। जगत अवरुद्ध कंठसे घर आया।

इतने दिनोंके पश्चात् आज थोड़ा आराम करनेका अवसर मिला, शिरीनके यहाँ जिस दिन पार्टी थी उस दिनसे आज तक उसे शारीरिक अथवा मानसिक शांति नहीं मिली थी। शरीर भी कुछ दुर्बल हो गया था। सदैव मस्त रहने वाले मनको पहले शिरीनके समक्ष, पीछे गुलाबके सामने, दयानन्दके सम्मुख और अन्तमें स्वामोजीके आगे रोना पड़ा था; अस्वस्थ बनकर स्थिरता खो बैठा था। उसे विचार करनेका समय ही नहीं मिला था। प्रतिशोधका विचार करना या नहीं, गुलाबको क्यों जाने दिया, स्वामीजी कह रहे थे कि मैंने योग प्राप्त कर लिया है यह किस लिए, इन सब विषयोंपर विचारकर जीवनमें एकाग्रता लानेका प्रयत्न वह न कर सका था। इतने दिनोंकी इतनी भयङ्कर घटनायें सिनेमेटोग्राफके खेलके समान उसकी दृष्टिके सामनेसे निकल गई थीं—उसके जीवनमें, विचारोंमें दूसरे परिवर्त्तन भी हुए थे, लेकिन वे अभी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहे थे।

घर पहुँचते ही शिरीनका पत्र मिला।

'प्यारे जगत !

तीन बार आई किन्तु अभाग्यवश भेंट नहीं हुई। मैं रमाके यहाँ रहती हूँ जिससे यदि भेंट न हो तो क्षमा कीजियेगा। आपकी ही—शिरीन।'

पत्र पढ़ा। स्वामीजी कहते थे, मन कह रहा था कि शिरीनके साथ विवाह नहीं किया जा सकता। ठीक, अभी बहुत समय है। अरे पर 'देवी !' उसका स्थान शिरीन लेगी ! जगतने पत्र फाड़ डाला और रघुभाईके घर जानेके लिए वह निकल पड़ा।

८०

बहुत दिनोंके बाद आज जगत रघुभाईके यहाँ आया। बीचमें शिरीनसे उसने सुना था कि रमा बहुत निर्बल हो गई है। गुलाबको उसने क्षणिक आवेशमें छोड़ दिया था पर रघुभाईको उसी प्रकार छोड़ देनेमें लाभ न था,

ऐसी उसकी धारणा थी। फिर भी यह विचार तो उसके मनमें उदय हुआ ही कि अब प्रतिशोध लेनेसे कोई फायदा नहीं। पर दवे हुए, निराश हृदयमें विचार आया कि रमा मरणासन्न है अतः रघुभाई भी अवश्य दुःखी होगा और उसका प्रतिशोध फलीभूत होता होगा। उस प्रतिशोधमें अब आवेश नहीं था।

रघुभाईको देखकर जगत आश्चर्यचकित हो गया, बुड्ढा तो उलटे और भी हृष्ट-पुष्ट दिखाई पड़ रहा था और शोकग्रस्त होनेका कोई चिन्ह भी नहीं था।

'ओ हो हो! जगत भाई! बहुत दिनों बाद?' स्वाभाविक मिष्टतासे उसने पूछा।

'कुछ काममें व्यस्त था। आप कैसे हैं?'

'मजेमें! आप जरा सूख गये लगते हैं?'

'रमा बहन कैसी हैं?'

'यह डाक्टर आये, इन्हींसे पूछ लीजिये।'

डाक्टर गम्भीर चेहरा बनाये हुए आकर बैठ गये।

'कैसी है, डाक्टर?' रघुभाईने पूछा।

'हार्टका ऐक्शन बड़ा ही धीमा है। मुझे तो कोई रोग समझाई नहीं दे रहा है एक सप्ताह होनेपर कुछ कहा जा सकता है। मेरा ख्याल है कि इसी बीचमें कुछ होगा—'

'जानका तो खतरा नहीं है न?' रघुभाईने पूछा।

जगतके विस्मयका पारावार न रहा। यह पिता है! न तो आँखमें पानी है और न आवाजमें कंपन, निश्चिन्ततापूर्वक मुँहमें पान चबा रहा है!

'कुछ कहा नहीं जा सकता।' कहकर डाक्टर उठा।

'रमा बहनकी तबियत इतनी अधिक खराब है!'

'तुम्हारी ही करतूत है।' शान्तिपूर्वक रघुभाईने कहा।

'मेरी?'

'हाँ, आजकलकी लड़कियाँ 'लव' 'लव' करती हैं। उसीका यह परिणाम है!

'नहीं, रघुभाई! यह तो आपके कार्यका परिणाम है।' जगतने कठोरता

से कहा। दबा हुआ हृदय रघुभाईको देखकर पुनः कठोर हो गया था।

'मेरा ? कैसे ?' रघुभाई चौंका।

'भूल गये ? गुणवंतीको दुःख दिया—उसे रुलाया, यह भूल गये ? ईश्वरने उसके पुत्रको प्रतिशोधके लिए भेजा और वृद्धावस्थामें आपको दुःखी बनाया; गुणवंतीकी आत्माको अब शान्ति प्राप्त होगी।' जगत आवेशमें कह गया। कुछ दिनोंसे वह इतना निर्बल हो गया था कि जरा-जरामें उग्र हो उठता था।

रघुभाई खिलखिलाकर हँस पड़ा; उसकी आँखोंसे विष प्रकट हो रहा था, वह बोला—'गुणवंतीकी आत्माको शान्ति...ऐसी लड़कीके मरनेसे मैं दुःखी होने वाला हूँ ! खूब !'

जगत व्यग्र हो उठा, क्या रघुभाईको पुत्रीके प्रति जरा भी स्नेह नहीं है ? क्या उसका प्रतिशोध—रमाको मार डालनेकी योजना निरर्थक है ? 'क्या ?'

'क्या क्या ?' विजयसूचक आवाजमें रघुभाई बोला, इस दीपशिखासे दागनेसे मकड़ी दूर होने वाली है। इस लड़कीके मरनेसे दुःखी होऊँगा ! छोकड़ा ! तेरे जैसे न मालूम कितने ही को मैंने रास्ता बता दिया है।' कहकर रघुभाई पुनः अट्टहास कर उठा और जगतकी ओर तिरस्कारसे देखने लगा।

जगत खिसियाना पड़ गया। अरर ! यह उसका प्रतिशोध—निर्दोष युवती पर वृष्टिपात अङ्गारक—इसके लिए ? सभी अन्धे और स्वार्थी हैं। वहाँ अनन्तानन्दकी जान गई, यहाँ रमाकी जा रही है। उसका हृदय दयासे भर गया। जानेके पूर्व रघुभाईके मनमें जगतको कुछ स्वाद चखानेका विचार आया।

'छोकड़े !' हँसी आनेसे रघुभाईने कहा, 'इस लड़कीका पौरा ही कुछ ऐसा अनिष्टकर है। देख, यह बीमार पड़ी और मेरा भाग्य चमका।'

जगतने इस स्वार्थी, चाण्डाल पिताकी ओर एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डालकर पूछा—'कैसे ?'

'देखो !' कहकर रघुभाईने एक समाचार-पत्र निकाल कर अनन्तानन्दकी गिरफ्तारी एवं श्यामदासके मृत्युका समाचार दिखाया।

'इससे क्या ?' जगतने अनजान बन दाँत पर दाँत बैठाकर पूछा।

'इससे क्या ? पन्द्रह दिनोंमें रघुभाई रतगढ़के दीवानकी गद्दी पर; क्या कहते हो ?' जरा घमण्डसे रघुभाईने कहा।

जगत जरा तनकर बैठ गया, उसकी आँखें अग्नि वर्षा करने लगीं, 'रघुभाई! यह भी क्या कोई लड़कोंका खेल है ?'

'तू क्या जाने ? अब अनंतानंदके अनुयायीको निकाल बाहर करनेमें क्या देर है ? सेक्रेटेरियटमें वर्त्तमान दीवान रणुभाको हटाकर दूसरा दीवान नियुक्त करनेकी बातचीत भी चल रही है ।'

'ऐसा ? 'तेरे मन कछु और है कर्त्ताके कछु और !' स्वामीजी मूर्ख नहीं थे ।'

'इस सम्बन्धमें तू क्या जाने ? अनन्तानन्द जैसे बहुतोंको देखा है । वह जेलमें सड़ें-गलें !'

'नहीं, वे स्थूल शरीरसे मरेंगे पर उनकी अमर आत्मा जीवित रहेगी ।' गौरवसे जगतने कहा । उसका चेहरा भव्यतासे दीप्त हो रहा था ।

'यह कैसे ?'

'उनके मण्डलका अध्यक्ष निर्वाचित हो चुका है ।'

'ऐसा कौन है ?' जरा आतुरतासे रघुभाईने पूछा ।

'आपका सेवक ?' जगतने नमकर कहा ।

पुनः रघुभाई खिलखिला कर हँस पड़े । 'छोकड़ा! कहाँ तू और कहाँ अनन्त मण्डलका अध्यक्ष ? मस्तिष्क तो नहीं खराब हो गया है या उपहास कर रहा है ?'

'दोमेंसे एक भी नहीं । अनन्त मण्डल गत दस तारीखको एकत्रित हुआ और मैं अध्यक्ष नियुक्त किया गया ।'

'तू ?' रघुभाईने घबड़ाई आवाजमें पूछा ।

'जी हाँ ! यदि दीवान होनेकी आशा रखते हों तो उसे भी छोड़ दीजिये । स्वामीजी अमर हैं ।' कहकर जगतने जेबमेंसे कागज निकाल कर दिखाया । सेक्रेटेरियटके एक कार्यकर्त्ताका पत्र था । उसे देखकर रघुभाई भौंचक्का-सा हो गया । वह बोल उठा—'क्या ? जगतराय नीलकण्ठराय रत्नगढ़का दीवान !

'जी हाँ, वही । गुणवंतीका एवं आपके रायजीका पुत्र ।'

'तू ? लेकिन तू कहाँ से टपक पड़ा ?'

'सिद्धनाथ मैं ही हूँ । रघुभाई गुणवंतीकी आत्माको अब शान्ति मिलेगी ।'

कहकर जगत तिरस्कारसे रघुभाईको उसकी आशाके स्वप्नोंमें विचरता हुआ छोड़ उस कमरेका अपवित्र वातावरण त्यागकर चला गया ।

८१

जगत रघुभाईको छोड़कर निकला तो दूसरे कमरेमें कोई दूसरी वार्त्ता चल रही थी । शिरीन चारपाईपर बैठी थी । मरणासन्न रमा लेटी हुई थी, उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी, उसके स्वरूपवान चेहरेके बदले दो बड़े-बड़े नेत्र एवं पिचके हुए गाल रह गये थे । उसे देखते ही तुरन्त लोग समझ लेते कि इसके दिन नजदीक आ गये हैं ।

'शिरीन ! तू अच्छी तरह जानती है कि वे अब घर भी नहीं आते ?'

'अरे, मैं उनके यहाँ जाती हूँ तब भी वे नहीं मिलते—'

'लेकिन बिना भेंट हुए ही मृत्यु हो जाय तब ?' रमाकी आँखें डबडबा आईं । शिरीनने उसकी आँखें पोंछ दी, अपनी आँखें पोंछी ।

'अरे, मैं जाकर बुला लाऊँगी, तू घबड़ाती क्यों है ? देखो जरा शर्बत लो, कुछ नहीं लोगी तब कैसे चलेगा ?'

'बहन ! क्या कहूँ ? गलेके नीचे नहीं उतरता । मुँह बेस्वाद बना रहता है।'

'अच्छा, जरा चेष्टा तो करो ।'

'दो !' रमाने दो-एक चम्मच बड़ी कठिनतासे गलेके नीचे उतारा, पर उलटी हो जानेके भयसे और नहीं लिया ।

'शिरीन ! वह ढँकी हुई तसवीर तो ले आ ।'

'कौन ? यह ?'

'हाँ, उसे मेरे सामने रख दे ।'

शिरीनने रखकर पूछा—'यह कौन है ?'

'जब मैं छोटी थी तब मेरी एक सखी थी, वह बेचारी बड़ी दुःखी थी । जबरदस्ती उसका विवाह किया गया था । बेचारी मर गई । वह मेरी सर्वप्रथम मित्र थी !'

'और दूसरी ?'

'तू !' कहकर रमाने अपना निर्बल हाथ शिरीनकी गोदमें रख दिया।

'प्रथम प्रियतमाका क्या हुआ ?'

'तनमन बहन बेचारी मर गई। मृत्युके समय मैं उपस्थित थी। अत्यधिक कष्ट भोगकर उसने प्राण विसर्जन किया। उसके 'किशोर' का एक रूमाल था।' पुरानी बात स्मरणकर निर्बलतासे हकलाते हुए रमाने कहा।

'अभी भी है ?'

'यह है ?' कहकर तकियाके नीचेसे रमाने रूमाल निकाला, अपने अधरों से लगाया और शिरीनको दे दिया।

आधा बन्द दरवाजा खुल गया; उसमें जगत खड़ा था। मालूम पड़ता था कि उनकी आँखें निकल पड़ेंगी। वह तनकर खड़ा था, उसका शरीर काँप रहा था। वह सजीव प्रेतके सदृश दिखाई पड़ रहा था। दोनों सखियाँ चौंक उठीं; रमाके मुँहसे चीख निकल पड़ी।

यन्त्रवत् जगत् सीधे वहाँ आया—सामने रखी हुई छविकी ओर देखकर दबी हुई आवाजमें उसने पूछा—'यही आपकी तनमन बहन थीं ?'

'जी हाँ, क्यों ?'

'उसकी मृत्युके समय आप उपस्थित थीं ?'

'मेरी ही गोदमें बेहोश हुईं।'

जगतने जोरसे शिरीनके हाथमेंसे रूमाल छीनकर आँखोंसे लगा लिया; रूमाल पीला पड़ गया था, एक कोने पर 'देवी' और दूसरे कोने पर 'किशोर' का नाम रेशमसे कढ़ा हुआ था। जगतने उसे हाथमें दबा लिया।

दोनों बालायें चकित होकर देखती रह गईं।

जगतने रूमाल हथेलीमें दबाया, उसे अधरोंसे लगाया। तुरन्त उसके कन्धे ऊँचे हुए, वह एक कुर्सीपर बैठ गया और माथा टेबुलपर रखकर फुक्का फाड़कर रो पड़ा। इतने दिनोंका श्रम, अस्वस्थता सब एकत्र हो गई थीं, अन्तिम घटना असह्य हो गई। शिरीन दौड़कर आई, 'जगत, यह क्या ?'

'यह क्या ? मेरा दुर्भाग्य—वह क्या लिखा है ?' हिचकी भरते हुए जगतने पूछा ।

'देवी'—'किशोर'

'यह मेरा है ।' फिर हिचकी लेते हुए जगत बोला ।

'ऐं !'

'आप ?' दोनों बोल उठीं । बीमार रमा चारपाईसे उठकर खड़ी हो गई । उससे खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा था ।

'आप तनमन बहनके...'

'किशोर !'

'आप ?'

'हाँ, मैं ही अभागा, पापी किशोर हूँ ।' कहकर पुनः जगतने अपना सिर रख दिया । शिरीनने उसके सिरपर प्रेमसे हाथ फेरा, 'जगत ! यह आपको शोभा देता है ?'

'शिरीन ! आप इन्हें—' शिरीन घूम पड़ी, रमा लड़खड़ा रही थी, खड़ी होनेसे उसे अत्यधिक परिश्रम पड़ा था ।

'जगत ! जगत ! रमा गिरी—'

जगत उठकर दौड़ा; रमाको हाथमें उसने ले लिया और उठाकर उसे चारपाई पर लिटा दिया ।

थोड़ी देरमें रमा सावधान हुई । तब जगत और शिरीन पासमें बैठे थे । उसने जगतका हाथ अपने हाथमें ले लिया और पाँच मिनटमें उसे निद्रा आ गई ।

'शिरीन !' जगतने कहा, 'मेरे अभिमानकी मुझे पूरी-पूरी शिक्षा मिल गई । अपना प्रतिशोध कहाँ और किसपर लूँ ?'

'क्यों ?'

'क्योंकि अपने जीवनमें भूल छोड़ दूसरा कुछ मैंने किया ही नहीं ।'

———

जगत और शिरीन बहुत देर तक वार्तालाप करते रहे। अधिक समय हो जाने पर जगतने जानेके लिए अपना हाथ रमाके हाथमेंसे हटानेका प्रयत्न किया; तुरन्त रमाने एक निःश्वास लेकर आँखें खोल दीं और पूछा—'जा रहे हैं ?'

'हाँ, कल सबेरे आऊँगा।'

'ऐसा ?' कहते-कहते रमाकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गई और गला भर आया। जगतका हृदय फटने लगा; उसने इस बालाके प्रति अन्याय किया था; बिना अपराध उसे कष्ट दिया था। तनमनकी स्थितिकी आभा मात्र उसे दिखाई पड़ गई; वह भी इसी प्रकार उसके वियोगमें मर गई; पुनः उसने वैसा ही नाटक प्रारम्भ कर दिया था। उसे कोई कहता मालूम पड़ा। 'जैसे मुझे छोड़ दिया, वैसे ही दूसरेको कभी न छोड़ना।'

उसका हृदय दयार्द्र हो गया, रमाको दिये हुए दुःखका बदला देना चाहिये; डाक्टरने कहा था कि वह थोड़े ही दिनोंकी पाहुन है। जगत स्नेहपूर्ण आवाजमें बोला—'रमा ! रो मत, यदि तू कहे तो न जाऊँ।'

शिरीन तुरन्त बोल उठी—'रहिये ! रहिये ! रमाको अच्छा लगेगा।'

'अच्छी बात है ! नहीं जाऊँगा। सो जा रमा !' कहकर जगत बैठ गया। निर्गत रमा मुस्कराई, जगतका हाथ मानो कोई छुड़ा रहा हो, इस भयसे पकड़ लिया और पुनः निद्रावश हो गई। रात्रिभर रमा सोती रही।

'रमा ! खूब रही, मुझे तो रात भर जगाती थी और गत रात्रिमें तो मिनकी भी नहीं।' शिरीनने कहा।

रमाके सफेद, मृतकके समान गाल पर लाली दौड़ गई, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इतनेमें डाक्टर आ गये, रमाकी परीक्षा कर वह जगतसे बोले—'सचमुच ! यह तो आश्चर्यजनक लगता है। आज तो बहुत परिवर्त्तन हुआ है। ऐसा ही चार दिन रहे तो इसके जीवनकी गारंटी मैं लेता हूँ। आप कौन हैं ?

'मैं इनका—मित्र हूँ।'

'आप कल आये हैं ? आप यहाँ रहें तो यह जल्दी स्वस्थ हो जायगी।'

'अच्छी बात है ! यदि मेरे रहनेसे आराम होती हो तो मैं रहनेके लिए तैयार हूँ।'

'ठीक, तो मैं चलता हूँ ।'

बेचारी शिरीनका बुरा हाल था। रमा उसके लिए बहनके समान थी, जगत उसके लिए पतिसे भी अधिक प्रिय था, दोनोंके साथ रहना था एवं रमा का निर्दोष आनन्द बराबर शूलके समान उसके हृदयमें चुभता जिसे सहन करना ही पड़ता था। वह दोनोंके साथ हँसती किन्तु मन व्यथित था। क्या करे?

दस बजे रघुभाईने भोजन करनेके लिए जगतके पास आदमी भेजकर पुछवाया, जिसका कुछ कठोरतासे जगतने उत्तर देते हुए कहा—'नहीं, मैं अपने यहाँ भोजन करूँगा, यहाँ नहीं।'

'क्यों ?' रमाने मन्द स्वरमें पूछा।

'स्वीकार कर लीजिये !' शिरीन बीच ही में बोल उठी, 'नहीं तो इसका रोग फिर बढ़ जायगा।'

जगतने दाँत पीसकर भोजन करना स्वीकार कर लिया। रमाने 'थैंक्स' (उपकार) कहा।

तीन-चार दिनोंमें ही रमामें अत्यधिक परिवर्त्तन हो गया जिससे जगतको छुट्टी मिल गई। अब तक जो कोई उससे मिलने आता उससे बगलके कमरेमें वह मिलता।

'शिरीन, ये लोग कौन हैं ?'

'कौन, जगतसे जो मिलनेके लिए आते हैं वे क्या ?'

'हाँ !'

यह सुनकर शिरीनने जगत सम्बन्धी सब बातें उसे बताईं।

'शिरीन ! तू ठीक कह रही थी। ये देव स्वरूप हैं।'

'हाँ, किन्तु यह बात मैं तेरे पहले ही जान गई थी; क्यों ?'

'हाँ शिरीन ! भला मैं तेरे उपकारको भूल सकती हूँ ! तू अपने हृदयपर पत्थर रखकर यह सब मेरे लिए कर रही है, यह भी क्या मुझसे छिपा है ?'

रमाके कुछ स्वस्थ होने पर जगत केवल तीन-चार घंटेके लिए आता था बाकी समय रमा बेचैनीमें व्यतीत करती। इस समय जगतके लिए काम इतना

अधिक था कि उसपर ध्यान दिये बिना छुटकारा नहीं था। जगत जब आता तो उसके शब्दोंको रमा ध्यानसे सुनती और उसका हाथ अपने हाथमें रखकर पड़ी रहती। रघुभाईने तो सबसे मिलना-जुलना बन्द कर दिया था, ऊपर ही पड़े रहते थे।

जगतने अपना सब पूर्ण इतिहास एक दिन कह सुनाया, केवल रघुभाईसे प्रतिशोध लेनेकी बात नहीं कही। रमाका कोमल स्नेहशील स्वभाव उसकी शब्द-मुरली पर नाच उठता, रो पड़ता। जगतने अपने स्वभावपर निरंतर रखे हुए अंकुशको हटा दिया जिससे उसके स्नेहशील, भावनापूर्ण स्वभावकी गम्भीरता देखकर पहलेके कठोर, क्रूर जगत पर प्रेममाला अर्पण करने वाली रमा तो पागल बन गई!

एक दिन गम्भीर मुख बनाये हुए जगत आया, 'शिरीन, तुम्हें आना चाहिए?'

'कहाँ?'

'जेलमें!'

'आज मुकदमा है क्या?'

'हाँ!'

'रमा! मैं जाऊँ?'

'अच्छा! मैं क्या करूँ मैं तो चलनेमें असमर्थ हूँ।'

शिरीनके साथ जगत जब कोर्टमें पहुँचा उस समय तक कमरा बिलकुल भर गया था। मण्डलके प्रायः सभी सदस्य भिन्न-भिन्न वेशमें वहाँ बैठे हुए थे। एक कोनेमें चम्पा बैठी थी। थोड़ी देरमें सेशन्स जज आये, वे भारतीय थे।

पहला मुकदमा स्वामीजीका था। पेशकारने कैदीको भीतर लानेकी आज्ञा दी। कमरेमें पूरा सन्नाटा था। एक राजेन्द्रके समान स्वामीजी आये और कटघरेमें खड़े हो गये। उनका विशाल शरीर और भी विशाल दिखाई पड़ रहा था। उनके चेहरेपर पहले जैसी ही भव्य एवं प्रभावशाली शान्ति, नेत्रोंमें वैसा ही अद्भुत सर्वग्राही, स्थिर तेज विराजमान था। उन्होंने अपने शिष्योंको देखा और मृदुतापूर्ण हास्यसे सबको सम्बोधन किया। अपनी श्रेष्ठतासे सबकी ओर मायासे, दयासे देख रहे थे।

जजने पेशकारसे कुछ पूछा, पेशकारने अनन्तानन्दका पूर्व इतिहास बताया।

इसके पश्चात् रामचरणकी गवाही हुई। तत्पश्चात् चार्ज सुनाकर जजने पूछा—'अपराध स्वीकार करते हो या नहीं ?'

स्पष्ट एवं स्थिर आवाजमें अनन्तानन्दने उत्तर दिया—'आपका प्रश्न करने का अधिकार मैं स्वीकार नहीं करता।'

जगत काँप उठा, चारों ओर शांति छा गई। जजने जूरीको सम्बोधन किया, उनकी राय ली, कुछ लिखा, ऊपर देखा; नाकपर चश्मा रखा, तिरस्कार से स्वामीजीकी ओर देखते हुए, गला साफ कर वह कहने लगा—

'अनंतानंद ! जो तूने भयङ्कर कृत्य किया है उसके लिये न्यायानुसार तू कठोरतम दण्डके लायक है; तुझे फाँसीकी सजा दी जाती है।'

इतनेसे सन्तोष न कर जजने आगे कहा—'तेरे जैसोंको सजा देते समय मुझे एक प्रसन्नता होती है कि इस देशके भाररूप पाखण्डी साधुओंमेंसे आज एक कम हुआ।'

स्वामीजीने जजकी ओर घूरकर देखा, उनकी आँखोंमेंसे विद्युत-सी निकल रही थी। उनका स्पष्ट कंठ-स्वर कोर्टकी शान्तिमें गूंज उठा—'बेटा ! तू अपना काम कर, मुझे अपने धर्मका पता है।'

शब्दके उच्चारणमें गर्व, तिरस्कारका प्रभाव था। लोग देखते रह गये। जज लज्जित हो गया। अनन्तानन्द पुलिसमैनके साथ भीष्मके गौरवसे चल पड़े। ऐसा लगा जैसे सजा उन्हें न होकर दर्शक वृन्दको हुई है। दो स्त्रियोंके आक्रन्दका शब्द सुनाई दिया।

फाँसीके दिन प्रातःकाल जेलमें जगत, दयानन्द तथा दो-तीन अनुयायी गये। बड़ी सिफारिशके बाद स्वामीजीकी फाँसी देखनेकी आज्ञा उन्हें प्राप्त हो सकी थी। जेलरसे वे मिले, अत्यन्त आश्चर्यसे उन्होंने सुना कि अनन्तानन्दने रात्रिमें देह त्याग कर दिया है। जेलर उन्हें वहाँ ले गया। पलथी मारकर स्वामीजी मृत बैठे हुए थे, समाधि द्वारा उन्होंने प्राण त्याग किया था। जीवितावस्थामें जैसे वे प्रभावशाली थे वैसे ही मृत्युके पश्चात् भी थे। सभीने झुककर प्रणाम किया।

८३

रमाकी तबियत दिनोंदिन सुधरती गई और अब वह धीरे-धीरे वृद्धाकी तरह कमरपर हाथ रखकर अकेले चलने लग गई थी। शिरीन भी अब कम आती थी; जिसके लिए वह अपना हृदय भस्मकर डाला था उसके पास वह अधिक रह नहीं सकी। एकांतमें, पढ़नेमें भावी जीवनका मार्ग ढूँढ़ निकालनेका उसने निश्चय किया। वह स्वयं अधिक भावना-प्रधान स्वभावकी नहीं थी जिससे जितना गहरा घाव किसी अन्य स्त्रीको लगता उतना उसे नहीं लगा। एक अस्वस्थ क्षणमें जगतके प्रति उसके प्रेम एवं मानने बुद्धिकी मर्यादा त्याग कर आवेशका स्वरूप धारण किया था पर पीछेकी घटनाओंने उसे पूर्ववत् बना दिया था।

ज्यों-ज्यों रमाकी निर्बलता कम होती गई त्यों-त्यों अधिक बीमारीके समय जगतके लिए बेचैनी भी कम होती गई। दिनमें दो घंटेके लिए भी जगत आ जाता तो वह संतुष्ट हो जाती। प्रेमपूर्ण नयनोंसे उसे देखा करती, उसकी बातें सुनती। उनके बीच विवाह सम्बन्धी बातचीत कभी न चलती, रमा इस ओर अधिक ध्यान भी नहीं देती थी; जगतकी हास्यकिरणोंके तापसे पुनः शक्ति प्राप्त कर रही थी। शक्तिके साथ-साथ विचार उत्पन्न हुआ और वह व्यग्र हुई। अब क्या करना? थोड़े ही दिन पूर्व जगतने साफ-साफ अस्वीकार कर दिया था, शिरीनके प्रेमकी अवगणना की थी, अब क्या विवाह करेगा? उसका हृदय घबड़ा उठा। थोड़े ही दिनमें उसे रत्नगढ़ जाना पड़ेगा। वह चला जायेगा; उसकी दृष्टि-मर्यादामेंसे सदाके लिए अन्तर्ध्यान हो जायगा। इतने दिनोंके प्रगाढ़ परिचयसे वह जगतकी जीवन भावना समझ सकी थी। उसे मृत्युसे बचानेके लिए जगत चाहे जितना आत्मत्यागकर दिन भर बैठा रहे, समय आनेपर शायद विवाह भी कर ले; पर क्या यह उचित होगा? उसके आत्मत्यागका लाभ उठाकर, 'वह तनमनके मृत्युके समय उपस्थित थी' यह आकस्मिक उपकार चढ़ाकर उसे विवाह करना, उसकी भावनाओंको कुचल डालना, उसका पवित्र जीवन-प्रवाह कलङ्कित करना एवं प्रमाद-विहीन सूखा, रसहीन लग्न-सम्बन्ध स्थापितकर उसे गले मढ़ जाना क्या ठीक होगा? रमाका सूक्ष्म, सुसंस्कृत स्वभाव इस दुःखसे पुनः व्यथित हो उठा।

जगत आया; वही दृढ़, सत्तादर्शक व्यक्ति। वह बैठा और हँसा। अब उसमें कठोरताका अंश मात्र भी नहीं था।

'रमा! अब कैसी हो?'

रमाकी आँखें हँस रही थीं, 'आपको कैसी लग रही हूँ!'

'अब थोड़ी ही देर है।'

'किस बात की?'

'यहाँसे दौड़ती हुई शिरीनके यहाँ जानेकी।'

'आपको तो दिन भर शिरीन! उसे और आपको दूसरा भी कोई धंधा है?'

'हाँ! हम दोनों तुम्हें स्वस्थ करनेका धंधा करते हैं। रमा!' जरा गंभीर स्वरमें जगत बोला, 'शिरीन पुण्यवान एवं सुशिक्षित आत्मा है। उसकी जोड़ी मिलनी कठिन है।'

'मैं जानती हूँ। आज कितने ही दिनोंसे वह माँसे भी बढ़कर मेरी सेवा कर रही है।'

'और मेरी तो कुछ गिनती ही नहीं!'

रमा लजाकर नीचे देखने लगी।

'देखो, फिर तकिया फेंक दिया, इस प्रकार करोगी तो अच्छी कैसे होगी?' कहकर जगत उठा और उसने तकिया फिर ठीककर रख दिया। ठीक करते समय वह इतना पास पहुँच गया कि उसकी श्वाँस रमाके ललाटको स्पर्श करती थी। रमाने अर्द्ध उन्मीलित नेत्रोंसे जगतको देखा और रसभारसे दबकर आँखें बंद कर ली।

'मैं दो चार दिनके लिए बाहर जानेका विचार कर रहा हूँ।'

'कहाँ?'

'सूरत। अपने चचेरे भाईसे भेंट करनेके लिए जाना है। यह नया पद ग्रहण करनेके पूर्व उनसे भेंट न करनेसे उन्हें बुरा लगेगा। साथ ही उन्हें रत्नगढ़ भी भेजना है।'

'वहाँ क्यों?'

'दीवान साहबके रहनेका प्रबन्ध करनेके लिए।'

रमाको पूछनेकी इच्छा हुई कि 'मुझे भी ले चलेंगे ?' किंतु प्रश्न मनमें ही रह गया।

'तो अब मैं चलूँ ?'

'अच्छा फिर आइयेगा !'

थोड़ी देर पश्चात् रघुभाई आये। उसकी आशायें नष्ट हो चुकी थीं साथ ही उसकी नीति-निपुणता भी भ्रष्ट हो गई थी। चेहरेपर जो कुछ गौरव था वह भी अदृश्य हो गया था; उसपर पामर एवं कपटपूर्ण हास्य सदैव बना रहता था। इतने ही दिनोंमें वृद्धत्त्व भी बढ़ गया था।

'क्यों रे छोकड़ी, कैसी है ?'

'अच्छी हूँ !' दृष्टि फेरकर रमाने कहा।

'अब कब विवाहका निश्चय किया ?' नीति निपुणताके साथ ही रघुभाईकी लज्जा, शरम, सभ्यता सभी कुछ जाती रही और अपने सच्चे स्वरूपमें दिखाई पड़ने लग गया था।

'विवाह कैसा ?'

'क्यों, देख नहीं रही है कि यह पुनः प्रसन्न हुआ है ?' कहकर उसने जगतकी ओर संकेत किया।

'पिताजी ! आप यह कह क्या रहे हैं ?'

'यदि विवाह न करना हो तो व्यर्थ मेरी इज्जत...'

रमाका शान्त स्वभाव भी गरम हो उठा; 'पिताजी ! आपकी इज्जत आपकी पुत्रीके हाथमें बिलकुल सुरक्षित है, आप घबड़ायें नहीं।'

'तू तो निरी मूर्ख है। इसके साथ विवाहका निश्चय कर ले, नहीं तो यह फिर बदल जायगा।' इस विचारकी नीचतासे रमाको कँपकँपी आ गई। वह कुछ बोली नहीं।

'अभी मान जायगा, इसे पश्चात्ताप हो रहा है।'

'किस बातका ?'

'तुझे रुलाकर तेरा प्राण-नाश कर मुझे दुःखी करने यह छोकड़ा आया था, मेरे पिछले कृत्य तुझे क्या मालूम ? मुझे तो कुछ हुआ नहीं जिससे यह

पछताया और पुनः आकर गुड़-चींटा हो गया।'

रमाके आँख परसे अन्धकारका पर्दा हट गया, उसको अपने पिता और जगतके पूर्व व्यवहारमें अनेकानेक समझमें न आनेवाले प्रसङ्ग अब समझमें आ गये। अब उसके इतना स्नेहपूर्ण दिखाई पड़नेका कारण भी समझमें आ गया—रघुभाई चले गये और वह अकेली रह गई। उसके मनमें तो 'रमा बहन' का ही विचार आया। 'नहीं, रमाको दुःखी किया यह सोचकर विरागी जगत प्रायश्चित करनेके लिए विवाह करे। नहीं! मुझे ऐसा विवाह नहीं करना है।' यही रमाने निश्चय किया। कोई उपाय निकालकर उसे अपना यह 'धर्म' पालन करनेसे रोकना चाहिये, इसका प्रतिफल मुझे चाहे जो भोगना पड़े। एक आह भरकर रमा विचारमग्न हो गई।

८४

जगत घर पहुँचा तो चम्पाको बैठी हुई पाया। अनन्तानन्दके स्वर्गारोहणके पश्चात् उसे भी अपनी मृत्यु पास आ गई जान पड़ रही थी।

'चम्पा! चलो, मुझे कुछ देर हो गई, क्यों?'

'भाई! अब मुझे बम्बईमें अच्छा नहीं लग रहा है। २० वर्ष पूर्व छोड़ा था। तब नहीं जानती थी कि इस प्रकार यहाँ आना पड़ेगा।'

दोनोंने नीचे उतरकर एक गाड़ी भाड़े पर की और भूलेश्वरके एक गन्दे मकानमें गये। एक छोटी कोठरीमें एक स्त्री बैठी थी; एक लड़का सो रहा था।

'गुलाब! अरुण कैसा है?'

'बुखार आ रहा है, कौन? जगत किशोर! क्यों आये हो? मेरे लड़के को ले जानेके लिए?'

'कौन भैया, मुझे बुखार आ रहा है।' बिछौने परसे अरुण बोला, 'आप बिना मुझे अच्छा नहीं लगता।' जगतने उसे उठा लिया। अरुणका शरीर दुर्बल हो गया था।

'देखो गुलाब! यहाँ रहोगी तो तुम्हारा लड़का मर जायगा। इस

महिलाके साथ रत्नगढ़ चली जाओ, वहाँ आरामसे रह सकोगी। मैं भी कुछ दिनमें वहीं आऊँगा।'

'पर अपने भीखाको नहीं दूँगी।'

'नहीं भाई, नहीं! इसे भी साथ ले जाओ।'

'सिद्धनाथ आप जायँ, मैं इसे कुछ समझाऊँगी। आज रातकी गाड़ीसे जाऊँगी।' चम्पाने कहा।

'अच्छा मैं भी स्टेशनपर मिलूँगा, मुझे भी सूरत जाना है।'

× × × ×

दूसरे दिन बच्चू भाई एक तीन वर्षके लड़केको बगलमें दबाये हुए और पाँच वर्षके पुत्रको ऊँगली पकड़ाये हुए छोटे भाईको लेनेके लिए स्टेशनपर आये। जगत बीच-बीचमें बच्चू भाईसे भेंट कर जाया करता था; कुन्दन भाभी एक लड़कीको गोदमें दबाये दरवाजेपर अगवानी करने आईं। बड़ा आठ वर्ष का लड़का एक मैली फटी हुई धोती पहने हुए, अपना मैला हाथ अपने मुँहपर घिसकर चाचाके शुभागमनमें अपना मुख उज्ज्वल कर रहा था। जगतने सब लड़कोंको एक-एक कर गोदमें लिया; छोटे बालकोंका नाम भूल गया था, अतः फिरसे पूछा। भाईके सद्भाग्यसे उसकी गृहस्थी पूर्ववत् चली जा रही थी। जगतने बच्चूभाईको रत्नगढ़ जाकर अपने घरका प्रबंध कर देनेका भार सौंपा जिसे सुनकर भाई-भाभीके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। भाभीने हर्षके आवेश में एक पुरानी हाँड़ी निकालकर दीवान होने उपलक्षमें रातमें बरामदेमें टाँग दिया।

दूसरे दिन बहुतसे लोग मिलनेके लिए आये, सबने कुन्दन भाभीकी बनाई हुई रसोई चखी। कुन्दन भाभी तो देवरके घरका प्रबंध करनेकी बातपर इतनी लट्टू हो गई थीं कि सब अड़ोसी-पड़ोसीसे जाकर कह आईं—'मेरे देवरजी हैं न, वे छोटे थे तभीसे थे पोपटजी जैसे होशियार! और बालपनसे ही था मुझपर कुछ स्नेह! पढ़ लिखकर भी इतना होशियार कि वाह! यह मेरा कीका है न उसके बापने बनाया। अब हम उनका घर सम्भालने जा रहे हैं। देखो न हम लोगोंकी

बात ! अभी मेरे देवरजी हैं कुँवारे, और 'एक-एक से दो' कहावत है न, ठीक वैसे ही।'

'तब प्रायः पड़ोसिनें उत्तर देतीं, 'देखो यह मेरी मौसीकी लड़की है; कामदेवके समान सुन्दर ! कर दो न।'

'देखूँगी, मुझसे हो सका तो अपने बहनका जन्म-पत्र आज ले आती हूँ ! फिर तो हम दोनों बहनें एक ही घरमें !'

'हाँ, यदि न बने तो...।'

'हाँ जी ! इसमें भी कुछ कहना है ?'

सन्ध्या समय भोजनोपरान्त तीनों व्यक्ति बैठे थे। जगत रातकी गाड़ीसे बम्बई जाने वाला था। वह झूले पर बैठा था, कुन्दन भाभी सामने पैर पर पैर चढ़ाकर पानका डब्बा रखे हुए मुँहमें पान चबा रही थीं, लड़कीको दूध पिला रही थीं और एक लड़केको डाँट भी रही थीं। जगतकी तीक्ष्ण आँखोंने यह दृश्य देखा। तुरन्त रमा—सुसंस्कृत, कोमल, परागमय रमा याद आ गई; एक ही जातिकी, सम्बन्धी—किंतु कितना अन्तर ? गुलाब स्मरण आई; शिक्षा, संस्कार, शुभ वासनामें कितना अन्तर ?

'बच्चूभाई ! रत्नगढ़ कब जाओगे ?'

'परसों !'

'अरे. परसों कैसे जाओगे ?' कुन्दन भाभीने कहा, 'सामने चन्द्रमा पड़ता है।'

'चौथे दिन चले जाना, कोई जल्दी नहीं है। वहाँ सब लोग हैं, मेरा भी आज बारह वर्षसे घर वहीं है, यह तो आप अपने घरके हैं इतना ही अन्तर है।'

भाई-भाभीकी छाती एक हाथ ऊँची हो गयी।

'पर देवरजी ! हम कितने दिन रहेंगे ? इस प्रकार कहीं चलेगा ? अब तो मेरा कहना मान लीजिये।'

'क्या ?'

'देखिये, विवाह बिना नहीं चलेगा। दीवान ही कुँवारा हो तो राज्य कैसे चलेगा ?'

'हमारे रत्नगढ़में तो सब कुँवारोंका ही राज्य है।'

यह सुन तीनों हँस पड़े।

'नहीं, नहीं, देवरजी! इस प्रकार बात उड़ानेसे काम नहीं चलेगा। देखिये, आप जैसे राजाके समान हैं वैसे ही मेरी बहन भी पुतली जैसी है। कहिये तो पासमें ले आऊँ, मानो विधाताने आपके ही लिए गढ़ा है। बिलकुल मेरे जैसी है। सच, न हो तो अपने भाईसे पूछ लीजिये।' कहकर कुन्दनने चुटकी बजाई। जगतको हँसी आ गई। वह मनमें बोला—कितना अन्तर? तनमन खोया, रमा तरसती हुई मरनेसे बची—और यह पुतली! भाईसे पूछने का उसने कष्ट नहीं किया।

'भाभी! अभी देर है। पुतलियाँ घरमें रखेंगे तो टूट जायँगी। मेरा विचार होगा तो आप हैं हीं।'

जगत दूसरे दिन बम्बई पहुँचा। वहाँ पर एक पत्र पड़ा हुआ था।

'मान्यवर जगतराय,

पिताजीको लकवा मार गया है जिससे माथेरान जा रही हूँ। क्षमा कीजियेगा। वहाँ हमें अधिक समय तक रहना पड़ेगा इससे कब भेंट होगी, कहा नहीं जा सकता। रत्नगढ़ पहुँचने पर लिखियेगा। अब भला बिना काम बम्बई क्यों आना होगा? कभी-कभी पत्र लिखते रहियेगा। कृतज्ञ—रमा

विशेष—इस पत्रके साथ तनमन बहनका रूमाल भेज रही हूँ, उसे मेरी ओरसे स्वीकार कीजियेगा।'

एक आह भर कर जगतने रूमाल अपनी जेबमें रख लिया। पत्र पढ़कर हँसना या क्या करना यह सूझ नहीं पड़ा। विकट लीला है! मरणासन्न थी तब तो कुछ नहीं और अब ऐसा विरागपूर्ण पत्र लिख रही है।

'इसका प्राण जाता रहा क्या?'

'किसका?' प्रवेश करती हुई शिरीनका स्वर सुनाई पड़ा।

'देखो न अपने बहनका! इतना ही बाकी रह गया था।'

शिरीनने पत्र पढ़कर कहा—'मेरे पास भी पत्र आया है। कुछ हुआ था क्या? एकाएक ऐसा क्यों!'

'मुझे क्या पता ? मैं तो सूरतसे चला आ रहा हूँ। मेरे सामने तो एक अक्षर भी नहीं बोली थी।'

'जगत ! आपने विवाह सम्बन्धी बात चलाई थी ?'

'नहीं।'

'तभी ! अवश्य कुछ गड़बड़ घोटाला हुआ है।'

'मैं क्या करूँ ? मैंने उसे दुःखी किया उसके प्रायश्चित स्वरूप विवाह करनेके लिए तैयार हूँ। स्वामीजीने भी कहा था कि विवाह कर लेना, मैंने सोचा कि रमा 'हाँ' कहे तो इसके कोमल, आर्द्र संसर्गसे मेरी अपूर्णता जाती रहे। मैंने समझा कि अब सब कुछ निश्चित हो गया है।'

'जगत ! आप मूर्ख हैं।'

'ऐसा ? लेकिन यह बहुत विलम्बसे मालूम हुआ।'

'यदि आप किसी स्त्रीसे धर्मके नाम पर व्याह करना चाहें तो ऐसा विवाह वह स्वीकार करेगी ? हम भी क्या बाजारू स्त्रियाँ हैं कि आपको कर्त्तव्यका ख्याल आते ही विवाह करनेके लिए तैयार हो जायँ ? रमाने समझा होगा कि आप कर्त्तव्यवश विवाह करनेके लिए तैयार हुए हैं, इसीसे वह चली गई।'

'धत् तेरेकी ! ऐसा जानता तो सूरतसे दो-चार पुतलियाँ साथमें लेता आता', कहकर कुन्दन भाभीकी कथा उसने कह सुनायी।

सुनकर शिरीन ठहाका मारकर हँसी 'अच्छा !'

'अब उसके पीछे-पीछे अभी माथेरान जाइये।'

'निर्विकार होनेकी इच्छा रखनेवाले योगीके लिए यह अच्छी दौड़-धूप है।' जरा तिरस्कारसे जगत बोला।

'यदि ऐसा है तो विवाहका विचार जाने दीजिये।' शिरीनने गौरवसे कहा।

'क्यों ?'

'नहीं तो विवाह कर उस बेचारीका जीवन प्रेम-हीन व्यवहारसे नष्ट कर डेंगे।'

'तात्पर्य कि मुझे अब प्रणयीका भाव अख्तियार करना पड़ेगा।'

'चाहे जो समझें, नहीं तो बेचारीको पड़ी रहने दीजिये, वहीं एकान्तमें

सुखी रहेगी। यदि पूर्ण होनेकी लालसा अधिक हो तो फिर कोई दूसरी ढूँढ निकालिये।'

'विचार करूँगा।'

'मूर्ख हो जगत !'

'यह स्वीकार है !'

शिरीनके जानेके पश्चात् जगत गम्भीर विचार-सागरमें गोता लगाने लगा। संध्या हो जाने पर भी वह विचारमग्न बैठा रहा। उसका गर्व, उसके प्रतिशोध का पागलपन नष्ट हो गया था। उसने स्वामीजी द्वारा बतलाए सत्यको देखा। कठिन अभ्यास बलसे उसने वासना निकाल फेंका था फिर भी उसमें छलकती हुई स्नेहपूर्ण मानवता थी। उसने योग्यपदका सच्चा अर्थ समझा! अपनी मानवताको निर्विकारी बनाकर विकसित करना है। उसके स्फुटित करते समय सदैव कोमलता-नम्रताकी उसे आवश्यकता थी। संस्कृत स्त्री बिना यह कहाँ से आवेगी? फिर मण्डलका विचार आया। उसके भाग्यमें इस उदीयमान संस्था का नायक होना लिखा है—समाजको जीवित, प्रत्यक्ष, सुसंस्कृत योगीका नमूना दिखाकर सच्चे मनुष्यत्वके मार्ग पर अग्रसर करना है। कुँवारा रहने पर स्वयं वह समाजसे बाहर हो जायगा; गृहस्थ बनने पर ही समाजके हृदयमें प्रवेश कर सकेगा। विवाह यदि विश्व-नियम हो तो रमा जैसी विदुषी, कोमल, स्नेहमयी स्त्री—उसकी अपूर्णताको पूर्ण करनेके लिए निर्मित अर्द्धाङ्गिनी—कहाँ मिलेगी? अन्तमें विचार-सागरमें मथता हुआ वह थक गया। 'विश्व! समय! भविष्य! तुझे क्या चाहिये? संसारी या गृहस्थ?'

हाँ! समयको अनन्तानन्दकी आवश्यकता नहीं है, जनककी आवश्यकता है। अच्छी बात है, रमा! तेरा और मेरा जीवन एक होने वाला होगा। जगत उठा, सबेरा हो रहा था। उसने कपड़ा पहना और बोरी बन्दरके लिए चल पड़ा।

८५

रघुभाईको लकवा मार जानेसे रमाका कोमल हृदय बलवान बन गया। उसने स्वार्थ-भावनाका त्याग कर दो काम करनेके लिए माथेरानका रास्ता लिया

था। जगत अब रत्नगढ़ जाकर, भूल जायगा और इस प्रकार एक प्रकरण समाप्त हो जायगा एवं अपना हृदय-व्रण छिपाकर पिताकी सेवामें वह अपना समय व्यतीत करेगी। यही मार्ग उसे सरल दीख पड़ा। यह निश्चय कर रघुभाईके एक मित्रसे एक बङ्गला लेकर दूसरे ही दिन वह माथेरान पहुँच गई। यह कार्यक्रम उसे बिलकुल ठीक जँचा किन्तु इसमें बाधा इतनी ही थी कि उसने अनंतानंदके शिष्यकी प्रबल, दुर्जय इच्छाशक्तिका अनुमान नहीं किया था।

दूसरे दिन प्रातःकाल टहलने की इच्छा हुई। बंबईमें बहुत ही कम चल-फिर सकती थी किंतु यहाँ तो पैरमें अत्यधिक बल आ गया हो ऐसा मालूम पड़ रहा था। वह अकेली ही निकल पड़ी और थोड़ी दूर जानेपर बैठनेकी इच्छा हुई। संध्या रमणीय थी। वृक्षोंकी घनघोर छायामें बुलबुल अमृतमय वर्षा कर रही थी। बहुत-सी लताओंपर पुष्प सूँघने वालोंके अभावमें अनाघ्रात—मुरझा रहे थे। रमा इस प्रकृति-जीवन में अनिर्वाच्य आनन्दका अनुभव करती. उसके अस्वस्थ हृदयको कुछ शांति प्राप्त हुई। प्राय: उसे ऐसे रमणीय स्थानमें जीवन व्यतीत करने की इच्छा होती, अभी-अभी उसके विचारोंने कुछ पलटा खाया था। स्थान चाहे कैसा ही रमणीय क्यों न हो, एक व्यक्ति बिना उसे सब सूना लग रहा था। यह विचार करते हुए वह आगे बढ़ी।

अचानक पीछे किसीकी पद-ध्वनि सुनाई दी जो कुछ परिचित-सी लगी 'नहीं रे मूर्ख मन! कोई टहलने वाला होगा!' किन्तु छाती कुछ धड़क उठी—कान में नाद हो उठा। पीछेसे किसीके पुकारनेकी भनक-सी सुनाई दी 'रमा!' कंठ-स्वर वैसा ही दृढ़ चिर-परिचित, प्रिय था।

रमाने घूमकर देखा। जगत उसके पीछे खड़ा था। रमा घबड़ा गई।

जगत आया—रमाका हाथ उसने पकड़ा—दृढ़ता से, मालिककी निश्चिन्तता से। किसी कार्यको करनेका एकबार निश्चय कर लेनेपर वह उसे पूर्ण किए बिना नहीं रह सकता था। रमा इस समय बड़ी मोहक लग रही थी।

'रमा! तुम क्यों भाग आई?' धीरेसे जगतने पूछा।

'योंही, पिताजी बीमार पड़ गये इससे चली आई। पर आप क्यों आये हैं?'

'तुमसे बात करनेके लिए, चलो ऊपर चलें।'

'नहीं, थैंक्स (धन्यवाद)। मैं अब लौटूँगी, थक गई हूँ।'

'कोई हर्ज नहीं, मेरा सहारा लेकर चलो, थकावट नहीं आयेगी।'

रमाका हृदय जगतकी आज्ञा माननेके लिए विवश था।

'हम कहाँ चले जा रहे हैं ? किसी सिंहकी मांदमें तो नहीं !'

'जी नहीं !' जरा हँसकर रमा बोली, 'वही 'बर्ड-उड प्वाइंट' है।'

रमा हाँफ रही थी जिससे कोई कुछ बोला नहीं। 'बर्ड-उड प्वाइंट' आनेपर एक बेञ्चपर दोनों बैठ गये। संध्याकालीन सूर्यकी किरणें नीचे घाटीको सोनेसे मढ़ रही थीं। सुख-शांतिका सिंह-द्वार विश्वकर्माकी ललित कलाने रचा हो ऐसा ज्ञात हो रहा था।

'कैसा सुन्दर दृश्य है ?' रमाके मुँहसे निकल गया।

'यहाँ प्रकृति सच्चे स्वरूपमें विराज रही है। हम लोगोंका हृदय भी ऐसा ही होना चाहिए—ऐसा ही सुदृढ़ ऐसा ही सुन्दर, ऐसे ही हरे वृक्षों एवं बन-लताकी कोमलतासे पूर्ण ! जाने दो ये बातें—रमा ! मालूम पड़ता है कुछ भ्रांति हुई है।'

'किस बात की ?'

'अपने हृदयसे पूछ देखो। तुम क्यों भाग आईं ?'

'बताया तो !'

ध्यान खींचनेके लिए एक उँगली ऊँचीकर कटाक्षमय वाणीमें वह बोला—तुम्हारे कहनेका तात्पर्य यह कि पंद्रह दिनों तक जिस रमणीको मेरा हाथ पकड़े बिना निद्रा नहीं आती थी वह निष्कारण ऐसा पत्र शुद्ध अंतःकरणसे लिख सकेगी ?' पत्र निकालकर, दिखाते हुये जगतने कहा।

'हाँ, क्यों नहीं ? इसमें क्या धरा है ?' हर्षसे धड़कते हुए हृदयसे स्वमान रखनेका प्रयत्न करते हुए रमाने पूछा।

'रमा ! बहुत वर्षोंसे मुझे स्त्री-जातिका अनुभव नहीं है; इससे समझमें नहीं आ रहा है। किन्तु यह है क्या ? मैं विवाह करना अस्वीकार करता हूँ तो तुम चारपाई पकड़ लेती हो; जब मैं दृष्टिसे बाहर जाता हूँ तब डाक्टर

कहता है कि हृदय-गति बन्द हो जानेका भय है पर जब मैं तुम्हारे पीछे दौड़ता हूँ तब तुम माथेरान भागकर चली आती हो। या तो तेरा भ्रम है या तुम्हारा किन्तु इस प्रकार भागनेसे लाभ? तुम्हारे मनमें कुछ पाप अवश्य है? उसे कह डालो। परिणाम एक ही होगा। कल मैंने बहुत विचार किया, हम दोनोंका एक सूत्रमें बँधना निश्चित है, कोई टाल नहीं सकता।'

यदि जगतने विनय किया होता, व्यंग्योक्ति की होती तब रमा उसका उत्तर देनेके लिए तैयार थी; किन्तु यह तो मानो स्वयं उसका मालिक हो रमा छोटी बालिका हो, इस प्रकार शांति पूर्वक बातें कर रहा था। इसका उत्तर भला क्या दिया जा सकता था?

'कृपाकर यह बात आगे न बढ़ाइये, मुझे विवाह नहीं करना है!'

'क्यों?' रमाके कंधेपर हाथ रखकर बड़े ही भावसे जगतने पूछा।

रमाका हृदय संतुष्ट हुआ। वह स्वयं अपनेको धिक्कारने लगी।

'यों ही—पर—?'

'रमा! तू एक वर्षकी थी तब मैं तेरे साथ खेलता था, स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि बड़े होनेपर पुनः हम मिलेंगे। जो भी हो, क्या तुझे ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि हम दोनों एक दूसरेके लिए बने हैं?' जरा रूक्ष, आत्म-तिरस्कार पूर्ण हास्यके साथ जगतने कहा।

'परिहास मत कीजिये!'

'तब रमा! यह मान कैसा? तू...' कहते हुए जगत पुनः उसके कंधेपर हाथ रखने लगा। गरम लोहसे कोई दाग रहा हो इस प्रकार घबड़ाकर रमा दूर हट गई—उठकर खड़ी हो गई।

'जगत! नहीं, नहीं!' कहकर वह तनकर खड़ी हो गई। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण थे किंतु गर्वमें उसके छोटे नथने फूले हुए थे, 'आप मेरे लिए ईश्वर हैं, आपके चरणोंमें मरनेके लिए मैं तैयार हूँ। किंतु यह सम्भव नहीं, मैं विवाह नहीं करूँगी। वापस चलिये, अब मैं यहाँ अधिक नहीं ठहर सकती। पिताजी मेरी बाट देख रहे होंगे।'

जगत उठा और साथ चल पड़ा। रमा अकुला गई थी जिससे कुछ कहना उसने उचित नहीं समझा।

'रमा! कल प्रातःकाल सात बजे मैं यहाँ आऊँगा और तुम्हारा इन्तजार करूँगा; जो कुछ कहना है एकबार मुझे कह लेने दो, पीछे जो तुम्हारी इच्छा हो करना।'

'बहुत ठीक।' कहकर रमा पास ही के रास्तेसे बनदेवीके समान अलोप हो गई।

दूसरे दिन जगत ठीक सात बजे 'बर्ड-रुड प्वाइंट' पर पहुँच गया। दस मिनट बाद रमा आई।

'कलका 'फार्स' (प्रहसन) आज भी न हो इसलिए मैं इस पत्थरपर बैठता हूँ। तुम वहाँ बैठो। रघुभाई कैसे हैं?'

'अच्छे हैं। एक पैरमें लकवा मार गया है।'

'बताओ रमा! रातमें क्या निश्चय किया?'

रमाने सोचा कि कैसा भावहीन है!

'क्या निश्चय करूँ?' झूठ बोलते हुए रमाने कहा। उसने रातभर विचार किया था, दृढ़ निश्चय किया था, किंतु जगतमें ऐसा प्रभुत्व था कि उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे। 'अपना निश्चय तो मैंने कल ही बता दिया था।'

'यह नहीं, रमा? यदि 'न' कहना हो तो साफ-साफ कह दो। अपने जीवनमें एक बार अपना लजीला स्वभाव एवं अपना कोमल हृदय भुला दो। शिरीनके समान स्पष्ट कह दो।'

'आपको बुरा लगेगा....'

'यदि बुरा लगना होता तो यहाँ क्यों आता? रमा! साफ-साफ बोलो। यह समय मौनका नहीं है।' मानो स्वयं पति हो चुका हो इस प्रकार जगत बोला।

'तब पूछूँ?' अपनी स्नेहपूर्ण आँखें जगतपर डालकर रमाने पूछा, 'क्षमा कीजिये। तनमन बहनके लिए अपना जीवन सर्वस्व अर्पण करनेके

लिए प्रस्तुत—विरागी, भावनाशाली, कामनाहीन, सिद्धनाथ—शिरीनका त्यागकर, इस समय मुझसे विवाह करनेके लिए आप क्यों तैयार हुए हैं? सच-सच कहिये।'

'रमा! मैं सच-सच ही कहूँगा, मुझे झूठ बोलनेकी आदत नहीं है। यह प्रश्न मैंने स्वयं अपने मनसे सहस्रों बार पूछा है।' धीरे-धीरे मानो न्याय पूर्वक वाद-विवाद करता हो इस प्रकार जगत बोला- 'देखो! अपनी देवीका मैं सच्चा प्रणयी था। मेरे उछलते हुए, संयमहीन रक्तमें रसकी तरङ्गें लहरें मारती थीं। लम्बे अभ्यास, गम्भीर विचार, अखण्ड वैराग्यने—और सर्वोपरि स्वामीजीकी संगतिसे उसमें परिवर्त्तन हुआ।'

'क्या?'

'मेरा हृदय संयमी, विरक्त—अधिकांश रूपमें—हो गया। अब प्रणयी नहीं रहा, होनेकी शक्ति भी नहीं रही। 'देवी' के लिए मानवी प्रेम नष्ट हो गया है—दूरपर, अपूर्व, सुशोभित एक दीपक चमकता रहे उसी प्रकार उसकी स्मृति मस्तिष्कमें बनी हुई है मेरे जीवनको कभी-कभी आकृष्ट करती है—पर अरे हाँ! मैं भूल गया! वैराग्यका दिव्य अङ्ग-स्वरूप मैं नहीं बन सका।'

'क्यों? कभी-कभी क्या तनमन वहन...'

'हाँ, वैराग्यसे मेरा हृदय कठोर बन गया और प्रेमके अन्तर्वेगका कठोर रूपांतर हुआ।'

'तात्पर्य?' रघुभाईकी बातोंका स्मरणकर रमाने घबड़ाकर पूछा।

'उसका इतिहास बिलकुल भिन्न है। मैंने देवीका प्रतिशोध लेनेका निश्चय किया। काम क्रोधादि विषयोंको दूरकर केवल 'देवी'के शत्रुओंका संहार करनेकी सौगंध ली।'

'इसका वैराग्यसे क्या सम्बन्ध?'

'यही मेरी भूल हुई। स्वामीजीने बहुत समझाया। अंतमें बारह वर्ष पश्चात् मेरी मतिमें भ्रम उत्पन्न हुआ। अभिमानमें मैंने सोचा कि प्रतिशोध ही सृष्टिक्रमका सिद्धांत है। तू जानती है कि इसका फल क्या होता? मण्डल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता—साथ ही मैं भी चला जाता; किसलिए? एक श्यामदास

और गुलाब जैसे तुच्छ कीड़ोंकी हत्या करनेके लिए। मैंने शिक्षा ग्रहण की, गर्व नष्ट हो गया किंतु उसका मूल्य अत्यधिक देना पड़ा। स्वामीजीने बताया कि प्रतिशोध अपने आप ही हो जाता है। दुःखी करना और होना एक दूसरेसे भिन्न नहीं है; एक ही वस्तुके अर्द्धाङ्ग हैं।'

'यह तो सच है किंतु बात हम कुछ दूसरी ही कर रहे थे।' रमाने कहा।

'हाँ, भूल गया, उसका अनुसंधान है। जब मेरे प्रतिशोधके विचारका भयङ्कर परिणाम दृष्टि-गोचर हुआ तब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गई—गर्व जाता रहा। स्वामीजीने कहा 'तुम्हारी अपूर्णता मैं अपने साथ लिये जा रहा हूँ।' वैसा ही हुआ। रमा! आत्म-दर्शन मुझे प्रथम बार हुआ। इतने वैराग्यसे अपने स्वभावमें मैंने कर्कशता, क्रूरता भर लिया था। मैं खलीफा उमरके वैराग्यको पहुँचा, भगवान बुद्धके नहीं। मनःकामना जड़मूलसे निकालते समय कोमलता जाती रही, जन-समाजकी निर्बलताके लिए करुणा, प्रेमका समावेश नहीं हुआ। हमारे योगकी चरित्र-भावना भिन्न है। खलीफा उमरमें भी प्रसङ्ग आनेपर जीसस क्राइस्टका अप्रतिम भाव, बुद्धकी अनिर्वाच्य कोमलता आनी चाहिये। स्वामीजीमें यह चीज थी। जब वे छोटे बालकको खेलाते तब वह बचा अपनी माँको भूल जाया करता था। मैं तो केवल धर्मका चक्र बना रह गया।'

'स्वामीजी सुधार नहीं सके?'

'स्वामीजी प्रायः कटूक्ति करते किंतु वह मेरे मस्तिष्कमें बैठती नहीं थी; मुझसे स्वामीजी कहा करते थे कि विवाह कर तो सुधरेगा।'

'यह कैसे?'

'इसका रहस्य मेरी समझमें पीछे आया। मेरी जड़ता बढ़ गई, इसी समय तुमसे विवाह करना अस्वीकार कर तुम्हें दुःखी किया। शिरीन इस पत्थरसे पहले ठकरायी—कुछ ढीला किया। अरुणने, गुलाबने, स्वामीजीने अधिक कोमलता उत्पन्न की। जब 'देवी' का स्मृति चिह्न तुम्हारे हाथमें देखा तब पूर्णरूपसे आर्द्रता आई—कठोरताका गर्व चूर-चूर हो गया। रमा! तब मुझे स्वामीजीका वचन स्मरण आया; मैं अपना सच्चा स्वरूप परख सका।

वैराग्य रखकर रस भूल गया। अपने स्वभावको आर्द्र करनेका स्थान रही नहीं गया।'

'इसीलिए...'

'सुनो! अभी बहुत कहना है। स्वामीजीकी भावना बड़ी ही दूरदर्शी थी और उसे सिद्ध करनेका भार मुझे सौंपा गया है। पर अब काम भिन्न प्रकारका है। अब तक कार्य मण्डलमें स्थिरता लानेका था, वह तो आ गई। बारह हजारसे अधिक मनुष्य इस समय एक प्रकारसे मेरी आज्ञाधीन हैं। किंतु इससे क्या? रमा! मुझे अपनी भावना दिग्दिगंतमें फैलाना है, सब भारतवासियोंके हृदयमें भरकर उन्हें वर्त्तमान अचेतनतामेंसे जाग्रत करना है, इसके लिए आदर्शरूप बनना सर्व प्रथम मेरा जीवन लक्ष्य है। इस भावनाके लिए मैं अकेला समर्थ नहीं हूँ।'

'क्यों?'

'स्वामीजीने बताया था कि सृष्टिकी रचनाके लिये ब्रह्मा चाहिये—किन्तु उसे चलानेके लिए विष्णु और लक्ष्मी दो चाहियें। गर्व दिखाई पड़े तो क्षमा करना रमा! इतने वर्षोंसे हम वैराग्य एवं योग स्वार्थको ही समझते आये हैं। हमारी भावना, जीवनमें रहकर प्रत्येक खेल खेलकर अनासक्तिसे परम पदपर संचार करनेकी है। संन्यासी बने रहेंगे तो लोग भूल करेंगे, निवृत्ति समझ जहाँ पहले थे वहीं ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे। प्राचीन समय अब नहीं रहा। पाश्चात्य देशोंमें संसारमें गृहस्थ रूपमें रहनेवाले—अधिकांशमें योगी—क्रोमवेल वाशिंग्टन, मेजिनी हुए हैं; इसी प्रकार यहाँ भी लोगोंको सिखाना है कि भारत का त्याग एवं भीष्मकी भीषणताका पालन गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी किया जा सकता है। हमारा मण्डल यही शिक्षा देनेवाला है—जब तक मैं यह नहीं करता तब तक यह भावना अपूर्ण ही रह जायगी। इससे प्रणयी बनाकर अपना धर्म पालन करनेमें बाधा डाले ऐसी पत्नी मुझे नहीं चाहिये बल्कि ऐसी चाहिये जो रणमें सिर कटकर गिरनेपर गोद फैलाकर उसे ग्रहण कर ले।'

'जगत! मेरे जैसी तुच्छसे भला यह हो सकेगा? आप जैसे गगनमें

विहार करनेवालेकी भूमिपर भटकनेवाली मुझ जैसीके साथ कैसे पटरी बैठेगी ? शिरीन—'

'हाँ शिरीन थी। तुझसे अधिक सुशिक्षित, अधिक बुद्धिमान, फिर भी सूक्ष्म-दृष्टिसे देखनेसे मेरी अपूर्णता उससे दूर नहीं की जा सकेगी।'

'क्यों ?'

'शिरीनमें रस, भाव बहुत कम है; दो बुद्धिभक्तोंके एकत्र होते ही कोमलता जाती रहेगी।'

'और मैं ?' थोड़ा हँसकर रमाने पूछा।

'तेरे हृदयमें रसका, प्रेमका अखण्ड स्रोत है। तू मेरी सभी कठोरता दूर कर सकनेमें समर्थ है। तू सुशिक्षिता है, बी० ए० तक पढ़ी है, इससे छः मासमें मेरी भावना समझ जायगी। साथ ही मैंने देखा है कि तू मुझे सच्चे हृदयसे चाहती है; मेरे बिना तू मरणासन्न हो गई; तो इस विश्व-नियमको व्यर्थ तोड़ना भी भूल है।

'ये आपके कारण हैं। आपके वाक्चातुर्य एवं न्यायके लिए धन्यवाद ! मेरा ख्याल है कि इतने न्यायपूर्वक प्रथम बार ही किसी स्त्रीसे विवाहकी मांग की गई होगी।

'होगा, अब देखो, बातें बहुत हुईं, अब क्या बाधा है रमा ? तू स्वीकार कर या अस्वीकार, लेकिन है तू मेरी ही; मुझे एक रमा मिल गई तब दूसरी कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ ? नहीं मानेगी तो दस वर्ष तक घेरा डाले पड़ा रहूँगा।'

ये बातें इतनी रसदायक थीं, रमाके हृदयको आकृष्ट कर रही थीं कि उसका मन आनन्द-हिंडोलेपर चढ़कर झूलने लगा। किन्तु हृदयमें दूसरी कठिनाइयाँ थीं, उसने सिर हिलाया।

'रमा ?' जगत पत्थरपरसे उठते हुए बोला—'यह क्या ? देखो, मेरी याचना स्वीकार कर लो, मैं दे ही क्या सकता हूँ ?'

'नहीं-नहीं ! असम्भव है जगत !' आँखें पोंछती हुई रमा बोली।

पासमें बैठते हुए जगतने पूछा—'क्यों ?'

'नहीं ! मेरे पिता—आपके कट्टर शत्रु इस समय अपङ्ग हैं उन्हें छोड़ मैं

कहाँ जा सकती हूँ ? वहीं मेरा स्थान अब उनके जीर्ण शरीर के पास है ।'

जगत मुस्कराया—रमाके कंधे पर हाथ रखा—धीरे से बोला—'पगली ! तुझे ग्रहण करूँगा तो तेरे सब लाव-लश्कर के साथ । भूल गई ? न्याय स्त्री-पुरुषको एक मानता है धर्मतः तेरे पिता मेरे पिता के समान हैं । मेरे लिए शत्रु कैसा ? मैं तो 'वीत-राग भय-क्रोधः !'

'रागका क्या होगा ?' रमाने कटाक्षमें आँखें मटकाते हुए पूछा । और नीचे झुककर अपना सिर जगत के वक्षःस्थलपर रख दिया—और रसभार से रो पड़ी ! जगतने आँसू पोंछा, उसे सीने से लगाया । 'जगत ! प्राणेश ! क्या ऐसे ही बने रहोगे ?'

'रमा ! तूने मुझे भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न रूपमें देखा है । मित्र रूप में, शिष्य रूप में—'

'मित्र रूप में मुझे रुलाया, गुरु रूपमें शिरीनको सताया, शिष्य रूप में स्वामीजी को मारा—अब—' रमाकी आँखोंमें अपूर्व प्रेमका आनन्द उमड़ आया, 'प्रणयी रूप में ?'

'प्रणयी रूपमें देखना सभी आकांक्षायें पूर्ण होंगी । चलो, अब सूर्य बहुत चढ़ आया, धूप तेज हो जायगी तो ज्वर आ जायगा ।' वे उठे और चलने के लिए तैयार हुए कि रमा ठमककर खड़ी हो गई ।

जगतने रमाका मुख देखा—उसपर की लाली देख वह हँस पड़ा और बोला—'रमा प्यारी क्षमा करना, अभी प्रणयी बनना सीखना है । कहकर रमाको चूम लिया । मुँहसे निकलती हुई एक 'हाय' को जगतने दबा दिया । तेरह वर्ष तक उसके अधरोंने किसी स्त्रीका स्पर्श नहीं किया था; भूतकालमें अनुभव किये हुए एक चुम्बनका स्मरण, लाल अङ्गारेके समान, उसके हृदयमें जल रहा था ! रमा सुख में लीन थी, सद्‌भाग्यसे इस ओर उसका ध्यान नहीं गया ।

८६

वृद्ध रघुभाई चुपचाप चारपाईपर पड़ा हुआ था । उसके सभी विचार, महत्वाकांक्षायें नष्ट हो गई थीं और इस समय वह दुर्बलता और असहाया-वस्थामें इधर-उधर करवटें बदल रहा था ।

जगत उसके पास गया। वह नहीं चाहता था कि रमाके हृदयको दुःख पहुँचे। जगतने पुकारा—'रघुभाई!'

मुँह टेढ़ाकर बड़े परिश्रमसे रघुभाईने पूछा—'कौन? गुणवंतीका जगत!

'जी हाँ, किन्तु इस समय आपकी रमाका!'

'क्यों? तुम तो विवाह करने वाले नहीं थे न?' कहकर विद्रूपसे रघुभाई हसा। रमाका सिर जमीनमें गड़ा जा रहा था।

'हाँ, पीछे ऐसा ही निश्चय किया। आपको भी रत्नगढ़ चलना होगा।'

अधिक बात न कर दोनों बाहर निकल आये। रमाने पूछा—'अब?'

'अब क्या? वही सांसारिक रीत-रिवाज!'

'कहाँ, सूरत में?'

'नहीं, मुझे अधिक धूमधाम नहीं करना है, बाँदराका मेरा घोस्ट-हाउस बहुत ठीक है। अच्छा अब चलो तार दे आवें।'

शिरीन विवाहका शुभ-संवाद सुनकर पागल हो गई। जगतके बराबर मना करते रहने पर भी रुपयेका कुछ ख्याल न कर उसने घोस्ट-हाउस सजा डाला। उसके दृढ़ आग्रहसे विवाहोपलक्षमें गायन-वादनका तथा मि० वकीलके आग्रहसे पार्टीका भी प्रबन्ध किया गया।

अनंतानन्दके विद्वान् भावनाशाली शिष्य दयानंद वगैरह भी आये। जगतने उनसे सब कह सुनाया; सुन लेनेके पश्चात् यह जाननेके लिए कि पत्नी मण्डलाध्यक्षके योग्य होगी या नहीं रमाको देखनेकी इच्छा हुई। साथ ही शिरीनको भी देखा—देखनेके पश्चात् विचारमें पड़ गये कि दोनोंमें से किसकी प्रशंसा करें। दोष देखना तो भूलकर 'स्त्री-तत्वका विश्वमें क्या स्थान है' इसी विचारमें लीन हो गये।

दूसरे दिन एक पत्र मिला जिसपर रोलीके छींटे पड़े हुए थे। जगतने पत्र खोला, बड़े-बड़े अक्षरोंमें लाल स्याहीसे लिखा हुआ था—'श्री रामजी की जय'। जगतकी आँखोंमें पानी आ गया। ९० वर्षके श्री रामकृष्णदासजीने विवाहका समाचार सुन अपने जीवनमें पहला पत्र जगतके पास भेजा। जगतने जाकर उसे रमाको दिया और रमाने उसे अपनी अन्य उपहार-वस्तुओंके साथ रख लिया।

कुंदन भाभी रिसियाकर बैठी थीं। उनकी 'पुतली' जैसी बहनको छोड़ २० वर्षकी 'घोड़ी' देवरजी उठा लाये ! रायजीके कुटुम्बकी यह अधोगति ! उसपर विवाह सूरत—बाप-दादाके मकानमें नहीं, बंबईमें और वह भी बाँदराके एक कोनेमें। जगतने आदरपूर्वक पत्र लिखा। देवरानीके अकेली रहनेसे डर जानेका भय दिखाया—बहुत मनाने पर उन्होंने जाना स्वीकार किया।

जगत उन्हें लेनेके लिए स्टेशन गया। गाड़ी आई, दरवाजा खुलते ही कुंदन भाभी चिल्लाईं—'अरे चञ्चल ! लड़कीको पकड़, अरे छोकड़ा खड़ा रह।'

जगतने एक लड़का खींचकर निकाला, फिर दूसरा बाहर निकाला; कुंदन भाभीके कितनी संतान थी, वह भूल गया। उसने पूछा—'सब आ गये ?'

'हाय ! हाय ! देवरजी ! आप इतनी जल्दी भूल जाते हैं ? अभी बका तो रही गया।'

जगतने 'बका' को बाहर निकाला। उसका असली नाम क्या है इसका वह विचार ही कर रहा था कि भाभीने एक ट्रङ्क निकाला, दूसरा, फिर तीसरा, दो पोटलियाँ एक भोजनका डब्बा, एक डोलची, एक बटुआ कुल आठ नग; तब भाभी निकलीं; उनके पीछे एक बारह वर्षकी लड़की चञ्चल निकली। जगतने कुली बुलाकर सामान उठवाया और सबको लेकर बाहर आया। मि० वकील की मोटरपर सब लोग एकके ऊपर एक बैठे। बैठनेपर भाभीसे रहा नहीं गया—'देवरजीं ! देखिये, इसीको मैं कह रही थी।

जगतने चञ्चलको देखा।

'अच्छा, देवरजी ! यह तो बताइये कि मेरी देवरानी कैसी हैं।'

'कल सबेरे देख लीजियेगा।'

दूसरे दिन प्रातःकाल सब लोग चाय पीनेके लिए बैठे। कुंदन भाभी भी रिसालेके साथ शतरंजी पर बैठ गईं। नम्बरवार चञ्चलकी सहायतासे लड़कों को चाय पिलाई जाने लगी और धीरे-धीरे शतरंजीपर चाय रूपी तालाब बनने लगा।

इसी समय शिरीन आई—जगत आराम कुर्सीपर बैठा था; वह उसके पास बैठ गई। कुंदन भाभी तो आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखने लगीं—यह देव-

रानी! जब जगतने 'शिरीन' संबोधन किया तब वह कहीं शांत हुई। इतनेमें एक लड़कीने चाय अधिक उड़ेल दी, उसे दो घूँसा जमाकर शिरीनका क्रोध उसपर उतारा। इसी समय बच्चू भाई जो खिड़कीमें खड़े थे बोल उठे 'रमाबाई आई'।'

'चंचल! इधर बैठ, छोकड़ेको ले—'

जगतने रमाको जेठानीसे मिलनेके लिए बुलाया था, वह ऊपर चढ़नेसे हाँफने लगी थी। अभाग्यवश हॉलमें एक ही कुर्सी थी जिससे किसीकी ओर न देखकर वह बोल उठी—'जगत, जरा उठो न!'

जगत उठा और उस कुर्सीपर सुस्तानेके लिए रमा बैठी। कुन्दन भाभीका तो होश गुम हो गया। पारसिन जैसा पहनावा! सिरपर कपड़ेका ठिकाना नहीं! लम्बी बाँहकी बिना बटनकी कमीज! कपड़ेके नीचेसे दिखाई पड़नेवाली सफेद मलमलकी मिर्जई! वक्षःस्थलपर देवरजीकी छवि! न तो जेठकी लाज, न पतिकी मर्यादा—'जगत' कहकर पतिको पुकारा और आराम कुर्सीपर पड़ गई! सब बरदाश्त हो सकता है लेकिन यह...? कुन्दन भाभीके लिए तो प्रलयकाल आ उपस्थित हुआ! हाय हाय! इससे तो मेरी चञ्चल अच्छी!

'कहो कुंदन बहन!' कुछ समझ न पड़नेसे रमा बोली—'अच्छी तरहसे तो हैं न?'

'हाँ बहन! आप मजेमें हैं? मुझे तो बड़ी खुशी हुई; भगवान करे देवरजीका घर एकका इक्कीस हो।'

रमा लजा गई, उसे समझ नहीं पड़ा कि वह क्या उत्तर दे। थोड़ी देर बाद वह वहाँ से उठ गई। पीछे-पीछे शिरीन गई। 'रमा! तेरी जगह कौन आनेवाली थी, पता है? वह लड़की—पुतली जैसी! जो लड़का खेला रही थी!' ठट्ठा मारकर हँसते हुए शिरीनने कहा।

जाने दो, जगत सुन लेंगे।

———

घोस्ट-हाउस आज बड़े राजमहल जैसा लग रहा था। कुंदन भाभी अत्यधिक क्रुद्ध थीं, न तो ढोल थी और न मजीरा; न बारात निकलने वाली थी और न कहीं गीत-राग सुनाई दे रहा था। यह उत्थान था या पतन? पर देवरजीके भयसे कुछ बोल नहीं सकती थीं। फिर भी जिस समय रमाको गाड़ीमेंसे उतरते देखा, जब उसका मोहक, सुंदर मुख देखा तब उनका हृदय भी पिघल गया, सब कुछ भूल गईं, आँखें हर्षाश्रुसे भर गईं।

'रमा ! बहन ! तुम...'

'क्या है कुंदन—भाभी ?' घबड़ाहटमें रमाके मुँहसे निकल पड़ा।

'किसकी भाभी ? मेरे देवरजीके योग्य बनना, समझी।'

शिरीनसे चुप नहीं रहा गया; 'ठीक पुतली जैसी लगती है या नहीं ?'

कुंदन भाभीकी भौंहें चढ़ गईं; यह पारसिन कौन है ?

इतना ही अच्छा था कि घरके थोड़े आदमी थे; रमाने इधर-उधर देखा 'हाय हाय ! हृदय जरा तो धैर्य धर !' दो-चार ब्राह्मण और तीन-चार संन्यासी बैठे थे।

थोड़ी देर बाद मि० वकीलकी मोटर आई, उसमेंसे जगत और दयानंद उतरे। सादे-स्वच्छ वस्त्रमें रमाको जगत राजा जैसा दीख पड़ा, वह मुस्करा पड़ी। 'रमा ! क्या मुस्करा रही है ?' शिरीनने पीछेसे पूछा। रमाने नीचे देखा। बादमें क्या हुआ, इसका ज्ञान भी नहीं रहा। कुछ धुँधला-सा, आँखमेंसे आँसू—कारण पता नहीं; एक दृढ़ हाथ उसके हाथमें था, अपनी रुग्णावस्थाका स्मरण आ गया; ब्राह्मणगण कुछ पढ़ रहे थे। अरे ! यह जगतका हाथ काँप रहा है या उसका ? उसे क्या पश्चात्ताप हो रहा है ? नहीं, नहीं यह तो योंही काँप उठा। विवाह समाप्त हो गया।

सब अतिथियोंके चले जानेके पश्चात् जगत ऊपर छतपर दूर समुद्रकी ओर देखता हुआ विचार-मग्न खड़ा था।

'मनुष्य रूपमें आज मेरा स्थान कहाँ है ?' वह बड़बड़ाया।

'क्यों ?' पीछेसे दयानंदने पूछा।

'मेरे जीवनकी पवित्र प्रतिज्ञा, उच्च आशायें आज समाप्त हो गईं।'

'देवी' का 'किशोर' कृतघ्न—गुणवंतीका पुत्र कृतघ्न—प्रेम-विहीन विवाहको न माननेवाला कृतघ्न ? मनुष्य रूपमें मेरी अधोगति आज पूर्ण हो गई !'

'योगी रूपमें उन्नति भी आज पूर्ण हो गई। मनुष्य प्रणयके पीछे—द्वेषके पीछे दौड़ता है। योगियोंके लिए प्रणय उनकी भावनायें हैं, द्वेष इसमें बाधक हैं। सिद्धनाथ! तू मनुष्य नहीं, योगी है।'

'जगत! मैं आ सकती हूँ ?' लज्जापूर्ण आवाजमें रमाने पूछा। शिरीनने उसे जगतको बुला लानेके लिए भेजा था। रमा आज प्रथम बार जगतसे बोल रही थी। दयानंदको देखकर वह वहीं खड़ी रह गई।

'आओ, दयानंदसे लज्जा करनेकी आवश्यकता नहीं है। ये मनुष्य नहीं देवता हैं।'

रमाने कंधेपर हाथ रखते हुए पूछा—'जगत! इतने उदास क्यों हो ?' जगत हँसा 'क्या करूँ ? दो घंटोंमें इतना परिवर्त्तन! कैसे समक्षमें आये ?'

तीनों व्यक्ति नीचे गये। शिरीनने कहा—'मास्टर! मेरा अभिनंदन !'

रमाकी तो मानो जीभ ही सी गई।

× × × ×

माथेरानमें आज रमाके छः दिन स्वर्गके समान व्यतीत हो गये। आज दोपहरको बंबई जाना था। रमा जगतके साथ 'शार्लोट लेक' के किनारेपर खड़ी थी।

'जगत! प्यारे! माथेरान सदैव स्मरण रहेगा! ऐसे ही बने रहियेगा ?'

'नहीं, बिगड़ जाऊँगा!' जगतने हँसकर कहा।

'नहीं, सच-सच कहिये, क्या आप सुख अनुभव नहीं कर रहे हैं ?' आपका हास्य कैसा निर्दोष बालक जैसा है ?

'रमा! ऐसे अवसरपर तुम्हारे साथ, दूसरा भला हो ही क्या सकता है ?'

'स्मरण है, जब मैंने आपको सबसे पहले देखा था और मेरा कपड़ा फँस गया था। उस समय आप कितने कठोर हो गये थे ? उस समय तो आप वृद्ध मनुष्यके समान हँस रहे थे।'

जगत गम्भीर होकर बोला—'वह प्रसङ्ग भिन्न था और यह भिन्न है।'

'क्यों ?'

'उस समय मैं शत्रुकी पुत्रीसे मिला था अब अपनी पत्नीके साथ हूँ।'

रमा कुछ काँप उठी—कुछ हँसी; 'पुनः ऐसा समय आये तो—'

'ज्यों का त्यों; स्वामीजीके समान प्रकृतिमय बननेमें ही मेरी सच्ची मनुष्यता है। जिस विद्युतसे हम घरमें भोजन बनाते हैं और वायु सेवन करते हैं वही विद्युत दूसरे ही क्षण जलाकर भस्म कर देती है।'

'किन्तु मेरे प्रति भी !'

'हाँ, जिस क्षण मुझे प्रतीत होगा कि रमाका जीवन मेरी भावनामें बाधक हो रहा है उसी क्षण मेरा रूपांतर निश्चित है।'

'ओफ् !'

'इसीसे रमा ! मैं कह रहा था कि प्रसङ्गवशात् स्वरूप धारण करना सीखो। यह मत आशा रक्खो कि प्रणयी होनेसे मैं जरा भी बदल जाऊँगा। समयानुसार मेरे धर्मके साथ अपना धर्म रखना सीखोगी तभी हमारा विवाह-योग सिद्ध होगा।'

'मैं बड़ी डरपोक हूँ, कौन जाने सीख सकूँगी ?'

जगत उसके कंधेपर हाथ रखकर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा, फिर बोला ! 'रमा ! दृढ़ता सीखनी पड़ेगी। हमेशा माथेरान नहीं आनेका। तुम्हें प्रकृतिरूप बनना है। मैं उच्च कार्यमें विचरण करूँ—मेरी विजयमाल गूँथना; मेरेमें आर्द्रता आये—इसके लिये अपने सुकोमल हाथसे आलिङ्गन करना और-और'—जगत तनकर खड़ा हो गया, आँखें चमकने लगीं। आवाज कुछ काँप उठी, 'यदि मैं अपनी भावनासे गिरूँ तो मुझे विष दे देना और मेरे मस्तकपर अपने हाथकी चूड़ियाँ फोड़कर वैधव्य स्वीकार करना; पर रमा ! प्राणेश्वरी ! यदि कर्त्तव्यपरायणतामें अपने प्राण अर्पण करूँ तो विजय-गानके आलापसे चारो दिशाको गुँजा देना।'

जगतने रमाका हाथ दबाया। दोनों चुपचाप वापस आये।

———

८८

मि० वकीलके उपवनमें रातके समय दो सखियाँ बैठी थीं; जगत अपने पदका चार्ज लेनेके लिये रत्नगढ़ गया था, आगामी सोमवारको रमा और रघुभाई भी वहाँ जानेवाले थे। रमा प्यारी नवबधू, शिरीनसे बिलग होनेसे दुःखी थी; दोनों जरा-जरा सी बातपर आँसू गिरा रही थीं।

शिरीन—'रमा! तुमसे अलग होते समय दो आदमियोंको मैं खो रही हूँ—आज सात-आठ वर्षकी अपनी सखी—एवं अपने मास्टरकी पत्नी! उनकी स्मारक!'

रमा—'शिरीन! मुझे भी ऐसा लग रहा है कि पीहरसे कलही जाऊँगी। मेरी माँ, बहन, सखी जो कुछ है सो तू ही है।'

'और मैं 'Alone, unfriended melancholy, slow! (एकाकी मित्र विहीन, म्लान धीमी) हूँ; जबकि तुम्हारे पास जगत है—तुम्हारा प्राण-पति, मेरे लिये मेरी पुस्तकें, और....' कहते-कहते शिरीनका गला भर आया।

शिरीनके गलेमें हाथ डालकर रमा बोली—'बहन, प्रिये! रो मत, मेरे मनमें तुम्हारे लिये क्या हो रहा है, यह व्यक्त करनेमें मैं असमर्थ हूँ। कल तू किससे मिलेगी? किससे वार्त्तालाप करेगी? घरपर, कॉलेजमें तेरा साथ देने-वाला कौन है?'—रमाका भी गला भर आया।

शिरीन बड़ी ही दयनीय आवाजमें बोली—'मेरे मतसे एक प्रकारसे मेरा जीवन पूर्ण हो गया। अब तो तुम्हारा स्मरण और मास्टर का—'

रमा 'शिरीन! शिरीन! मैं जानती हूँ, जगतने मुझे बताया है। इस समय मेरे सुखी जीवनमें यदि कोई दुःख है तो यही कि जिस स्थानको तुमने माँगा—जिसके लिये तुम सर्वथा योग्य हो, उसपर मैंने अधिकार जमा लिया और तुम्हें इस प्रकार छोड़े जा रही हूँ।'

बहादुर शिरीनने आँखोंके आँसू पोंछ डाले और कहा, 'होगा तू भाग्यवान् है। मास्टरका पाठ अब मुझे स्मरण करना है।'

रमा—'क्या?'

शिरीन—'मुझसे कहा था कि 'देवी' के प्रेमने उसे सच्चा मनुष्य बना दिया।

प्रेम दमनककी जातिका है। रमा! प्रेम ज्यों-ज्यों दबाया जाता है त्यों-त्यों उसमेंसे सुगन्ध निकलती है।'

रमा—'शिरीन! सचमुच उनके योग्य तू ही है।'

शिरीन—'अच्छा-अच्छा चल रहने दे। जानेके पहले यदि बुरा न मान तो दो बात कहूँ।'

रमा—'बुरा? शिरीन! तेरे कहनेका बुरा मानूँगी तो रहूँगी कहाँ? प्रसन्नतासे कह।'

अवरुद्ध कंठसे शिरीन बोली, 'देखो, पहला स्वार्थ; तू विजयी हुई और मैं पराजित।'

रमा—'तू यह कह क्या रही है?'

शिरीन—'बिलकुल सच है पर इतना याद रखना कि जैसे तेरे लिए वे प्राणके समान हैं वैसे ही—'

रमा—'यह तो मुझे सदा याद रहेगा ही।'

शिरीन—'दूसरी बात रमा! तेरे लिए है। यद्यपि मुझे कहना न चाहिए। मैं कौन हूँ—एक गैर, तू उनकी पत्नी है। फिर भी कहती हूँ, देख तू भीरु-हृदय है, स्नेहमयी है; मास्टर जरा अस्पृह रहेगा तो तू खीझ उठेगी।'

रमाने सिर हिलाया।

'नहीं क्या? मैं तुझे पहचानती हूँ न, तू रो पड़ेगी। तेरी संक्षुब्ध आत्मा दुःखी हो जायगी। शायद वैराग्यके अभ्यासीको तेरे जैसी कोमलाङ्गी को रिझाना न आये—'

'शिरीन! अभी तू उन्हें पहचानती नहीं। इसीसे ऐसा कह रही है। वे विरागी हैं—उनका प्रेम दूसरेको अर्पित किया हुआ है, साधारण स्नेह एवं धर्मके सिवाय मुझे दूसरा कुछ नहीं देते पर सात दिनमें इन्हें अपने पतिरूपमें मैंने देखा। शिरीन! तू तो सोच ही नहीं सकती। मेरे लिए उनके मनमें कितनी चाह—कितनी रसज्ञता—भावकी कैसी प्रौढ़ता है। मुझे आज ही समझ पड़ रहा है कि तनमन बहन क्यों उनके अभावमें मरनेके लिए तत्पर हुई।

शिरीन—'पर उनकी रक्षा करना...'

रमा—'वे मेरा संरक्षण करेंगे कि मैं...'

शिरीन—'नहीं रमा! उनके योग्य बनना—उनके भावना की रक्षा करना।'

'अच्छा अब चलो, तुम्हें भी तैयारी करनी होगी।'

दोनों गलेसे गले लगीं, अलग हुईं। रमा जरा अदृष्ट रूपसे काँप उठी। शिरीनने इसे देखा। आज तक बराबर इस प्रकार मिलती थी, आज यह नवीन-सा लगा।

शिरीन—'रमा! अब तुम्हें शिरीन भाती नही! ठीक ही है।'

शिरीनको भी उस दिनके अन्तिम आलिङ्गनके पश्चात् सब उच्छिष्ट लगता था किंतु इसे उसने गुप्त रखा। अपना विचार प्रकट हो जानेसे रमा नीचे देखने लगी।

रमा—'अच्छा, अब आज्ञा दो, स्टेशन पर तो आओगी न?'

रमाके वक्षपर लटकते हुए लाकेटकी ओर संकेत करते हुए शिरीनने कहा—'अवश्य आऊँगी रमा! यह चित्र मुझे दोगी?'

'इसे तो जगतने भेंट दिया है।'

'रमा! तू धनाढ्य है मैं भिखारिन हूँ। एकबार उदार बन जा। मास्टर पूछें भी तो कह देना कि शिरीनने माँगा था; वे अस्वीकार नहीं करेंगे, उनका हृदय बड़ा विशाल है।'

लाकेट उतारते हुए रमाने हँसकर कहा—'शिरीन! मेरे पतिपर मेरी अपेक्षा तुम्हारी आज्ञा अधिक चलती दिखाई देती है!'

लाकेट लेकर उसकी ओर देखते हुए शिरीन बोली—'आजसे? जबतक जीवित रहूँगी तबतक चलेगी। यह क्यों नहीं कहती कि मैं थी जिससे तुझे मिल गया अन्यथा अब तक तो स्वर्ग में होती।'

दोनों हँसी और हाथ मिलाकर विलग हो गईं।

× × × ×

डबडबायी हुई आँखोंसे शिरीन बोली—'रमा डियर! मास्टरसे मेरा प्रणाम कहना।' इतना कहते-कहते शिरीनका गला अवरुद्ध हो गया। मि० वकीलने रमा से शेक-हैण्ड किया। शिरीनको यह साहस नहीं हुआ। गाड़ी चल पड़ी, रूमाल

हिलने लगा, गाड़ी प्लेटफार्मसे बाहर हो गई। भाग्यसे डब्बामें रघुभाईको छोड़ और कोई नहीं था जिससे वह अपने विचारोंमें तल्लीन हो गई!

दूसरे दिन प्रातःकाल रत्नगढ़ आया। कितने वर्षों बाद वह रत्नगढ़ आई किंतु उस समयके और आजके जीवनमें कितना अन्तर! प्लेटफार्म पर गाड़ीके आते ही रमा की आतुर दृष्टि लोगोंकी भीड़पर पड़ी। इतनी भीड़! किंतु जिसे देखनेके लिए वह तरस रही थी वह दिखाई नहीं पड़ा। बच्चूभाई स्टेशन पर आये थे। ज्योंही वह उतरी कि जिस भीड़को देख उसे विस्मय हुआ था, वह उसकी ओर बढ़ी और उसने उसे घेर लिया।

इस जन-समूहको देखकर रमा घबड़ा उठी। अपने सगे सम्बन्धीके समान सभी खुले हृदयसे उसका कुशल समाचार पूछ रहे थे। कुछ समय तक तो उसकी समझमें कुछ नहीं आया, तब उसने एक बालकको अपने पितासे पूछते हुए सुना—'पिताजी! क्या यही हमारे सिद्धनाथकी बहू हैं?'

रमाके कपोल लज्जासे लाल हो गये। अब उसकी समझमें आया। ये सब लोग सिद्धनाथकी पत्नीका स्वागत करने आये हैं।

अनंतानंद द्वारा अमरावती बनाये हुए शहरमें होकर वे आगे बढ़े। वे एक विशाल उपवनमें, जिसके मध्यमें शङ्कराचार्यके समान एक संन्यासीकी सफेद संगमर्मरकी मूर्ति बनी हुई खड़ी थी, पहुँचे। उसके विशाल ललाटपर सूर्य किरणोंने तेजका मुकुट रच दिया था।

रमा—'बच्चूभाई! ये कौन हैं?'

बच्चू—'पहचानती नहीं, स्वामीजी हैं!'

रमाको तुरन्त अपने पिता एवं अनंतानंदकी शत्रुताका स्मरण आ गया। कैसा भव्य पुरुष था!

गाड़ी धीरे-धीरे अनंत-मठके बगलमें, दीवानके निवास-स्थान पर पहुँची। मकान देखकर रमा हर्षित हो गई। कैसा सुन्दर उपवन है! पीछे सुलभा नदीका कल्लोल कैसा मधुर है। बच्चूभाईने राममंदिर, अनंत-मठ, पहलेका राजमहल जिसमें इस समय रणुभा रहते थे आदि दिखाया। सब कितना आकर्षक लग रहा था।

प्रति

छतपर कुंदन भाभी खड़ी थीं। थोड़ी दूरपर गौरवमें राजा मानसिंहके समान दिखाई पड़ते हुए सादे, स्वच्छ, राजपूत वेशमें एक व्यक्ति खड़ा था। उसने पूछा— बहू! अच्छी तरहसे तो हो?'

शरमाते हुए रमाने कहा—'जी हाँ।'

व्यक्ति—'बहू! तुम मुझे पहचानती न होगी। आज मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई।'

अनुमान गलत न हो इस डरसे अटकते हुए रमाने पूछा—'आप–रणुभा?'

रणुभा—'हाँ, रमा! तुम्हारी माँको तो नहीं पर सासको जानता था। उन्हींके जैसी बनना और मेरे सिद्धनाथकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाना।'

रमा साश्रु नीचे देखने लगी।

इतनेमें सूखे ताड़के वृक्ष जैसा एक बाबा मोटा लट्ठ लिये हुए आया। उसकी दाढ़ी सफेद होकर पीली पड़ गई थी किंतु वयका झपेटा अभी उसे लगा नहीं था। पहले तो रमाको कुछ समझ नहीं पड़ा, पीछे सहसा याद आ गया। और वह बोल उठी, 'बाबा जी!'

नब्बे वर्ष की वयमें भी पूर्ववत् कड़ी आवाजमें रामकृष्णदासजी आँखमें आये हुए आँसूको हथेलीसे पोंछकर बोले—'रामजी! बेटी! कौन? मेरे लड़के की पत्नी? बेटी! ऊपर देख अहा? जैसी क्या—उसका नाम क्या था—हाँ, कमला! तेरा नाम—हाँ, रमा! भूल गया। बेटी! तू इतनी थी और यूँ यूँ चलती थी! रामजीका आशीर्वाद! हाँ अच्छा! कमला—अरे क्या, रमा! छोटा दीवान कहाँ है?'

रमा लजा गई, उसने समझा कि जगतको पूछ रहे हैं।

रणुभा समझ गये, उन्होंने पूछा—'कौन, रघुभाई? पासहीके कमरेमें हैं।'

दो छलाँग मारकर बाबाजी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने पूछा—'क्यों बे छोटे दीवान?'

रघुभाईने बिछौने पर पड़े-पड़े मंद आवाजमें पूछा—'कौन?'

रामकृष्ण—'कौन क्या? मैं हूँ रामकृष्ण। देख, बच्चा! यह कलियुग नहीं कर-युग है। जो जैसा बोयेगा वह वैसा काटेगा, याद है वह—'

रणुआ तुरन्त आकर बोले – 'जाने दीजिये बाबाजी !'

रामकृष्ण—'हाँ, यह तो रामजी सच है ।'

जगत सब बातोंका प्रबन्ध कर गया था। कुन्दन भाभी भोजन बना रही थीं।

'मैं भी आऊँ क्या भाभीजी ?' आखिर रमाको यही नाम ठीक समझ पड़ा।

कुन्दन—'नहीं, बहू ! थक गई होगी।'

रमा – 'नहीं, कुछ भी नहीं थकी हूँ, देखिये आपकी कीकी रो रही है।'

कुन्दन—'अच्छी बात है। थोड़ा ही है कर डालो।'

रमा क्या करे ? रोटी गोलके बदले लम्बी, चौकोर बनी। तवे पर कच्ची रह गई। सेंकनेके लिये अङ्गारेपर डालते ही वह जल गई। कुन्दन भाभी और उनका बड़ा पुत्र तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

कुन्दन—'उठो, उठो, कर चुकी, मालूम हो गया। इसी प्रकार देवरजीको करके खिलाओगी। भूखा मार डालोगी ! हाय हाय ! इससे अच्छी तो चार अङ्गुलकी मेरी चन्चल ! बातकी बातमें कर दे सकती है।'

रमा—'आपके देवरजी विवाहके पहले पूछना भूल गये कि भोजन बनाने आता है या नहीं; उनका भाग्य !'

कुन्दन, 'हाय, हाय ! मैं इतना अच्छा बनाकर परोसती हूँ फिर भी छोड़ देते हैं ! बहू, सच कहती हूँ बुरा मत मानना, बहुत पढ़-लिखकर यही होता है ! विविध प्रकारके भोजन बनाना स्त्रियोंका भूषण है।'

भोजनोपरान्त शहरकी दो-चार स्त्रियाँ रमासे मिलनेके लिए आईं और यह ताँता दिन भर बँधा रहा। पहले रमाको विरक्ति हुई कि इनसे क्या सरोकार ! वृद्धा आईं और अपने पुत्र-बधूके समान 'हमारे सिद्धनाथको ऐसा' और हमारे सिद्धनाथको तैसा' कहकर आशीर्वाद दे गईं। प्रौढ़ाओंने—जिनमेंसे अधिकांश ने वारतमें शिक्षा ग्रहणकी थी—उसके साथ विविध विषयपर बातें कीं। अपरान्हमें कुछ नवबधुएँ आईं। वे गतवर्ष अपनी शिक्षापूर्ण कर वारतसे आईं थीं—और वहाँके सहजीवनमें स्वेच्छासे स्वीकार किये हुए पतिके साथ उन्होंने अपना जीवन प्रारम्भ किया था। पुरुषों जैसी शक्ति एवं स्वतंत्रता उनमें दिखाई

देती थी। वे साधारण अँग्रेजी भी बोलती थीं। उनके साथ वार्त्तालाप कर रमा चकित हो गई, क्या वे अमेरिकामें थीं? उनका खेलकूद कैसा था, सिद्धनाथ जब प्रोफेसर थे उस समय क्या-क्या घटनायें घटी थीं आदि सभीने कह सुनाईं। रमा तो उनकी प्रर्याप्त बातें सुनकर दिग्मूढ़ बन गई। उसका हृदय बैठ गया। सिद्धनाथ केवल उनका नहीं था बल्कि इन सभोंका था। ये सभी उनके पीछे पागल हो गई थीं। उनकी सत्ता, शक्ति, जब यहाँ थे तब भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हृदयोंमें—पुत्रभाव, मातृभावसे स्थित थी। रमा अपने जगतके प्रभावको देख व्याकुल हो उठी। एक-दो संस्कृत युवतियोंके हृदयमें तो स्पष्ट ईर्ष्या दिखाई दे रही थी, 'सिद्धनाथ' का नाम लेते समय उनके नेत्रमें, मुखपर विचित्र तेज भासित होता था, रमाको डाह हुई।

अधिक संयम न रख सकनेसे कुन्दन भाभी बोल उठीं—बाप रे बाप! यह क्या बला इकट्ठा कर रखा है? कितनी आवेंगी? जरा आरामसे बैठने नहीं देतीं। मेरे 'सिद्धनाथ' 'सिद्धनाथ'। मानो रमा शहर भरकी बहू है!'

बच्चू भाई—'तुम क्या जानो? कितने वर्ष तक जगत भैया इन सब लोगों के साथ रहे हैं!'

कुन्दन—'बस रहने दीजिये! क्या शहर भर घूमा करते थे? यह तो दीवानजीकी शान है!'

दो-एक वृद्धा बैठी थीं वे तो कुछ नहीं बोलीं लेकिन एक युवतीसे नहीं रहा गया। सादे वस्त्र एवं साधारण रूपमें भी उसका गौरव झलक रहा था। वह बोली—'बहन! यह शान तो किसी दूसरे राज्यमें चल सकती है, यहाँ तो—'

कुन्दन—'यहाँ क्या? यह तो देवरजी जरा ढीले हैं।'

युवती—'हमारे वारतकी सप्तम कक्षाकी लड़कियाँ जाकर उन्हें ठीक कर दें!'

सभी हँस पड़े।

कुन्दन भाभीकी पराजय व्यक्त न होने देनेके लिए रमाने कहा—'आप सब सफ्रेजेट' (स्त्री-मतकी पोषक) मालूम पड़ती हैं।'

युवती, 'सचमुच! मैं वारतमें थी उस समय एक स्वामीको—जो हमारे

प्रोफेसर थे—मैंने अकेले ठिकाने लगा दिया था। लीजिये, ये सफ्रेजेटके नायक आ गये।

रमाने दरवाजेकी ओर देखा और आज पाँच दिवस पश्चात् उस स्वरूपवान्, प्रियमूर्त्तिको देखकर अपनी आँखें ठण्ढी कीं।

जगतने हँसते हुए कहा—'रमा! आ गई? कौन राधा बहन?'

राधा—'मैं इन्हें वारतखण्डकी बात सुना रही थी।'

जगत—'क्यों, अभीसे मेरी पत्नीको बिगाड़ डालनेका विचार है क्या?'

जगत रघुभाईसे मिल आकर बैठ कर बोला—'राधा बहन! अब रमाको ठीक करना आपके हाथमें है।'

राधा—'आप तो हैं ही! बिना ननदकी ननदका रिश्ता कर रहे हैं! अच्छा, अब मैं चलती हूँ। सिद्धनाथ! कल रमा बहनको शहरके सभाकी प्रमुख बनाऊँगी।'

यह कहकर राधा एवं दूसरी स्त्रियाँ गईं और रणुभा आये। रमा ऊपर चली गई। रणुभाके जानेके पश्चात् जगत भी ऊपर गये।

जगतको देखते ही रमा बोल उठी—'आपने तो गोपियोंको पागल बना रखा है?'

जगत—'ऐसा?'

रमा—'और क्या! दिन भर 'मेरे सिद्धनाथ!' छोड़ दूसरा कुछ सुनने ही को नहीं मिला। मैं तो ईर्ष्यासे भर गई।'

जगत—'इतने ही में?'

रमा—'जी हाँ, सभी आपके पीछे पागल थीं; कितनी शिरीन और राधा हैं?'

जगत—'जितनीसे तू ईर्ष्या कर सके उससे कहीं अधिक। जो जैसी आशा रखता है वह वैसा मुझसे प्राप्त करता है।'

इस प्रकार बातें करते हुए दोनों छत पर गये। वहाँ पहुँचते ही जगतकी दृष्टि राम-मन्दिर पर पड़ी और उसका मुख गम्भीर हो गया।

'रमा! नहीं सोचा था कि यह समय भी आवेगा।'

'दुःख हो रहा है ?'

'नहीं, इतना मन विचलित नहीं है; उस कुएँमें गिरनेसे स्वामीजीने बचाया और -'

'और ?'

'और उस राम-मन्दिरमें प्रथम प्रेम-प्रतिज्ञा ली थी।'

जगतकी आँखें कठोर हो गईं। दो मिनट तक कोई बोला नहीं।

रमाने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे जगतकी ओर देखा, जरा धीरेसे, आतुरतापूर्ण स्वरमें वह बोली - 'जगत ! तनमन बहनकी आकांक्षा क्या पूर्ण नहीं कर सकूँगी ?'

जगतने सिर हिलाया। रमाके मुँहसे एक अस्पष्ट आह निकल गई। एक अश्रु बिन्दु आँखसे टपक पड़ा। जगतने रमाके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—'रमा ! बुरा क्यों मानती हो ? वह किशोरके प्रेमपूर्ण, निर्बाध, निरंकुश हृदयकी 'देवी' है। तू सिद्धनाथके विरागी, खिन्न हृदयकी सहचरी है। उसने मुझे हृदयनाथ बनाकर ईश्वर बनाया। तू मुझे कर्त्तव्यनाथ रखकर मेरा सच्चा मनुष्यत्व प्रकाशित करना।'

जगतके वक्षःस्थल पर सिर रखते हुए रमा बोली—'नाथ ! जो कुछ भी हूँ आपकी ही हूँ।'

× × × ×

उस युगलमूर्त्ति पर आकाशमण्डलमें चमकते हुए तारे मुस्करा रहे थे।

समाप्त।
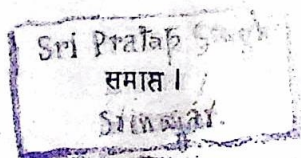
अप्रैल — १९५५

~~A end~~ well that ends well

This novel is